Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112591

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधर्मा

सम्यक्‌ज्ञान · सम्यक्‌दर्शन · सम्यक्‌चारित्र · सम्यक्‌तप

श्री ति. र. स्था. जैन धा. प. बोर्ड, पाथर्डी की मुखपत्रिका

वर्ष ५) १५ नवम्बर १९६३ (अंक ४

112591

★ इस अंक में —

१	सुधर्मा सुवचन सुधा	पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल	१
२	मन-मन्दिर (कविता)	श्री ज्योतिप्रभा महासतीजी	४
३	तप और त्याग	श्री चन्दनकुमारी महासतीजी	५
४	एक विहग (गद्य)	पं. गुलाबचन्द जैन, 'आधुनिक'	८
५	हमारी आज की दशा	श्री मोतीलालजी मुगाना, इन्दौर	९
६	भोग और त्याग का संघर्ष	श्री ज्योतिप्रभा महासतीजी	११
७	अजमेर में श्रमण सम्मेलन	पं. बदरीनारायण शुक्ल	१३
८	ति. र. स्था. जैन धा. प. बोर्ड परीक्षा-सम्बन्धी समयसारिणी	„	१८
९	समाचार		१९

क—पं बदरीनारायण शुक्ल — पं शोभाचंद्र भारिल्ल — प्रबन्ध सम्पादक — पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवर्ण नामावली

सदुपदेशक

परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज

संस्थापक

दानवीर शाह केशवजी जवेरचन्द, जामनगरवाले, जालना

आधारस्तम्भ

१ श्री. चन्द्रभानजी रूपचंदजी डाकलिया, श्रीरामपुर (नगर)
२ ,, केशरचंदजी कचरदासजी बोरा आश्वी ,,
३ ,, सूरजमलजी कस्तूरचन्दजी गांधी अहमदनगर
४ ,, माणकचंदजी किसनदासजी मुथा ,,

संरक्षक

१ श्री. तिलोकचंदजी खूबचंदजी गुंदेचा चांदा (नगर)
२ ,, फकीरचंदजी उत्तमचंदजी गुगले चिचोंडी शिराळ ,,
३ ,, माणकचंदजी उत्तमचंदजी गुगळे पाथर्डी ,,
४ श्रीमती शक्करबाई रतनचंदजी सुराणा द्रुग (मध्यप्रदेश)
५ श्री. पन्नालालजी गुलराजजी गांधी मावावाले पूना
६ स्व. श्री.पन्नालालजी गुगले पाथर्डी के स्मारक
७ श्री. मगनीरामजी फकीरचंदजी दुधेडिया श्रीरामपुर
८ सौ. धोंडाबाई भ्र. उत्तमचंदजी संचेती पूना
९ श्री, कुन्दनमलजी कस्तूरचंदजी बोरा ,,
१० नवलमलजी सरदारमलजी पुंगलिया नागपुर
११ भिकमदास पोखरणा चै. ट्रस्ट पूना
१२ श्री. उदयरामजी हरकचन्दजी रैदासणी वीवी

सहायक सदस्य

१ श्री. उत्तमचंदजी कचरदासजी भटेवड़ा राहू (पूना)
२ ,, बंशीलालजी अमोलकचंदजी भटेवड़ा ,, ,,
३ ,, माणकचंदजी भीवराजजी भटेवड़ा ,, ,,
४ सौ. श्रीकुंवरबाई भ्र. मूलचंदजी भटेवड़ा ,, ,,
५ श्री. प्रतापमलजी फूलचंदजी बनवट आष्टा
६ सौ. उमरावबाई भ्र. हस्तमलजी जैन शाजापुर
७ श्री. केशरीमलजी बापूलालजी जैन शुजालपुर
८ ,, रंभाबाई भ्र. गणपतसिंहजी जैन ,,
९ सौ. तेजकुंवरबाई धर्मपत्नी डालचंदजी चोधरी ,,
१० श्री. मोजीलालजी भीमसिंहजी जैन ,,
११ ,, बीजराजजी जुगराजजी संचेती मलकापुर
१२ ,, तेजमलजी भीवराजजी संचेती ,,
१३ श्री. जवरीबाई भ्र. घूलजीभाई शाजापुर
१४ श्री. हिंमतलालजी सा. जैन शाजापुर
१५ ,, कनकमलजी चुन्नीलालजी गांधी चाँदा
१६ ,, नारायणदासजी मोहनलालजी मंडलेचा येवला
१७ ,, भागूबाई भ्र. चंदनमलजी गादिया बेलापुर
१८ ,, मगनलाल सुंदरजी शाह अमरावती
१९ ,, हेमकुंवरबाई भ्र. कालीदासजी शाह सातारा
२० ,, मयाशंकर चत्रभुज शाह अमरावती
२१ ,, शान्तिलाल पोपटलाल काठेड अहमदनगर
२२ श्री. कचरदास मोहनलाल लोढा अहमदनगर
२३ ,, गेंदमल राजमल जैन शुजालपुर
२४ श्री. लाभचन्दजी गुलाबचन्दजी चोरडिया हिंगणघाट
२५ ,, कुंदनमलजी लुंकड की सुपुत्री सायरबाईजी बेंगलोर
२६ ,, सिमरतमलजी चुनीलालजी मुथा वांबोरी
२७ " धनराजजी मोतीलालजी कांकरिया पूना
२८ ,, खुशालचंद संपतलाल भूरट घोडनदी
२९ ,, मोतीलालजी मोहनलालजी सिंगी पून
३० ,, मिश्रीलालजी हस्तीमलजी दुगड घोडनदी
३१ ,, कचरदासजी प्रकाशमलजी भलगट अहमदनगर
३२ ,, सुखरामजी प्रेमराजजी मुथा बेलापुर
३३ ,, सौ. शांताबाई बाबूलालजी रैदासनी नशीराबाद
३४ ,, ताराचंदजी भीवराजजी भटेवडा राहू (पूना)
३५ ,, तुलसाबाईजी कोचर हिंगणघाट
३६ ,, जसराज कालाभाई लाठिया मुर्तिजापुर
३७ ,, बापूलाल प्रेमचंद संघवी अकोला
३८ ,, शाह नागजी पानाचंद बारवडा रायपुर
३९ ,, रूपचंदजी गोकुलचंदजी कोठारी कोपरगांव
४० ,, चन्दनमल नन्दरामजी गांधी श्रीरामपुर
४१ ,, दलीचन्द गुलाबचन्दजी पारख नागपुर
४२ ,, उत्तमचन्दजी चुनीलालजी मुथा वाम्बोरी
४३ ,, कचरदास रूपचंदजी कर्नावट इचलकरंजी
४४ ,, हंसराजजी गुलाबचंदजी लुणावत लोणावला
४५ ,, गेंदालालजी मोतीलालजी जैन ट्रस्ट इन्दौर
४६ ,, राजमल नन्दलाल मेहता चै. ट्रस्ट भुसावल

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के लिए

प्रकाशक व मुद्रक पं० बदरीनारायण द्वारकाप्रसाद शुक्ल

मुद्रण व प्रसिद्धिस्थल श्री सुधर्मा मुद्रणालय ८३२ जुना कापड बाजार पाथर्डी. जि० (अहमदनगर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की ज्योति जगाने हेतु विविध निवन्ध–प्रवन्ध माला स्वरूप धार्मिक आध्यात्मिक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक मासिक पत्रिका।

सुधर्मा

मूल्य
वार्षिक ६–००
१ अंकका ०–५०

प्रत्येक १५ तारीख को प्रकाशित होगी।

सुष्ठु धर्मः समाख्यातो वीरेण परमार्हता ।
सर्वत्र तत्प्रचाराय सुधर्माख्या सुपत्रिका ॥

वर्ष ५) १५ नवम्बर १९६३ (अंक ४

सुधर्मा सुवचन सुधा

मूल––जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेणं ।
अमला असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्तसंसारी ॥ ११ ॥

छाया—जिनवचने अनुरक्ता जिनवचनं ये कुर्वन्ति भावेन ।
अमला असंक्लिष्टाः ते भवन्ति परीत्तसंसारिणः ॥

शब्दार्थ––जो जीव जिन भगवान् के वचन में श्रद्धावान् है और जो अन्तः-करण से जिन–वचन के अनुसार अनुष्ठान करते है वे मिथ्यात्व रूपी मल से रहित तथा संक्लेश से रहित होकर परीत संसारी बन जाते है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं भाष्यकार पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल कृत भाष्य

• • • • • •

भाष्य--सम्यक् दर्शन के फल का निरुपण करते हुए सूत्रकार ने यह बतलाया है कि जो भाग्यवान् प्राणी जिन भगवान के वचनों में आसक्त होते हैं अर्थात् वीतरागोक्त आगम पर सुदृढ श्रद्धा रखते है, किसी भी अवस्था में, किसी भी संकट के आ पडने पर वीतराग–प्ररुपित आगम से विपरीत श्रद्धान नहीं करते है, साथ ही जिनोक्त आगम के अनुसार ही चलते है, वे मिथ्यात्व आदि रुप कर्म–मल से रहित हो जाते है। उन्हें कर्म बन्ध जनक संक्लेश भी नहीं होता है और वे अनन्त काल–तक के भव–भ्रमण को घटा कर सीमित कर लेते है। अर्थात अर्द्ध–पुद्गल परावर्तन काल तक अधिक से अधिक वे संसार में रहते है। तदनन्तर उन्हे मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

संसारी प्राणी चाहे जितने विषयों का गंभीर ज्ञान प्राप्त कर लेवे किन्तु फिरभी उसका ज्ञान अत्यन्त क्षुद्र ही रहता है। जगत् में अनन्त सूक्ष्मतर भाव ऐसे हैं, जिनका ज्ञान छमस्थ जीवों को कदापि नहीं हो सकता। अनन्त पदार्थो को जाने दिया जाय और केवल एक ही पदार्थ को लिया जाय तो भी यही कहना होगा कि अनन्त धर्मात्मक एक पदार्थ को, उसकी त्रैकालिक अनन्तानन्त पर्यायों सहित जानना छमस्थ के लिए संभव नहीं है। एक पदार्थ में अनन्त धर्म और एक एक धर्म की अनन्त पर्यायें भला असर्वज्ञ जीव कैसे जान सकता है? इस प्रकार एक ही पदार्थ का पूर्ण ज्ञान न हो तब सम्पूर्ण पदार्थों के वास्तविक स्वरूप को जानने का दावा कौन कर सकता है। इसीलिए आगम में कहा है–

'जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ' अर्थात् जो एक पदार्थ को उसकी समस्त सद्भावी और क्रमभावी पर्यायों सहित जानता है, वही समस्त पदार्थो को जानता है और जो समस्त पदार्थो को परिपूर्ण रुपेण जानता है वही एक पदार्थ को परिपूर्ण रूप से जानता है। तात्पर्य यह है कि एक पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी अनन्त ज्ञान की आवश्यकता है और जब अनन्त ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब सभी पदार्थ स्पष्ट प्रतिभासित होने लगते है।

जब संसारी जीव ज्ञान के विषय में इतना दरिद्र हैं तो उसे किसी ज्ञानी का शरण लेना चाहिए। अंधा यदि सूझते की सहायता के बिना ही यात्रा करेगा तो गर्त में गिरकर असफल होगा। इसी प्रकार आत्म कल्याण के दुरूह पथ पर अग्रसर होते समय जो ज्ञानी जनों के वचन को पथप्रदर्शक न बनाएगा वह अपनी यात्रा में सफल नहीं हो सकता। ज्ञानी-महापुरुषों के वचनों का आश्रय लेकर उन्ही के सहारे प्रगति करने वाले पुरुष ही अपने लक्ष्य पर पहुँच सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ज्ञानी के वचनों पर पूर्ण श्रद्धान रखकर चलने से ही लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती हैं, यह तो ठीक है, किन्तु ज्ञानी किसे माना जाय ? संसार में अनेक मत-मतान्तर है और सभी मतावलम्बी अपने इष्ट--आराध्य पुरुष को ज्ञानी मानते हैं । फिर भी उन सब मतों में पर्याप्त अन्तर है । एक मत आत्मकल्याण की जो दिशा सूचित करता है, दूसरा मत उससे विपरीत दिशा सुझाता है । ऐसी अवस्था में मुमुक्षु को किस का ग्रहण और किस का परिहार करना चाहिए ? इस प्रश्न का उत्तर सूत्रकारने यहाँ उदारता पूर्वक दिया हैं । जिस महापुरुष ने राग-द्वेष आदि समस्त आत्मिक विकारों पर अन्तिम विजय प्राप्त कर ली है, उसे 'जिन' कहते हैं 'जिन अवस्था' तभी प्राप्त होती हैं, जब सर्वज्ञ दशा प्राप्त हो जाती हैं । इस कारण जो सर्वज्ञ हैं और जिन अर्थात् वीतराग हैं, उनका वचन अन्यथा रूप नहीं हो सकता । अतएव मुमुक्षु जीवों को 'जिन' के वचनों पर ही श्रद्धान करना चाहिए उन्हीं के वचनों को अपनी मुक्ति यात्रा का प्रकाश स्तम्भ बनाना चाहिए । जिन कदापि अन्यथा वादी नहीं हो सकते, इस प्रकार की अविचल प्रतिपत्ति के साथ प्रवृत्ति करने वाला पुरुष ही मुक्ति प्राप्त कर सकता हैं । जो जिन वचन पर श्रद्धान नहीं करता अर्थात् जो संशयात्मक है अथवा रागी-द्वेषी पुरुषों के वचन प्रमाण मानता हैं, वह या तो श्रेयोमार्ग में प्रवृत्ति नहीं कर सकता या विपरीत प्रवृत्ति करके अश्रेयस का भागी होता है । सम्यग्दृष्टि पुरुष को श्रद्धा योग्य विषय में श्रद्धा करनी चाहिए और तर्क द्वारा निश्चय करने योग्य पदार्थ का तर्क से निर्णय करना चाहिए । तर्क के विषय में आगम और आगम के विषय में तर्क का उपयोग करना उचित नहीं है। आचार्य सिद्धसेन कहते है–

जो हेउवायपक्खम्मि हेउओ आगमे य आगमओ ।
सो ससमयपण्णवओ सिद्धांतविराहओ अन्नो ॥

—सन्मति तर्क गाथा ४५

अर्थात् जो हेतु वाद के विषय में हेतु से और आगम वाद के विषय में आगम से प्रवृत्त होता है वह स्वसमय का प्ररूपक (आराधक) है और जो हेतुवाद के विषय में आगम से तथा आगम के विषय में हेतु से प्रवृत्त होता है वह सिद्धांत का विराधक हैं ।

इससे स्पष्ट हैं कि सम्यग्दृष्टि पुरुष न तो एकांत श्रद्धा पर अवलंबित रहता हैं और न एकान्त तत्त्व पर आश्रित होता हैं । वह प्ररूपणीय विषयकी योग्यता का विचार कर के यथायोग्य विवेक के साथ निश्चय करता है । जो विषय केवल श्रद्धा का होता हैं उनमें तर्क का हस्तक्षेप नहीं होने देता, क्योंकि ऐसा करने से यथार्थ निर्णय होना संभव नहीं है, तथा तर्क द्वारा निर्णय होने योग्य विषय में न आगम का ही आग्रह रखता हैं । ऐसा करने से उसकी श्रद्धा भी अविचलित रहती है और विचारशक्ति की भी वृद्धि होती हैं, पर सम्यग्दृष्टि इस बात का विचार अवश्य रखता हैं कि तर्क का निर्णय आगम से विरुद्ध नहीं होना चाहिए । जो तर्क आगम के विरुद्ध वस्तु तत्त्व उपस्थित करता है, समझना चाहिए कि उसमें दोष अवश्य हैं । विशुद्ध तर्क आगम से समन्वित होता हैं, आगम का साधक होता हैं, आगम का प्रतिपक्षी नहीं होता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन मन्दिर

श्री ज्योतिप्रभा महासतीजी, सि. प्रभाकर

(तर्ज—दिल एक मंदिर है.......... (स्तवन)

प्रभू ! मन मन्दिर में है ।
बाहर क्यों तूँ ढूँढे अज्ञानी, वो तेरे ही अन्दर है ।।ध्रु।।

आज तक तूने बाहर शोधा ।
अन्तर में प्रभु को नहीं खोजा ।।
आत्म-निरीक्षण कर ले बन्दे ! यह विश्व समुन्दर है ।।१।।

जिसने मन को वश में किना
परमानन्द उन्होंने लीना ।।
ज्ञान से मन को वश में कर ले, मन तो चंचल है ।।२।।

इच्छाओं की तोडो मिनारें ।
सुख यदि पाना चाहो प्यारे ।।
पार न आता इसका कभी भी, तृष्णा तो अम्बर-सी है ।।३।।

जीवन को तुम 'उज्ज्वल' बनालो ।
ज्ञान गुणों की "ज्योति" जगालो ।।
प्रभु पाने का सच्चा भाई, ये दिव्य मन्तर है ।।४।।

प्रेशिका—कुमुद मुथा, गंजबाजार (अहमदनगर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तप और त्याग

विदुषी श्री सुमति कुँवरजी
महासतीजी की शिष्या
'चंदनकुमारीजी'

मक्खन से घृत बनाने के लिए उसे पात्रमें रखकर तपाया जाता है और बादमें अनावश्यक अंशसे उसे निकाल लिया जाता है। उसी प्रकार तप आत्मा से संयुक्त कर्म मल को तपाता है और त्याग अनावश्यक भाग को आत्मा से पृथक कर देता है जिससे आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होता है। आध्यात्म वादी धर्म, तप और त्याग को बहुत बडा महत्व देते है। क्योंकि तप से आत्मा का परिशोधन होता है और यही परिशोध धर्म का ध्येय होता हैं। इस निबन्ध की इन पंक्तियों से मैं अपने पाठकों का ध्यान तप और त्याग के समन्वय और उसके वास्तविक स्वरूप की तरफ आकर्षित कराना चाहती हूँ यद्यपि ये दोनों शब्द हमारे पर्याप्त परिचित है।

'तप' और 'त्याग' आत्मशुद्धि रूप सिद्धि के लिए परस्पर एक दूसरे के पूरक है, एक के अभाव में दूसरा अपूर्ण है। अतः तप, त्याग पूर्वक होना चाहिए। और त्याग में तो तप की आवश्यकता है ही। उदाहरणके लिए कोई व्यक्ति तप करता है परन्तु क्रोध का, अभिमान का अथवा लाभ का त्याग नहीं करता तो ऐसा तप आध्यात्मिक जीवन में कोई उत्क्रांति नहीं ला सकता। हम देखते है कि तप तो किया जाता है परन्तु प्रदर्शन, लालच तथा प्रतिष्ठा के अशुद्ध विचारों का अभाव अधिकांश में नहीं पाया जाता और इसी अशुद्ध तप की पवित्र तप से तुलना की जाती है। परन्तु वास्तव में हीन भावना से किए गए तप का वास्तविक तप के साथ मूल्यांकन करना, वास्तविक तप का मूल्य कम करना है। अतः तप में त्याग का मिश्रण होना ही चाहिए।

वास्तविक आध्यात्मिक जीवन की प्रगति का कोई साधन है तो वह त्याग है। क्योंकि त्याग ही जीव और जडकी अनादि काल से पडी हुई गांठ को खोलता है। तप का कार्य केवल उस बंधन को शिथिल कर देना मात्र है। हम तप करना तो जानते है किन्तु त्याग की महत्ता से अनभिज्ञ है। यह बात उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है। जहाँ दोनों की समान रूपसे आवश्यकता है वहाँ यदि एक अपूर्ण हो तो कार्य सिद्धि में शिथिलता आयेगी।

दशवैकालिक मे भगवान् सूत्रकार त्यागी की गंभीर व्याख्या करते है—जो स्वायत्त है उसका त्याग होना चाहिए। जो पराधिन है जिनपर उसका अपना अधिकार नहीं उन पदार्थो का त्याग, त्याग नहीं है दंभ है, आडम्बर है। वह स्थल दृष्टव्य है—

"वत्थगंधमलंकारं इत्थीओ सयणाणि य।
अच्छंदा जे न भुजन्ति न से चाइत्ति वुच्चइ।"

त्यागी कौन हो सकता ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जे य कंते पिए भोए लद्धे वि पिट्ठी कुब्वई।
साहीणे चयई भोए से हु चाइत्ति वुच्चइ ॥"

यहाँ जिन पदार्थों के नामों का उल्लेख किया है वे उपलक्षण मात्र हैं। अर्थात् इसका भावार्थ यह है कि-हमारी वृत्तियाँ, हमारे, दूषित विचार, हमारे आधीन हैं जिनका त्याग वांछनीय है। त्याज्य पदार्थ का जो त्याग करता है वही सच्चा त्यागी है। और जो संसार की बाहृय वस्तुओं के त्याग के साथ अंतःकरण की अपवित्र वृत्तियों को नहीं छोडता वह त्यागी नहीं है चाहे उसने संसारके समस्त स्थूल परिग्रहों को भी क्यों न छोड दिया हो।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि तप और त्याग साधक के दो कदम हैं। तप के दो भेद किए हैं-१) बाह्य तप और २) आभ्यन्तर तप। यहाँ हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि बाहृय तप भी आभ्यन्तर तप के लिए ही हैं, अर्थात् अन्तरशुद्धि के लिए हैं। उसका आंशिक स्पष्टीकरण करना यहाँ अनावश्यक नहीं होगा। बाहृय तप के ६ भेद हैं–

"अणसणमूणोयरिया सिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ,
कायकिलेसो संलीणया य बज्झो तवो होइ ॥"

आभ्यन्तर तप के भी ६ भेद हैं:–

"पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं उस्सग्गो विय एसो अब्भिन्तरओ तवो होइ।"

बाहृय अनशन आदि ६ भेद क्रमशः आभ्यन्तर के लिए हैं जैसे बाहृय अनशन आभ्यन्तर 'प्रायश्चित तप' के लिए है, उणोदरी विनय के लिए है, वैयावृत्य के लिए भिक्षाचरी है। इसी प्रकार क्रमशः आगे भी समझ लेना चाहिए।

तो इस तरह तप और त्याग का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। तप स्थूल दोषों को दूर करता है तो त्याग सूक्ष्म दोषों को। सूक्ष्म दोष स्थूल दोषों के जनक हैं। स्थूल दोषों को हटाने के लिए सूक्ष्म दोषों को दूर करना प्रथम आवश्यक है।

प्रकृत विषय से हम काफी दूर, आ गये हैं। उस तरफ एक बार पुनः दृष्टि डाल लें कि शुद्ध भावनाके अभाव में तप और त्याग आत्मा के सौंदर्य को कम करते हैं। केवल बाहृय तप स्थूल सौंदर्य की वृद्धि कर भी दें फिर भी उसका प्रयोजन उस की बाहृय उपयोगितामें नहीं है उसका मूल्य स्थूल और भौतिक मानसे निश्चित करना आत्मा के साथ अन्याय करना है।

हम व्यवहार में भी अनुभव करते हैं कि सुन्दर वस्तु भी यदि कलात्मक ढंग से प्रस्तुत न की जाय तो वह सुंदर नहीं मालूम होती। तप और त्याग जैसी पवित्र भावना उच्च ध्येयहीन वृत्तियों में अपना गौरव खो देती है। यद्यपि तप और त्याग आत्मा के सौंदर्य के प्रसाधन हैं––आत्मा की अनन्त सुषुप्त शक्ति को प्रज्वलित करने वाली चिनगारियाँ हैं। परन्तु आज हम देखते हैं कि तप त्याग का बाहृय रूप काफी प्रगतिशील है और उसके आभ्यन्तर स्वरूप की उपेक्षा भी दृष्टिगोचार होती है। यही नहीं, साधारण साधक बाहृय तप के चमत्कार और क्षणिक आनंद की सृष्टि को देखकर, उसमें मूग्ध हो जाते हैं। उसके भाव-पक्ष दुर्बल पड जातें हैं। यही कारण है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वह बाह्य जगत् के चमत्कार की खोजमें लग जाता है । तप, त्याग के श्रेष्ठ आदर्श के विपरीत हेय और निम्न आदर्श को अपना विषय बना लेता है और उसी में अपनी करामत दिखाता है, जिसे कल्याणमय नहीं कहा जा सकता । इस बाह्य तप और त्याग का आध्यात्मिक जगत् में क्या प्रभाव पडता है अथवा उसकी गति-क्रिया क्या होती है यह विचार वह क्षणभर भी करने के लिए तैयार नहीं होता । बाह्य तप और त्याग का आत्मा के साथ सीधा संबंध न होने के कारण उसमें वास्तविक शक्ति नहीं होती । वह केवल अपनी यशोलिप्सा को संतुष्ट करने के लिए ही बाह्य तप के मार्ग को अपनाता है ।

जो तप और त्याग जीवन को उदात्त नहीं बनाता, भावना की विकृति को दूर नहीं करता, हृदय में पवित्रता का संचार नहीं कराता, जीवन को संपूर्ण रूप से ऊँचा नहीं उठाता, वह तप नहीं है, वह त्याग नहीं है । ऐसा सूत्रकार दशवैकालिक सूत्र में स्पष्ट उद्घोष कर आध्यात्मिक जीवन के एक वास्तविक सत्य की ओर संकेत करते हैं । तप और त्याग का समन्वयात्मक रूप साधक के जीवन में नित्य आनंद की सृष्टि करता है । क्योंकि उसके मूल में वही होता है जो होना चाहिए । साधक इसी शुद्ध भूमिका पर प्रगति का भव्य और सौंदर्यमय भवन खडा करता है ।

यह ठीक ही है कि, यहाँ हमें समझने में यह भूल कदापि नहीं करनी चाहिए कि तप, त्याग का बाह्य रूप व्यर्थ ही है । बाह्य तप और त्याग को आध्यात्मिक जीवन के उत्कर्ष में कोई स्थान नहीं । लेकिन उनका अपना भी अलग-सा महत्त्व है । भारत में सैकडों वर्षों से यह मत प्रचलित था । पहले वे कहा करते थे–

"रागद्वेषौ यदि स्यातां तपसा किं प्रयोजनम्
तावेव यदि न स्यातां तपसा किं प्रयोजनम् ।"

यह पक्ष ऐकान्तिक होने के कारण सर्वथा त्याज्य है, उपेक्षणीय है । जैन आगम आत्मा के परम सौंदर्य की अभिव्यक्ति का कौशल दोनों के समन्वय से ही स्वीकार करता है । वास्तवमें तप और त्याग महान् पवित्र शक्तियाँ हैं । इन्हीं शक्तियों के द्वारा आत्मा सहजानंद को प्राप्त करता है जो उसका परम ध्येय होता है ।

अपना भवन छोड़ क्यों जाऊँ, अगम गहन कान्तार में ?
भवन सजा दूं भावों से, तुम आ जाओगे प्यार में ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एक विहग'

पं. गुलाबचन्द जैन 'आधुनिक'

गगनचुम्बी उन महलों को देखते हुए
चला जा रहा था, चला जा रहा था दूर और बहुत दूर
पहुँच गया में गहन विटपों से परिपूरित निर्जन वन में,
देखा वहाँपर एक तरु की डाली पर
सूना- सूना मन को लेकर
बैठा था एक विहग गजब की चुप्पी साधे ।

महल उसका निर्मित था लघु-लघु तिनकों से,
नई कोपलों की झीनी-सी दीवारों से ।

देखा उसने, विकल,-चपल-चंचल बनी एक रूप परी-सी
प्रियतम के दर्शन को प्यासी मुग्धा सी
एक विहगी को ।

और देखते ही रह गया वह मादकता को
उसकी गति में हर चितवन में,
पँख पँख के नूनत पन में स्निग्ध रूप में
लीन, मूक, हतभागी बन वह विहग वियोगी,
एकाकी पागल बेचारा,
पता नहीं क्या होगा उसका ?
छोड भी दो ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी आज की दशा

ले०—श्री मोतीलालजी सुराना, (इन्दौर)

दो सौ वर्ष पहले ५ जैमलऋषिजी ने व्यवहार सूत्र के आधार पर एक भजन बनाया था। उसमें आज के युग की कई बातों का वर्णन है कि पंचम काल में कौन कौन-सी अच्छी बातों का योग नहीं मिलेगा तथा कौन कौन-सी बुरी बाते मूर्त रूप धारण कर लेगी। भगवान् महावीर के समय के चौथे काल से जैन धर्म की उन्नति हुई परन्तु २५००० वर्ष के इस पंचम काल से धर्म की हानि होने का जो स्वरूप बतलाकर चित्रण किया गया है आज वह बिलकुल सही मिलता है 'चन्द्रगुप्त राजा सुणो' नामक स्तवन में ऋषिजी लिखते है—

पाटलिपुर नगर के राजा चन्द्रगुप्त ने १६ स्वप्न देखें। भद्रबाहू स्वामी अपने शिष्यों के परिवार सहित उसी नगर के बाहर 'पाटलि' नामक बाग में विराजते थे। राजा, भद्रबाहू स्वामी के पास आया और वन्दना नमस्कार कर देखे हुए स्वप्नों का फल जानने की इच्छा से स्वप्नों का अर्थ बतलाने के लिये विनन्ती की।

भद्रबाहू स्वामी ने कहा—राजन् ! पहले स्वप्न में कल्प-वृक्ष की डाल टूटी हुई देखी। इसका मतलब यह हुआ कि पंचम काल में कोई भी राजा जैन दीक्षा अंगीकार न करेगा।

'दोपहर को सूर्य अस्त हो गया' इस दूसरे स्वप्न का अर्थ बतलाया कि पांचवे आरे में किसीको भी 'केवल-ज्ञान' प्राप्त न होगा।

तीसरे स्वप्न में राजा ने 'चन्द्रमा में चालनी की तरह अनेक छेद देखें'। चौदह पूर्व तथा चार ज्ञान के स्वामी श्री भद्रबाहू स्वामी ने इस स्वप्न का अर्थ करते हुए फरमाया कि—धर्म में अनेक मत-मतान्तर हो जावेंगे तथा सब अपनी-अपनी अलग समाचारी बनाकर उसीके अनुसार चलेंगे।

'भूत और भूतनी को नाचते हुए' चौथे स्वप्न में देखा था। इसका मतलब बतलाया कि—कुगुरु, कुदेव और कुधर्म की मान्यता अधिक बढ जावेगी। सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्दर्शन और सम्यक्चरित्र की उपेक्षा होगी।

'पांचवें स्वप्न में बारह फण वाला नाग' देखा था। इसका अर्थ यह हुआ कि—अतिवृष्टि और अनावृष्टि के कारण कुछ-कुछ वर्षों के बाद अकाल पडता रहेगा।

'आकाश में देव विमान जलता हुआ' छटे स्वप्न में देखा गया था। स्वामीजी ने इसका यह मतलब बतलाया कि—विद्या की अवनति होगी। सच्ची विद्या कोई ग्रहण नहीं करेगा अतः रूप बदलने की, बिना उपकरण के उडने की आदि लब्धियाँ विलोप हो जावेगी। सातवें स्वप्न में राजा ने रोटी पर कमल उगा देखा था। उसका अर्थ बतलाया कि—जनता की रूचि सूत्रों में तथा शास्त्रों में नहीं रहेगी। वे एकता के महत्त्व को न समझेंगे तथा अलग-अलग अपने-अपने पक्ष के सदस्यों को बढाने के लिए हठाग्रह करते रहेंगे। किस्से, कहानी, गीत, गायन आदि से इनका मनोरंजन होगा तथा इसी माध्यम से वे शिक्षा भी पाते रहेंगे।

'आठवें स्वप्न में जो जुगुनु देखा' था उसका मतलब बतलाते हुए कहा कि—मिथ्यात्त्व का जादा प्रभाव पंचमकाल में रहेगा जब कि धर्म का उद्योत कम रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपस्या आदि पर लोगो का अनुराग रहेगा अतः विशेष अवसरों पर ही जनता एकत्रित हुआ करेगी।

'समुद्र का पानी तीन दिशाओं में सूका हुआ तथा बाकी एक कोने में गन्दला हुआ स्वप्न में देखा'। इस नौवें स्वप्न के विषय में भद्रबाहू स्वामी ने फरमाया कि-सभी दिशाओं से धर्मविच्छेद्द होगा। केवल थोडे से स्थान पर लोग धर्मके प्रति साधारण-सी आस्था रखेंगे। जहाँ जहाँ भगवान् के 'पांच कल्याण' हुए हैं वहाँ तो लोग और भी अधिक अधर्म की ओर झुके हुए रहेंगे।

भगवन्! राजाने कहाँ—अब सात स्वप्नों का और अर्थ बतलाने की कृपा करें।

दसवें स्वप्न में कुत्ते को सोने की थाली में पदार्थ खाते हुए देखा। इसका फल बतलाते हुए फरमाया कि— राजन्! पंचम काल में ऊँचे आसनों पर बैठकर अपने को ऊँच मानने वालों के यहां लक्ष्मी नहीं रहेगी परन्तु दिन भर मेहनत करने वाला तथा स्थान-स्थान पर जाने वाले के यहां धन, दौलत की वृद्धि होगी। चुगली करने वाले, चापलूसी करने वाले, चोरी करने वालों की वृद्धि होगी जबकि दूसरों की सेवा करने वाले, सहायता करने वाले बहुत ही कम मिलेंगे।

ग्यारहवें स्वप्नमें 'बन्दरको हाथी पर बैठा देखा था।' इसका मतलब बतलाया कि—म्लेच्छ लोग राज्य के अधिकारी बनेंगे और इस प्रकार अच्छे आदमियों को सदा दबकर रहना पडेगा।

'समुद्रने अपनी कार छोड दी है' इस बारहवें स्वप्न का मतलब बतलाते हुये कहा कि—जनता पंचमकाल में बात-बात पर विश्वास घात करेगी। वचन पालना तो दूर लोग कहकर इन्कार कर जायेंगे। इस प्रकार सदैव आपस में दंगे होते रहेंगे। साधु समाज में भी गुरु की आज्ञा न मानकर छोटे शिष्य ऐसे काम करने लगेंगे जो कि नहीं करना चाहिये। शिक्षा देने पर द्वेष करेंगे तथा साधु बन जाने पर भी विनय, आज्ञा पालन, अनुशासन आदि सद्गुणों से अलंकृत न होंगे। थोडे से शिष्य ही ऐसे होंगे जो भेषधारी भले न हो पर उनमें साधुओं के सद्गुण होंगे।

तेरहवें स्वप्न में राजा ने 'एक बडे रथ में छोटे-छोटे बछडे जूते हुए देखे थे–इसका अर्थ बतलाया कि—धर्म की बातें बालक वय में ही अच्छी लगेंगी। युवावस्था वाले धर्म की बातों से दूर भागेंगे। जब कि वृद्ध लोग लोक-लज्जा से धर्म पर अनुराग रखेंगे।

चौदहवें स्वप्न में राजा ने देखा कि 'रत्न वापस जा रहे' है—भद्रबाहू स्वामी ने इसका मतलब समझाया कि—भरत क्षेत्र के साधु-साध्वी दोनों में बहुत थोडी एकता रहेगी। कलह प्रिय साधु साध्वी अधिक होंगे। सब आप अपनी प्रशंसा करनेवाले होंगे तथा क्रोधी होंगे। अशुद्ध आचार पालने वाले तथा कपटी साधु अधिक होंगे। जो सच्चा मार्ग बतावेगा उनकी निन्दा करने में भी वे न चुकेंगे।

राजकुमार—

ऐसा पन्द्रहवें स्वप्न में देखा था। इसका मतलब समझाते हुए कहा कि—आने वाले समय में प्रायः लोगों को बुरी बातें अच्छी लगेंगी। हानि करने वाली आदतों को अपनायेंगे तथा वें जिद्दी, अभिमानी एवं लालची अधिक होंगे, कुबुद्धि वाले अधिक होगे। अतः न्याय मार्ग पर चलने वालों की संख्या कम होगी।

अन्तिम सोलहवें स्वप्न में राजा चन्द्रगुप्त ने 'बिना महावत के हाथियों को लडते हुए देखा था', इस स्वप्न के विषय में भद्रबाहू स्वामी ने समझाया कि—आवश्यकता के समय पानी न गिरने से तथा बिना मतलब के अधिक वर्षा होने से समय-समय पर अकाल होता रहेगा। माता, पिता, गुरु आदि की भक्ति करने वाले बहुत कम लोग होंगे। भाई-भाई में स्नेह कम रहेगा तथा भरत क्षेत्र के निवासियोंमें लडाई, ईर्षा आदि दुर्गुण बढेंगे। लोग बडे छोटे का कानून कायदा नहीं मानेंगे तथा सदैव झगडते रहेंगे।

राजा चन्द्रगुप्त ने जब आनेवाले समय का ऐसा बुरा हाल सुना तो उन्हें वैराग्य होगया। अपने लडके को राज्यभार सौंपकर उन्होंने भद्रबाहू स्वामीके पास दीक्षा अंगीकार कर ली और निर्मल संयम पालकर देवलोक में स्थान पाया।

❀ ❀ ❀

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास का एक चमकदार पृष्ठ — त्यागी पुत्र और संस्कारी माता

•: भोग और त्याग का संघर्ष :•

ले.—पं. श्री उज्ज्वलकुमारीजी म. सा. की सुशिष्या श्री ज्योतिप्रभा म. 'सि. प्रभाकर'

'माताजी प्रणाम करता हूँ!'

चिरंजीव रहो बेटा! क्या बात है? अभी-अभी तो तुम ऊपर गवाक्ष में चौपड खेल रहे थे, नीचे क्यों आ गये?

माताजी! क्या बतलाऊँ, अन्तर्मानस में संयम लेने की तीव्र उत्कण्ठा जागी है, अनुज्ञा और आशीस लेने उपस्थित हुआ हूँ!

क्या कह रहे हो लाल! संयम! तुम संयम ले रहे हो, क्यों? 'स्वरों में घबराहट थी।'

'हाँ माताजी! संसार की असारता को अब मैं पहचान चुका हूँ, 'सारभूत वस्तु संयम ही है.' यह मैं जान चुका हूँ, और इसीलिए मैं संयम लेने को उद्यत हुआ हूँ।

'बेटा! कैसी बाते कर रहे हो! बात यदि समयोचित हो तो अच्छी भी लगती है। अभी तुम्हारी उमर ही क्या है? किशोरावस्था को पार करो, युवक बनों, वैभव भोगो, सांसारिक सुखों का अनुभव करो फिर भुक्तभोगी बनकर संयम लेने की सोचो तो मैं भी साथ दे सकूँगी।

माताजी! काल का कोई निश्चित समय नहीं है, फिर संयम के लिए निश्चित समय की क्या आवश्यकता है? काल सिरपर अहर्निश मंडरा रहा है, कौन जान सकता है वह कब क्या कर डालेगा? रहे सांसारिक भोगोपभोग, उन्हें पामर मानव क्या भोग सकता, उन्हीं के द्वारा वह नचाया जाता है, मुझे तो माताजी सारा संसार पाषाण-सा बिखरा प्रतीत हो रहा है।

बेटे, जैसे दिनकर के बिना दिन, रजनीकर के बिना रजनी, भाई बिना भगिनी और कंचन बिना कामिनी फिकी रहती है वैसे ही तेरे बिना लाडले! सारा परिवार शून्य हो जाएगा! लाल,! भविष्य की-गृहस्थाश्रम की भी तो कुछ बातें सोचो!

माताजी! जिसे अपने मृत्युपर काबू है वहीं भविष्यपर निर्भर रह सकता है। चाहे जितना धन-वैभव मिला हो मगर एक दिन वह सब छूटने ही वाला है। पारिजात के इन्द्रों को भी उनके रमणीय एवं कमनीय वातायनों का परित्याग करना पडता है, उन देवेन्द्रों-सुरेन्द्रों के वैभव समक्ष तो हमरा वैभव किस बाग की मूली है?

नौनिहाल! केवल तुम्हारी आत्मा का ही तुम्हें विचार है मगर जरा हमारा भी तो विचार करो! हम वृद्ध है। बेटा! तुम हमारी वृद्धावस्था की लकडी हो। जैसे बेल की जड काटते ही वह लतिका निर्जीव होकर गिर पडती है वैसे ही तुम्हारे संयम लेते ही हमारी जीवन लतिका मुरझाकर गिर जायगी। लाल! गौर करो मेरी बात पर।

माताजी! जैसे सूर्यमुखी पुष्प उपवन में उषा की प्रथम किरण को पाकर खिल उठता है, तरुण सूर्यरश्मियों को देख विकसित हो जाता है, वहीं दिवाकर को अस्ताचल की ओट में जाता देख मुरझा जाता है। फिर किसीकी भी शक्ति और सामर्थ्य नहीं कि उसे उस समय विकसा दें! बस! ठीक यही हाल मानव जीवनरूप सूर्यमुखी पुष्प का भी हैं। जो जन्मा है वह किशोर, युवक, प्रौढ, वृद्ध आदि-आदि पर्यायों में से गुजरता हुआ न जाने कौन से समय में काल के गर्भ में समा जाय? आयुष्य तो चंचल है इसीलिये तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानी गुरुओं ने कहा है कि--' यथाशीघ्र अपनी आत्मा का कल्याण कर लेना चाहिये ।

बेटा ! अब तक तो तुम्हारे दूध के दांत भी गिरे नहीं है और तुम्हें संयम लेने की धून सवार होगई है मगर संयमी जीवन की कठिनाईयों का भी परिज्ञान है तुम्हें ? उसमें २२ परीषह जीतने होते हैं । ठंड, गर्मी, भूख और प्यास के कठोर दुःख सहने होते है ।

माताजी ! इस जीवात्माने अनन्त भवों में अनन्त-अनन्त दुसह्य दुःख व यातनाएँ सही है । कितनी ही बार नरक की एवं तिर्यञ्च योनि की अनिच्छा से कष्ट दायी यातनाएँ भोगी है । उन दुःखों के सामने संयम के दुःख तो पर्वत के समक्ष राई के बराबर भी नहीं है । और दूसरी बात यह है कि संयम के लिए दुःखों को सहन करने से आत्मा की महान् निर्जरा होती है और संसारी कष्ट सहने से तो आखिर आत्मा का पतन ही होनेवाला है !

बेटा ! संयम के लिए सिर्फ २२ परीषह सहने पडते हो, इतना ही नहीं; तो पैदल ग्रामोंग्राम विहार करना, सिर का लुंचन करना, घर-घर में जाकर मान-अपमान की परवाह किए बिना भिक्षा मांगना आदि-आदि न जाने कितनी ही बाधाओं का सामना करना पडता है । संयमी जीवन फूलों का नहीं शूलों का पथ है; आराम का नहीं श्रम का पथ है ! अतः तुम इतने उतावले मत बनो।"

माताजी ! ये कष्ट तो कायरों को महसूस होते हैं । शूरवीरों के लिए संयम का पथ शूलों का नहीं महकते फूलों का हैं, दुःख का नहीं शाश्वत सुख का है । जिसका मन रूपी गजराज कंट्रोल में है उसके लिए कठोर से कठोर आत्म-साधना की क्रिया भी सहज और सुगम है ।

पर लाडले ! मैं पूछती हूं कि कल संध्या तक तो तुम रंग-रेलियाँ कर रहे थे, विलासों में मग्न थे, तुम्हारे चेहरे पर अलौकिक आशा अठखेलियाँ कर रही थी, कपोलों पर सौंदर्य लाली दमक रही थी । और आज मध्यान्ह में एकाएक ऐसी त्यागमयी बातें तुम क्यों कर रहे हो ? मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूं !!

माताजी ! क्या बताऊँ जब मैं ऊपर गवाक्षमें बैठा सतरंज का खेल खेल रहा था अचानक मैंने देखा महल के सामने से एक त्यागी मुनि जा रहे थे । माताजी ! क्या कहूँ मैं उनके बारेमें ? उनकी दिव्य प्रतिमा, उनका वह मुस्कान भरा आनन, कमलवत् नयन, विशाल भाल, तपःपूत काया, उनकी वह सहज सौम्यता, सरोवर-सी गम्भीरता, चिंतनीय मुग्धता यह सब देखकर मैं प्रभावित हो गया । मेरा मानस विचारों के अन्तराल में उतरने लगा, विचारों के गहरे अन्तस्थल में उतरकर, मैंने चिंतनके मोती शोधने शुरू किये तो मुझे 'जातिस्मरण' रूपी रत्न मिला । बस ! उसी रत्न के तेजोमय दिव्य प्रकाश से मुझे अपना पिछला भव स्मरण हुआ, मेरे वैराग्य का यही रहस्य है !

बेटा ! मोहांधता से भरा हमारा मानस हजार २ धाराओं से क्रंदन एवं रूदन कर रहा है। हमारे लिए तुम्हारा अभाव मृत्यु से अलिंगन करने के समान दुःखदायी है मगर इसी के साथ मेरे अन्तरात्मा से ऐसी आवाज आ रही है-छोड दो मोहांधता को और अपने परम वैरागी मुमुक्षु पुत्र को । धर्म की बलिवेदी पर हँसते २ सहर्ष समर्पण कर दो ! अतः जाओ बेटा, जाओ !! त्याग के अनुपम पथपर अलौकिक प्रयाण करो ! और कठोर "आत्म-साधना" के द्वारा कर्मरूपी" रजनी" को हटाकर कैवल्यज्ञान की दिव्य "ज्योति" प्रज्वलित करो । बेटा ! मेरा शुभाशीष है !

प्रणाम करता हूं माताजी ! तुम्हारे शुभाशीस से मैं अपने जीवन को सार्थक बनाऊँगा । ❀ ❀

"इस प्रकार संस्कारी माता मृगावती से उनके लाडले 'मृगापुत्र' ने अशीःस पा कर दीक्षा धारण की । कठोरतम साधना के साथ केवलज्ञान पाया और अन्त में मोक्ष महल के लिए प्रयाण किया ।"

प्रे.–कुमुद मुथा, (अ' नगर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजमेर में--

श्रमण शिखर सम्मेलन आगामी फाल्गुन शुक्ला तृतीया रविवार दिनांक १६ फरवरी १९६४ से प्रारम्भ

'श्रमण संघ संगठन' स्थानकवासी समाज की एक प्रमुख घटना है। इसके संघटन में समाज के अनुभवी विद्वानों, प्रभावशाली महापुरुषों, सद्गृहस्थों एवं आदर्श त्यागियों का महत्त्वपूर्ण योगदान कारणीभूत है! अतः इसकी सुदृढता के लिये भी समाज के सभी प्रकार के सशक्त वर्ग को अपना सर्वविध योग प्रदान करना चाहिये जिससे यह सदा के लिये अविचल मंगल रूप बने।

विगत कुछ वर्षों में संघ को अनेक विध झंझावातों का प्रहार सहन करना पडा। जिसका परिणाम अन्तर्गत व्यवस्था पर भी पडे बिना नहीं रहा। तथापि समाज के सद्भाग्य से संगठनप्रेमी संघसमर्थक हमारे महान् नेताओं ने अपने दीर्घ प्रयास से संघ की स्थिति को सम्हाले रखा। फलस्वरूप संघ का संचालन अप्रतिहत गति से होता रहा और वह धीमी गति से क्यों न हो, पर अपने निर्धारित पथ पर अग्रसर होता जा रहा है।

अब संघ के महान नेताओं का ध्यान संघ की प्रगति किस प्रकार हो? इस गम्भीर विषय की तरफ आकृष्ट हुआ है और परामर्श-विमर्श के पश्चात् इस निर्णय पर वे पहुँचे हैं कि संघ के अधिकारी मुनि एकत्र मिलकर संघ की आन्तरिक स्थिति और उसके इर्द गर्द के वातावरण का यथावत् अध्ययन कर-सूक्ष्मेक्षिका से यथार्थ निरीक्षण कर इसे सुदृढ और आदर्श बनाने का ससंकल्प सत्प्रयास किया जाय।

गत वर्ष इसी विचार से प्रेरित होकर श्रद्धेय आचार्यश्रीजी ने शारीरिक स्थिति पूर्ण अनुकूल नहीं होते हुए भी लगभग ४५० मील की दूरी तय करके शाजापुर मध्यप्रदेश में वर्षावास व्यतीत किया। श्रद्धेय उपाध्यायजी कवि श्री अमरचन्दजी म. सा. ने राजगृह [बिहार प्रान्त] से उग्र विहार कर आग्रा में वर्षावास किया। इस बीच संघ के अधिकारी मुनिवर परस्पर में सम्पर्क साधकर सम्मेलन विषयक परामर्श करते रहे। दीर्घ विचारणा से यह निश्चय किया गया कि प्रथम अधिकारी मुनियों की एक बैठक की जाय जिसमें विचारणीय विषयों पर पर्याप्त विचार विनिमय हो पश्चात् आवश्यकतानुसार यथासमय वृहत्साधु-सम्मेलन का आयोजन किया जाय।

श्रमण संघ के अधिकारी मुनिवर भारत के कई सुदूरवर्ती प्रान्तों में चातुर्मासार्थ विराजमान हैं। उन सब की सेवा में शिष्टमण्डल [डेप्युटेशन] उपस्थित होकर शिखर सम्मेलन के लिये क्षेत्र व समय का निश्चय करें और सभी अधिकारी मुनिवरों के पधारने की स्वीकृति प्राप्त करें--ऐसा निश्चय किया गया।

तदनुसार प्रथम शिष्टमण्डल का प्रवास दिनाङ्क २६-९-६३ को श्रद्धेय उपाध्याय कविवर्य श्री अमरचन्दजी म. सा. की सेवा में आगरा उपस्थित हुआ। इस शिष्टमण्डल में खाचरोद निवासी श्री बद्रीलालजी भटेवडा एडवोकेट, भीलवाडा निवासी श्री पांचुलालजी गांधी, और शाजापुर निवासी श्री श्रीकिसनजी सराफ ये तीन सदस्य थे। शिष्टमण्डल ने आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँच कर कॉन्फरेन्स के प्रेसिडेण्ट श्री अचलसिंहजी एम. पी. के साथ श्रद्धेय उपाध्याय श्री जी की सेवा में सम्मेलन विषयक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। कविजी म. श्रमण संघ के एक महान् समर्थक बल्कि संगठक नेता हैं, आपने अपनी स्वीकृति प्रदान करते हुए पंजाब के सन्तों की दूरदर्शिता को लक्ष्य में रखकर यथाशक्य शीघ्र ही इस कार्य को प्रारम्भ करने का संकेत किया। आपश्री के शरीर में पूर्ण स्वस्थता नहीं होते हुए भी संघ के कार्य की महत्ता को लक्ष में लेकर जो उदारता आपश्री ने प्रदर्शित की उससे शिष्टमण्डल बहुत ही प्रभावित हुआ। प्रथम प्रवास सफल रहा।

द्वितीय प्रवास के लिये दिनाङ्क ७-१०-६३ को शाजापुर से बदरीनारायण शुक्ल और श्री किसनजी सराफ का निर्वाचन हुआ। दोनों सदस्यों ने सर्वप्रथम अजमेर में विराजित श्रद्धेय महास्थविर पं. रत्न प्रान्त सन्त्रीजी श्री पन्नालालजी म. सा. की सेवा में उपस्थित होकर सम्मेलन की योग्य भूमिका का निर्माण करने हेतु मार्गदर्शन के लिये निवेदन किया। महाराज श्री की दीर्घदर्शिता सु-प्रसिद्ध है। आपश्री ने पंजाब के अधिकारी मुनियों के नाम सन्देश लिखाते हुए भावी कार्यक्रम की सामान्य रूपरेखा का दिग्दर्शन कराया। दोनों सदस्यों ने अजमेर से आगरा श्रद्धेय उपाध्यायजी की सेवा में उपस्थित होकर पंजाब के अधिकारी मुनियों के लिये सन्देश प्राप्त किये। वहां से अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेन्स की मेनेजिंग कमिटी की बैठक में सम्मिलित होने के लिये दिनाङ्क १० को देहली पहुँचे। मीटिंग में विचार विनिमय के पश्चात् निश्चित हुआ कि अध्यक्षजी श्री अचलसिंहजी एम. पी. के नेतृत्व में शिष्टमण्डल का पंजाब के लिये प्रवास नितान्त आवश्यक है। मीटिंग के निर्णयानुसार १) सेठजी २) श्री यशवंतसिंहजी ३) लाला रामलालजी ४) श्री रामनारायणलालजी ये चार सदस्य देहली से और दो शाजापुर से आये हुए ऐसे ६ सदस्यों का शिष्टमण्डल दिनाङ्क ११-११-६३ को रवाना होने से पूर्व सुबह नईदिल्ली से ६ मील दूर दादाबाडी में विराजित पं. मुनिश्री सुशीलकुमारजी म. सा. की सेवा में उपस्थित हुआ। वार्तालाप सन्तोषप्रद रहा। दिनाङ्क ११-११-६३ को कार द्वारा सदस्यमण्डल अम्बाला में विराजित पूज्य पं. रत्न पंजाब मंत्री श्री शुक्लचन्दजी म. सा. की सेवा में उपस्थित हुआ। म. श्री से सम्मेलन की सफलता हेतु अजमेर तरफ विहार करने के विषय में प्रार्थना की गई। आपश्री का स्वास्थ्यपूर्ण अनुकूल नहीं होने पर भी चातुर्मास पश्चात् सम्मेलन की दिशा में विहार करने की स्वीकृति प्रदान कर आपश्री ने संघहित के प्रति अपनी कर्तव्यनिष्ठा का ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित किया। पंजाब से अजमेर लगभग ५०० मील का विहार है। यह ज्ञातव्य है इस समय पंजाब के जैन समाज का ध्यान एक घटना की ओर आकृष्ट था। समाज की लब्धप्रतिष्ठ संस्था 'जैन गुरुकुल' पंचकूला की सीमा से संलग्न भूमि में एक बूचड़खाना लगभग निर्माण हो चुकने की घटना से अहिंसा के पुजारियों का दिल प्रक्षुब्ध हो उठा था। इस हिंसक प्रवृत्ति के स्थल का वायुमण्डल कितना दूषित होगा? और हमारे स्नातकों के हृदय पर इसका कितना बुरा प्रभाव पडेगा। साथ ही हमारी अहिंसा भावना को कितना गहरा आघात पहुँचेगा इस प्रकार के विचार-प्रवाहों से गुरुकुल के संचालकों तथा समस्त पंजाब के संघों की आन्तरिक स्थिति विषम हो रही थी। सभी का चित्त उद्विग्न था। जब अम्बाला संघ के अधिकारियों को सेठ अचलसिंहजी एम. पी. के पधारने की खबर मिली, तब आपके पास जनता की आवाज सरकार तक पहुँचाने की दृष्टि से अनेक बन्धु आकर मिले और घटना स्थल का निरीक्षण करने के लिये सभी ने आग्रह किया। शिष्टमण्डल के सदस्यों के दिल पर भी इस घटना का प्रभाव पडने से गुरुकुल के लिये दिनाङ्क १२-१०-६३ को प्रयाण किया गया। कुछ घन्टे वहाँ रुककर निरीक्षण के पश्चात् सेठजी ने आश्वासन दिया कि आप सबकी और स्थानीय जनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आवाज सरकार तक अवश्य पहुँचेगी और इस विषय में सरकार अवश्य विचार करेगी। आसपास से भी कई लोग आ गये थे। उन सबको आश्वासन देकर उसी दिन शिष्टमण्डल 'रोपड' में विराजित पूज्य पंजाब के प्रान्तमंत्रीजी श्री सुप्रसिद्ध व्याख्याता पं. रत्न श्री प्रेमचन्दजी म. सा. की सेवा में उपस्थित हुआ। इस समय अम्बाला के प्रमुख श्रावक भी साथ हो लिये थे। म. श्री ने सम्मेलन की उपयोगिता स्वीकृत करते हुए अपने महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये जिन्हें कविजी म. सा. ने जोरदार भाषा में सम्मेलन के अन्दर प्रस्तुत करे, ऐसा अभिप्राय प्रकट किया। श्रमण संघ की शुभ कामना और श्रद्धेय आचार्यश्रीजी के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए आपश्री ने शारीरिक विशेष अस्वस्थता वश सम्मिलित होने में असमर्थता बताई। आपश्री श्रमण संघ को 'एक आदर्श संघ' के रूपमें देखना चाहते हैं और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपने सुझाव दिये हैं जो मननीय और स्पृहणीय है।

रोपड से दिनाङ्क १२ को सायंकाल प्रयाण कर शिष्टमण्डल पटियाला पहुँचा वहां श्रद्धेय पू. मुनिश्री रघुवरदयालजी म. विराजते हैं। आपश्री ने अपने अनुभवों के आधार पर सम्मेलन के लिए कुछ सुझाव लिखाते हुए अपनी ओर से सन्त भेजने की भी भावना प्रदर्शित की। वार्तालाप का सिलसिला दि० १३ के प्रातःकाल भी चालू रहा। वहां से शिष्टमण्डल 'जीन्द' पहुँचा वहां पूज्य पं. मुनिश्री रामजीलालजी म० विराजमान हैं। आपश्री पूज्य स्व श्री मदनलालजी म० के परिवार के श्रेष्ठ ज्येष्ठ सन्त हैं। आपश्री ने फरमाया कि हम सभी सन्त चातुर्मास पश्चात् एकत्र मिलेंगे उस समय इस विषय पर परामर्श करेंगे। यहां से दिल्ली के चारों सदस्य वापस हो गये और शाजापुर से आए हुए दो सदस्यों को पंजाब के अन्य क्षेत्रों में विराजित मुनिवरों की सेवा में उपस्थित होने का काम सिपुर्द किया गया।

जीन्द से वापस पटियाला और अम्बाला आकर विहार के मार्ग और सम्मेलन के क्षेत्र तक पधारने के समय की अवधि को ज्ञातकर सम्मेलन के लिए समय निश्चित करने का प्रस्ताव प्रांत मंत्रीजी म० की सेवा में प्रस्तुत किया गया क्योंकि वर्तमान में पंजाब के सन्त ही विशेष दूरी पर हैं। उनके पधारने की शक्यता के आधार पर सम्मेलन की तिथि का निश्चय करना उचित समझा गया। म० श्री ने सूखे-समाधे सन्तों के पधारने के समय का अनुमान करते हुए एक तिथि की तरफ संकेत किया।

पंजाब में पहिले अधिकारी मुनिवरों की संख्या आज से अधिक थी। संघ के प्रथम आचार्य पंजाब के ही थे। वर्तमान प्रधान मन्त्री पद व्याख्यान वाचस्पती पं. रत्न स्व. श्री मदनलालजी म. के ही सिपुर्द था उनके स्वर्गवास के कारण वह पद भी रिक्त होगया है इस प्रकार दो अधिकारी मुनिवर कम हो जाने से पंजाब का प्रतिनिधित्व सम्मेलन के अन्दर योग्य परिमाण्य रहे इस भावना से पंजाब के वर्तमान अधिकारी एवं प्रमुख मुनिवरों की सेवा में उपस्थित होने की नीति अपनाई गई थी। पूज्य आचार्य श्रीजी से एवं अन्यत्र से भी ऐसा ही मार्गदर्शन मिला था। उनके आधार पर पूज्य प्रान्त मंत्री श्री शुक्लचन्दजी म. सा. की सूचनानुसार स्व. आचार्य श्रीजी के परिवार के ज्येष्ठ संतकी तथा अन्य कुछ सन्तों की सेवा में उपस्थित होने का निश्चय किया गया।

फिर शिष्टमण्डल दिनाङ्क १४-१०-६३ को लुधियाना में विराजित पं. मुनि श्री हेमचन्दजी म. की सेवा में उपस्थित हुआ। मुनि श्रीजी ने संघ की स्थिति के विषय में विशेष रूप से विचारणा की और पूज्य आचार्य श्रीजी के नेतृत्व में संघ की व्यवस्था सुदृढ हो, ऐसी शुभकामना प्रकट करते हुए 'मानसा मण्डी' और मोगा तहसील में विराजित पं. मुनिश्री प्रेमचन्दजी म. सा., श्री फूलचन्दजी म. श्रमण, श्री ज्ञानमुनिजी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्श करके सम्मेलन में उपस्थित होने का निश्चय शक्य बताया क्योंकि ? स्वयं वार्धक्य के साथ हार्ट की शिकायत के कारण भावना होते हुए भी सम्मेलन क्षेत्र तक पहुँचने में असमर्थ होने से उक्त स्वकीय सन्तोंमें से किन्हींके पधारने की आवश्यकता आपश्री को प्रतीत हुई। तदनुसार दि. १५कोमाणसा मण्डीमें उपस्थित होकर पं. मुनि श्री प्रेमचन्दजी म. और पं. मुनि श्री फूलचन्दजी श्रमणसे उक्त विषयका निवेदन किया। श्रमणजी म. ने फरमाया कि वर्तमान आचार्यश्री एवं संघ के अधिकारी मुनि श्री जो दीर्घदर्शिता के साथ पारस्परीक मिलने से समस्याओं को हल और संघ की सुदृढता का मार्ग सोचा है वह बहुत ही योग्य है। सुखे-समाधे इस सम्मेलन में भाग लेने के भाव हैं। 'मानसा मण्डी' से उसी दिन मोगा में उपस्थित होकर पं० मुनिश्री श्री ज्ञानमुनिजी से विचार विनिमय किया मुनिजी ने आचार्यश्री प्रांत मन्त्री एवं ज्येष्ठ गुरुबन्धु पं० मुनिश्री हेमचन्दजी म० की जो आज्ञा होगी उसे पालन की तत्परता प्रकट की। मोगा से पुनः लुधियाना जाकर दोनों स्थानों के वार्तालाप का सारांश पं० मुनि श्री हेमचन्दजी म० की सेवा में निवेदन किया। दि० १६ को लुधियाना से अमृतसर जाने का निश्चय हुवा वहां पर स्वर्गीय व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म० सा० के शिष्य श्री सुदर्शन मुनिजी म०, श्री राम-प्रसादजी म० आदि सन्त विराजमान हैं। सन्तों के साथ स्पष्ट विचार विनिमय हुवा। अन्तमें ऐसा निश्चय हुवा कि वर्षावास के पश्चात विहार कर हम सब स्व० व्याख्यान वाचस्पतिजी म० के परिवार के सन्त एकत्र मिल कर पारस्परिक विचार विनिमय से इस विषय में निर्णय करेंगे। अमृतसर से जंबू तक जाने का प्रोग्राम था वहां पं० मुनि श्री जगदीशचन्दजी म० प्रवक्ता पं० मुनिश्री विमल मुनिजी म. आदि ठाणे ६ का चातुर्मास है। दिनांक १७ को सन्तों की सेवा में लगभग ३ घण्टे व्यतित हुए। बहुत ही प्रसन्नता और एकवाक्यता का वातावरण रहा। प्रवक्ता मुनि श्रीजी ने फरमाया कि हमारे अधिकारी गण क्षेत्रकाल द्रव्य और भाव को लक्ष में रखकर जो निर्णय करेंगे उसके पारिपालनार्थ हम सब प्रयत्नशील रहेंगे। जम्बू से अजमेर बहुत ही दूर है और तीन मुनियों का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है इसलिये उपस्थित नहीं हो सकेंगे। पन्जाब का प्रवास पूर्ण हो चुका था अतः १७ को ही ४ बजे की बस से पठानकोट लौटकर रोपड में विराजित पन्जाब के श्री प्रेमचन्द्रजी म. सा. प्रवास का विवरण निवेदित किया। म. श्री ने पूज्य आचार्य श्रीजी के लिये आवश्यक सन्देश देते हुए फरमाया कि अपना प्रतिनिधित्व पधा-रने वाले संत को सौंपने का विचार कर रहे हैं। दूरी विशेष है अन्यथा स्वयं पहुँचने का भी प्रयत्न करते। रोपड से पन्जाब मन्त्री श्री शुक्लचन्दजी म. की सेवा में अम्बाला आकर सम्पूर्ण प्रवास विवरण प्रस्तुत किया। सम्मेलन में उपस्थित होने के प्रोग्राम को अव-गत कर तद्विषयक आवश्यक विचारणा की।

पंजाब के प्रतिनिधित्व की जानकारी पूज्य कविश्री उपाध्यायजी के लिये आवश्यक थी अतः शिष्टमण्डल अम्बाला से दिनाङ्क १८ को प्रस्थित होकर प्रातः आग्रा पहुंचा। म० श्री की सेवा में सारी स्थिति स्पष्ट की। अध्यक्ष श्री अचलसिंहजी एम्. पी. के बंगले पर जाकर सम्पूर्ण प्रवास की रिपोर्ट दी। फिर शिष्टमण्डल कविजी म. से सम्मेलन के समय की विचारणा और पधारने के कार्यक्रम के विषय में जानकारी करके दिनाङ्क २० को प्रातः अजमेर पहुचा।

अजमेरमें पूज्य प्रांतमंत्रीजी श्री पण्डित रत्न पन्नालालजी म. सा. की सेवा में जब पहली बार दि० ८-१०-६३ को उपस्थित हुआ था तब आपश्रीजी ने फरमाया था कि पहिले पंजाब की स्थिति का ज्ञान कर वहां के सन्तों के पधारने की स्वीकृति आनी चाहिए, पश्चात् इधर के सन्तों की सेवा में उपस्थित होना सुसंगत होगा। अतः पंजाब के प्रवास का पूरा विवरण म. श्री को सेवार्पित किया। आपश्री ने फरमाया कि पीपार में विराजित पूज्य उपाध्याय पं. रत्न श्री हस्तीमलजी म. सा. की सेवामें यह सब रिपोर्ट पहुचाकर उनकी स्वीकृति प्राप्त करनी चाहिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब अजमेर के माननीय श्रावक श्री गणेशमलजी बोरा एवं श्री उमरावमलजी ढड्ढा के साथ पीपाड़ दि. २० को सायंकाल पहुचकर पूज्य उपाध्याय म. सा. की सेवा में सारी हकीकत बयान की। और पूज्य प्रांतमंत्रीजी श्री पन्नालालजी म. सा. का संदेश भी निर्वाचित किया। दिनाङ्क २१ को म. श्री के लिखित अभिप्राय प्राप्त कर पुनः अजमेर आये। प्रांतमंत्रीजी म. सा. की दीर्घदर्शिता, संगठन प्रेम, और संघहित कामना अनेक अवसरों पर समाज के सम्मुख प्रकट हुई है। आपश्री अन्तःकरण से चाहते हैं कि श्रमण संघ एक सुव्यवस्थित सुदृढ एवं आदर्श संघ बने इसी दृष्टिकोण से आपश्री प्रत्येक कार्य की रूपरेखा निर्धारित करते हैं और समयोचित आयोजन को भी पसंद करते हैं। इसीलिए पूज्य आचार्यश्रीजी ने इस गुरुतम कार्य के सम्पादन का भार प्रांतमंत्री के दायित्व पर निर्भर करना उचित समझा है। प्रांतमंत्रीजी म. सा. भी अपनी कुशल नीति से ही इस कार्य को सफल बनाने की प्रक्रिया कार्यान्वित करने के प्रयास में है। सम्मेलन के लिये क्षेत्र की पसंदगी के विषय में भी बडी गम्भीरता और अनुभव से काम लिया जा रहा है। म० श्री की सेवा में अजमेर के आस-पास के प्रमुख क्षेत्रों के आमंत्रण भी आ रहे हैं, जिन्हें आप आचार्यश्रीजी की सेवामें भिजवाते हुये उचित परामर्श कर रहे हैं। समय का निर्धारण भी बहुत विचार विमर्श से किया गया है। आपश्री की स्पष्ट राय है कि इसे 'सम्मेलन' कहने की अपेक्षा 'अधिकारी मुनियों की बैठक' के नाम से सम्बन्धित करना अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि सम्मेलन कहने से मेला का रूप आ जायगा और दर्शक समुदाय की भीडभाडके कारण हमें योग्य एकांत और प्रशांत वातावरण की उपलब्धि होने में भारी कठिनाई उपस्थित हो जायगी। समय गंभीर है। देश का वातावरण भी ऐसा नहीं है कि किसी भी एक स्थान पर हजारों की तादाद में जनसमुदाय एकत्र होकर यात्रा और मेला का रूप धारण करे। इसीलिए क्षेत्र के निर्वाचन का काम बडी दीर्घदर्शिता से लिया गया है।

पंजाब की परिस्थिति, आग्रा, अजमेर और पीपार के समाचारों से पूज्य आचार्यश्रीजी को अवगत कराने के लिये दिनाङ्क २२-११-६३ को दोनों सदस्य शाजापुर में उपस्थित हुये।

मालवा, मेवाड और मारवाड जो कि संमेलन स्थल के समीप के प्रांत हैं वहां के लिये भी प्रवास बहुत ही जल्द प्रारंभ होनेवाला है।

समाज-सेवक—
पं. बदरीनारायण शुक्ल

दूर खोजने जाऊँ क्यों मैं, तुम तो मिलते पास में।

मन के विमल विकास में, और अटल विश्वास मे ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड

पाथर्डी [अहमदनगर]

२६ नवम्बर सन् १९६३ से होनेवाली परीक्षाओं की समयसारिणी

दिनांक	श्री जैन सिद्धांत आचार्य	जैन सिद्धांत शास्त्री	जैन सिद्धांत प्रभाकर	जैन सिद्धांत विशारद	जैन सिद्धांत प्रथ	जैन सिद्धांत प्रवेशिका
मंगलवार २६-११-६३	प्रथम खंड प्रथम पत्र	प्रथम खंड प्रथम पत्र	प्रथम खंड प्रथम पत्र	प्रथम खंड प्रथम पत्र	प्रथम खंड प्रथम पत्र	प्रथम खंड
बुधवार २७-११-६३	प्रथम खंड द्वितीय प्रत्र	प्रथम खंड द्वितीय पत्र	प्रथम खंड द्वितीय पत्र	प्रथम खंड द्वितीय पत्र	प्रथम खंड द्वितीय पत्र	द्वितीय खंड
गुरुवार २८-११-६३	प्रथम खंड तृतीय पत्र	प्रथम खंड तृतीय पत्र	द्वितीय खंड प्रथम पत्र	द्वितीय खंड प्रथम पत्र	द्वितीय खंड प्रथम पत्र	प्रतिक्रमण प्रथम खंड
शुक्रवार २९-११-६३	द्वितीय खंड प्रथम पत्र	द्वितीय खंड प्रथम पत्र	द्वितीय खंड द्वितीय पत्र	द्वितीय खंड द्वितीय पत्र	द्वितीय खंड द्वितीय पत्र	प्रतिक्रमण द्वितीय खंड
शनिवार ३०-११-६३	द्वितीय खंड द्वितीय पत्र	द्वितीय खंड द्वितीय पत्र	—	—	—	सामायिक प्रथम खंड
रविवार १-१२-६३	द्वितीय खंड तृतीय पत्र	द्वितीय खंड तृतीय पत्र	—	—	—	सामायिक द्वितीय खंड
सोमवार २-१२-६३	—	तृतीय खंड प्रथम पत्र	—	—	—	—
मंगलवार ३-१२-६३	—	तृतीय खंड द्वितीय पत्र	—	—	—	—
बुधवार ४-१२-६३	—	तृतीय खंड तृतीय पत्र	—	—	—	—

बदरीनारायण शुक्ल, जैन सिद्धान्ताचार्य, सर्वदर्शनशास्त्री, परीक्षाधिकारी (रजिस्ट्रार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचार

अजमेर में मुनिवरों की बैठक !

शाजापुर–यहाँ विराजित श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के आचार्य पंडितरत्न श्री. श्री. १००८ पूज्य श्री आनंद ऋषि जी महाराज साहब ने धर्मप्राण क्रांतिकारी वीर लोकाशाह की जयन्ती के मंगल अवसर पर अखिल भारत वर्षीय श्वेतांवर स्थानकवासी जैन कॉन्फरन्स की जनरल कमेटी की बैठक के लिए पधारे हुए महानुभावों की उपस्थिति में व्याख्यान के समय प्रमुख मुनिवरों से की गई विचारणा के आधार पर घोषित किया कि फाल्गुन शुक्ला तृतिया रविवार दिनांक १६-२-६४ को श्रमणसंघीय अधिकारी मुनिवरों की बैठक अजमेर में की जाना निश्चित किया गया है। अजमेर मध्यवर्ती क्षेत्र है। इसलिए आगरा, दिल्ली, गुलाबपुरा, ब्यावर आदि क्षेत्रों के श्री संघों की भावना होते हुए भी बैठक अजमेर में की जाना योग्य प्रतित हुआ है। इसलिए सभी अधिकारी मुनिवरों को अजमेर तरफ बिहार कर निर्वाचित तिथि के पूर्व पहुंचने का लक्ष्य रखना चाहिए।

श्रद्धेय आचार्य श्री जी भी सूखे– समाधे उज्जैन, नागदा, खाचौद, रतलाम, जावरा, मन्दसौर आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए अजमेर पहुंचने की भावना रखते हैं।

प्रेषक–**मनोहरलाल जैन**

लेखकों से निवेदन

"श्रमणोपासक" पाक्षिक पत्र अपने विद्वान लेखक बंधुओं से साग्रह निवेदन करता है कि अपनी अपनी धर्म, साहित्य, समाज, संस्कृति आदि से संबन्धित मासिक रचनायें भिजवाते रहे।

प्रकाशित रचनाओं पर पारिश्रमिक दिया जाता है

संपादक श्रमणोपासक–बीकानेर (राजस्थान)

प्राप्ति–स्वीकार

१) श्रमण संस्कृति का पाक्षिक प्रकाशन– **'अमर-भारती'** स० श्री विजयमुनि शास्त्री, सह सं. मुनि समदर्शी प्रभाकर, सन्मति ज्ञान पीठ लोहमण्डी, आगरा, वा. मू ४-०० एक प्रति २० न. पै.

'अमर भारती' को देखकर प्रसन्नता हुई। उसका ध्येय-"उपाध्याय श्री जी के विचारों का व्यापकप्रचार हो, पाठकों को घर बैठे नये विचार, नई भावना और स्फूर्तिप्रद प्रेरणा मिल सके। कवि श्री के विचारों में जो भाव प्रवणता है, जो विचार गंभिरता है और जो युगानुकूलता है उसका प्रसाद समाज के सभी वर्ग के लोगों को मिल सके और विशेषत: समाज के चिन्तनशील और अध्ययनशील व्यक्ति अपने जीवन विकास के लिए सुन्दर प्रेरणा ले सके" जानकर दिल में विचार उठा, सचमुच इसी लक्ष्य की ओर **'अमर भारती'** अग्रसर होती रही तो उससे जैन समाज ही नहीं, सारे मानव समाज की मानवता भी, जो मूर्च्छित हो रही है-होश में आयेगी और अपने आप को पहछान पायेगी।

उपाध्याय श्री जी वास्तवमें एक प्रौढ विचारक है। उनके विचार जितने प्रचुर है उतने ही वे सशक्त भी है। अपनी बात को इतने आत्मविश्वास के साथ, इतनी स्पष्टता के साथ, नपे तुले शब्दों से शायद ही अन्य कोई लेखक कह सकता है। अत: **'अमर भारती'** ने जो मुनि श्री के मार्मिक विचारों का प्रसार और प्रचार करने का बीडा उठाया है, उसके लिए हमारी शुभकामनाएँ प्रस्तुत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अमर भारती' के प्रथम अंक में ही उपाध्याय श्री जी का 'भारतीय दर्शन में विश्व व्यवस्था' और 'सर्वोदय की व्यापक भावना' शीर्षक लेख कितना पठनीय और मननीय है। पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

यदि पत्र का प्रकाशन समयपर होता रहेगा और जैसा उसका आधुनिक रूप है वह दिन-प्रतिदिन निखरता रहेगा तो 'सरस्वती' पत्रिका ने जैसा कार्य किया है वैसा **'अमर भारती'** भी कर सकेगा, ऐसी आशा है।

गृहस्थ–धर्म

लेखक–मुनि श्री फूलचन्द्रजी 'श्रमण'

प्रकाशक–श्री जैन शिक्षा निकेतन, होशियारपुर

पृ. सं. २१०) (मूल्य १–२५

'गृहस्थ–धर्म' के नाम से प्रकट होता है जैसे गृहस्थ-धर्म का आद्योपान्त वर्णन इस पुस्तक में किया गया हो, लेकिन ऐसा नहीं है। इस में तो अपने जीवन को शक्तिशाली और सार्थक बनाने के लिये गृहस्थ-श्रावक को किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए और उनका किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए इस उद्देश्य को सामने रखकर गृहस्थ के लिए अनुकरणीय ग्यारह प्रतिमाओं-अभिग्रह विशेष या प्रतिज्ञाओं की चर्चा बडी सरल और सुबोध भाषा-शैली में लेखक ने की है। ग्यारह प्रतिमाओं के विश्लेषण के साथ ही साथ श्रावक के अणुव्रतों पर भी लेखक ने शास्त्रीय पद्धति से प्रकाश डाला है।

वैसे 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक से पाठक सैलानासे प्रकाशित लेखक के लेखों द्वारा परिचय पा चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक लेखक के उन्हीं लेखों का संग्रह है। पुस्तक की उपादेयता के लिए एक परिशिष्ट जोडा गया है। जिस से लेखक की परिश्रमी और ज्ञानाराधना की वृत्ति का परिचय मिलता है।

सारांश, पुस्तक गृहस्थ लिए पठनीय और संग्रहणीय है।

—**पं. गुलाबचन्द जैन**, 'आधुनिक'

सिद्धि और सेवा

ले०—**श्री मोतीलालजी सुराना,** (इन्दौर)

महात्मा वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ बैठे थे। ऊपर से एक चिडिया ने बीठ कर दी। महात्मा ने नेत्र खोले, ऊपर देखा। चिडिया नीचे गिर पडी और देखते ही देखते जल कर राख होगई। कितनी बडी सिद्धि थी महात्मा के पास।

कुछ समय बाद महात्मा 'मधुकरी' के लिये निकले। एक घर में प्रवेश किया। महिला ने महात्मा को अभिवादन कर बैठने के लिये कहा। वह पास के कमरे में चली गई। दो मिनिट, चार मिनिट, आठ मिनिट, दस मिनिट बीत गये। वह लौटकर न आई। महात्मा अधीर हो गये। क्रोध से उनके नेत्र लाल हो गये और फडफडाने लगे।

महिला आई, बोली--मुझे विलम्ब हो गया। मेरे पति अस्वस्थ है। मैं उनकी सेवा कर रही थी। 'उनकी सेवा कर रही थी' इन शब्दों ने महात्मा की क्रोधाग्नि में घृत का काम किया।

महात्मा ने महिला की ओर उसी दृष्टि से देखा जिससे वृक्ष पर चिडिया को देखा था।

'तो क्या आप मुझे भी राख का ढेर बनाना चाहते हो--महिलाने कहा। ऐसी सिद्धियाँ तो पति की सेवा करने वाली महिला के यहाँ पानी भरती है। मैं चिडियाँ नहीं जो जल कर मर जाऊँगी।

महात्मा लज्जित हो गये। भविष्य में कभी भी क्रोध न करने का निश्चय कर महिला से कहा—माता अब मैं भी मानव समाज की सेवा में ही अपना जीवन बिताऊँगा।

❀ ❀ ❀

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—: आ जी व न स द स्य :—

१ के. चु. भटेवडा	राहू (पूना)	३९ कि. बी. पटवा	पाथर्डी	७७ ने. झुं. सुराणा	राहुरी
२ ता. रां. मा.सुन्दराबाईजी	आष्टा	४० छो. ने. गुगळे	लोहसर	७८ चां. मो. भंडारी	घोडनदी
३ इन्दरबाईजी	,,	४१ ही. भ्र. न. सुरपुरिया	पूना	७९ घू. भि. फुलफगर	घोडनदी
४ श्रीमती रा. डागा	भोपाल	४२ रा. भ्र. म. कोठारी	सतारा	८० चं. शो. गादिया	,,
५ जी. ते. ललवानी	श्रीरामपुर	४३ भी. मा. कर्नावट	सिरसमार्ग	८१ चां. सु. कोठारी	बेलापुर
६ मे. ध. जैन	मगरदा	४४ बा. डा. बद्धानी	अमरावती	८२ रा. पो. गांधी	रस्तापुर
७ कि. चौधरी	शुजालपुर	४५ सु. भ्र. मो. मुथा	देवळाली	८३ जे. शां. संघवी	उत्राण
८ गें. इ. जैन ,,	,,	४६ प. कि. छाजेड	म्हसे	८४ भू. रा. कोठारी	केडगांव
९ कं. दी. जैन ,,	,,	४७ मू. रि. संकलेचा	मजलेगांव	८५ चु. भ्र. प्रे. देसरडा	न्हावरा
१० सू. न. जैन ,,	,,	४८ हां. भ्र. च. शिंगी	अहमदनगर	८६ कां. जा. नाहर	आलेगांव
११ रा. चौ को ,,	,,	४९ चं. ध. वैद	चांदा	८७ प. ही. कटारिया	वाल्की
१२ का. ही. जैन ,,	,,	५० सु. सु. कुचेरिया	पाथर्डी	८८ फू. बा. बाफना	राहुरी
१३ ज. खो. डोशी	इन्दौर	५१ वि. शा. संकलेचा	अमरावती	८९ मा. गं. चोरडिया	बोरी
१४ इ. सू. चोपडा	भामाठाण	५२ न. मु. बोरा	पीपला	९० पु. शो. चोरडिया	,,
१५ मे. टाटिया	सारंगपुर	५३ चाँ. मू. चंगेडिया	बरोरा	९१ रा. ल. भंडारी	सिरसाला
१६ प्रे. जी. वेदमुथा	वर्धा	५४ एक गुप्तदानी सद्गृहस्थ	अ. नगर	९२ ध. द. संचेती	पूना
१७ दे. भि. कांकरिया	राहू	५५ भी. के. ललवानी	मनमाड	९३ ज. चु. सांड	रहाता
१८ श्री. न. पितलिया	सीहोर	५६ ब. मा. गांधी	पिंपलगांव	९४ ह. न. गांधी	श्रीरामपुर
१९ के. घी. बाफणा	नागपुर	५७ प्रे. भ्र. ज. बोरा	,,	९५ झुं. भ्र. ही. भलगट	गुलबर्गा
२० क. ल. रांका	शुजालपुर	५८ मो. चु. मुथा	वांबोरी	९६ ब. चं. गुगले	मलाड
२१ स. व. जैन	शाजापुर	५९ सौ. रू. सू भ्र. झुंबरलालजी	,,	९७ र. ही. लूंकड	श्रीरामपुर
२२ सु. जी. सिदरसीवाला	,,	६० मू. द. चंगेडिया	सोनई	९८ कुं. न. गांधी	,,
२३ वैं. र. स. मुणोत	वांबोरी	६१ पू. मो. नाहर	घोडेगांव	९९ सु. लुणावत	वामणगांव
२४ भं. के. जोगड	बोदवड	६२ ने. ब. भटेवडा	वांसदा	१०० शांतिलालजी चौधरी	राजगढ़
२५ झुं. ध. मुथा	अहमदनगर	६३ ब. च. सिंगी	देवळाली	१०१ न. शा. माई	मलकापुर
२६ अ. मा. गुगले	पाथर्डी	६४ श्री. रा. मुथा	,, ,,	१०२ ही. ल. मुथा	लक्ष्मेश्वर
२७ ना. भ्र. र. भंडारी	पीपला	६५ झु. पू. बाफना	श्रीरामपुर	१०३ सि. र. भुरा	सिवनी
२८ सौ. गु. भ्र. सि. बोरा	अ.नगर	६६ ने. गु. मुथा	बेलापुर	१०४ चं हि. कुंकुलोल	कोल्हार
२९ ब. झुं. कोठारी	,,	६७ चु. पू. तातेड	,,	१०५ वि. पु. राकेचा	,,
३० ला. पा. मा. कोंडाबाईजी	पाथर्डी	६८ मौ. र· हिरन	,,	१०६ ना. भ्र. रा. गुगले	,,
३१ सौ. च. मो. लुणिया	जंजीरा	६९ के. मां. संचेती	चिंचवड	१०७ स. म. रांका	,,
३२ मि. रा. भटेवडा	केडगांव	७० ह. सो· मुनोत	निंबारी	१०८ फ. ज. गुगलिया	,,
३३ फ. मु. शिंगी	नेवासा	७१ गं. मो. कोठारी	पूना	१०९ मो. झुं. रांका	चिंचोली
३४ भा. खु. गांधी	आश्वी	७२ क. के. कांकलिया	पूना	११० प. का. रांका	,,
३५ ना. क. छाजेड	चकलाआंबा	७३ मो. ल. खिवसरा	,,	१११ हु. च. समदडिया	अस्तगांव
३६ उ. बा. देसरडा वकील	चाळीसगांव	७४ र. मा. ओस्तवाल	सांगली	११२ भा. झुं. गुगले	पाथर्डी
३७ भ. झुं.गुगळे	करंजी	७५ छो ब. गुगळे	वांबोरी	११३ उ. ह. कातरेला	अमरावती
३८ चां. भ. मुणोत	वांबोरी	७६ इं. गं. कोठारी	,,	११४ कां. मा. गांधी	मुंबई

१७६ श्री. शि. जो. सर्राफ	देवास	१८० सौ. मां. लसोड	प्रतापगड़	१८४ श्री. कि. मि. भलगट	भंडारा
१७७ र. भु. बजाज	,,	१८१ श्री. वि. ल. गेलड़ा	बोदवड़	१८५ ,, कि. भु. भलगट	,,
१७८ सौ. सुगनबाई चां. जैन	,,	१८२ ,, स्वा. नैं. भटेवडा	चाकण	१८६ ,, कि. जं. भलगट	,,
१७९ ,, इ. सांड	बडावदा	१८३ ,, व. स्था. श्रा. संघ	बदनोर	१८७ ,, ह. भि. बाफना	पांढुरणा
				१८८ ,, अ. मो. डांगी	भीलवाड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११५	श्री. जे. मा. कटारिया	खरवंडी
११६	" जे. धों. कटारिया	,,
११७	,, ह. त. गांधी	वाम्बोरी
११८	,, मो. द. डांशी	अ. नगर
११९	,, जी. मे. बोरा	वाम्बोरी
१२०	,, उ. बा. धाडीवाल	संगमनेर
१२१	,, मो. ला. मुणोत	भिंगार
१२२	,, मे. दी. गांधी	लोणावला
१२३	,, ज. सु. गुजराथी हलवाई	मालेगांव
१२४	,, मो. ज. ओस्तवाल	वाम्बोरी
१२५	,, ने. ध. कटारिया	खरवंडी
१२६	,, खु. मि. मुणोत	करंजी
१२७	,, बं. ने. पारख	संगमनेर
१२८	,, ता. रा. चोरडिया म्हा.	पिपलगाव
१२९	,, पू. को. भंडारी	कडा
१३०	,, चु. गु. मुथा	घाटसिरस
१३१	,, गीगीबाई फिरोदिया	अ. नगर
१३२	श्री. न. धो. कटारिया	लोणी
१३३	,, ह. अ. चोरडिया	अकोलनेर
१३४	,, सौ. रु. झुं. कटारिया	चांदा
१३५	,, पु. प. मुथा	घाटसिरस
१३६	,, सु. भ्र. ता. डांशी	अ. नगर
१३७	,, मा. घ. बांथरा	खरवंडी
१३८	,, स. मो. लुणावत	जालना
१३९	,, पु. मा कटारिया	इचलकरंजी
१४०	,, ही. रा. भटेवडा	पूना
१४१	,, ही. क. खाटेड	पूना
१४२	सौ. शांताबाई मो. नाहर	पूना
१४३	श्री. रा गो. टाटिया	पूना
१४४	,, फू. तु. माल	खडकी
१४५	,, मा. रा. बाफना	वडगाव
१४६	,, घ. ही बाफना	वडगांव
१४७	श्री. ह. रा. बाफना	वडगांव
१४८	,, आ. स. चोरडिया	खेड
१४९	,, दौ. ध. चोरडिया	पिंपळवंडी
१५०	,, रा. ला. चोरडिया	बोरी बुद्रुक
१५१	,, भा. कु. गांधी	संगमनेर
१५२	,, चु. र. भंडारी	अश्वी
१५३	,, द. रा. गांधी	प्रवरासंगम
१५४	,, ग. न. चोपडा	खांबा
१५५	,, शां. च. भटेवडा	राजुरी
१५६	,, मि. मो. कोठारी	अहमदनगर
१५७	,, फ. आ. फिरोदिया	साकूर
१५८	,, जा. भि. भंडारी	मंचर
१५९	,, फू. रा. कटारिया	संगमनेर
१६०	, शां प्रे. कटारिया	अहमदनगर
१६१	" उ. श. चोपडा	साकूर
१६२	" च. लू. हिरण	साकरवाडी
१६३	" बं. फ. बाफना	साकूर
१६४	" के. बं. कटारिया	अ. नगर
१६५	,, क. बु. फिरोदिया	साकर
१६६	,, धा. जे. शाह	यवतमाल
१६७	,, ही. जे. चोरडिया	पूना
१६८	,, ने. चां. शिंगीं	घोरपडी
१६९	,, रू. मा. नाहर	रांजणगांव
१७०	,, शं. भा. दूगड	अमलनेर
१७१	,, कोट व. स्था. संघ	मुंबई
१७२	,, मोहनलालजी कीमती	इन्दौर
१७३	,, भा छ. तुरखिया	इन्दौर
१७४	,, भं. शा. घाकड	इन्दौर

To

श्रीमान्

मुकाम

पोस्ट

जिला

गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ अर्हम्

सुधर्मा

श्री ति. र. स्था. जैन धा. प. बोर्ड, पाथर्डी की मुखपत्रिका

वर्ष ५ | १५ जनवरी १९६४ | अंक ६

गुरुकुल कांगड़ी

★ इस अंक में —

१	सुधर्मा सुवचन-सुधा	पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल	१
२	धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन	श्री श्री प्रकाश दुबे एम्. ए.	५
३	महापुरुष के व्यक्तित्व	डॉ. इन्द्रचंदजी शास्त्री एम्. ए. पी. एच. डी.	८
४	शिथिलाचार का प्रश्न	"एक चिन्तक"	९
५	राजघराने को शोभा देनेवाली बात	श्री मोतीलालजी मुगना	१३
६	अधिकारी मुनिवरों की बैठक की अधिकृत वार्त्ता	पं. बदरीनारायणजी शुक्ल	१५
७	स्व. मुनिश्री मोतीऋषिजी म. की जीवन झांकी	पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी	१७
८	जैन जगत का चमकता "मोती" खो गया	पं. गुलाबचन्दजी जैन	२१
९	मुनिश्री मोतीऋषिजी म. के प्रति श्रद्धांजलियां		२२
१०	श्री स्व. गोविन्द सीताराम वराडे	श्री नयनसुखजी गुगले	२७
११	बिहार बंगाल कोलड फील्ड जैन सम्मेलन का कार्य विवरण	श्री चन्द्रसिंह दुधोडिया	२८

पं. बदरीनारायण शुक्ल-पं. शोभाचंद्र भारिल्ल–प्रबन्ध सम्पादक-पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवर्ण नामावली

सद्रुपदेशक

परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज

संस्थापक

दानवीर शाह केशवजी जवेरचन्द, जामनगरवाले, जालना

आधारस्तम्भ

१ श्री. चन्द्रभानजी रूपचंदजी डाकलिया, श्रीरामपुर (नगर)		३ ,, सूरजमलजी कस्तूरचन्दजी गांधी	अहमदनगर
२ ,, केशरचंदजी कचरदासजी बोरा	आश्वी ,,	४ ,, माणकचंदजी किसनदासजी मुथा	,,

संरक्षक

१ श्री. तिलोकचंदजी खूबचंदजी गुंदेचा	चांदा (नगर)	७ श्री. मगनीरामजी फकीरचंदजी दुधेडिया	श्रीरामपुर
२ ,, फकीरचंदजी उत्तमचंदजी गुगले चिचोंडी शिराळ	,,	८ सौ. घोंडाबाई भ्र. उत्तमचंदजी संचेती	पूना
३ ,, माणकचंदजी उत्तमचंदजी गुगळे पाथर्डी	,,	९ श्री, कुन्दनमलजी कस्तूरचंदजी बोरा	,,
४ श्रीमती शक्करबाई रतनचंदजी सुराणा द्रुग (मध्यप्रदेश)		१० नवलमलजी सरदारमलजी पुगलिया	नागपुर
५ श्री. पन्नालालजी गुलराजजी गांधी मावावाले	पूना	११ भिकमदास पोखरणा चै. ट्रस्ट	पूना
६ स्व. श्री.पन्नालालजी गुगले पाथर्डी के स्मारक		१२ श्री. उदयरामजी हरकचन्दजी रैदासणी	वांबो

सहायक सदस्य

१ श्री. उत्तमचंदजी कचरदासजी भटेवड़ा	राहू (पूना)	२४ श्री. लाभचन्दजी गुलाबचन्दजी चोरडिया	हिंगणघाट
२ ,, बंशीलालजी अमोलकचंदजी भटेवड़ा	,, ,,	२५ ,, कुंदनमलजी लुकड की सुपुत्री सायरबाईजी	बेंगलोर
३ ,, माणकचंदजी भीवराजजी भटेवड़ा	,, ,,	२६ ,, सिमरतमलजी चुनीलालजी मुथा	वांबोरी
४ सौ. श्रीकुंवरबाई भ्र. मूलचंदजी भटेवड़ा	,, ,,	२७ " धनराजजी मोतीलालजी कांकरिया	पूना
५ श्री. प्रतापमलजी फूलचंदजी बनवट	आष्टा	२८ ,, खुशालचंद सपतलाल भूरट	घोडनदी
६ सौ. उमरावबाई भ्र. हस्तमलजी जैन	शाजापुर	२९ ,, मोतीलालजी मोहनलालजी मिंगी	पूना
७ श्री. केशरीमलजी बापूलालजी जैन	शुजालपुर	३० ,, मिश्रीलालजी हस्तीमलजी दुगड	घोडनदी
८ ,, रंभाबाई भ्र. गणपतसिंहजी जैन	,,	३१ ,, कचरदासजी प्रकाशमलजी भलगट	अहमदनगर
९ सौ. तेजकुंवरबाई धर्मपत्नी डालचंदजी चौधरी	,,	३२ ,, सुखरामजी प्रेमराजजी मुथा	बेलापुर
१० श्री. मोजीलालजी भीमसिंहजी जैन	,,	३३ ,, सौ. शाताबाई बाबूलालजी रैदासनी	नशीराबाद
११ ,, बीजराजजी जुगराजजी संचेती	मलकापुर	३४ ,, ताराचंदजी भीवराजजी भटेवडा	राहू (पूना)
१२ ,, तेजमलजी भीवराजजी संचेती	,,	३५ ,, तुलसाबाईजी कोचर	हिंगणघाट
१३ श्री. जवरीबाई भ्र. धूलजीभाई	शाजापुर	३६ ,, जसराज कालाभाई लाठिया	मुर्तिजापुर
१४ श्री. हिंमतलालजी सा. जैन	शाजापुर	३७ ,, बापूलाल प्रेमचंद संघवी	अकोला
१५ ,, कनकमलजी चुन्नीलालजी गांधी	चांदा	३८ ,, शाह नागजी पानाचंद बारवडा	रायपुर
१६ ,, नारायणदासजी मोहनलालजी मंडलेचा	येवला	३९ ,, रूपचंदजी गोकुलचंदजी कोठारी	कोपरगांव
१७ ,, भागूबाई भ्र. चंदनमलजी गादिया	बेलापुर	४० ,, चन्दनमल नन्दरामजी गांधी	श्रीरामपुर
१८ ,, मगनलाल सुदरजी शाह	अमरावती	४१ ,, दलीचन्द गुलाबचन्दजी पारख	नागपुर
१९ ,, हेमकुंवरबाई भ्र. कालीदासजी शाह	सातारा	४२ ,, उत्तमचन्दजी चुनीलालजी मुथा	वाम्बोरी
२० ,, मयाशंकर चत्रभुज शाह	अमरावती	४३ ,, कचरदास रूपचंदजी कर्नावट	इचलकरंजी
२१ ,, शान्तिलाल पोपटलाल काठेड	अहमदनगर	४४ ,, हंसराजजी गुलाबचंदजी लुणावत	लोणावला
२२ श्री. कचरदास मोहनलाल लोढा	अहमदनगर	४५ ,, गेंदालालजी मोतीलालजी जैन ट्रस्ट	इन्दौर
२३ ,, गेंदमल राजमल जैन	शुजालपुर	४६ ,, राजमल नन्दलाल मेहता चै. ट्रस्ट	भुसावल

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के लिए

प्रकाशक व मुद्रक पं० बदरीनारायण द्वारकाप्रसाद शुक्ल

मुद्रण व प्रसिद्धिस्थल श्री सुधर्मा मुद्रणालय ८३२ जुना कापड बाजार पाथर्डी. जि० (अहमदनगर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

★
समाज में सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की ज्योति जगाने हेतु विविध निबन्ध-प्रबन्ध माला स्वरूप धार्मिक आध्यात्मिक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक मासिक पत्रिका।
★

ॐ अर्हन्
सुधर्मा

★
मूल्य
वार्षिक ६-००
१ अंकका ०-५०
卐
प्रत्येक १५ तारीख को प्रकाशित होगी।
★

सुष्ठु धर्मः समाख्यातो वीरेण परमार्हता ।
सर्वत्र तत्प्रचाराय सुधर्माख्या सुपत्रिका ।।

वर्ष ५) १५ जनवरी १९६४ (अंक ६

सुधर्मा सुवचन सुधा

गाथा—आलाओ थीजणाइण्णो, थीकहा य मणोरमा। संथओ चेव नारीणं तेसिं इंदियदरिसणं ।।
कूइयं रुइयं गीयं, हसियं भुत्तासणाणि य। पणीयं भत्तपाणं च अइमायं पाणभोयणं ।।
गायभूसण-मिठ्ठं च काम भोगा य दुज्जया। नरस्सत्त गवेसिस्स बिसं तालउडं जहा ।।

छाया—आलयः स्त्रीजनादिना। स्त्री कथा च मनोरमा। संस्तवश्चैव नारीणां तासामिन्द्रयदर्शनम् ।।
कूजितं रुतं गीतं हसितं भुक्तासनञ्च। प्रणीतं भक्तपानञ्च अतिमात्रं पयोभोजनं ।।
गात्रभूषणमिष्टञ्च कामभोगाश्च दुर्जयाः। नरस्यात्मगवेषिणः विषं तालपुटं यथा ।।

शब्दार्थ—स्त्रीजन से युक्त मकान, मनोरम स्त्रीकथा, स्त्रियों का परिचय, उनके अंगोपांगों का अवलोकन, उनके विविध प्रकार के शब्दों का श्रवण, पूर्वोपभुक्त भोगों का स्मरण, कामवर्द्धक भोजन-पान, मात्रा से अधिक भोजन-पान और शरीर का शृंगार यह सब आत्मेच्छुक के लिए तालपुट नामक विष के समान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं भाष्यकार पं. रत्न श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल कृत भाष्य—

भाष्य–आचार्य के छतीस गुणों का वर्णन करते हुए पाँच इन्द्रियों के संवरण पर प्रकाश डाला गया है, प्रस्तुत गाथाओं में नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्तियों का दिग्दर्शन कराया गया है। जिन्हें "ब्रह्मचर्य की नौ वाड भी" कहा जाता है। जिस प्रकार किसान खेत की रक्षा के लिए खेत के चारों तरफ काटों की वाड लगाते है उसी प्रकार ब्रह्मचारी पुरुष ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए नौ वाडों का पालन करते हैं। जैसे–१) **स्त्री-जनसे युक्त मकान**–जिस मकान में बिल्ली रहती हो उसी में अगर चूहा रहा तो उसकी खैर नहीं हैं, किसी भी क्षण उसके गुणों का अन्त हो सकता है उसी प्रकार जिस मकान में देव की, मनुष्य की अथवा तिर्यञ्च की, स्त्री या नपुंसक का निवास हों वहाँ ब्रह्मचारी पुरुष रहे तो ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है। श्रीदशवैकालिक सूत्र में कहा है–

हत्थ-पायपडिच्छिन्नं कन्ननासविगप्पियं
अविवाससयं नारीं बंभयारी विवज्जए ॥

अर्थात् जिसके हाथ और पैर कटे हों, कान कटे हों तथा नाक भी कटी हो, ऐसी स्त्री से एवं जो सौ वर्ष की बुढिया हो, उससे भी ब्रह्मचारी को दूर ही रहना चाहिए। सारांश यह कि ब्रह्मचारी पुरुष जिस मकान में स्त्री रहती हो उसमें निवास नहीं करे। २) **मनोरम स्त्री कथा**–जैसे नींबू, इमली आदि खट्टे पदार्थों का नाम लेने से मुँह में से पानी छूटता है, उसी प्रकार स्त्री के सौन्दर्य, शृंगार, लावण्य, हाव-भाव और चातुर्य का वर्णन करने से विकार उत्पन्न होते हैं।

३) **स्त्रियों-का परिचय**–जैसे गेहूं के आटे में भूरा कोला (पेठा) रखने से उसका बन्ध नहीं होता है और चावलों के पास नारियल रहने से उसमें कीडें पड जाते हैं उसी प्रकार स्त्री, पुरुष अगर एक आसन पर बैठें तो उनका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। घी को अगार के पास रखने से जैसे वह पिघल जाता है उसी प्रकार स्त्रियों के साथ परिचय बढाते रहने से ब्रह्मचर्य में शिथिलता आने लगती है।

४) **स्त्रियों के अंगोंपांगों का अवलोकन**–जैसे सूर्य की ओर टकटकी लगाकर देखने से आँखों को हानि पहुँचती है, उसी प्रकार स्त्री के अंगोंपांगों को निरखने से ब्रह्मचर्य का नाश होता है।

५) **स्त्रियों के विविध शब्दों का श्रवण**–जैसे मेघ की गर्जना सुनने से मोर को हर्ष होता है, उसी प्रकार पर्दा, दीवाल, आदि के दूसरी ओर क्रीडा करने वाले दम्पती की कुचेष्टाएँ, शब्द, गायन और हँसी-मजाक की बातें सुनने से विकारों की उत्पत्ति होती हैं।

६) **पूर्वोपभुक्त भोगों का स्मरण**–एक वृद्धा के घर की छाछ पीकर कुछ मुसाफिर छः महीने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाद वापिस लौटे। तब बुढिया ने कहा—"मैं तुम लोगों को जीवित देखकर बहुत प्रसन्न हुई हूं, क्योंकि तुम्हारे छांछ पीकर चले जाने के बाद बची हुई छांछ में से सर्प निकला था मुझे बडा दुःख हो रहा था।"

वृद्धा की बात सुनते ही मुसाफिर मृत्युको प्राप्त हो गये। इसी प्रकार पूर्वावस्था में स्त्री के साथ किये हुए भोजन और भोग आदि का स्मरण करने से ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है।

७) **काम-वर्द्धक भोजन-पान**—जैसे सन्निपात के रोगी को दूध-शक्कर मिलाकर देना रोग को बढाना सिद्ध होता है उसी प्रकार सदैव सरस कामोत्तेजक भोजन भी ब्रह्मचारी के लिए हानिकारक होता है।

८) **मात्रा से अधिक भोजन-पान**—जैसे सेरके बर्तन में सव्वा सेर की खिचडी पकाने से चावलों का नाश होता है और बर्तन यदि मिट्टी का हुवा तो वह फूट जाता है उसी प्रकार मर्यादा से अधिक भोजन करने से अजीर्ण आदि रोग उत्पन्न होते हैं और विकारों की वृद्धि होने से ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है।

९) **शरीर का श्रृंगार**—जैसे दरिद्र के पास चिन्तामणि रत्न नहीं रहता है उसी प्रकार स्नान, मर्दन, श्रृंगार आदि करके शरीर को आकर्षक बनाने वाले का ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है।

ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह उल्लिखित नौ बातों का जो ब्रह्मचारी के लिए तालपुट विष के समान है, त्याग कर दें। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए अन्य मत में भी कहा है—

सुखं शैया सूक्ष्मवस्यं ताम्बूलं स्नानमञ्जनं।
दन्तकाष्टं सुगन्धं च ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ॥

अर्थात्-कोमल बिछोने पर सोना, महीन वस्त्र पहनना, पान खाना, स्नान करना, आँखों में सुरमादि अँजन लगाना, दांतोन करना, सुगन्धित पदार्थों का लेपन करना ये सब ब्रह्मचर्य को दूषित करनेवाली बातें हैं।

और भी—

विभूसावत्तियं भिक्खू कम्मं बंधइ चिक्कणं
संसार-सायरे घोरे जेणं पडइ दुरुत्तरे ॥

अर्थात-जो साधु स्नान-श्रृंगार आदि से शरीर की विभूषा करता है, वह चिकने (कठिन) कर्मो का बंध करता है और संसार सागर में ऐसा डूबता है, कि फिर पीछे निकलना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार अनेक शास्त्रीय प्रमाणों से प्रतीत होता है कि ब्रह्मचारी को स्नान-श्रृंगार आदि नहीं करना चाहिए। जो स्नान करेगा वह शरीर की सुन्दरता का अवलोकन करने के लिए दर्पण (काँच) देखेगा बालों में तेल लगाएगा,-बालों को साफ करने के लिए कंघा रखेगा और शरीर को दुर्बल देखकर उसे पुष्ट बनाने के लिए सरस भोजन का लोलुपी बनेगा, फिर वस्त्रादि का श्रृंगार सजेगा। फलतः उसकी इच्छा और आसक्ति बढ़ती जाएगी और अन्तमें वह ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट हो जाएगा। इस प्रकार अनेक दोषों की परम्परा से उत्पत्ति जानकर ब्रह्मचारी को कदापि स्नान-श्रृंगारादि नहीं करना चाहिए।

जो लोग स्नान से शुद्धि होने की बात कहते हैं उन्हें जानना चाहिए कि जिस में कई मुर्दे गाडे जा चुके हैं ऐसी मिट्टी के बने घाट में, ऐसे पानी से-जिसमें अनेकानेक जलचर जीवों की उत्पत्ति और मृत्यु सदैव होती रहती है और जिसमें दुनियाँभर का मल-मूत्र मिला होता है, स्नान करने से आत्मा की शुद्धि किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार हो सकती है ? रही शरीर की शुद्धि, सो शरीर हाड-मांस आदि का पिण्ड है, उसे हजार बार धोने पर भी वह शुद्ध नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त पानी में अनेक त्रस और स्थावर जीव होते हैं । उन जीवों के शरीर को अपने शरीर से रगडने पर शरीर शुद्ध नहीं हो सकता। भला विचार तो कीजिए कि इस शरीर की उत्पत्ति शुक्र और शोणित से होती है, यह हड्डी, मांस, काम, चर्बी आदि का थैला चमडी से ढंका हुआ है, मल-मूत्र आदि पदार्थों से भरा हुआ है, इस प्रकार का यह अपवित्र शरीर, पानी के द्वारा किस प्रकार पवित्र हो सकता है ? जो लोग पानी से शरीर को पवित्र होना मानते हैं, उनसे यह प्रश्न पूछना चाहिए कि-मान लीजिए एक आदमी ने सौ बार कुल्ला करके अपने मुख को पवित्र कर लिया । उसके बाद उसने कुल्ला का पानी आपके ऊपर थूंक दिया, तो आप उससे घृणा करेंगें या नहीं ? अगर आप घृणा करते हैं तो आप को मानना पडेगा कि सौ बार कुल्ला करने पर भी उस आदमी का मुख अशुद्ध अपवित्र ही रहा था पवित्र हो गया होता तो आपको घृणा क्यों होती ? इस व्यावहारिक उदाहरण से ही सिध्द हो जाता हैं कि पानी से शरीर की शुध्दि नहीं होती। काशीखण्डपुराण में कहा है–

मृदो भारसहस्त्रेण जलकुम्भशतेन च ।
न शुद्धयति दुराचारी स्नानं तीर्थशतैरपि ॥

अर्थात्—कोई दुराचारी हजारों भार (परिमाण विशेष) मिट्टी, शरीर को मल-मल लगावे और शेकडों घडे पानी से प्रक्षालन करे तो भी शुद्ध नहीं हो सकता है ।

फिर भी स्नान से शुद्धि मानते हो तो जाति भेद क्यों पकड रखा है ? फिर तो भंगी, भील, चमार अदि भी स्नान करके ब्राह्मण क्यों न वन जायँ ? मगर स्नान करने मात्र से कोई नीच जात-वाला उच्च नहीं बन सकता । इन सब बातों से निश्चित समझिए कि केवल स्नान ही शुध्दि का कारण नहीं हैं। स्नान करने से शरीर पर लगी हुई धूल ही दूर होती है, अन्तःकरण को पवित्र बनाने वाला स्नान नहीं है, सदाचार है । "शील–स्नानं सदा शुचिः" विना पानी से स्नान किये ही ब्रह्मचारी पुरुष शीलरूप स्नान से सदैव पुनीत रहते हैं। जैसे मकान में कोई बच्चा मल-त्याग कर देता है तो उतनी ही जगह साफ कर ली जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी पुरुष का जितना शरीर मल आदि से मलीन हो जाता है उतना शरीर धोकर के वे साफ कर लेते हैं । उन्हें सारे शरीर को धोने की आवश्यकता नहीं रहती ।

उक्त नौ वाडों में से किसी एक वाड को भंग करने वाले ब्रह्मचारी को शंका उत्पन्न हो जाती है। मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूं या न करूं, इस प्रकार का सन्देह उसके चित्तमें उत्पन्न होने लगता है। उसके हृदय में आकांक्षा अर्थात् भोगोपभोग भोगने की इच्छा भी जागृत हो उठती है, इतना ही नहीं वह विचिकित्सा से भी ग्रस्त हो जाता है । सोचने लगता है कि इतने दिन ब्रह्मचर्य पालने से कुछ ऋद्धि-सिद्धि, प्राप्त नहीं हुई तो आगे भी क्या फल होगा ? इन सब दोषों के फलस्वरूप वह भेद को भी प्राप्त हो जाता है । अर्थात् ब्रह्मचर्य को नष्ट कर डालता है । उसके मनमें और तन में उन्माद (मस्ती) उत्पन्न हो जाता है और फिर लम्बे समय तक रहने वाले सुजाक, प्रमेह, शूल आदि रोग उसे घेर लेते हैं । इसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि ऐसा पुरुष केवलीप्ररुपित धर्म (संयम) से भ्रष्ट होकर अनन्तकाल तक संसार भ्रमण करता है ।

ऐसा जानकर आचार्य महाराज स्वयं तो नौ वाड से युक्त ब्रह्मचर्य का पालन करते ही हैं, वे दूसरों से भी इसी प्रकार ब्रह्मचर्य का पालन कराते हैं।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी

धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन

ले.-श्री. श्रीप्रकाश दुबे, एम्. ए. (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

आधुनिक शिक्षा पद्धति की एक बहुत बडी देन है 'तुलनात्मक दृष्टिकोण'। पुराने जमाने में लोग गुरु के यहाँ किसी ग्रन्थ विशेष या धर्म विशेष के विषय में पढकर ही अध्ययन की इतिश्री समझ लेते थे और बात भी कुछ स्वाभाविक थी। क्योंकि उस समय आवागमन के साधन न होने के कारण लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर बडी कठिनाई से जा पाते थे। अतः विचारों का आदान-प्रदान इतना सुलभ नहीं था जितना अब हो गया है। उस समय के राजा महाराज कुछ क्षेत्र को जीतकर 'चक्रवर्त्ती' की उपाधि प्राप्त कर लेते थे और विद्वान् लोग कुछ ही शास्त्रार्थों में विजय पाकर 'पण्डितराज' हो जाते थें। परन्तु अब वह जमाना लद गया। और बीत गया वह समय जब कि एक धर्म के ठेकेदार दूसरे धर्म वालों को अपने अखाडे में परिवर्तित कर लेते थे। अब वह युग आया है कि 'जीओ और जीने दो'। एक धर्म का दूसरे से बैर नहीं है। सभी मतावलम्बी निर्विरोध रूप से अपने अपने दायरे में जीवन व्यतीत कर सकते हैं। भारत का धर्म 'निरपेक्ष-राष्ट्र' होना इस बात का एक जीता-जागता उदाहरण है।

परन्तु प्रश्न है कि क्या हम अपने दायरे में ही सीमित रहें? अथवा उसके बाहर जाकर यह भी देखें कि अन्य धर्मों में क्या है? गीता में तो कहा है कि—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

परन्तु परधर्म तभी भयावह होता है जब स्वधर्म पर आंच आने की संभावना हो। जब स्थिति ऐसी हो कि हम अपने केन्द्र पर स्थिर रहकर 'अन्य' का भी ज्ञानप्राप्त कर सकें, तो वह पर धर्म भयावह नहीं रह जाता। स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि गिरजे में जन्म लो, परन्तु उसमें मृत्यु न प्राप्त करो। तात्पर्य यह कि अपने विश्वासों को सुदृढ और चिरस्थायी बनाने के लिए हमें चाहिये कि हम किसी धर्म विशेष का सम्यक् अध्ययन व परिशीलन करें। फलतः हम इतने सुदृढ बन जायें कि फिसलन और कीचड़ से भी पार हो सकें तो हमें साहसपूर्ण गोताखोरों की भाँति विभिन्न ज्ञान-सागर की बहुमूल्य मुक्ताओं की खोज करनी चाहिये, अन्यथा थोडे से घुंघुची से ही हमें संतोष करना पडेगा। आज के धर्मप्राण लोगों के लिये युग की पुकार है कि वे अन्य धर्म रूपी सागर में भी अवगाहन करें और अपने दृष्टिकोण विकसित तथा व्यापक बनावें।

कुछ लोग हमारी इस बात को पढ़कर कह सकते हैं कि धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन की बात अधार्मिक है। परन्तु मेरे विचार से धर्मो का इस प्रकार का अध्ययन न तो धार्मिक है और न अधा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्मिक । धार्मिक इसलिए नहीं है कि कोई भी व्यक्ति जो धर्म का अन्धानुकरण व विश्वास करने वाला होगा वह भला व्यर्थ का झमेला क्यों मोल लेगा ? उसका तो यह विश्वास होगा कि उसके इष्टदेव ही महादेव हैं और उसका धर्म ही जगद्धर्म है । उसे इतनी फुरसत ही नहीं कि वह अन्य धर्मों की 'नापाक' पुस्तकों को पढ सकें और तीर्थों में जा सके । तथा अधार्मिक इसलिये नहीं कि अधार्मिक लोगों को क्या पडी है वे कि सारे धर्मोंके पोथों को और उनमें से तुलनात्मक तथा समालोचनात्मक तथ्य ढूंढ निकालें । उनके लिये तो धर्म आदि की बातें करना अनावश्यक तथा समय के प्रतिकूल है । आज का बाजार भाव भौतिकता के कारण गर्म है । मिल के भोंपू, मोटर के पों-पों में धर्म की आवाज किसी को सुनाई नहीं देती । अतएव यह काम उन माध्यमिकों का है जो धर्म में विश्वास तो रखते हैं परन्तु अन्धविश्वास नहीं रखते ।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि धर्म की आलोचना करने वाला व्यक्ति भी धार्मिक होता है । उसका भी एक धर्म होता हैं । जिस प्रकार कमजोर मित्र की अपेक्षा बलवान शत्रु अच्छा है उसी प्रकार निष्क्रिय धार्मिक की अपेक्षा सक्रिय धर्मालोचक अच्छा है । वह धर्म के अन्दर व्याप्त बुराइओं की ओर संकेत करेगा और धार्मिक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य होता है कि अपना सुधार करें । मध्यकाल में भारतवर्ष में संत कबीर ऐसे ही आलोचक थे । उनका अवतार कर्म के साम्राज्य में ऐतिहासिक घटना है ।

दूसरी बात यह है कि वर्त्तमान समय में ऐसी हवा बह रही है कि जन साधारण का विश्वास धर्मों से उठता जा रहा है । वर्तमान पीढी अधार्मिक होती जा रही है । इसका कारण है शिक्षा का प्रचार व प्रसार । हमारे विचार से तो विश्व के सारे धर्म अनपढ जनता को ही ध्यान में रखकर बनाए गए हैं । अशिक्षित लोग धर्म के स्थूल रूप को ही सर्वस्व मानकर उसमें चिपके रहते हैं । उन्हीं के द्वारा धर्म के नामपर अत्याचार और अनाचार कराया जाता है । जो लोग शिक्षित हो जाते हैं वे धर्म के सूक्ष्म रहस्य को समझ जाते हैं । उनके लिए धर्म मानव के भीतर के देवत्व को जागृत करने का साधन है न कि साध्य । अतएव वे धर्मों के बाह्य स्वरूप पर उतना ध्यान नहीं देते जो कूपमण्डूकता की ओर ले जाता है । इसीलिए तो वेद और उपनिषदों में अध्यात्मज्ञानिओं के लिए कोई भी नियम या बंधन रूढ नहीं हैं । वे सभी पार किए जा सकते हैं । परन्तु अंग्रेजी शिक्षा की यह विडम्बना है कि वह धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझाने की बात दूर रही, धर्म की शिक्षा के नाम पर मुंह फेर लेती है । इसका फल यह है कि इस शिक्षा पद्धति के शिक्षित लोग अपनी उन नीतिओं आदर्शों और उत्कर्षों से भी अज्ञात रह जाते हैं और सारी भौतिक सुख सुविधा के बावजूद भी उनके जीवन के सामने एक प्रश्नवाची चिन्ह बना रहता है । अतः आज के धार्मिक लोगों का यह भी एक महान् कर्त्तव्य है कि नयी पीढी को धर्म के मूल सिद्धान्तों से अवगत कराएँ और उनके कोमल हृदय में विश्वास का अंकुर उत्पन्न करें । विना विश्वास के जीवन भर अविश्वास का प्रस्ताव पास होता रह जाएगा और जिन्दगी दो कौडी की हो जाएगी । इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर जर्मनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध विद्वान् श्री 'इमैनुअल कान्ट' ने अपनी पुस्तक "व्यावहारिक तर्क का विवेचन" में विश्वास के लिए मैदान साफ किया। डॉ. राधाकृष्णन् ने विश्वविद्यालयों में शिक्षा-विषयों में धर्म का पाठयक्रम प्रस्तुत करने पर जोर दिया है।

धर्म का तात्पर्य यहाँ किसी विशेष धर्म से नहीं है वरन् मानव धर्म या विश्व धर्म से है। विश्वधर्म से अर्थ है वह तत्त्व या कर्त्तव्य जो सबके हित के लिए है और सभी लोग बिना हिचकिचाहट के उसे स्वीकार कर सकें। प्रायः सभी धर्म मानवता के श्रेष्ठ गुणों का प्रतिपादन करते हैं। सभी का लक्ष्य एक है। शिकागो के विश्व-धर्म सम्मेलन में स्वामी बिवेकानन्द ने कहा था कि सारे धर्म एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर हैं। उनमें कोई विरोध नहीं, जैसे विभिन्न स्थानों से निकल कर नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं, वैसे ही सारे धर्म एक अखण्ड चैतन्य की ओर बढ़ रहे हैं। उन्होंने यह भी कहा था कि वह दिन दूर नहीं है, जब लोगों के विरोध के बावजूद भी प्रत्येक धर्म की पताका पर यह स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा— "सहयोग, न कि विरोध; पर-भाव ग्रहण, न कि परभाव विनाश; समन्वय और शांति, न कि मतभेद और कलह"।

पश्चिमी देशों के लोगों में अब तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति जागरूक हो गई है। उन्होंने सभी धर्मों का (जहाँ तक संभव है) तुलनात्मक अध्ययन प्रारंभ कर दिया है। परन्तु इसके लिए निरंतर प्रयत्न की आवश्यकता है। सभी धर्म के लोगों को चाहिए कि वे अपने धर्म के अधिकारी विद्वानों को अन्य धर्मों के अध्ययन करने के लिए आवश्यकता, सहायता व प्रेरणा दें। धार्मिक संस्थाएं इस कार्य में अधिक फलप्रद हो सकती हैं। जब इस प्रकार तुलनात्मक कार्य होगा तभी तो यह स्पष्ट हो सकेगा कि हमारे अपने धर्म में क्या विशेषता है और क्या कमी है। हमें अपने किस सिद्धान्त का अधिक प्रचार करना चाहिए जो अन्य धर्म वाले नहीं जानते हैं तथा किसको छिपाकर रखना चाहिए जिस पर अन्य लोग हंसेंगें।

अभी उस दिन एक अमेरिकन महोदय कुछ इसी प्रकार की बात चलाए थे। उस वार्ता में एक निष्कर्ष यह निकला कि धर्मों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन करना स्वयं एक नए कर्म का निर्माण नहीं है वरन् सभी धर्मों की 'अच्छी' जानकारी है। सभी धर्मों में अच्छी बातें हैं और सभी धर्मों ने अच्छे महापुरुषों को जन्म दिए हैं। फिर क्यों न हम उनकी अच्छी अच्छी बातों को ग्रहण करें और "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" के साथ ही साथ यह नारा बुलन्द करें—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्॥

हमें अपने दिल दिमाग को साफ रखना होगा। मस्तिष्क की खिड़कियों को खुला रखना होगा ताकि सद्विचार बेरोकटोक के प्रवेश पा सकें। वैदिक ऋषियों की भांति हमें कहना ही होगा—

"आनो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः।" अर्थात् चारो ओर से कल्याणकारी विचार आवें। अतः सत्यार्थी को किसी धर्म से बैर नहीं, किसी से आसक्ति नहीं। वह एक साथ हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, जैन, पारसी, बौद्ध और यहूदी सब हैं।

★ ★ ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापुरुष के व्यक्तित्व

(ले.– डॉ. इन्द्रचन्द शास्त्री एम्. ए., पी-एच. डी., दिल्ली)

बौद्धधर्म में भगवान् बुद्ध के तीन काय अर्थात् शरीर माने गये हैं। पहला **संभोग काय** अर्थात् स्थूल शरीर है, जिसके द्वारा वे खाना-पीना, उठना बैठना, आदि क्रियाएँ करते थे। दूसरा **धर्म काय** है; इसका अर्थ है बुद्ध के द्वारा दिया गया उपदेश। उनके द्वारा स्थापित संघ-व्यवस्था भी इसी में आती है। तीसरा **निर्माण काय** है; इसी कारण दो प्रकार से की जाती है। श्रद्धालुओं का कथन है कि बुद्धने अपने शरीर धारण करके दूसरों को कल्याण का मार्ग बताया था। वे शरीर ही उनके निर्माण काय हैं। किन्तु इसका वास्तविक अर्थ है महापुरुष का वह रूप जो संप्रदाय तथा परम्परा की सीमा को लांघकर सर्व साधारण को प्रेरणा देना रहना है।

भगवान् महावीर को लक्ष्य में रखकर विचार किया जाय तो शास्त्र तथा संघ-व्यवस्था उनके धर्म काय हैं। उन्होंने अहिंसा, सर्वमैत्री, समता एवं त्याग की ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकृष्ट किया, अपने जीवन तथा उपदेशों द्वारा प्रेरणा दी। उनकी ये प्रेरणायें अब भी मानवता का वरदान बनी हुई हैं। ये ही महावीर का निर्माणकाय है। जहां भी अहिंसा, अनेकांत या समाज की चर्चा है वहाँ महावीर के निर्माणकाय की झलक मिलती है।

जिस मनुष्य का व्यवितत्व संभोगकाय अर्थात् स्थूल शरीर तक सीमित है वह सबसे निकृष्ट है; उसे हम पशु कह सकते हैं। उसका लक्ष्य जीवन-रक्षा और इंद्रिय-तृप्ति से आगे नहीं बढता।

राजनीतिक पुरुष स्थूल शरीर से ऊपर उठकर संगठन को महत्त्व देते हैं। संगठन के साथ उनका अहंकार, यशलिप्सा, अधिकार की कामना तथा अन्य तत्त्व ओतप्रोत हो जाते हैं। वे अपने को उससे भिन्न नहीं समझते हैं। उसके उत्थान को अपना उत्थान और उसके पतन को अपना पतन समझते हैं। अपने संगठन के सदस्यों का कल्याण चाहते हैं और दूसरों की हानि। एक पक्ष उन्हें देवता मानता है और दूसरा राक्षस।

धर्म के क्षेत्र में भी संगठन किये जाते हैं किन्तु वहाँ उसका लक्ष्य दूसरों को नीचा दिखाकर अपने अपने अहंकार की पुष्टि नहीं होती। ऐसा करने पर वे धैर्य न रहकर राजनीति बन जायेंगे। धार्मिक संगठन का उद्देश्य परस्पर सहयोग द्वारा आत्म-विकास का होता है। किसी साधक के अस्वस्थ होने पर दूसरे की सेवा करते हैं, हमारे साथ होने पर प्रोत्साहित करते हैं, पथभ्रष्ट होने पर पथ आलोकित करते हैं और उलझन में पडने पर समाधान करते हैं। वहाँ अंकुश की अपेक्षा प्रेम एवं सहयोग की भावना बलवती होती है। ऐसे संगठन में ही महापुरुष का सर्वोत्कृष्ट व्यवितत्व अर्थात् 'निर्माण काय' पनपता है; इसके विपरीत जो धार्मिक संगठन बाह्य अनुशासन पर अधिक बल देते हैं, अपने को दूसरे से ऊँचा सिध्द करने के लिए मिथ्या प्रदर्शन करते हैं, इसके लिए विविध प्रकार दंभ तथा आडम्बर करते हैं, वे अपने लक्ष्य से गिर जाते हैं। उनमें महापुरुष का निर्माण काय नहीं रहता है। ('जैन प्रकाश' से साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण संघीय लेखमाला–

शिथिलाचार का प्रश्न ?

लेखक–"एक चिन्तक"

अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने चतुर्विध संघ की स्थापना के साथ ही संघ के महत्व पूर्ण अंग का–श्रमण–श्रमणी के आचार का विस्तार पूर्वक विवेचन किया था। जैन साहित्य की प्राचीनतम कृति "आचारंगसूत्र" के प्रथम श्रुतस्कंध तथा इसके पश्चात् की एक रचना "दशवैकालिक सूत्र" में आचार का विस्तार पूर्वक विवेचन मौजूद है। इसी प्रकार जैन साहित्य के अन्य शास्त्रों तथा ग्रन्थो में साधुवों के कल्प, अकल्प तथा उल्लंघन के दंड का विधान भी किया गया हैं। वास्तव में सारे जैन साहित्य में साधु समाज के आचार पर काफी बल दिया गया, केवल भाषा तथा व्याकरण की विद्वता से आत्मा का निस्तार नहीं हो सकता। आत्मा का निस्तार "आचार" से होगा।

न चित्ता तायए भासा, कुज्जा विज्जाणुसासणं।
वाया-वीरिय-मित्तेण, समासासेंति अप्पयं ॥

उपर्युक्त गाथा से "आचार" का महत्व प्रकट है। जब साधु–समुदाय में आचारके प्रति शिथिलता आगई, वे चैत्य वास करने लग गये, मंदिर–मूर्ति ही केवल उनका ध्येय रह गया, तो जहाँ प्रसिद्ध जैनाचार्य 'श्री हरिभद्र सूरि' ने उस पर अपनी कलम चलाई, वहां महान् क्रांतिकारी लोकाशाह ने अपनी कृति से शिथिलाचार के विरूद्ध "जिहाद" प्रारम्भ किया। श्री लोकाशाह की क्रांति केवल शिथिलाचार के विरूद्ध थी। इस पर से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्थानकवासी समाज में 'आचार-शुद्धि' मुख्य प्रश्न रहा है। एक बार पुनः भगवान् महावीर द्वारा निरूपित आचार पक्ष को अत्यधिक बल मिलने लगा। भगवान् महावीर द्वारा निर्धारित समाचारी के संबन्ध में काल के प्रभाव से समय २ पर "उपप्रश्न" उत्पन्न होते गये और स्थानकवासी जैन समाज के आचार्यो ने उनकी व्याख्याएँ कीं। संभवतः यह व्याख्याओं के संबन्ध में मत भेद ही स्था. जैन समाज में विभिन्न सम्प्रदायों के अस्तित्व का कारण भूत रहा। वृत्ति यह कार्य करती रही कि अहिंसा के सम्बन्ध की व्याख्या सूक्ष्मतम की जावे जिससे साधु समाज उत्कृष्ट चारित्र पालन करे, वही उचित मानी जाये। जहाँ इस वृत्ति ने साधु–समाज में आचार शुद्धता के भाव को दृढ किया वहाँ मानव स्वभाव के अनुसार अपने को अन्य से श्रेष्टत्व की भावना को भी जागृत किया। इस आचार विभिन्नता को लेकर साधुसमाज में प्रादेशिक भेद भी निर्माण हो गये। एक प्रदेश के साधु समाज से दूसरे प्रदेश के साधु समाज का आचार कुछ भिन्न रहा। इसी कारण साधु–समाज में परस्पर सम्भोग–सम्बन्ध का प्रश्न उत्पन्न हो गया। एक सम्प्रदाय तथा एक प्रदेशके साधु समाज का अन्य सम्प्रदाय तथा अंन्य प्रदेश के साधु–समाज से पृथक सम्भोग संबन्ध रहने लगा। स्थिति यहां तक हो गई कि विभिन्न सम्प्रदायों, विभिन्न प्रदेशों के साधु एक स्थानक में ठहरने, एक पाट पर बैठ कर व्याख्यान देने में भी आचार-अशुद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानने लगे। एक सम्प्रदाय के साधु दूसरी सम्प्रदाय के ज्येष्ठ साधु अथवा स्थविर तक को सुख शान्ती पूछने,वंदन-व्यवहार करनें में अनुचितता मानने लगे। आचार-विभिन्नता के कारण यह भावना काम करने लगी कि यदि हम अपने से भिन्न आचार-पालन कर्ता से इस प्रकार का व्यवहार सम्भोग-संबन्ध रखेंगें तो चूंकि 'वह साधु हमारी मान्यता-परम्परा के मुताबिक उत्कृष्ट साधु नहीं है', अतः हमें दोष का भागी होना पडेगा। यह पाप भीरुता की भ्रमपूर्ण भावना अथवा अहंमानिता जो भी हो इसके लिये जिम्मेदार रही और इसके कारण स्थिति भयानक हो गई। यह ख्याल होने लगा कि एक ही तीर्थकर के अनुयायी, महा सिद्धान्त अहिंसा के विश्वासी साधु मुनिराज, स्याद्वाद के उपदेश कर्ता, आपस में इतने बेगाने हैं। जिस प्रकार एक मांद—गुफा में दो सिंह नहीं रह सकते उसी प्रकार एक स्थान पर दो साधु विभिन्न सम्प्रदाय या प्रदेश के नहीं रह सकते हैं।

इस अन्धकार पूर्ण युग में सूर्य के प्रकाश ने प्रवेश किया। समाज के चिंतकों के मन में इस स्थिति के प्रति असंतोष जागृत हुआ। सन् १९३२ ई. में अजमेर में अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फरेन्स के अधिवेशन के साथ २ वृहद् साधु सम्मेलन का आयोजन किया गया। सन् १९५२ ई. में सादडी में पुनः वृहद् साधु सम्मेलन का आयोजन हुवा। सन् १९३२ ई. से सन् १९५१ तक बीस वर्षों में जो भूमिका बनी उसका परिणाम यह हुवा कि सन् १९५२ में गुजरात—सौराष्ट्र को छोड कर समस्त सम्प्रदायों ने अपने को श्रमण संघ में विलीन कर दिया। इसके एक वर्ष पश्चात् ही सन् १९५३ में सोजत में पुनः मंत्रीमुनिवरों की सभा आयोजित की गई। एक आचार्य, एक समाचारी, एक विधान का निर्माण हो गया। स्थानक वासी जैन समाज की छाती गर्व से फूल गई। जो कार्य जैन धर्मान्तर्गत किसी समाज ने आज तक नहीं किया वह स्थानकवासी साधु समाज ने कर दिखाया। कुछ लोगों ने यह निरूपण किया कि भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरदार पटेल के सह प्रयत्न से जिस प्रकार भारतीय नरेशों ने अपनी सार्वभौम शक्ति भारतीय संघ में विलीन कर दीथी उसी भावना से प्रेरित होकर हमारे साधु-समुदाय के विभिन्य पूज्य आचार्यों ने अपने भी अधिकार श्रमण संघ को सर्मपित कर दिये, जो भी हो सन् १९५२ के उक्त सम्मेलन में ११ सम्भोग अनिवार्य तथा १२ वां सम्भोग आहार पानी के लिए ऐच्छिक रखा गया था। श्रमणसंघीय व्यवस्था कई वर्षों तक ठीक चलती रही किन्तु कुछ वर्षों के पश्चात् ही श्रमण संघ के आचार्य तथा उपाचार्य श्री में मत भेदों का निर्माण हो गया। शिथिलाचार, ध्वनिवर्धक यन्त्र अधिकार के प्रश्नों ने श्रमणसंघ रूप स्वच्छाकाश को तिमिराछन्न कर दिया।

श्रमण संघ के आचार्य तथा उपाचार्य श्री के अधिकार क्या हो? आचार्य तथा उपाचार्यश्री के अधिकार समवर्ती हों अथवा आचार्यश्री केवल मात्र एक सम्मान के पद सुशोभित करते रहें और सारे अधिकार उपाचार्य श्री में निहित हों? इस प्रकार के प्रश्न श्रमण संघीय मुनिराजों के सन्मुख उपस्थित होने पर जैसे कि परम्परा है, श्रमणसंघीय कतिपय न्यून आचार विचार के साधुओं ने अवसरवादिता से काम लेकर कभी एक की शरण ग्रहण की, कभी दूसरे की! परिणाम यह हुआ कि सा[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुदाय में शिथिलाचार को प्रश्रय मिलता गया। एक वर्ग के समक्ष शिथिलाचार में साधु की अकल्पनीय छोटी २ बातों का भी समावेश हो गया, जब कि दूसरे वर्ग के निकट शिथिलाचार से तात्पर्य यह था कि साधु मुनिराज के मूल गुणों में कोई अतिक्रमण न हो। प्रथम वर्ग के निकट जहाँ चतुर्थव्रत भंग के जघन्य दुष्कृत्य शिथिलाचार थे वहाँ ध्वनि वर्धक यंत्र का उपयोग भी शिथिलाचार बनने लगा। इस लेख में आचार्य के अधिकार के प्रश्न की चर्चा अनावश्यक है। स्वर्गीय उपाचार्य श्री के श्रमण संघ से सम्बन्ध-विच्छेद का मुख्य कारण शिथिलाचार का प्रश्रय कहा जाता हैं किन्तु यह तो एक आनुसंगिक बात थी, मुख्य प्रश्न तो अधिकार का था। अधिकार के प्रश्न क्यों उत्पन्न हुवे ? यह एक स्वतंत्र लेख का विषय है यहाँ पर तो मोटे तोर पर "आचार" का प्रश्न विचारनीय है।

भगवान् महावीर ने लगभग २५०० वर्ष पूर्व साधु समाजद्वारा पालनीय नियमों तथा दैनंदिन व्यवहार की सूक्ष्मतम व्याख्या कर दी थी इस लम्बेकाल में समय समय पर साधु-समाज ने अपने आचार में परिवर्तन किये। कौन नहीं जानता कि श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र २६ वें अध्ययन की १२ वीं गाथा में श्रमणवर्ग को दिन के तीसरे प्रहर में 'केवल एक समय' भोजन-प्राप्ति के लिये जाने का विधान किया गयाहै, उसके पश्चात् काल प्रभाव से दोनों समय आहार प्राप्तिके लिये जाने की पद्धति अपना लीगई प्रातःकाल दुग्ध, चाह के लिये भी जाने की पद्धति प्रारम्भ हो गई। मेरा यह तात्पर्य नहीं की यह परिवर्तन अनुचित हुवा। तात्पर्य केवल यह है कि साधु समाचारी में स्वयं साधु समाज ने इस लम्बे काल में कई परिवर्तन किये हैं। हमारे आचार-विचार पर देश, काल, क्षेत्र आदि का प्रभाव पडता ही है। इस कारण उसमें परिवर्तन अवश्यंभावी भी है। साधु के मूल गुण अपरिवर्तनीय हैं किन्तु उनकी व्याख्या, कार्य क्षेत्र *sphere* परिवर्तित होता रहता हैं। समय के अभाव से "अहिंसा" का क्षेत्र भी विस्तृत, संकुचित होता रहता है। एक समय था जब साधु मुनिराज लोकोपयोगी प्रवृत्तियों में रस नही लेते थें। उसमें एकांत धर्म नहीं था, सूक्ष्महिंसा लगती थी। समय के प्रभाव से आज कई मुनिराज इस प्रकार की प्रवृत्तियों में रस लेते हैं। शास्त्र-मुद्रण का प्रश्न हमारे सामने हैं। उस समय इसका काफी विरोध हुवा। आज सब साधु मुनिराज मुद्रित शास्त्रों को उपयोग में लाते हैं आज आवश्यकता यह है कि श्रमण-संघ शास्त्रीय विधान, देश, काल, क्षेत्र आदि को ध्यान में रखकर साधु समाज के लिए एक "आचार संहिता" का निर्माण करे। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आचार की मर्यादा अल्प की जानी चाहिए। श्रमणसंघ को यह तय कर देना चाहिए की साधु के लिए कम से कम निर्धारित मर्यादा अतीव अनिवार्य है और फिर उसके पालन के हेतु संघ को पूरा २ नियंत्रण रखना चाहिए। अधिकतम मर्यादा निर्धारण का परिणाम यह होता है कि साधु उस मर्यादा के पालन करने में असमर्थता अनुभव करते हैं, उनके सामने दो ही मार्ग रहते हैं। या तो वे स्पष्ट रूप से अपनी कमजोरी को स्वीकार करें या ढोंग करे और छिपी रीति से मर्यादा का उलंघन करें। अभी तक ढोंग को अधिक प्रश्रय दिया जाता रहा है इसलिए यह आवश्यक है कि मर्यादा अल्प हो उसे अधिक जो मुनि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज पालन करेगें वे श्रेष्ठ होंगे और उनकी आत्मा का कल्याण होगा इसमें संदेह नहीं।

स्था० जैन समाज का आश्रय केवल साधु-समुदाय पर है इस कारण साधु समाजके प्रश्न को *Ignore* नही किया जा सकता। स्था० जैन समाज अधिकारी मुनियों के प्रस्तावित सम्मेलन की ओर आँख लगा कर आशाभरी नजरों से देख रहा है, इस अवसर पर यह आशा करना अनुचित न होगा कि अधिकारी मुनिवर "आचार" तथा उस से संबंधित प्रश्नों के बारे में स्पष्ट तथा व्यावहारिक निर्णय करेंगे कि जिससे श्रावक संघ के सन्मुख उत्पन्न ज्वलन्त प्रश्न "शिथिलाचार" का उचित हल हो सकेगा और ऐसा वातावरण निर्माण हो जायेगा कि हमारा साधु समाज अपने आचार-विचार के प्रति अधिक जागृत होकर अन्य साधुओं के दोष एवं उनकी कमियों की अधिक चिंता नहीं करेगा। वास्तव में साधुता केवल बाहरी क्रिया काण्ड पर आधारित नहीं है अपितु हृदयगत भावनाओं एवम् सरलता आदि मानवीय गुणों पर अधिक आधारित है। उपर्युक्त स्थिति निर्माण होने पर ही श्रमण संघ "आचंद्रदिवाकरौ" कायम रह सकेगा। जो हमारे रूठे हुवे मुनिराज हैं वे तथा जो अभी तक श्रमण संघ में सम्मिलित नहीं हुवे हैं वे सब मुनिराज श्रमण संघ में सम्मिलित हो सकेंगे। हमारे समाज के विचारक चिंतक प्रभावशाली मुनिवरों का यह कर्तव्य है कि साधु समाज में ऐसी भावनाओं का निर्माण करें कि जिसके कारण साधु समाज में आचार के प्रति शिथिलता न आने पावे। साधु समाज अपनी कमजोरी के प्रति सदैव जागृत रहे तब ही ऐसा शुभ दिन आ सकता है कि जब हम भारतीय संस्कृति के ग्रंथ महाभारत के निम्न श्लोक:-

न राज्यं न राज्यासीनं न दण्डो न दाण्डिकः।
धर्ममेव प्रजाः सर्वाः रक्षन्ति स्म परस्परम्॥

के अनुसार यह दावा कर सकें कि हमारे समाज में प्रत्येक साधु अपने आचार के प्रति सदैव जागृत है इस कारण दण्ड व्यवस्था अथवा दण्ड प्रदाता की आवश्यकता नहीं रह गई है।

काश। यह स्वप्न साकार हो सके!

●●●

ग्राम और ग्राम्य-जीवन

मनुष्य ने नगरों का निर्माण किया है किन्तु ग्राम सृष्टिकर्ता की कृति है। —कूपर

★

अहा 'ग्राम्य-जीवन' भी क्या है!
क्यों न इसे सब का मन चाहे? —गुप्तजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

— राजघराने की शोभा देने वाली बात —

(ले.—मोतीलालजी सुराना, इन्दौर)

राज्य पुरोहित को इस बात पर तो विश्वास हो गया कि साधु के वचन खाली नहीं जावेगें। उनके घर निश्चित् ही दो पुत्र रत्न जन्म लेंगे। पर बाद में वे जैन दीक्षा अंगीकार कर लेंगे इस बात ने उसे चिंता में डाल दिया।

बडा शहर होने से वहाँ साधु—मुनिराज आते ही रहते थे अतः पुरोहित ने जंगल में जाकर रहने का निश्चय किया। वहाँ न तो साधुजी आवेगें और दोनों पुत्र साधु के विषय में कुछ न जान ही सकेंगे। पुत्ररत्न की प्राप्ति के बाद पुरोहित अपने बच्चों को लेकर जंगल में चला गया तथा एक छोटे से देहात में रहने लगा। जब दोनों लडके सयाने हो गये तो पुरोहित ने उन्हें समझाया कि यदि कोई जैन साधु दिख जावे—जिनके मुँह पर मुँहपत्ति होती है तथा हाथ में रजोहरण होता है, सफेद वस्त्र पहनते हैं, हाथ में झोली होती है—तो उनके नजर मत आना, कहीं भी छिप जाना, क्योंकि वे छोटे बच्चों को पकड कर ले जाते हैं उनके पास झोली में कैंची चाकू, छूरे होते है। वे बालकों के पहले तो नाक कान काटते हैं फिर आँखें फोडते है व बाद में उन्हें जान से मार डालते हैं।

पुरोहित अपने पुत्रों को पूरा-पूरा समझाकर निश्चिन्त हो गया पर होनहार तो होकर रहती है। रास्ता भूल जाने से एक जैन साधुजी उसी बस्ती में आ गये। पुरोहित ने ज्यों ही साधुजी को देखा त्यों ही उन्हें जल्द से जल्द वहाँ से दूर भेजने की बात सोची। पास आकर बोला—महाराज! आहार-पानी लीजिये और शीघ्र ही दूर दूसरे गांव चले जाइए। मेरे लडके बडे शरारती हैं। वे जैन साधुजी को देखकर बडे क्रोधित होते हैं और केवल गालियाँ देकर ही अपमानित नहीं करते परन्तु मार-पीट भी करते हैं। मुझे डर लग रहा है। वे कहीं आ न जायँ।

पुरोहित ने आहार-पानी परोसकर गली के रास्ते से महाराज को रवाना कर चैन की साँस ली।

दोनों बालक जब बहुत देर तक खेल चुके तो जल्दी घर पर पहुँचने के लिए गली के रास्ते से ही आ रहे थे। ज्यों ही उन्होंने जैन साधुजी को आते देखा वे वापस मुड़ गए तथा भाग कर जंगल की राह पकडी।

साधुजी भी उसी ओर गए। साधु को अपना पीछा करते देख दोनों एक वृक्ष पर चढ़ गए।

साधुजी भी उसी वृक्ष के नीचे ठहर गये। सोचा—यहाँ छाया है। आहार-पानी ग्रहण कर लूं, अब पुरोहित के लडकों का भी यहाँ उपसर्ग नहीं होगा, तथा भार हल्का हो जाने से मंजिल भी आसानी से तय हो सकेगी। साधुजी ने जगह को औघे (एक मुलायम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपकरण) से पूंजा पश्चात् पुरोहित के यहाँ से दी गई भोजन-सामग्री को ग्रहण किया। पानी पिया। यह सब वृक्ष पर बैठे दोनों लडकों ने देखा। उन्होंने यह भी देखा कि साधुजी के पास झोली में छूरे चाकू नहीं हैं। और ये तो एक छोटे से छोटे जीव की भी रक्षा करते हैं।

दोनो का डर दूर हुवा। वे वृक्ष से नीचे उतरे, और सोचने लगे कि यह बेष तो जाना पहचाना सा—लगता है। पहले भी कहीं देखा है। इस प्रकार सोचते २ उन्हें 'जाति-स्मरण' ज्ञान हो गया। उन्होंने अपने पूर्व भव की बातें जानी। दोनों ने मुनिजी को वंदना की। बोले कि हमें तो हमारे पिताजी ने आपके विषय में बहुत सी गलत बातें बता रखीं थीं। दोनों ने संसार छोड़ कर संयम लेने की बात कही तथा साधुजी को गांव में वापस चलने के लिये आग्रह किया।

घर आकर दोनों ने पिताजी से दीक्षा की आज्ञा चाही। माता-पिता दोनों ने बार बार समझाया कि कुछ वर्षों के बाद सभी संयम ले लेगें। पर क्षण मात्र का प्रमाद भी अनुचित बतलाते हुए अपनी बात पर वे जमे रहे। अंत में हारकर 'भग्गू पुरोहित' और उनकी पत्नी 'जसा' तथा दोनो लड़कों ने संयम लेकर आत्म कल्याण करने का निश्चय किया।

जब राजा 'इक्षुकार' को पता चला कि भग्गू पुरोहित तथा उसका पूरा परिवार साधु बन गया है तो उन्होंने गाडियाँ भेजकर उसका सब धन-माल अपने राज्य खजाने में मंगाने का आदेश दे दिया।

गाडियाँ भरकर जब राज्य खजाने की ओर आ रही थीं तो महल की खिड़की से रानी ने यह सब देखा, और पता चलाया कि किसका माल है और क्या लाया जा रहा है।

भग्गू पुरोहित के परिवार की संयम की बात सुनकर रानी कमलापति महाराज इक्षुकार के पास आई और बोली आपने जिन्हें दान दिया वही फिर आप वापस ले रहे हैं। यह क्या हमारे राज्य घराने को शोभा देनेवाली बात होगी? यह धन भग्गू पुरोहित ने तो छोड दिया पर क्या यह हमारे साथ चलेगा? मैंने साध्वी होने का निश्चय किया है—यदि ऐसी बात है तो राजा ने बात काटते हुए कहा-मृत्यु के बाद जीव का साथ केवल धर्म ही देता है अतः धर्म आराधना के काम में भी मैं तुम्हारा साथ दूंगा। तुम यदि दीक्षा की बात कहती हो तो मैं भी साधु बनकर जीवन सफल बनाऊंगा। यह तो राज घराने को शोभा देने वाली बात होगी। राजा तथा रानी ने भी संयम लिया और इस प्रकार छहों जीवों ने सिद्धि गति प्राप्त की।

सत्पुरुष—

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धं, छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षुकाण्डम्।
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं, प्राणान्तेऽपि प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम्॥

चन्दन को बार बार चाहे जितना भी घिसा जाय वह अधिक सुगन्ध देता है, गन्ने को बार-बार काटने-चूसने पर भी वह मीठा ही बना रहता है और स्वर्ण को बार-बार तपाने पर भी वह चमकता ही रहता है। उत्तम पुरुषों का चाहे प्राणान्त ही क्यों न हो जाय, उनके प्रकृति में—स्वभाव में—कोई अन्तर नहीं पड़ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकारी मुनिवरों की बैठक की अधिकृत वार्ता—

फाल्गुन शुक्ला ३ रविवार १६ फरवरी १९६४ की ओर उन सभी चिन्तकों का ध्यान लगा हुआ है, जिन्होंने श्रमण संघ के निर्माण की क्रान्तिकारी ऐतिहासिक घटना देखी या सुनी है। उसके पश्चात् का इतिहास भी उस ध्यान का प्रबल प्रेरक बना है और आज तो उस ध्यान की आन्तरिक दृष्टि एक बिन्दु पर ही जम गई है वह बिन्दु है (अजय मेरु) अजमेर।

श्रमण संघ के अधिकारी मुनिओं ने बहुत ही दीर्घदर्शिता और चाणाक्षता से काम लेकर पारस्परिक मिलन से संघ की समस्याओं के हल ढूंढने का निश्चय किया है कि प्रथमतः अधिकारी मुनिओंका ही सम्मेलन किया जाय और एकान्त वातावरण में शान्ति के साथ सभी प्रश्नों के समाधान कर लिए जायँ पश्चात् बृहत्साधु सम्मेलन में प्रस्तावों को स्वीकृत किया जाय। पूर्व सम्मेलनों के समान भीडभाड और जल्द-बाजी से काम करने पर पर्याप्त विचारणा के अभाव में चिरस्थायी और योग्य निर्णय तक पंहुंचना संदिग्ध रहेगा।

संघ के सभी अधिकारी मुनियों एवं प्रमुख मुनिवरों की सम्मति के अनुसार श्रद्धेय आचार्य श्री जी ने सम्मेलन के लिए मिति और स्थान की घोषणा कर दी जिससे समाज में एक नवीन जागृति आगई—एक नये जोश और आनन्द की लहर चारों ओर हिलोरें लेने लगी।

जो अधिकारी मुनि अजमेर या उससे १००-२०० मील की दूरीपर हैं उनके विहार के लिए हम उतने उत्सुक न हों यह साहजिक है, पर जो काफी दूरीपर वर्षावास में विराजित थे या शारीरिक स्थिति उतनी मजबूत न होने के कारण जिनके पहुंचने की शक्यता आसान नहीं दिखाई दे रही थी, उनके विहार की ओर सभी की दृष्टि संलग्न रहे, यह स्वाभाविक है इस लिए उक्तश्रेणी के अधिकारी श्रद्धेय आचार्यश्रीजी, उपाध्याय श्री कवि जी म., प्रान्तमन्त्री श्री शुक्लचन्दजी म. और पंजाब से पधारने वाले प्रतिनिधि सन्तों के विहार का समाचार परम जिज्ञासित होने से अद्यावधि प्राप्त समाचार निम्न प्रकार हैं।

श्रद्धेय आचार्यश्री जी अपने साथी मुनिमण्डल के साथ शाजापुर से विहार कर मार्ग के प्रमुख स्थानों में जनता के उत्साह भरे स्वागत को स्वीकारते हुए दिनांक १-१-६४ नूतन वर्षारंभ के प्रसंगपर राजस्थान के निम्बाहेडा नामक नगर में पदार्पण किया है। रास्ते में अनेक मुनिमण्डल आप श्री की सेवामें उपस्थित होकर साथ-साथ या क्षेत्रस्थिति के अनुसार आगे पीछे विहार कर रहा है। रतलाम से चितौड़गढ तक के क्षेत्र सन्तमिलन, विविध-सम्मेलन और धार्मिक जुलूसों के उत्साही वातावरण से ओतप्रोत है। आज निम्बाहेडा में वीर बाल सम्मेलन है, तो मंगलवार को मेवाड प्रान्तीय युवक सम्मेलन चितौडगढ में सम्पन्न होने का प्रोग्राम है। जनता में संगठन के प्रति जो अप्रतिम उत्साह इस समय दिखाई दे रहा है, वह यदि चिरस्थायी रहा तो समाज की जो आशा सादडी सम्मेलन के पूर्व जागृत हुई थी, उसकी सफलता निश्चित है। आज समाज के बहुत से लोग यह कह रहे हैं कि हम लोगोंका भाग्योदय है जो श्रमणसंघ के महान आचार्य श्री जी विहार-कर इस मार्गको पुनीत कर रहे हैं।

आचार्य श्री जी के व्याख्यान में सभी प्रकार की जैन और अजैन जनता उपस्थित होकर संगठन के महत्त्वको अन्तःकरण से स्वीकार करती है। यह भी सुनाई दे रहा है कि यदि आचार्य श्री जी की भूमिका को ही और सन्त भी स्वीकृत कर लें तो समाज का भविष्य उज्वल बन जाय। श्रद्धेय आचार्य श्री जी ३-४ दिनों में दिनांक ६-१-६४ तक चित्तौड़गढ पधारने की भावना रखते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्रद्धेय उपाध्याय श्री कविजी म. अपने निकटवर्ती पंजाब प्रान्त के अधिकारी मुनिवरों के विहार की प्रतीक्षा में आगरा रुके हुए थे क्योंकि आगरा में शताब्दि ग्रन्थ के सम्पादन का कार्य तत्परता से किया जा रहा है. उसके लिए उपाध्याय श्री जी का मार्गदर्शन जितना मिल सके उतना ही वह ग्रन्थ सुन्दर बन सकेगा। आगरा और अजमेर की दूरी भी इतनी ही है कि आज भी विहार कर आप श्री समय पर अजमेर पधार सकते है।

पंजाब के अधिकारी मुनियों के विहार को लक्ष में रखकर कॉन्फरेन्स का डेप्युटेशन पुनः वहाँ उपस्थित हुआ था, डेप्युटेशन का तार दिनांक २७-१२ को नीमच में प्राप्त हुआ है कि पंजाब मंत्री श्री शुक्लचन्दजी म. २९-१२ को विहार कर रहे हैं। अबाला और पटियाला के कुछ सन्त पहले ही विहार कर चुके हैं। पं मुनिश्री फूलचन्द जी म. "श्रमण" ठाणे ५ से चार मील तक पधार गये हैं।

मालवा मेवाड और मारवाड के अधिकारी सन्त-

महाराष्ट्र मंत्री पं. रत्न श्री सोभाग्यमल जी म. श्रद्धेय आचार्य श्री जी के साथ नागदा से नीमच तक विहार में हैं नीमच से राखनियाँ होते हुए आपका विहार हो रहा है। मालवा मंत्री पं. मुनि श्री हीरालाल जी म. और मेवाड मंत्री पं. मुनि श्री जमनालाल जी म. कांकरोली (मेवाड) तक पधार गये हैं। वे मारवाड ब्यावर के रास्ते अजमेर पधारेंगे। मेवाड मंत्री पं मुनि श्री पुष्कर मुनिजी म. सोजत रोड पधार गये हैं। वहाँ से अजमेर समीप ही है।

मरुधर के दोनों मन्त्री मरुधरकेशरी प. मुनि श्री मिश्रीमलजी, म. और म. मुनि श्री मिश्रीमलजी म. "मधुकरजी" ने जोधपुर से अजमेर की तरफ विहार किया है।

पं. रत्न श्रद्धेय उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. और प्रान्त-मन्त्री पं. रत्न श्री पन्नालालजी म. की २८-१२-६३ को अजमेर में समागम होकर पारस्परिक विचारणा हुई है। उपाध्याय श्री जी जयपुर दीक्षा कार्य से पधार रहे हैं, वापस समयपर अजमेर पधार जायेंगे। स्थविर मुनि प्रवर्तक श्री कस्तूरचन्दजी म. ब्यावर में विराजमान है। आपश्री के लिए अजमेर अतीव समीप हैं।

परमश्रद्धेय महामहिम पूज्य आचार्य श्री जी का चतुर्विध संघ के लिए—

आवश्यक संदेश-

श्रमण संघ के अधिकारी मुनियों की बैठक जो अजमेर में होने जा रही है वह संघकी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए आपसी अन्तरंग मीटिंग है। इसके लिए हमें अत्यन्त प्रशान्त एकान्त वातावरण की आवश्यकता है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए हमारा सम्पूर्ण समय एकनिष्ठा के साथ विचार-विनिमय में उपयुक्त होना चाहिए। यह सब होनेपर ही हम अपने ध्येय की पूर्ति में सफल हो सकेंगे। इसलिए जिन अधिकारी मुनियों या प्रमुख मुनिवरोंको आमंत्रित किया गया है, उनके सिवाय और कोई भी मुनिराज या सतीजी तथा अतिरिक्त कोई भी

सद्गृहस्थ-श्रावक-श्राविका

तब तक उपस्थित नहीं हों जब तक प्रतिबन्ध न उठाया जाय कॉन्फरेन्स को गतिविधि की आवश्यक जानकारी होती रहेगी उसके द्वारा समयोचित सूचनाएँ प्रसारित की जा सकेगी।

प्रेषक---पं. बदरीनारायण शुक्ल

संघठन—

जिसमें फूट हो गई है और पक्ष-भेद हो गये हैं, ऐसा समाज किस काम का ? आत्म-प्रतिष्ठा और आत्मा की मूर्ति का समाज चाहिए। अलग रह कर जितना काम होता है, उससे सौ गुना काम संघशक्ति से होता है।

–योगी श्री अरविंद

हमें संघठित होकर प्राण देने को प्रस्तुत होना चाहिए, अन्यथा हम अलग-अलग तो प्राण देकर ही बैठेंगे।

– फ्रेंकलिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोक ! शोक ! महाशोक !

श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रमण संघ के परमश्रद्धेय आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म. के प्रधान–शिष्य सेवाभावी

पं मुनिश्री मोतीऋषिजी महाराज

का भोपालगंज (भीलवाडा) में दि. ११।१।६४ शनिवार को देवलोक हो गया !

मन बार बार इस बात को मानने के लिए इन्कार करता है कि सेवाभावी शिक्षाप्रेमी, पं. मुनि श्री मोतीऋषि जी म० का देवलोक हो गया । अभी परसों ता, ७-१-६४ की तो बात है, में मुनि श्री का दर्शन चितौडगढ में किया था, दर्शनकर बडी प्रसन्नता हुई कि मुनि श्री आगन्तुक सन्तवृन्द के साथ अजमेर सम्मेलन की तरफ त्वरा से प्रयाण कर रहे हैं. मन में उत्साह है, उमंग है, सम्मेलन को सफल बनाने की उत्कट अभिलाषा है । मुझे मांगलिक श्रवण कराए, मैं पूज्य आचार्य श्री का दर्शन करके मुम्बई होते बोर्ड के उपाध्यक्ष श्री चन्द्रभान जी सा. डाकलिया के यहाँ श्रीरामपुर पहुँचकर मुनिश्री के सुख-शान्ति की चर्चा कर ही रहा था कि इतने में पोष्टमैन ने तार दिया, कि "मुनि श्री मोतीऋषि जी म० का ता. ११-१-६४ के रोज भोपालगंज–भीलवाडा में स्वर्गवास हो गया"। समाचार पढ़ते ही सेठ जी एवं मैं तथा अन्य उपस्थित जन हत-प्रभ हो गये । सेठजी ने प्रमुख स्थानों पर फोन द्वारा मुनि-श्री के दुःखद देहावसान के समाचारों से अवगत कराया। कल्पना भी नहीं थी कि इतनी जल्दी मुनि श्री हम लोगों के आँखों से ओझल हो जायेंगे । विश्वास नहीं हो रहा है, पर सत्य तो सत्य ही है । मुनि श्री सचमुच चले गये । वे अब नहीं रहे ।

हाय ! उनका व्यक्तित्व, कृतित्व, उनकी स्मृतियाँ, सब आँखों के सामने चल चित्र सी घूम रही हैं ।

मैं तो बचपन से ही उनके निकट परिचय में था । साथ में ही कुछ अध्ययन का भी सुअव-सर प्राप्त हुवा था ।शान्त एवं गंभीर स्वभाव के थे, समाजोत्थान के लिए चिन्तन, मनन किया करते थे, समाज में धर्म का प्रचार प्रसार किस रूप में हो इसपर विचार विमर्श किया करते थे । गुरु भक्ति उनकी अद्वितीय थी, तभी तो घाटकोपर से उग्रविहार कर पूज्य आचार्य श्री के दर्शनार्थ शाजापुर चातु-र्मास हेतु पधार गये, उनके देवलोक से स्थानकवासी जैन जगतका एक अनूठा रत्न चल बसा, शासन देव से प्रार्थना है कि स्वर्गस्थात्मा को अक्षय एवं अखंड शांति प्रदान करें । तथा पूज्य श्री जी के ऊपर जी शिष्य वियोग का महान् आघात पहुंचा है, उसको सहन करने की शक्ति प्रदान करें, श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, श्री वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा, श्री अमोल जैन सिद्धान्त शाला, श्री रत्न जैन पुस्तकालय, श्री जैन धर्म प्रसारक संस्था नागपुर कार्यालय, पाथर्डी, सुधर्मा कार्यलय एव श्री सुधर्मा मुद्रणालय, आदि पाथर्डीस्थ पारमार्थिक संस्थाओं की तरफ से उस पवित्रात्मा के प्रति भावभीनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं ।

।। ॐ शान्ति ।।

चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवाभावी पं. मुनिश्री मोतीऋषिजी म. के जीवन की झांकी

आपका जन्म नायगांव (पूना) निवासी श्रीमान् हजारी लालजी कांकलिया की धर्मपत्नी श्री सुन्दरबाई की कुक्षि से सं. १९५४ भाद्रपद कृ. १४ (म. श्रावण वदि १४) शनिवारके दिन हुवा। नाम श्री मोतीलालजी रक्खा गया। बारह वर्षकी बाल्यावस्था में ही पितृवियोग का भीषण आघात सहन करना पडा। पितृवियोग के पश्चात् नायगांव पेठ निवासी श्री गुलाबचदजी भणसाली जो गृहस्थावस्था के मामाजी थे, के यहाँ व्यावहाररिक शिक्षा के लिये करीब ७-८ वर्ष रहे। शिक्षा प्राप्त करने के बाद माताजी के साथ पूना में रहने लगे। सन्त-समागम की चित्त में स्वतः अभिरुचि थी, अतः धर्म भावना जागृत हुई। सेवा भावना बाल्यकाल से ही थी। चातुर्मास में तल्लीनता के साथ सन्तों के प्रवचन सुनते इस कारण संसार की असारता का अनुभव होने लगा। शुद्ध आत्म-स्वरूप की उपलब्धि करने का श्रेयस्कर विचार अन्तरात्मा में उदित हुआ। दीक्षित होकर निवृत्तिमय जीवन स्थापन करने की इच्छा जागी। परन्तु मातृभक्ति के कारण माताजी के अकेली रह जाने का ख्याल आया। दीक्षा लेने के संकल्प को कुछ काल के लिए स्थगित कर दिया। इस तरह माताजी के सुख और सन्तोषके लिए अपनी आकांक्षा का भी दमन किया गहस्थावस्था में रहते हुये व्रत, प्रत्याख्यान, संवर, सामायिक पौषध करते हुए धार्मिक जीवन यापन करते रहे। छह वर्ष बाद सं. १९८६ में माता जी छोडकर चली गईं, अब कोई बन्धन नहीं रहा। सदगुरू की टोह में रहे। सं. १९९२ में पं. रत्न श्री आनन्दऋषिजी म. का पूना में चातुर्मास हुआ। प्रतिदिन स्थानक में ही संवर करनें की प्रवृत्ति थी। एक दिन विचार आया-सांसारिक प्रवृत्तियों में करीब आधा जीवन व्यतीत कर दिया। इतने दिनों में इस जीवन के लिए जो कुछ किया है, उसका सौंवा हिस्सा परलोक के लिए नहीं किया अब इस प्रवृत्ति-मय जीवन का परित्याग कर आत्मा के श्रेयस् के लिए भी कुछ करना चाहिए।

इस प्रकार विशुद्ध अध्यवसाय उत्पन्न होने पर श्री. बालाराम जी गेलडा के साथ महाराज श्री को सेवा में उपस्थित हुए। निवेदन किया- गुरुदेव! दीक्षा लेने की मेरी भावना है- किन्तु ज्ञानाभ्यास की सुविधा हो तो दीक्षा लेना चाहता हूँ। पं. रत्न म. न उत्तर दिया-तुह्मारा विचार प्रशस्त है। मानव-जीवन की वास्तविक सफलता अपने अनन्त भविष्य को उज्वल बनाने में ही है। दीक्षा लेनी है तो जहाँ लेनी हो वहीं लो। परन्तु देर मत करो। उम्र ३८ वर्ष की हो गई है। "तो मैं आपकी ही शरण ग्रहण करना चाहता हूँ" इस प्रकार निवेदन करने पर पं. र. महाराजश्री ने फरमाया-जैसी इच्छा। मैं तुम्हारे ज्ञानोपार्जन में और संयम के आराधन में सहायता देने की भावना रखता हूँ।

महाराज श्री से आश्वासन पाकर पूर्ण सन्तोष हुआ। उसी समय से गार्हस्थिक कार्यों की व्यवस्था आरंभ कर दी। चौमासा समाप्त होने पर महाराज श्री चन्होली ग्राम में श्री अमृतकुँवर जी म. की दीक्षा के लिए पधार गये। जब महाराज श्री वापिस पूना पधारे तो फाल्गुन शु. ५ गुरुवार के प्रभात में उत्कृष्ट वैराग्य भाव से दीक्षा ग्रहण कर ली। नाम श्री मोतीऋषि जी म. रक्खा गया। दीक्षा के पावन प्रसंग पर ३५ महासतियाँ जी और ३ सन्त उपस्थित थे। पूना वालों ने इस अवसर पर अच्छा धर्मानुराग प्रकट किया। श्रीमान् देवीचन्द जी उत्तमचन्द जी संचेती का विशेष उल्लेखनीय सहयोग रहा।

सं. १९९३ के घोडनदी चातुर्मास में अध्ययन आरंभ हुवा। संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के व्याकरण का अभ्यास किया। पनवेल में गुरुवर्य के मुखारविन्द से धर्मभूषण परीक्षा के पाठय ग्रन्थों का अध्ययन किया। बाद में श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की प्रथम श्रेणी में धर्मभूषण परीक्षा उत्तीर्ण की।

तत्पश्चात् पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन किया। हितोपदेश, न्यायदीपिका, प्रयाणनयतत्त्वालोक, आदि का अभ्यास करके और घोडनदी जैन सिद्धांत शाला में चार मास ठहरकर जैन सिद्धांत प्रभाकर परीक्षा का अभ्यास पूर्ण किया और परीक्षा देकर उत्तीर्णता प्राप्त की।

मुनि श्री प्रेमऋषि जी म. की अस्वस्थता के कारण पाथर्डी ठहरे, तब अध्ययन का फिर अवसर मिल गया। जैन सिद्धांत शास्त्री परीक्षा के प्रथमखण्ड के पाठ्यक्रम का अध्ययन किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यथा समय परीक्षा देकर उसमें उत्तीर्णता पाई। करीब १० महीने तक पाथर्डी में रहे। इसके पश्चात् पूज्य श्री आनन्दऋषिजी म. की सेवा में रहकर ज्ञानोपार्जन किया।

वेलापुर (श्रीरामपुर-अहमदनगर) के चातुर्मास में प्रारंभ में श्री उपासक दशांग सूत्र और "चिचोंडी सिराल" के चातुर्मास में भी शास्त्र वाचने का अवसर प्राप्क हुआ।

सं. २००६ में पूज्य श्री के साथ ब्यावर में चातुर्मास किया था। इस चातुर्मास में थोकडों, बोलों और शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। उदयपुर चातुर्मास में श्री राजमल जी बाफणा से भी अनेक बोलों आदि की घारणा की वहाँ मध्याह्न में श्री भगवती सूत्र का वाचन होता था। उससे भी पर्याप्त लाभ उठाया। गुरुदेव की पूर्ण कृपा से संयम जीवन सफलता के साथ व्यतीत हुआ। गुरुदेव के आदर्श को शिरोधार्य करके ऋषि सम्प्रदाय के इतिहास लिखने का भी स्वर्णावसर प्राप्त हुवा।

"जैन तत्त्व दीपिका" का संपादन करके परीक्षार्थियों के लिए आपने सुलभता कर दी है। आपको कई थोकडे कंठस्थ थे। आपकी धारणा शक्ति अच्छी थी, ज्ञानाभ्यास की उत्कृष्ट अभिरुचि थी। संयम की ओर भी आपका पूर्णलक्ष्य था। आपसे भविष्य में बडी आशाएँ थीं। मगर निर्दय काल ने शीघ्र ही आप पर हमला कर दिया। कौन जाने किस क्षण किसके जीवन का अन्त आने वाला है।

श्री सुधर्मा मुद्रणालय में शोक—

यह जानकर कि सद्विद्याप्रचारक सेवाभावी पं. मुनिश्री मोतीऋषिजी म. श्री का भोपालगंज (भीलवाडा) में स्वर्गवास हो गया, कर्मचारी-वृन्द को बहुत ही आघात पहुँचा, मुद्रणालय बन्द रखा गया, एवं स्वर्गस्थात्मा की अक्षय एवं अखण्ड शांति हेतु शासनदेव से प्रार्थना की गई तथा निम्न प्रकार से शोक-प्रस्ताव पारित किया गया।

"सुधर्मा मुद्रणालय के कर्मचारी-वृन्द" मुनिश्री मोतीऋषिजी म. के स्वर्गवास पर हार्दिक शोक प्रकट करते हुए उनकी आत्मा की शांति के लिए प्रभु से प्रार्थना करते हैं। मुनिश्री ने जो धर्म सेवा की है, उसको विस्मृत नहीं किया जा सकता। पूज्य आचार्यश्री के ऊपर जो आघात पहुँचा है, उसमें हम सहभागी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व. पं. मुनिजी श्री. मोतीऋषिजी म० के प्रति आत्मार्थी पं. मुनिश्री मोहनऋषिजी म. के हृदयोद्‌गार !

आज समाचार प्राप्त हुवा।

श्री महात्मा जी म. की न्यूनता उनसे पूर्ण होने योग्य थी। अस्वस्थावस्था में उग्र विहार का साहस करके पूज्य श्री जी के दर्शन स्पर्षन की भावना पूर्ण की। अजमेर की अन्तिम भावना अपूर्ण रही।

श्री जी के सेवा की प्रबल भावना, लागणी और जागृति न पूरी हो सके ऐसी महती क्षति है। स्पर्शना बलवान है। अनेक योग्य मुनिवर्य सेवा में होने पर भी उनके व्यक्तित्व की पूर्णता अशक्य है।

किं बहुना ? त्रिकाल वन्दना।

ॐ शान्ति।

प्रांत मंत्री पं. मुनि श्री विनय ऋषिजी म. द्वारा भाव भरे श्रद्धा के चंद सुमन

परम श्रद्धेय पूज्य १००८ श्री आचार्य श्री जी म. सा. की पवित्र सेवा में कोटिशः हार्दिक वन्दन !

आज प्रातःकाल सेवाभावी मधुर आत्मन्, पं. मुनिश्री मोतीऋषिजी म. सा. स्वर्गवासी हो गये हैं, ये समाचार मिले तो हृदय को जरा गहरा धक्का लगा। कारण वे आपके अनन्य चरणसेवाभावी थे, सुज्ञ थे, साथ ही व्यवहार कुशल भी थे। उनके होने से आपश्री को काफी निश्चितंता रहती थी। मगर काल कराल की गति ही अजब अनोखी है कि उनका असमय में ही स्वर्गवास हो गया है। यह अत्यंत दुःख की बात है। वे अजमेर सम्मेलन की मनीषा अपने साथ ले गये। अफसोस होता है, मगर काल के सामने सर मौन है, हतप्रभ है।

आचार्य श्री आप तो समता, धैर्य और सहिष्णुता की एक तपोमूर्ति हैं, आप तो अब धैर्य रखकर आगे के कार्यों को सफल बनाने के लिए कदम बढायें।

इस समय सैकडों कोसों की दूरी पर होने के कारण मैं सिवा अपनी सम्वेदना व्यक्त करने के और क्या कर सकता हूं ? आपके हार्दिक दुःख में मैं अपनी अन्तरंग की सहानुभूति और समवेदना व्यक्त करता हूं।

पूज्य श्री के चरणों में त्रिकाल वन्दन।

आपका ही

विनय ऋषि

श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रावक संघ अहमदनगर द्वारा आयोजित शोक सभा का प्रस्ताव

अखिल भारतीय श्रमण संघ के पू. आचार्य श्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज सा. के सुशिष्य पं. मुनि श्री मोतीऋषिजी म. सा. का भीलवाडा के पास भोपालगंज (राजस्थान) में असामयिक स्वर्गवास का समाचार जानकर अहमदनगर के श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रावक संघ को बहुत दुःख हुआ है।

स्वर्गस्थ आत्मा आचार्य श्री के आधार स्तंभ थे। विद्वान् थे व साथ ही प्रधान सेवाभावी थे। अैसे संत महात्मा का स्वर्गवास होना सचमुच दुःख की बात है। अब तो हम आचार्य श्री की सेवा में धैर्य धारण करने की प्रार्थना करते हैं व उनके हार्दिक दुःख के प्रति सहानभूति प्रदर्शित करते हुए स्वर्गस्थात्मा को चिर शांति प्राप्त हो यही शासनदेव से प्रार्थना करते हैं।

यह प्रस्ताव पूज्य श्री की सेवा में भेजने का अधिकार सेक्रेटरी को दिया जाता है।

प्रस्तावक–**श्री उत्तमचंद बोगावत वकील**

अनुमोदक–**श्री जीवराज कर्नावट वकील**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

70207

जैन जगत् का चमकता--
'मोती' खो गया !

पं. गुलाबचन्दजी जैन 'आधुनिक' पाथर्डी

श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री आनन्दऋषिजी म. सा. के प्रिय शिष्य सेवाभावी पं. मुनि श्री मोतीऋषिजी म. सा. सचमुच एक अलौकिक मोती थे। मोती जहाँ भी रहता है दमकते रहता है, गले का हार बनता है। स्थान की शोभा बढाता है। श्री मोतीऋषिजी म. सा. ने भी समाज के वक्षस्थल (आचार्य श्री) की शोभा बढाई थी।

सरलता, निष्कपटता, सहिष्णुता, निरभिमानता, मधुरता आदि गुण मुनिजी के रोम-रोम में विकसित थे।

आचार्य श्री गुरुवर्य के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा, आज्ञानुपालनता बात-बात में की विनम्रता देखकर गुरुगौतम का स्मरण हो आता था।

घाटकोपर में उन्हें लकवा हो गया था, शरीर ने साथ देने से इन्कार कर दिया था, पर 'मोती' जो अपने आपको सूई से छिदवाकर, धागे में पिरोकर औरों की सुषुमावृद्धि करता है, वह भला शरीर की चिन्ता क्यों करें? सभी जानते हैं कि मुनि जी ने कैसी उत्कट और अदम्य श्रद्धा के वशीभूत होकर घाटकोपर से उग्र विहार किया था। और ६०० मील की सुदीर्घ दूरी को आत्मिक शक्ति के बल से मिटाकर आचार्य प्रवर की शरण ग्रहण की थी।

शाजापुर चातुर्मास में भी मैंने देखा था, मुनि जी आठों प्रहर साधना रत रहते थे। वह मुंह अंधेरे जगना, शास्त्रीय तत्त्वज्ञान का चिन्तन करना, प्रतिक्रमण करना, प्रार्थना करना, करवाना, व्याख्यान देना अथवा लघु सन्तों को तथा वैरागियों को अध्यापन कराना, गोचरी लाना, नहीं तो लेखन कार्य ही करते रहना, आगन्तुकों से चर्चा करना, शंकाओं का समाधान करना, मांगलिक सुनाना फिर प्रतिक्रमण करना, समय-समय पर आचार्य श्री से श्रमण संघीय समस्यायों को सुलझाने के लिए विचार-विनिमय करना, आदि आदि।

और आश्चर्य यह कि इतना सब करते हुए भी कभी चेहरे पर थकावट के भाव नहीं, उदासीनता के चिन्ह नहीं, बल्कि पूर्ण सौम्यता और शान्ति में और भी निखार आता।

सोचता हूँ मोती कसौटी पर कसे जाने के बाद ही तो दमकता है और मोतीऋषिजी म. सा. दमकते हुए अलौकिक मोती थे।

हायरे सन् चौसठ! कितना रे दुष्ट तूं? अभी पूरे ग्यारह दिन भी नहीं हुए थे और तूने हमसे खिलवाड़ करनी शुरू कर दी। कितने अथक परिश्रम से हम हार गूँथ रहे थे, कैसी-कैसी अभिलाषाएं हम मन में सजाए रहे थे और तूने आकर हार तोड़ दिया, मणियाँ बिखेर दीं, शनि को साथ लाया और चमकते हुए मोती को उसे सौंप कर भगा दिया, क्या मिला है तुझे? बोल, नहीं भर गया मन तेरा? वाह रे काल की लीला!

शासन देव से प्रार्थना है दिवंगत आत्मा को अनन्त शान्ति लाभ हो।

112591

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व. पं. मुनिश्री मोतीऋषिजी महाराज के प्रति--

अर्पित श्रद्धांजलियाँ

पाथर्डी---रविवार ता. १२-१-६४ को प्रातः काल ९॥ बजे भीलवाडा से टेलिग्राम मिला-'सेवा-भावी पं. मुनिश्री मोतीऋषिजी म. सा. स्वर्गवासी हो गये" विश्वास नहीं हो रहा था, बार-बार अक्षरों को पढा, कागज कठोर सत्य कह रहा था। हृदय भर उठा, मुनि श्री के प्रति स्मृतियाँ जागृत हो उठीं यह प्राप्त समाचार औरों को सुनाने का दुःसाध्य कार्य भी तो मुझ हतभागी को ही करना था अतः अपने आपको संभाल कर, दिल को कडा-कर भाई चुनिलालजी गुगलिया, छाजेड वकील सा. डॉक्टर गुगले सा. आदि प्रतिष्ठित कार्य-कर्ताओं को इस दुःखद समाचार से अवगत कराया। पन्द्रह मिनिट में ही सारी पाथर्डी शोक-सागर में डूब गई। सन्तप्त बनी हुई जनता अपनी-अपनी दुकानें बन्द कर छात्रालय में इकठी हुई। और १०॥ बजे से शोक सभा निम्न प्रकार से छात्रालय में संपन्न की गई।

सर्व प्रथम उपस्थित नर-नारियों ने तीन बार नवकार मन्त्र का प्रशान्त स्वर से उच्चारण कर-कायोत्सर्ग किया। तदनन्तर श्री पी. पी. मेहन्दले सर ने पं. र. श्री मोतीऋषिजी म. सा. की सेवा भावना पर प्रकाश डालते हुए कहा कि श्री मोती-ऋषिजी म. सा. की भावना श्रद्धेय आचार्य श्री आनंदऋषिजी म. सा. के प्रति उसी प्रकार थी जिस प्रकार भक्तशिरोमणि पवन पुत्र हनुमान की मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी के प्रति थी। श्री मोतीऋषिजी म. सा. आचार्य श्री के एक ऐसे आज्ञापालक सुशिष्य थे जिनके लिए आचार्य श्री की अनुज्ञा का पालन करना ही जीवन का ध्येय था। लक्ष्मण रेखा स्वरूप आज्ञा का पालन करने के लिय वे तन-मन की वाजी लगा देते थे।

घाटकोपर में मैंने सन्तों के दर्शन किये। उस समय महाराज सा. को लकवा हो गया था, शरीरने साथ देने से इन्कार कर दिया था लेकिन फिर भी उस समय उनके मुख-मण्डल की दीप्ति अपूर्व थी, आचार्यश्री को साधु नियमों के अनुसार तथा श्रमण संघ की एकता के कार्य हेतु घाटकोपर से विहार करना था, पर भक्तराज को छोड वे कैसे जा सकते थे! बडी बिकट परिस्थिति थी, ऐसे समय पर भी महा-राज सा. ने बडे भक्ति भाव पूर्वक विनीत स्वरों में आचार्य श्री से प्रार्थना की " भगवन्! आपकी अनुपम कृपा से मैं शीघ्र ही स्वस्थ हो जाऊंगा, मेरी चिन्ता छोडिएगा, बहुत शीघ्र मैं आपश्री के पीछे से विहार कर सेवा में उपस्थित होऊँगा मन्दभागी हूं इसलिए आपश्री की सेवा से बंचित हो रहा हूं पूर्व जन्म के कर्मो का फल है, इसे भुगतकर त्वरित ही मैं आपश्री के दर्शन करूँगा और सचमुच ही आचार्य श्री के विहार करने के बाद थोडी-सी स्वस्थता होनेपर मुनि श्री ने भी घाटकोपर से विहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिया। विहार करते-करते जब महाराज सा. देवास पधारे थे तब भी मुझे वहाँ पर उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सेवा में उपस्थित होकर मैंने महाराज सा. से पूछा था—महाराज सा. शरीर की इतनी दुर्बलता होने पर भी आप क्यों इतनी तेजी से विहार कर रहे हैं? प्रत्युत्तर में उन्होंने मुझ से कहा था। सर! मैं क्या करूँ? चुम्बक की शक्ति लोहे के टुकडे को खींचें जा रही है तो उस शक्ति के आगे कौन क्या कर सकता है? " और वास्तव में महाराज सा. आचार्यश्री की चुम्बकत्व शक्ति के प्रति आकर्षित होते चले गये और अन्त में इन्दौर में उनकी समीपता पाकर ही दम लिया।

श्रद्धेय आचार्य श्री का भी महाराज सा. से अगाध स्नेह था। प्यार से वे ' मुनि ' मुनि ' के मीठे सम्बोधन से सम्बोधित कर प्रत्येक कार्य में विचार-विनिमय करते रहते थे। और अपनी अधिकांश जिम्मेदारियों को मुनिजी पर सौंपकर वे निश्चिन्त हो जाते थे।

सामाजिक कार्यो में भी मुनि महाराज सा. की सेवा अनुपम थी। उनकी व्यवहार कुशलता बेजोड थी। किसी सामाजिक कार्य करने के लिए समाज-सेवक आचार्यश्री के आशीर्वाद पाना चाहते ते, तो वे सीधे आचार्यश्री से तद्विषयक चर्चा करने से घबराते थे, ऐसे समय कार्यकर्ता मुनि महाराज सा. से बातें करते थे और मुनिश्री सा. के माध्यम से आचार्यश्री से शुभाशीष पा सकते थे। मुनि महाराज सा. एक चाबी थे जिसके द्वारा आचार्य श्री के हृदय को खोला जाता था। आज हमने उस चाबी (गुरु-किल्ली) को खो दिया है। शासन देव से प्रार्थना है कि वे मुनिश्री की आत्मा को असीम शान्ति प्रदान करें।

इसके बाद श्री छाजेड सा. वकील ने श्री मोतीऋषिजी म. सा. की कार्यकुशलता बतलाते हुए कहा कि—मोतीऋषिजी म. सा. को—जिन्हें सरलता की वजह से हम भाई महाराज सा. कहते थे—पाथर्डी के चातुर्मास-काल में विशाल लायब्रेरी के शास्त्रों तथा पुस्तकों का पडिलेहन कर सुव्यवस्थित रूप से जमाने का कार्य करते हुए मैंने पूछा था कि—भाई महाराज सा! लोग कहते हैं कि इस प्रकार के सामाजिक कार्य साधु-सन्तों को नहीं करने चाहिये, कर्मों का बन्ध होता है—तो महाराज सा. कहते थे भाई! इन सामाजिक कार्य करते हुए यदि मुझे कर्मों के बन्ध होने से दो-तीन बार जन्म लेने पडें तो भी उनके लिये मैं तैयार हूँ। सामाजिक कार्य-परोपकार करते हुए ही मैं मुक्ति की कामना करता हूँ, चाहता हूँ, मैं अकेला ही मुक्त न होऊँ बल्कि मेरे साथ औरों को भी मुक्ति मिलें।

गोचरी करने के लिए जब मुनि महाराज मेरे घर पधारते और देखते कि मिठाइयाँ बनी हुई हैं तो विना गोचरी (भिक्षा) लिए ही वे वापिस लौट जाते थे। पूछने पर समझाते थे—आज क्या कोई त्योहार है, जो तुम्हारे घर मिठाइयाँ बनी हुई हैं? तुमने हमारे निमित्त यह रसोई तैयार की है न! अतः हम साधुओं को इस प्रकार की भिक्षा नहीं कलपती, क्यों तुम हमारे निमित्त आरम्भ-समारम्भ करते हो? किसने कहा तुम लोगों को इस प्रकार का प्रपञ्च करने के लिए?" इस प्रकार भाई म. अपने आचार में भी निष्ठावान थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई महाराज सा. आचार्यश्री के दाहिने हाथ थे, बहुत बडे सहारे थे प्रत्येक कार्य में वे आचार्यश्री की अनुमति चाहते थे और आचार्यश्री की भी भाई महाराज पर अनुपम कृपा थी।

आज भाई महाराज सा. नहीं रहे, हमें प्रकाश देनेवाला दीपक बुझ गया। चारों ओर हमें अन्धेरा-सा दीख रहा है। शासन देव से मैं प्रार्थना करता हूँ कि भाई महाराज सा. की आत्मा को अखण्ड शांति मिले।

श्री तिलोक जैन ज्ञानप्रसारक मण्डल के सेक्रेटरी श्री नयनसुख गुगलियाजी ने महाराज सा. की सेवा में भावभीनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए कहा—पं. मुनिजी का जीवन परोपकार का जीवन था। वे सन्त तो थे ही साथ ही एक अच्छे साहित्यिक भी थे। महाराज सा. ने अथक परिश्रम कर 'ऋषि-सम्प्रदाय का इतिहास' लिखा है जो स्थानकवासी समाज के लिए अमूल्य देन है।

पं. मुनिजी ने जिज्ञासुओं की तृप्ति के लिए 'जैन तत्त्वदीपिका' नामक पुस्तिका लिखकर जैन तत्त्व ज्ञान को समझने को सरल और सीधा मार्ग प्रशस्त किया है।

पं. मुनिजी सरल-स्वभावी थे, आचार्यश्री को यदि आत्मा कहें तो मुनिजी को उस आत्मा का शरीर कहना चाहिये। आचार्यश्रीजी की भावना पं. मुनिजी के तन में अंगडाइयाँ लेती थीं। श्री तिलोक जैन ज्ञान प्रसारक मण्डल, विद्यालय, छात्रालय, धार्मिक परीक्षा बोर्ड जैसी विशाल और सक्रिय 'संस्था' की उन्नति और विकास में पं. मुनिजी की प्रेरणा तथा मार्गदर्शन कराने की दीर्घ-दर्शिता बहुत बडे हिस्से में कारणीभूत थी।

आज हम उस मार्गदर्शन से वंचित हो गये हैं। बडा दुःख हो रहा है। मुनिजी अजमेर सम्मेलन की भावना भी साकार होते न देख सके। कालकी गति विचित्र है? श्रद्धेय आचार्यश्री का बहुत बडा सहारा टूट गया है। हम शासनदेव से प्रार्थना करते है कि पं. मुनिजी की आत्मा को अनन्त शान्ति मिलें।

डॉक्टर श्री चान्दमलजी गुगले ने कहा—भाई महाराज की श्रद्धेय आचार्यश्री के प्रति उत्कट श्रद्धा थी। घाटकोपर में जब उन्हें लकवा हो गया था तब मैंने उनके शरीर का परीक्षण किया था, वहाँ के डाक्टरों की सलाह से निष्कर्ष निकाला था कि भाई महाराज सा. को कम से-कम डेढ साल पूर्ण विश्राम लेना चाहिए लेकिन महाराज सा. ने आचार्यश्री के विहार के कुछ दिन बाद ही विहार करके यह सिद्ध कर दिखाया कि शरीर भले ही शिथिल हो जाय पर उसके अन्दर की शक्ति अपूर्व कार्य कर दिखलाती है, शरीर के अतिरिक्त भी एक ऐसी शक्ति है जिसके सामने भौतिक शक्ति कुंठित हो जाती है। वास्तव में भाई महाराज की आत्मिक शक्ति के आगे मेरे डाक्टरी ज्ञान को हार खानी पडी और मुझे विश्वास करना पडा। बाह्य शक्ति से आन्तरिक शक्ति अदम्य होती है। भाई महाराज में वह आत्मिक शक्ति सक्रिय थी। आज हमें भाई म. सा. अकेले छोड स्वर्ग सिधार गये हैं, भाई महा० की आत्मिक विशेषताओं में एक आद्य विशेषता भी यदि हमारे जीवन में साकार हो उठी तो हमारा जीवन सफल हो सकता, इसी भावना के साथ मैं भाई महाराज के चरणों अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री चम्पालालजी गांधी तथा श्री कचरदासजी नाहर ने भी महाराज की सेवा में श्रद्धाञ्जलियाँ सर्मपित करते हुए भाई महाराज के द्वारा विद्या-र्थियों को धार्मिक शिक्षण देने के लिए की गई प्रेरणाओं का उल्लेख किया।

पं. गुलाबचन्दजी जैन 'आधुनिक' ने मुनिजी की जीवनी देते हुए कहा कि—मुनिजी का जन्म संवत् १९५४ में पूना के पास नायगांव नामक ग्राम में हुआ था। मुनिश्री के पिताजी का नाम श्रीमान् हजारीमलजी कांकरिया था। बारह वर्ष की अवस्था में ही आपको पितृ-वियोग का भीषण आघात सहन करना पडा था। जिससे आपको संसार से विरक्ति हो गई थी लेकिन माताजी के सुख और सन्तोष के लिए आपने गुमास्ती का कार्य कर गृहस्थावस्था में ही धार्मिक जीवन व्यतीत करने का अभ्यास किया। सं. १९८६ में माताजी भी स्वर्ग सिधार गई। तब संसार की निसारता को जानकर आपने संवत् १९९२ में पूना में ३५ महासतियों की उपस्थिति में श्रद्धेय श्री आनन्दऋषिजी म. सा. से भगवती दीक्षा ली और साधु बन गये। आपकी ज्ञानोपार्जन अभिलाषा तीव्र थी। समयानुकुल आपने शास्त्री परीक्षा तक का अध्ययन किया था।

आपका सरल स्वभाव, सीधा-साधा वर्तन, आचा-र्यश्री के प्रति श्रद्धा का भाव, जिम्मेदारी को पूर्ण करने का लगाव सब कुछ ऐसा था जिसे देखकर गौतमस्वामी का स्मरण होता था। आचार्यश्री का भी मुनिजी से अधिक स्नेह था। श्रमण संघ को संघठित करने की आचार्यश्री की प्रतीक भावना को मूर्त रूप देने के लिए मुनिश्री का सहारा बेजोड था, वह कार्य अब कुछ ही दिनों के बाद सफल होने-वाला था, लेकिन महान् आत्मा को सफलता अस-फलता से क्या लेना देना ? उनको तो कर्त्तव्य-कर्म करना होता है।

मुनिजी चले गये, जैन समाज के चमकदार मोती को काल ने हरण कर लिया। आचार्यश्री पर क्या बीत रही होगी, हम यहाँ कल्पना भी नहीं कर सकते? पर नहीं, आचार्यप्रवर समर्थ, हम भावुकता में बहकर इस प्रकार की बातें करते हैं लेकिन फिर भी सोचता हूँ आचार्यश्री भी तो एक मानव ही हैं, उनका भी हृदय है, हृदय की भावनाएँ हैं, मैं तो शासनदेव से अभ्यर्थना करता हूँ कि आचार्यश्री को, हमको इस आघातको सहने की क्षमता प्रदान करें दिवं-गत आत्मा तो पुनीत थी उसे अनन्त शांति साथ करेंगी।

अन्त में श्री चुनीलालजी गुगलिया ने कहा—भाई महाराज पाथर्डी के एक ऐसे दीप-स्तम्भ थे जिससे पाथर्डी को प्रकाश मिला करता था। आचार्यश्री को उनका बहुत बडा सहारा था, आज वह सहारा टूट गया है, शासनदेव से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को अखण्ड शांति मिले और उनके वियोग का दुःख सहन करने का हममें साहस जागे।

सभा में निम्न प्रकार से शोक प्रस्ताव पास किया गया—

श्रमण संघ के आचार्य प्रवर श्रद्धेय श्री आनन्द-ऋषिजी म. सा. के सुशिष्य परम सेवाभावी सरल स्वभावी पं. मुनिश्री मोतीऋषिजी म. सा. का भोपा-लगंज, भीलवाडा (राजस्थान) में स्वर्गवास हो गया इस समाचार से पाथर्डी श्रावक संघ को कल्पनातीत दुःख हुआ है। पाथर्डी के आबाल-वृद्ध शोक सन्तप्त बन गये हैं। दिवंगत आत्मा आचार्यश्री के प्रधान सेवाभावी शिष्य थे। वे विद्वान् साथ ही कार्यकुशल सन्त थे।आचार्यश्री के लिए उनका बहुत बडा सहारा था। उनकी वजह से आचार्यश्रीजी को काफी निश्चिन्तता रहती थी।

मुनिजी अजमेर सम्मेलन की भावना को साकार होते हुये देख लेते तो बडा अच्छा होता पर विक-राल काल की लीला विचित्र है।

आचार्य भगवन् ! आप सहिष्णुता की मूर्ति हो, समता और शांति के आप स्रोत हो। अतएव धैर्य धारण कीजिएगा आपकी दुःखानुभूति में हमें भी सम्मिलित बनाइएगा। शासनदेव के चरणों में अभ्य-र्थना है-स्वर्गीय आत्मा को चिर-शांति मिले।

प्रेषक—**नयनसुख मोतीलाल गुगले.**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, श्रीरामपुर द्वारा आयोजित शोक सभा

आज तार द्वारा यह समाचार जानकर कि सेवाभावी पं मुनिश्री मोतीऋषिजी म. का देवलोक हो गया। यहाँ के समस्त स्था. जैन समाजको बहुत ही धक्का पहुंचा। सायंकाल एकशोक सभा का आयोजन किया गया एवं मुनि श्री का गुणगान किया।

समाज के लोगों ने अपना कारोबार वन्द रखा था। शोक-सभा में सर्वानुमति से निम्न प्रस्ताव पास हुवा।

'आज की, यह शोकसभा श्री व. स्था. जैन श्रमण संघ के आचार्य श्री १००८ श्रीं आनन्दऋषिजी महाराज श्री के पट्टशिष्य शांतस्वभावी विद्याप्रेमी, धीर, वीर, गंभीर, सुविचारक, मधुर व्याख्याता, पंडित मुनि श्री मोतीऋषिजी महाराज के देवलोक पर हार्दिक शोक प्रगट करती है।"

दिवंगत आत्माने स्थानकवासी जैन धर्म प्रचार प्रसारमें अपनी अप्रतिमबुद्धि व्याखानपटुतासे जो गौरवान्वित किया है उसको भुलाया नहीं जा सकता।

अुनके देवलोकसे स्थानकवासी जैन समाजकी महती क्षति हुअी है। श्रमण संघका अेक सुयोग्य कर्मठ साधु चलबसा।

आज जब कि श्रमण संघीय साधु वृन्द अजमेर में उपस्थित होकर स्थानकवासी जैन धर्म की नींवको सुदृढ बनाने में प्रयत्नशील होने वाले हैं। उस समय ऐसे दीर्घदर्शी अनुभवी सन्त का वियोग वहूतही खटक रहा है।

विशेषतः पूज्य आचार्य श्री जी के ऊपर जो वज्राघात उपस्थित हुवा है वह शब्दों से व्यक्त नहीं कियाजा सकता। आज की सभा उन दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए शासनदेवसे कामना करती है। तथा आचार्यश्री के प्रति हार्दिक समवेदना प्रदर्शित करती है।

प्रेसिडेन्ट

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, श्रीरामपुर.

卐 卐 卐

श्री वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा, पाथर्डी के अध्यक्ष, श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड–पाथर्डी के उपाध्यक्ष, श्रीमान् सेठ चन्द्रभानजी सा. डाकलिया की श्रद्धांजली

आज यह समाचार जानकर कि सेवाभावी पं. मुनिश्री मोतीऋषिजी महाराज का देवलोक हो गया, हृदय को गहरा धक्का लगा। उनके देवलोक से एक सुसंस्कृत सच्चरित साधु की कमी हो गई।

धार्मिक शिक्षण प्रचार–प्रसार में मुनिश्री ने अपने कृतियों से जो जागृति लाई है उसको भुलाया नहीं जा सकता। शासनदेव से प्रार्थना है कि स्वर्गस्थात्मा को शांति प्रदान करें, एवं पूज्य श्री को धैर्यता लावें।

चन्द्रभान रूपचन्द डाकलिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मवीर श्री गोविन्दराव सीताराम वराडे

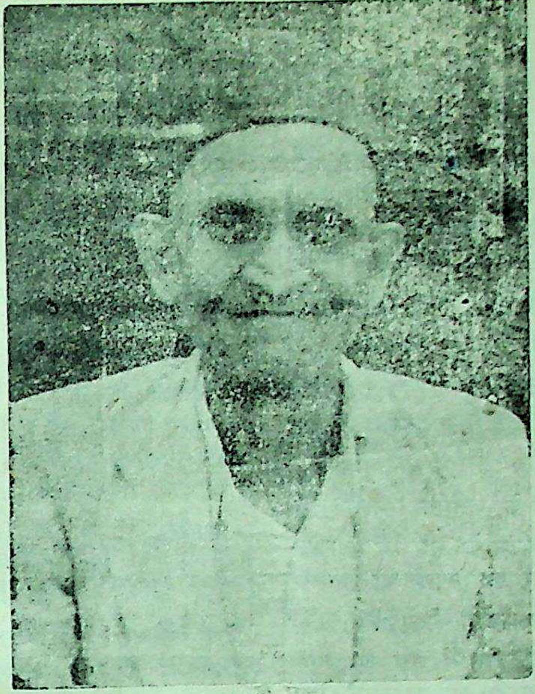

जन्म २२-१२-१८९४ — मृत्यु ११-१-१९६४

आद्य प्रधानाध्यापक एवं व्यवस्थापक, श्री तिलोक जैन विद्यालय पाथर्डी, जि. अहमदनगर

सुप्रसिद्ध वराडे गुरुजी का ता. ११-१-६४ दिन शनिवार को करिबन् ११ बजे पाथर्डी में स्वर्गवास हो गया। गुरुजी के शवयात्रा में पाथर्डी की शोक-सन्तप्त जनता की उपस्थिति से प्रतीत होता था कि जनता ने एक त्यागमय जीवन व्यतीत करनेवाला समाज-सेवक खो दिया है। वास्तव में वराडे गुरुजी का जीवन एक ऐसा जाज्वल्यमान दीपक था जिसने अनेक समाज सेवा करनेवाले दीपकों को प्रज्वलित किया।

गुरुजी का जन्म सन् १८९४ में पाथर्डी में ही विणकर समाज में हुआ था। अजैन होने पर भी गुरुजी ने श्रद्धेय आचार्यश्री आनन्दऋषिजी महाराज सा. से जैन तत्त्व-ज्ञान का अच्छा अध्ययन कर तद्विषयक जानकारी प्राप्त कर ली थी।

सन् १९२३ में जब तिलोक जैन विद्यालय का 'तिलोक पाठशाला, के रूप में श्रीगणेश किया गया था तब गुरुजी ने ही मात्र नौ छात्रों से प्राचीन आचार्य की तरह टाटपट्टी पर बैठकर विद्याध्यापन का कार्य प्रारंभ किया था। उन दिनों गुरुजी निरन्तर पाठशाला की उन्नति के लिये व्यस्त रहा करते थे। उस समय गुरुजी ही अध्यापक, अर्थमन्त्री, चपरासी आदि का सारा कार्यभार संभाला करते थे। विद्यालय का आज का जो भव्य और विशाल रूप निखरा हुआ है उसका अधिकांश श्रेय सन् १९२३ से १९४७ तक अनवरत परिश्रम करनेवाले वराडे गुरुजी को है।

गुरुजी १९४७ के बाद सेवानिवृत्त हो चुके थे लेकिन फिर भी धार्मिक अध्यापन, एवं समय-समय पर योग्य मार्ग-दर्शन द्वारा वे संस्था के विकास में हाथ बटाते रहते थे।

आज हमारे बीच गुरुजी का स्थूल शरीर विद्यमान नहीं है, लेकिन उनके त्यागमय जीवन का आदर्श, उनकी कार्यशीलता, सेवा-परायणता आदि ऐसे गुण हैं जिनके द्वारा वे हमेशा हमारे प्रेरणा के स्रोत बनें रहेंगे।

हम शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि गुरुजी की आत्मा को अखण्ड शान्ति प्राप्त हो।

प्रेषक—एन्. एम्. गुगले (सेक्रेटरी) श्री तिलोक जैन ज्ञान प्रसारक मंडल, पाथर्डी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहार-बंगाल कोलफील्ड जैन सम्मेलन का कार्य विवरण

"ऐसे समय में जब कि विश्वभर में हिंसात्मक तरीकों के विरुद्ध जनमत तैयार हो रहा है, अहिंसा-मूलक जैन समाजपर विशेष दायित्व है। ... जैन समाज धर्म के नामपर नहीं अपितु मानवता के रक्षार्थ अहिंसा के मार्ग को प्रशस्तकर जनमत को जोरदार बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।" ऐसे विचार सुप्रसिद्ध उद्योगपति साहु श्री शांतिप्रसाद जैन ने बिहार-बंगाल कोलफील्ड जैन सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए प्रकट किये।

कोयला क्षेत्र के जैन बंधुओंका यह सम्मेलन गत १४, १५ दिसम्बर १९६३ को कतरासगढ़ में बडे उत्साहवर्द्धक वातावरण के मध्य सम्पन्न हुआ।

साहूजीने अपने सारगर्भित भाषण के अंतर्गत समस्त जैन समाज को एक व्यापक एवं सुदृढ़ सघटन के सूत्र में आवद्ध होने का आव्हान किया और महावीर की वाणी को जीवन और व्यवहार में उतारने की मार्मिक अपील की।

इस क्षेत्र के जैन समाज के इतिहास में यह अभूतपूर्व अवसर था। साधु-संतों के अतिरिक्त जैन शास्त्र और दर्शन के अनेक धुरंधर विद्वान, नेतागण, तथा सामाजिक कार्यकर्ता बडी संख्या में उपस्थित थे।

सम्मेलन के प्रधान अतिथि -- युवक-नेता कुमार श्री चन्द्रसिंह दुधोरिया के भाषण में स्थल-स्थल पर परिवर्तित परिस्थितियों का खासा दिग्दर्शन था। उन्होंने अपने भाषण में प्रारंभ से लेकर अंततक परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल समाजके निर्माण की जोरदार वकालत की।

कुमार दुधोरिया ने कहा कि राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यदि हम दृढता के साथ अग्रसर न हुए, तो हमारी दानशीलता और परोपकारी-वृत्ति का कोई मूल्य न रहेगा।

उन्होंने कहा—'आध्यात्मिक चिंतन और वाणिज्य-व्यवसाय हमारा चरमलक्ष्य रहा है। लेकिन अब हमें यह बात ध्यान में रखकर चलना होगा कि हमारा राष्ट्र प्रजातांत्रिक ढाँचे में ढल रहा है जिसमें उद्योग-वाणिज्य-व्यवसाय के पुराने तरीके शीघ्रता से बदल रहे हैं।"

राजनीतिक क्षेत्र में जैन समाजके नगण्य अवदानों की और ध्यान आकृष्ट करते हुये उन्होंनें कहा "प० बंगाल मंत्री परिषद में हमारे समाज के एक मंत्री (श्री विजयसिंहजी नाहार) अध्यक्ष हैं किन्तु, देशके इस महत्त्वपूर्ण भाग (बिहार-बंगाल) के प्रशासन में हमारे समाज के व्यक्तियों का हाथ नहीं के बराबर हैं। और राजनीति के प्रति हमारे समाज के मतदाताओं की यह विमुखता समाज के हक में और परोक्ष रुप से राष्ट्र के हक में कदापि अच्छी नहीं मानी जा सकती। हमें आज नाहारजी के समान कई व्यक्तियों की आवश्यकता हैं। और राजनीतिक क्षेत्र में सतत जागरुक एवं सक्रिय रहने पर ही यह संभव हो सकता है।

नया नेतृत्व—

कुमार चन्द्रसिंह दुधोरियाने अपने धाराप्रवाह भाषण के अंतर्गत समाज के नये नतृत्व और मार्गदर्शन की जोरदार माँग की। उन्होंने कहा "समाज के प्रति हमारे नेताओं के कर्त्तव्य-पालन का मूल्यांकन इस बात से नहीं होगा, कि हमने कितने मंदिरों का निर्माण कराया, कितने सभा-सम्मेलनों की अध्यक्षता की अथवा कितने सामूहिक भोजोंका आयोजन किया। समाज के प्रति वर्तमान नेताओं के कर्त्तव्य-पालन की खरी कसौटी तो यह होगी कि उन्होंने परिवर्तित परिस्थितियों का सामना करनेके लिये समाजको किस सीमा तक तैयार किया।'

श्री दुधोरियाने सांख्यिक पद्धति द्वारा सामाजिक सर्वेक्षण की ओर भी सम्मेलन का ध्यान आकृष्ट किया।

जमशेदपुर के श्री नरसेराम कामाणी ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए शिक्षा के प्रकाश से समाज को आलोकित करने की आवश्यकता प्रतिपादित की।

स्वागताध्यक्ष श्री विमलप्रसाद जैन ने सम्मेलन की तैयारियों की कमियों की सक्रियता एवं संतों तथा मुनिगणों के स्फूर्तिदायक योगदान पर प्रकाश डाला।

पं० दरबारीलाल ने भेद-अभेद को अपने भाषण का विषय बनाया और प्रतिपादन किया कि धर्म का मुख्य कार्य मानव-जाति में प्रेम और सद्भावना की स्थापना करना है। उन्होंने कहा कि "जो मनुष्य को मनुष्य से पृथक करता है, वह वास्तव में धर्म नहीं है।

भारतीय ज्ञानपीठ के मंत्री श्री लक्ष्मीचन्दजी जैन, मुनि श्री जयंतीलालजी महाराज, तथा डॉ. बूलचंदजी के भी विद्वतापूर्ण भाषण हुए।

जैन समाज के एक प्रकार से विस्मृत अंग सराक भाइयोंका योगदान और उनको समस्याओं के प्रति अभिरुचि सम्मेलन की विशेषता थी। मुनि श्री प्रभाकर विजय ने-जो विगत ३० वर्षों से सराक बंधुओं के बीच कार्य कर रहे हैं-सराक भाइयों की समस्याओं से अवगत कराया।

सम्मेलन में कोयला क्षेत्र के जैन बंधुओं के उत्थान के लिए एक लाख रुपये के एक 'ट्रस्ट' का निर्माण किया गया, जिसके लिए ६८ हजार रुपये मंचपर ही एकत्रित हो गये।

अध्यक्ष श्री शांतिप्रसाद जैन के आग्रह पर कुमार चन्द्रसिंह दुधोरिया के सांख्यिक, पद्धति द्वारा सामाजिक सर्वेक्षण संबंधी योजना की जिम्मेदारी उक्त ट्रस्ट पर सोंपी गयी।

सर्व श्री देवचन्दजी मेहता, चन्दनमलजी जैन और शिखरचन्दजी जैन आदिने सम्मेलन की सफलता के लिए मनोयोगपूर्वक कार्य किया। प्रेषक चन्द्रसिंह दुधोरिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—: आ जी व न स द स्य :—

१ के. चु. भटेवडा	राहू (पूना)	४३ भी. मा. कर्नावट	सिरसमार्ग	८५ चु. भ्र. प्रे. देसरडा	न्हावरा
२ ता. रां. मा. सुन्दराबाईजी	आष्टा	४४ बा. डा. बद्धानी	अमरावती	८६ कां. जा. नाहर	आलेगांव
३ इन्दरबाईजी	,,	४५ मु. भ्र. मो. मुथा	देवळाली	८७ प. ही. कटारिया	वाल्की
४ श्रीमती रा. डागा	भोपाल	४६ प. कि. छाजेड	म्हसे	८८ फू. बा. बाफना	राहुरी
५ जी. ते. ललवानी	श्रीरामपुर	४७ मू. रि. संकलेचा	मजलेगांव	८९ मा. गं चोरडिया	बारी
६ मे. ध. जैन	मगरदा	४८ हां. भ्र. च. शिंगी	अहमदनगर	९० पु. शो. चोरडिया	,,
७ कि. चौधरी	शुजालपुर	४९ चं. ध. वैद	चांदा	९१ रा. ल. भंडारी	सिरमाला
८ गें. इ. जैन ,,	,,	५० सु. सु. कुचेरिया	पाथर्डी	९२ ध. द. संचेती	पूना
९ कं. दी. जैन ,,	,,	५१ वि. शा. संकलेचा	अमरावती	९३ ज. चु. सांड	रहाता
१० सू. न. जैन ,,	,,	५२ न. मु. बोरा	पीपला	९४ ह. न. गांधी	श्रीरामपुर
११ रा. चौ को ,,	,,	५३ चाँ. मू. चंगेडिया	बरोरा	९५ झु. भ्र. ही. भलगट	गुलबर्गा
१२ का. ही. जैन ,,	,,	५४ एक गुप्तदानी सद्गृहस्थ	अ.नगर	९६ ब. चं. गुगले	मलाड
१३ ज. खो. डोशी	इन्दौर	५५ भी. के. ललवानी	मनमाड	९७ र. ही. लूंकड	श्रीरामपुर
१४ इ. सू. चोपडा	भामाठाण	५६ ब. मा. गांधी	पिंपलगाव	९८ कु. न. गांधी	,,
१५ मे. टाटिया	सारंगपुर	५७ प्रे. भ्र. ज. बोरा	,,	९९ मु. लुणावत	धामणगांव
१६ प्रे. जी. वेदमुथा	वर्धा	५८ मो. चु. मुथा	वांबोरी	१०० शांतिलालजी चौधरी	राजगढ़
१७ दे. भि. कांकरिया	राहू	५९ सौ. रू. सू भ्र. झुंवरलालजी ,,		१०१ न. शा. भाई	मलकापुर
१८ श्री. न. पितलिया	सीहोर	६० मू. द. चंगेडिया	सोनई	१०२ ही. ल. मुथा	लक्ष्मेश्वर
१९ के. घी. बाफणा	नागपुर	६१ पू. मो. नाहर	घोडेगांव	१०३ सि. र. भुरा	मिदनी
२० क. ल. राका	शुजालपुर	६२ ने. ब भटेवडा	वांसदा	१०४ चं हि. कुकुलोल	कान्हार
२१ स. व. जैन	शाजापुर	६३ ब. च. सिंगी	देवळाली	१०५ वि. पु. राकेचा	,,
२२ सु. जी. सिंदरसीवाला	,,	६४ श्री. रा. मुथा	,,	१०६ ना. भ्र. रा. गुगले	,,
२३ र. स. मुणोत	वांबोरी	६५ झु. पू. बाफना	श्रीरामपुर	१०७ स. म. रांका	,,
[illegible] चोरड	बोदवड	६६ ने. गु. मुथा	बलांपुर	१०८ फ. ज. गुगलिया	,,
[illegible]	अहमदनगर	६७ चु. पू. तातेड	,,	१०९ मो. झु. रांका	चिंचोली
[illegible]	पाथर्डी	६८ मो. र. हिरन	,,	११० प. का. रांका	,,
		६९ के. मां. संचेती	चिंचवड	१११ हु. च. समदडिया	अमतगांव
		[illegible] ह. सो. मुनोत	निंबारी	११२ भा. झु. गुगले	पाथर्डी
		[illegible] मो. कोठारी	पूना	११३ उ. ह. कातरेला	अमरावती
		[illegible] कांकलिया	पूना	११४ कां. मा. गांधी	मुंबई
		[illegible] खिवसरा	,,	११५ जे. मा. कटारिया	खरवंडी
		[illegible] ओस्तवाल	सांगली	११६ जे. धों. कटारिया	,,
		[illegible] गुळे	वांबोरी	११७ ह. त. गांधी	वाम्बोरी
		[illegible] कोठारी	,,	११८ मो. द. डोशी	अ. नगर
		[illegible] राणा	राहुरी	११९ जी. मे. बोरा	वाम्बोरी
		[illegible] भंडारी	घोडनदी	१२० उ. बा. धाडीवाल	संगमनेर
		[illegible] फगर	घोडनदी	१२१ मो. ला. मुणोत	भिंगार
		[illegible] दिया	,,	१२२ भे. दी. गांधी	लोणावला
		[illegible] री	बेलापुर	१२३ ज. सु. गुजराथी हलवाई	मालेगांव
		[illegible]	रस्तापुर	१२४ मो. ज. ओस्तवाल	वाम्बोरी
		[illegible]	उत्राण	१२५ ने. ध. कटारिया	खरवंडी
		[illegible] ी	केडगांव	१२६ खु. मि. मुणोत	करंजी

४ सात--नय
५ जिन्दगी के हीरे
६ भारतीय दर्शनों की पारस्परि[illegible]
७ कर्त्तव्य.
८ सर्वोच्च छात्रोंकी सूची
९ महावीर जन्म-तिथिपर कामकाज स्थ[illegible]
१० भारत-जैन महामण्डलके अधिवेशनकी
संक्षिप्त रिपोर्ट तथा प्रस्ताव
११ बोल जय महावीर भगवान्
१२ समाचार—संकलन

[illegible]क—पं. बदरीनारायण शुक्ल—पं. शोभाचंद्र भारिल्ल[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२७	श्री. बं. ने. पारख	संगमनेर
१२८	,, ता. रा. चोरडिया म्हा.	पिंपलगांव
१२९	,, पू. को. भंडारी	कडा
१३०	,, चु. गु. मुथा	घाटसिरस
१३१	,, गीगीबाई फिरोदिया	अ. नगर
१३२	,, न. धो. कटारिया	लोणी
१३३	,, ह. अ. चोरडिया	अकोलनेर
१३४	,, सौ. रु. झुं. कटारिया	चांदा
१३५	,, पु. प. मुथा	घाटसिरस
१३६	,, सु. भ्र. ता. डोशी	अ. नगर
१३७	,, मा. ध. बोथरा	खरवंडी
१३८	,, स. मो. लुणावत	जालना
१३९	,, पु. मा. कटारिया	इचलकरंजी
१४०	,, ही. रा. भटेवडा	पूना
१४१	,, ही. क. खाटेड	पूना
१४२	सौ. शांताबाई मो. नाहर	पूना
१४३	श्री. रा. शो. टाटिया	पूना
१४४	,, फू. तु. माल	खडकी
१४५	,, मा. रा. बाफना	वडगांव
१४६	,, ध. ही. बाफना	वडगांव
१४७	,, ह. रा. बाफना	वडगांव
१४८	श्री. आ. स. चोरडिया	खेड
१४९	,, दौ. ध. चोरडिया	पिंपळवंडी
१५०	,, रा. ला. चोरडिया	बोरी बुद्रुक
१५१	,, भा. कुं. गांधी	संगमनेर
१५२	,, चु. र. भंडारी	अश्वी
१५३	,, द. रा. गांधी	प्रवरासंगम
१५४	,, ग. न. चोपडा	खांबा
१५५	,, शो. च. भटेवडा	राजुरी
१५६	,, मि. मो. कोठारी	अहमदनगर
१५७	,, फ. आ. फिरोदिया	साकूर
१५८	,, जा. भि. भंडारी	मंचर
१५९	,, फू. रा. कटारिया	संगमनेर
१६०	,, शां. प्रे. कटारिया	अहमदनगर
१६१	" उ. शं. चोपडा	साकूर
१६२	" च. लू. हिरण	साकरवाडी
१६३	" बं. फ. बाफना	साकूर
१६४	" के. बं. कटारिया	अ. नगर
१६५	,, क. ब्रु. फिरोदिया	साकूर
१६६	,, धा. जे. शाह	यवतमाल
१६७	,, ही. जे. चोरडिया	पूना
१६८	,, ने. चां. शिंगी	घोरपडी
१६९	श्री. रू. मा. नाहर	रांजणगांव
१७०	,, शं. भा. दूगड	अमलनेर
१७१	,, कोट व. स्था. संघ	मुंबई
१७२	,, मोहनलालजी कामती	इन्दौर
१७३	,, भा छ. तुरखिया	इन्दौर
१७४	,, भं. शा. वाकड	इन्दौर
१७५	,, शि. जो. सर्राफ	देवास
१७६	,, र. भु. बजाज	,,
१७७	सौ. सुगनबाई चां. जैन	,,
१७८	,, इ. सांड	बडावदा
१७९	सौ. मां. लसोड	प्रतापगड
१८०	श्री. वि. ल. गेलडा	बोदवड
१८१	,, स्वा. नै. भटेवडा	चाकण
१८२	,, व. स्था. श्रा. संघ	बदनोर
१८३	,, कि. मि. भलगट	भंडारा
१८४	,, कि. भु. भलगट	,,
१८५	,, कि. जं. भलगट	,,
१८६	,, ह. भि. बाफना	पांडुरणा
१८७	,, अ. मो. डांगी	भीलवाड़ा

To

श्रीमान्

मुकाम

पोष्ट

जिला

GURUKUL KANGRI 21-1-54 9.30 AM SAHARANPUR

...न्दजी जैन, मुनि श्री
...दूलचदजी के भी विद्वतापूर्ण

... एक प्रकार से विस्मृत अंग सराक भाइयोंका
...उनको समस्याओं के प्रति अभिरुचि सम्मेलन
...ा थी। मुनि श्री प्रभाकर विजय ने–जो विगत ३०
...राक बंधुओं के बीच कार्य कर रहे हैं–सराक भाइयों
...स्याओं से अवगत कराया।

...लन में कोयला क्षेत्र के जैन बंधुओं के उत्थान के लिए
...ख रुपये के एक 'ट्रस्ट' का निर्माण किया गया, जिसके
...८ हजार रुपये मंचपर ही एकत्रित हो गये।

...ध्यक्ष श्री शांतिप्रसाद जैन के आग्रह पर कुमार चन्द्रसिंह
...रिया के सांख्यिक, पद्धति द्वारा सामाजिक सर्वेक्षण संबंधी
...जना की जिम्मेदारी उक्त ट्रस्ट पर सौंपी गयी।

सर्व श्री देवचन्दजी मेहता, चन्दनमलजी जैन और शिखर-
...न्दजी जैन आदिने सम्मेलन की सफलता के लिए मनोयोग-
...र्वक कार्य किया। प्रेषक चन्द्रसिंह दुधोरिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ अर्हम्

सम्यक् दर्शन · सम्यक् ज्ञान · सम्यक् चारित्र · सम्यक् तप

सुधर्मा

श्री ति. र. स्था. जैन धा. प. बोर्ड, पाथर्डी की मुखपत्रिका

वर्ष ५) अप्रैल १९६४ (अंक ९

★ इस अंक में ★

१	जय बोलो आनन्द पूज्यवर की	श्री अमरमुनिजी म.	१
२	जयपुर मे आचार्यश्रीजी का भव्य स्वागत	पं. विद्याभूषण मणि त्रिपाठी	२
३	अर्धमागधी भाषा के अध्ययन का महत्व	श्री अमृतलाल याज्ञिक	३
४	सात--नय	श्री उदयमुनिजी म. 'शास्त्री'	५
५	जिन्दगी के हीरे	श्री पुष्करमुनिजी म. सा.	९
६	भारतीय दर्शनों की पारस्परिक समानता	पं. बलदेवप्रसादजी उपाध्यय. एम. ए.	१३
७	कर्त्तव्य.	श्री बंशीलालजी भगवानदासजी कोठारी	१६
८	सर्वोच्च छात्रोंकी सूची	परीक्षाधिकारी, पाथर्डी परीक्षाबोर्ड	१८
९	महावीर जन्म-तिथिपर कामकाज स्थगित	श्री कमलसिंह दुधोरिया	१९
१०	भारत-जैन महामण्डलके अधिवेशनकी संक्षिप्त रिपोर्ट तथा प्रस्ताव	श्री रमणलाल सी. शहा	२०
११	बोल जय महावीर भगवान्	पं. बलदेव मिश्र	२४
१२	समाचार–संकलन		२६

...क–पं. बदरीनारायण शुक्ल–पं. शोभाचंद्र भारिल्ल–प्रबन्ध सम्पादक–पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवर्ण नामावली

सदुपदेशक

परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज

संस्थापक–दानवीर शाह केशवजी जवेरचन्द, जामनगरवाले, जालना

आधारस्तम्भ

१ श्री. चन्द्रभानजी रूपचंदजी डाकलिया, श्रीरामपुर (नगर)
२ ,, केशरचंदजी कचरदासजी बोरा आश्वो ,,
३ ,, सूरजमलजी कस्तूरचन्दजी गांधी अहमदनगर
४ ,, माणकचंदजी किसनदासजी मुथा ,,

संरक्षक

१ श्री. तिलोकचंदजी खूबचंदजी गुंदेचा चांदा (नगर)
२ ,, फकीरचंदजी उत्तमचंदजी गुगले चिचोंडी शिराळ ,,
३ ,, माणकचंदजी उत्तमचंदजी गुगळ पाथर्डी ,,
४ श्रीमती शक्करबाई रतनचंदजी सुराणा द्रुग (मध्यप्रदेश)
५ श्री. पन्नालालजी गुलराजजी गांधी मावावाले पूना
६ स्व. श्री.पन्नालालजी गुगले पाथर्डी के स्मारक
७ श्री. मगनीरामजी फकीरचंदजी दुधेडिया श्रीरामपुर
८ सौ. घोंडाबाई भ्र. उत्तमचंदजी संचेती पूना
९ श्री, कुन्दनमलजी कस्तूरचंदजी बोरा ,,
१० नवलमलजी सरदारमलजी पुंगलिया नागपुर
११ भिकमदास पोखरणा चै. ट्रस्ट पूना
१२ श्री. उदयरामजी हरकचन्दजी रैदासणी वीवी

सहायक सदस्य

१ श्री. उत्तमचंदजी कचरदासजी भटेवड़ा राहू (पूना)
२ ,, बंशीलालजी अमोलकचंदजी भटेवड़ा ,, ,,
३ ,, माणकचंदजी भीवराजजी भटेवड़ा ,, ,,
४ सौ. श्रीकुंवरबाई भ्र. मूलचंदजी भटेवड़ा ,, ,,
५ श्री. प्रतापमलजी फूलचंदजी बनवट आष्टा
६ सौ. उमरावबाई भ्र. हस्तमलजी जैन शाजापुर
७ श्री. केशरीमलजी बापूलालजी जैन शुजालपुर
८ ,, रंभाबाई भ्र. गणपतसिंहजी जैन ,,
९ सौ. तेजकुंवरबाई धर्मपत्नी डालचंदजी चौधरी ,,
१० श्री. मोजीलालजी भीमसिंहजी जैन ,,
११ ,, बीजराजजी जुगराजजी संचेती मलकापुर
१२ ,, तेजमलजी भीवराजजी संचेती ,,
१३ श्री. जवरीबाई भ्र. धूलजीभाई शाजापुर
१४ श्री. हिंमतलालजी सा. जैन शाजापुर
१५ ,, कनकमलजी चुन्नीलालजी गांधी चांदा
१६ ,, नारायणदासजी मोहनलालजी मंडलेचा येवला
१७ ,, भागूबाई भ्र. चंदनमलजी गादिया बेलापुर
१८ ,, मगनलाल सुंदरजी शाह अमरावती
१९ ,, हेमकुंवरबाई भ्र. कालीदासजी शाह सातारा
२० ,, मयाशंकर चत्रभुज शाह अमरावती
२१ ,, शान्तिलाल पोपटलाल काठेड अहमदनगर
२२ श्री. कचरदास मोहनलाल लोढा अहमदनगर
२३ ,, गेंदमल राजमल जैन शुजालपुर
२४ श्री. लाभचन्दजी गुलाबचन्दजी चोरडिया हिंगणघाट
२५ ,, कुंदनमलजी लुंकड की सुपुत्री सायरबाईजी बेंगलोर
२६ ,, सिमरतमलजी चुनीलालजी मुथा वांबोरी
२७ " बनराजजी मोतीलालजी कांकरिया पूना
२८ ,, खुशालचंद संपतलाल भूरट घोड़नदी
२९ ,, मोतीलालजी मोहनलालजी सिंगी पूना
३० ,, मिश्रीलालजी हस्तीमलजी दुगड घोड़नदी
३१ ,, कचरदासजी प्रकाशमलजी भलगट अहमदनगर
३२ ,, सुखरामजी प्रेमराजजी मुथा बेलापुर
३३ ,, सौ. शांताबाई बाबूलालजी रैदासनी नशीराबाद
३४ ,, ताराचंदजी भीवराजजी भटेवडा राहू (पूना)
३५ ,, तुलसाबाईजी कोचर हिंगणघाट
३६ ,, जसराज कालाभाई लाठिया मुर्तिजापुर
३७ ,, बापूलाल प्रेमचंद संघवी अकोला
३८ ,, शाह नागजी पानाचंद बारवडा रायपुर
३९ ,, रूपचंदजी गोकुलचंदजी कोठारी कोपरगांव
४० ,, चन्दनमल नन्दरामजी गांधी श्रीरामपुर
४१ ,, दलीचन्द गुलाबचन्दजी पारख नागपुर
४२ ,, उत्तमचन्दजी चुनीलालजी मुथा वाम्बोरी
४३ ,, कचरदास रूपचंदजी कर्नावट इचलकरंजी
४४ ,, हंसराजजी गुलाबचंदजी लुणावत लोणावला
४५ ,, गेंदालालजी मोतीलालजी जैन ट्रस्ट इन्दौर
४६ ,, राजमल नन्दलाल मेहता चै. ट्रस्ट भुसावल
४७ सौ. सुगनबाई चांदमल जैन देवास

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के लिए
प्रकाशक व मुद्रक पं० बदरीनारायण द्वारकाप्रसाद शुक्ल
मुद्रण व प्रसिद्धिस्थल श्री सुधर्मा मुद्रणालय ८३२ जूना कापड बाजार पाथर्डी. जि० (अहमदनगर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की ज्योति जगाने हेतु विविध निबन्ध–प्रबन्ध माला स्वरूप धार्मिक आध्यात्मिक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक मासिक पत्रिका।

सुधर्मा

मूल्य
वार्षिक ६–००
१ अंकका ०–५०
卐
प्रत्येक १५ तारीख को प्रकाशित होगी।

सुष्ठु धर्मः समाख्यातो वीरेण परमार्हता ।
सर्वत्र तत्प्रचाराय सुधर्माख्या सुपत्रिका ॥

वर्ष ५) १५ अप्रैल १९६४ (अंक ९

❀ जय बोलो आनन्द पूज्यवर की ❀

(तर्ज—जय बोलो महावीर स्वामी की······)

जय बोलो आनन्दपूज्यवर की, और उपाध्याय कवि मुनिवर की ॥ टेर ॥
जय संघ–नायक हितकारी की,
जय जन–जीवन सुखकारी की।
जय जैन जगत् के दिनकर की, जय बोलो........ ॥१॥
धन्य दिवस आज शुभ आया है
दर्शन कर मन हर्षाया है।
जनता हर्षी है, जयपुर की, जय बोलो ········ ॥२॥
श्रमण संघ हो अविचल मंगल,
आनन्द की छाया, रहे हो प्रतिपल
मुनि 'अमर' भावना हर नर की, जय बोलो........ ॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थान की राजधानी जयपुर में आचार्य श्री जी का भव्य स्वागत

अजमेर के शिखर सम्मेलन के अवसर पर जो संतो का मिलन हुवा था, उसकी अनुपम छटा यहाँ भी दृष्टिगोचर हुई। श्रमण-संघ के द्वितीय पट्टधर बालब्रह्मचारी परमश्रद्धेय महामहीम आचार्य सम्राट् पं. रत्न पूज्य श्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी म. आदि ठाणे ९ अजमेर से छोटे-छोटे क्षेत्रों को पावन करते हुए दिनाङ्क ४-४-१९६४ को श्रीमान् श्रीचंद जी गोलेछा के बंगले में विराजे। वहाँ से ५-४-६४ रविवार के दिन हजारों की जन संख्या में "भगवान् महावीर स्वामी की जय" "श्रमण-संघ की जय" "आचार्यश्रीजी की जय" आदि गगन-भेदी नारों के साथ लालभवन में प्रवेश किया। साथ में सवतो-मुखी प्रतिभा-संपन्न कवि सम्राट् पं. रत्न उपाध्याय जी श्री १००८ श्री अमरचंद जी म., प्रवर्तक पं. रत्न श्री १००८ श्री शुक्लचंद जी म., शास्त्रज्ञ पं. मुनि श्री फूलचंद जी म. 'श्रमण' आदि ठाणे २४ से एक साथ ही श्रीचंद जी के बंगले से पधारे।

लालभवन में ऊंचे पाट पर आचार्य श्री जी विराजे थे, और आजू-बाजू में कविवर उपाध्यायश्रीजी, प्रवर्तक पं. मुनि श्री शुक्लचन्दजी म. विराज थे। साथ ही उपाध्याय श्री जी के पास प्रवर्तक पं. मुनि श्री हीरालाल जी म. आदि मुनि-मण्डल भी विराजित थे, इस शुभ प्रसंग को देखकर जयपुर की जनता का हृदय खिल उठा। इस शुभ प्रसंग पर पंजाबी मुनि श्री अमर मुनि जी म. ने "जय बोलो आनन्द पूज्यवर की" इस मधुर संगीत से जन मानस को प्रफुल्लित कर दिया। बाद में कविरत्न उपाध्याय श्रीजी ने आचार्यश्रीजी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए श्रमण-संघ की सेवा किस प्रकार से की और उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर किस प्रकार से आरूढ हुए उसका संक्षिप्त रीति से दिग्दर्शन किया। इस अवसर पर पं. मुनि श्री लाभचन्जी म. ने भी सक्षिप्त रीति से वर्णन किया, तत्पश्चात् आचार्य श्री जी ने वर्णन करते हुए कहा कि इस श्रमण-संघ में रत्नों की मणियों की माला के रूप में महान् से महान् अनेक प्रकार की विभूतियाँ हैं। अजमेर में श्रमण संघ का शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुवा है, उसका सब से बडा श्रेय प्रवर्तक पं. मुनि श्री शुक्लचन्द जी म., कविवर उपाध्याय जी, श्री अमरचन्द जी म. तथा योगनिष्ठ संत पं. मुनि श्री फूलचन्दजी म. का है। जिन्होंने उग्र विहार करते हुए शिखर सम्मेलन को सफल बनाने में सतत योगदान प्रदान किया है। जो हमारे श्रमण-संघ से किन्हीं कारणों से पृथक् हो गये हैं, चाहे मेवाड मारवाड, राजस्थान, पंजाब के जो भी संत हो उन्हें वापस मिलाने का प्रयत्न किया जाय। "उसी एकमेव लक्ष्य को सामने रख कर ही अजमेर से विहार करते हुए यहाँ तक मैं पहुँचा हूँ। शारीरिक अनुकूलता से मेरा लक्ष्य पंजाब स्पर्शने का है। तदनंतर सौराष्ट्र के संतों का श्रमण-संघ में मिलन हो ऐसा प्रयत्न करना है। चतुर्विध श्री संघ ने जो भार मुझ पर डाला है—सेवा देने के लिए सुअवसर प्रदान किया है, उस कार्य में तभी सफलता प्राप्त होगी जब कि हार्दिक रूप से चतुर्विध श्री संघ का सहयोग उपलब्ध होगा।

प्रेषक—पं. **विद्याभूषण मणि त्रिपाठी**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

★ अर्धमागधी भाषा के अध्ययन का महत्त्व ★

लेखक--अमृतलाल याज्ञिक

("जैन जगत्" से साभार)

श्री हरिभाऊ वेलणकर देश के संस्कृत भाषा के प्रखर विद्वानों में से एक हैं। हाल में शासन ने उनको विद्वत्ता का सम्मान किया और उन्हें राष्ट्रीय प्राध्यापक (नॅशनल स्कॉलर) का सम्माननीय पद प्रदान किया। आजकल वे बम्बई विश्वविद्यालय में संस्कृत के मुख्य अध्यापक की हैसियत से कार्य कर रहे हैं। प्रकाशित जैन ग्रंथ साहित्य की सूची के रूपमें ग्रंथ तैयार कर उन्होंने प्रकाशित करवाया है। इस ढंग का यह एक मात्र ग्रंथ अध्ययन-व्यवसायियों के लिये आज उपलब्ध है। हम एक बार भाषा-साहित्य की चर्चा कर रहे थे उस समय उन्होंने मुझ से कहा था कि "तुम्हारे जैनी लोग धार्मिक मकान आदि बनाने में तो काफी खर्च करते हैं, धर्म के लिए खर्च करने में उन्हें कभी धन की कमी महसूस नहीं होती। परन्तु जिस भाषा में जैन धर्म का आविष्कार हुआ उस अर्धमागधी भाषा के अध्ययन की कोई ठीक से व्यवस्था नहीं है। यह बात किसी को नहीं सूझती?" मैं गुजराती हूँ और जैन लोग मुख्य रूप से गुजरात में रहते हैं, इस लिए "तुम्हारे जैन लोग" ऐसा कहा था, वह स्पष्ट है। जरा स्पष्टता के लिये मैं बोला, "क्यों, अर्धमागधी भाषा स्कूल और कॉलेजों में तो सिखाई जाती है न? इस संबंध में अनेकों ग्रंथ भी प्रकाशित होते रहते हैं।"

वे हँसकर बोले, "बम्बई विश्वविद्यालय में संस्कृत, पाली, अर्धमागधी भाषा का अध्यक्ष हूँ, इससे इस संबंध में मैं पढता रहता हूँ। जैन भंडारों में बहुत साहित्य हैं और यहाँ-वहाँ भी कई हस्त-लिखित प्रतियाँ बिखरी पडी हैं। परन्तु उनका व्यवस्थित अध्ययन करने का विचार कभी किसीने किया है? बौद्ध साहित्य के लिए पाली के अध्ययन की जो व्यवस्था दिखाई देती है, क्या वैसी अर्धमागधी के लिए है? पाली भाषा के ग्रंथों की अपेक्षा जैन ग्रंथों की संख्या काफी बडी होने के बावजूद उसका महत्त्व किसीने नहीं जाना है। जैन ग्रंथों की सूची तैयार करने में मैंने वर्षों बिताये हैं, और मैं उनका महत्त्व जानता हूँ। अर्धमागधी का सच्चा अभ्यास करना हो तो उस भाषा के अध्ययन की समुचित व्यवस्था बम्बई या गुजरात विश्वविद्यालय में होनी चाहिये तो ही व्यवस्थित रूप से साहित्य का अध्ययन व प्रकाशन कार्य हो सकता है। और भारत के ही नहीं, अपितु बाहरी विद्वानों को भी योग्य सामग्री उपलब्ध हो सकती है। बंबई में इतने उद्योगपति हैं, पर किसी को यह बात सूझती ही नहीं। इसका मुझे गहरा दुःख है। तुम्हारे जैसे भी किसीसे इसका निर्देश नहीं करते, यह ठीक नहीं है। पाश्चात्य विद्वानों ने इस संबंध में बहुत उत्तम कार्य किया है। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण का संपादन कार्य १८९४ के आसपास जर्मन विद्वान् मिथले ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मन भाषा में प्रकाशित किया था। उसके बाद ही हमारे देश में उसकी प्रतिष्ठा हुई। उसके बाद सन् १९०० में हेमचन्द्र व्याकरण के आधार पर उन्होंने बृहत् प्राकृत व्याकरण लिखा। कोई धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक संबंध न होने पर भी इस व्याकरण को प्रकाशित किया, धनराशि खर्च की और हमारी गुणवत्ता प्रकाश में लायी गई। और हमारा यह समाज, साधन-सम्पन्न होने पर भी इस बारे में निष्क्रिय है, यह दुःखद घटना है। आप लोगों में दृष्टि नहीं है। अमूल्य ग्रंथ-भंडार होने पर भी व्यवस्थित अध्ययन के लिए कहीं कोई संस्था नहीं है। इस दिशा में कोई विचार नहीं करता!"

इस संवाद-द्वारा मेरी समझमें आया कि आज इस बातकी आवश्यकता है कि जिस भाषामें जैन धर्म आविष्कृत हुआ उसके अध्ययन की कितनी आवश्यकता है। इस चर्चा ने मुझे चिंतन के लिये विवश करदिया। प्रा. वेलणकर की बात सच थी। जैन समाज संख्या की दृष्टि से छोटा होने पर भी परम्परा, गौरव और सामर्थ्य की दृष्टि से जैन भारत के अन्य समाजों के समकक्ष रहा है। ऐतिहासिक दृष्टिसे जैन धर्म और साहित्य ने अत्यन्त गौरवपूर्ण काल व्यतीत किया है जैन धर्म का अतीत अत्यन्त उज्ज्वल था जीवनके समस्त क्षेत्रों में, कला साहित्य धर्म, दर्शन, विद्या आदि समस्त क्षेत्रों में जैनधर्मका महत्त्वपूर्ण योगदान है। अर्धमागधी, हिन्दी, गुजराती, प्राकृत, संस्कृत, तामिल, कन्नड, मारवाडी इत्यादि भाषाओं में जैन साहित्य का सृजन हुआ। परंतु अध्ययन के लिये योग्य संस्था के अभावमें अमूल्य विरासत विना उपयोग की और विना अध्ययन की पडी हुई है। साधुओं और श्रावकों की अविरत साहित्य उपासना के फलस्वरूप लाखों हस्तलिखित प्रतियाँ सैकडों जैन भंडारोंमें संगृहीत हैं। इस अमूल्य विरासत का हम उपयोग नहीं कर पायें यह दुखःद है। केवल अंधश्रद्धा से की हुई पूजा से क्या लाभ?

आज के समाज में इस गौरवपूर्ण विरासत की रक्षा और अध्ययन के लिए, नगण्य से प्रयत्न हुए हैं। जैन ग्रन्थों से प्राप्त होने वाली ऐतिहासिक जानकारी भारतीय इतिहास के लिए अमूल्य साधन-सामग्री प्रस्तुत कर सकती है। यह बात हर इतिहासविद् जानता है। इतना ही नहीं, अर्धमागधी भाषा अर्वाचीन भारतीय भाषाओं के इतिहास के लिए बहुत अधिक सामग्री प्रदान कर सकती है, गुजराती भाषा का सम्पूर्ण इतिहास ही जैन ग्रन्थों द्वारा ही शक्य बना है, यह बात इस विषय के अभ्यासी अच्छी तरह से जानते हैं। जैन धर्म के चिंतन के मर्म को समझने के लिए भी जैन आगम ग्रन्थ, उनकी टीकाएँ, प्रकरणग्रन्थ वगैरह के मूल रूप व अर्वाचीन भाषाओं के अनुवादों के प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता है। इसी से इसकी जीवित परम्परा की सुरक्षा हो सकती है और हमारे सांस्कृतिक जीवन को जो पोषण दिया जा रहा है, उसका सदुपयोग होगा।

यदि अर्धमागधी भाषा और इसमें निर्मित जैन संस्कृति और जैन विचार पद्धति और भावनापर व्यवस्थित अध्ययन करना हो तो इस सम्बन्ध में बहुत बडी मात्रा में प्रयास करने की आवश्यकता है।

युनिवर्सिटी-कक्षाओं में जहां जहां उच्च अध्ययन की व्यवस्था रहती है वहां दो या तीन विद्वान उस अभ्यास की उपासना कर उसका प्रकाशन करते रहते हैं। उसी प्रकार बम्बई या गुजरात

(शेष पृष्ठ २५ पर।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात-नय

लेखक--'प्रिय-सुशिष्य' श्री उदयमुनिजी म० शास्त्री

चौदह राजू प्रमाण और षट्-द्रव्य-संयुक्त इस अखिल लोक में जितने भी पदार्थ हैं, तत्त्व हैं, अथवा द्रव्य हैं, वे सभी दो प्रकार का स्वरूप रखते हैं, जो कि द्रव्य रूप और पर्याय रूप होते हैं। द्रव्य स्वरूप का अपर नाम ध्रौव्य स्वरूप भी है, जो कि तीनों कालों में अखण्ड परिपूर्ण और सत्तारूप होता है, एवं द्वितीय स्वरूप (पर्याय) कालके प्रत्येक क्षण में यहाँ तक कि अत्यन्त सूक्ष्मतम तथा लघुतम रूपवाले कालाणु "समय" में भी नाशरूप होता हुआ तथा उत्पत्तिरूप की दशा में अपनी सत्ता बदलता हुआ, अपना अस्तित्व कायम रखता है। इस प्रकार जब पदार्थ की अवस्थाएँ हैं, तो इन दोनों अवस्थाओं को जाननेवाले ज्ञान-गुण के भी दो रूप हो जाते हैं वे "प्रमाण और नय" कहलाते हैं। द्रव्य-सत्ता को अखण्ड रूप से जाननेवाला ज्ञान-गुण प्रमाण कहलाता है। और प्रत्येक द्रव्य में प्रत्येक समय में उत्पन्न होने-वाली पर्याय अवस्था को अंशरूप से जाननेवाला ज्ञान गुण नय कहलाता है। जैसा कि ठाणांगजी सूत्र प्रथम ठाणा की टीका में नवांगीटीकाकार श्री अभय-देवसूरि लिखते हैं कि--

नयः-नीयतेऽनेनास्मिन्नस्मादिति वा नयः,
अनन्त धर्मात्मकस्य वस्तुन एकांश-परिच्छेदः।

अर्थ-अनन्त धर्मवाली वस्तु का एक अंशरूप ज्ञान जिसके द्वारा होता है, वह ज्ञान-अंश ही नय कह-लाता है।

उपरोक्त सिद्धान्तानुसार प्रत्येक-प्रत्येक पदार्थ की पर्यायें अनन्त-अनन्त होती हैं, तद्नुसार इन पर्यायों को जाननेवाले नयों की संख्या भी अनन्त-अनन्त ही होती हैं। जैसा कि ठाणांगजी सूत्र के इसी ठाणे में कहा गया है कि—

अणंतागमा-अणंता पज्जवा—अर्थात् प्रत्येक पदार्थ की पर्यायें अनन्त होती हैं, इसलिए ज्ञान की कोटियाँ भी अनन्त ही होती हैं। इसी बात को और भी अधिक स्पष्ट रूप से बतलाते हुए ठाणांगजी सूत्र के सातवें ठाणे में टीकाकार कहते हैं कि--

जावइया वयणपहा, तावइया चेव हुंति नयवाया।
जावइया नयवाया, तावइया चेव पर-समया॥

अर्थ--जितने ही कहने के ढंग हैं अथवा सम-झाने के तरीके हैं उतने ही नयों के भेद भी हो सकते हैं, तथा जितने नयों के भेद हैं उतने ही विश्व में व्याप्त धर्मों के भेद हो सकते हैं। संक्षिप्त भाव यह है कि-जितने वचन के भेद अथवा वाणी के भेद हो सकते हैं उतने ही भेद नयों के भी होते हैं। जितने पर्याय-भेद हैं उतने ही नय के भेद भी जानो। इस प्रकार उपरोक्त वर्णित नय भेदों की अनन्तता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने पर भी जैन-ग्रन्थकारों ने उन सभी नय-भेदों का समावेश मुख्यतः सात नयों में ही कर दिया है। उनके नाम श्री ठाणांगजी सूत्र के सातवें ठाणे में इस प्रकार दिये गये हैं--

सत्त मूलनया पण्णता, तंजहा-नेगमे संगहे ववहारे उज्जुसुत्ते सद्दे समभिरूढे एवंभूते।

अर्थ-सात मूल नय कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं-- (१) नैगम (२) संग्रह (३) व्यवहार (४) ऋजुसूत्र (५) शब्द (६) समभिरूढ और (७) एवंभूतनय।

जिस समय में नयरूप ज्ञान पदार्थ की पर्याय को विषय करता हुआ अपेक्षारूप धर्म को स्वीकार करता है तो वह नय सम्यक्-नय है, अन्यथा अपेक्षा से रहित होता हुआ पदार्थ-पर्याय को ही सम्पूर्ण पदार्थ मान लेता है तो वह नय सम्यक् नय नहीं होकर मिथ्या नय हो जाता है। इस मिथ्या नय का ही अपर नाम नयाभास भी है। यों सातों प्रकार के सम्यक्-नय भी होते हैं तथा सातों ही प्रकार के नयाभास भी होते हैं। अब इन सातों नयों तथा नयाभासों का संक्षिप्त स्वरूप क्रमशः उदाहरण-पूर्वक इस प्रकार है--

(१) जो नयात्मक विचार पदार्थ में रहे हुए सामान्य धर्म और विशेष धर्म, दोनों को ही अपना विषय बनाता है और पदार्थ को किसी एक धर्मवाला ही नहीं मानता है, वह नय ही नैगम नय है। जैसा कि किसी एक कवि ने कहा है कि--

नैगमो मन्यते वस्तु तदेतदुभयात्मकम्।
निर्विशेषं न सामान्यं विशेषोऽपि न तद्विना॥

अर्थ-नैगम नय प्रत्येक वस्तु को ऐसा ही मानता है कि वह सामान्य विशेष रूप होती हुई उभयात्मक ही है। क्यों कि न तो विशेष-रहित सामान्य ही पाया जाता है और न सामान्य रहित विशेष की कहीं पर भी उपलब्धि देखी जाती है। जैसे आत्मा-सत्स्वरूप ही होती हुई चैतन्यरूप होती है। यहाँ पर चैतन्य धर्म को तो मुख्यता प्रदान की गई है और सत् धर्म को गौणता प्रदान की गई है, यही नैगम नय है।

जिस समय में धर्म और धर्मी की सर्वथा पृथक्-पृथक् रूप से कल्पना कर ली जाती है, तब वह विचार नैगमाभास कहलाता है, जैसे कि नैयायिक और वैशेषिक दर्शनों की मान्यता है। इनकी मान्यता नैगम-नयाभास के अन्तर्गत मानी जाती है।

(२) पदार्थों में रहे हुए सामान्य धर्म के आधार पर शेष रहे हुए विशेष धर्मों का विचार नहीं करते हुए पदार्थ को सामान्य रूप से मानना संग्रह नय है, जैसा कि प्रमाण-नय तत्त्वालोकालंकार में भी कहा गया है कि--

सामान्य-मात्र-ग्राही परामर्शः संग्रहः।
(अध्याय ७ सूत्र १३)

अर्थ-सामान्य मात्र को ग्रहण करनेवाला विचार ही संग्रह नय है। जैसे विश्व एक है और सत्रूप है। यहाँ पर विश्व में रहे हुये अवान्तर धर्मों की चर्चा नहीं करते हुए केवल उसके सामान्य धर्म 'सत्' की ही चर्चा की गई है, यही संग्रह नय की परम्परा है। जब यही विचार केवल सामान्य का ही पोषण करता हुआ शेष सभी विशेष धर्मोंका निषेध करने लग जाय तो ऐसे समय में यह विचार संग्रह नयाभास हो जायगा। जैसा कि अद्वैत-वाद दर्शन और सांख्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन है। ये दोनों दर्शन सामान्य धर्मको स्वीकार करते हैं विशेष धर्मोंका निषेध करते हैं अतएव इन्हें संग्रह नयाभास के अन्तर्गत मानना चाहिये।

(३) जिस विचार-विशेषसे संग्रह-नय द्वारा जाने हुए पदार्थों का विधिपूर्वक भेद किया जाता है और विस्ताररूपसे जो लौकिक दृष्टि का भी ध्यान रखता है, वह व्यवहार नय है। यह नय विशेष पर ज्यादा ध्यान देता है और सामान्यपर अपना आधार नहीं रखता है, वह या तो द्रव्यरूप होता है या पर्याय रूप। दूसरा उदाहरण :- जीवके दो भेद हैं (१) संसारी और (२) मुक्त। यों विधि-पूर्वव पदार्थों के भेद करना व्यवहार.नय का काम है।

किन्तु जब कल्पितरूपसे अथवा असत्य रूपसे द्रव्योंके अथवा पर्यायोंके भेद किये जाते हैं, तो ऐसा विचार व्यवहार-नयाभास है। जैसे कि.- चार्वाक दर्शन; यह दर्शन प्रमाण-सिद्ध जीव तत्त्वका निषेध करता हुआ कल्पित रूपसे भूतचतुष्टय को ही मान्यता देता है, अतः उसका ऐसा विचार व्यवहार नयाभास ही है।

(४) पदार्थ में रही हुई भूत-भविष्यत्कालीन पर्यायों का विचार नहीं करते हुए केवल वर्तमान कालीन पर्याय का ही विचार करने वाला नय ऋजु-सूत्र नय है। जैसा कि द्रव्यानुयोग-तर्कणा नामक ग्रन्थ में भी कहा गया है कि:—

स्वानुकूलं वर्त्तमानं ऋजुसूत्रो हि भाषते।

अर्थः- अपने अनुकूल और केवल वर्तमान. कालसे सम्बन्धित पर्याय रूप विषय को ही ऋजु-सूत्र नय जानता है। जैसे हम सुखी हैं। यह कथन वर्तमान-कालकी दृष्टि से ही उचित है। भूत भविष्यत् काल की सुख-दुःख की विचारणा इस में नहीं है ऐसी विचार धारा ऋजु-सूत्र नय की जाननी चाहिये।

जब केवल वर्तमान पर्याय को विषय करते हुए भूतकालीन तथा भविष्यत्कालीन पर्यायों का सर्वथा ही निषेध कर दिया जाय तो ऐसी विचारणा ऋजु-सूत्र नयाभास है। जैसे कि बौद्ध-दर्शन। यह बौद्ध-दर्शन पदार्थों का स्वरूप क्षण-क्षयी मानता है और पर्यायों की स्थिति सर्वथा ही निरन्वय-नाश रूप मानता है, अतएव ऐसी मान्यता ऋजु-सूत्र नयाभासकी कोटि में चली जाती है।

(५) जो नय "काल कारक लिंग संख्या पुरुष वचन उपसर्ग" आदि व्याकरण गत भेदों के आधारसे एक ही पदार्थ में भेदरूप कल्पना करता है, वह शब्द नय कहलाता है। जैसे मेरु पर्वत था; है, और रहेगा। यों काल.भेदसे पर्वतरूप पदार्थ को "एक" नहीं मानकर "तीन" मानना शब्द नय का कार्य है।

जब व्याकरणगत भेद के कारण से एक ही पदार्थ को सर्वथा नाना पदार्थ रूप से मान लिया जाय, अथवा उसको सर्वथा पृथक्-पृथक् ही मान लिया जाय, तो ऐसा नय शब्द—नयाभास समझा जायगा। जैसे उपरोक्त उदाहरण में कहा गया— मेरु पर्वत एक पर्वतरूप नहीं है, परन्तु वे तीन पर्वत हैं और पृथक्-पृथक् रूप से ही रहे हुए हैं, ऐसी मान्यता शब्द नयाभास है।

(६) एक ही पदार्थ के विविध पर्यायों के आधार से पर्याय-सम्बन्धी व्युत्पत्ति को लेकर उस एक पदार्थ को ही विविध पदार्थ रूप से माननेवाला नय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समभिरूढ नय है। जैसा कि महान् तार्किक ग्रन्थ "श्लोक-वार्तिक" में भी कहा गया है कि--

पर्यायशब्द-भेदेन, भिन्नार्थस्याधिरोहणात्।
नयः समभिरूढः स्यात्, पूर्ववच्चास्य निश्चयः॥

अर्थ--जहाँ शब्द का भेद है, वहाँ पर अर्थ का भेद अवश्य है। ऐसी प्ररूपणा करनेवाला समभिरूढ नय है। इस नय की दृष्टि में तो प्रत्येक शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न होता है, इसलिए पदार्थ भी भिन्न-भिन्न ही हैं। जैसे इन्द्र, शक्र, पुरन्दर आदि शब्द के वाच्य वस्तु अलग-अलग ही हैं, क्योंकि वाचक शब्द अलग-अलग हैं। किन्तु जब यह नय उक्त शब्द-भेद से एक ही वस्तु को सर्वथा अनेक रूप ही मानने लग जाय तो ऐसी अवस्था में उक्त नय समभिरूढ--नयाभास हो जाता है। जैसे घट, पट, कट आदि शब्द भिन्न-भिन्न पदार्थों के वाचक हैं; वैसे ही इन्द्र, शक्र और पुरन्दर शब्द भी एक वस्तु--वाचक नहीं होकर अनेक वस्तु-वाचक ही हैं; यह धारणा ही समभिरूढाभास है।

जिस समय पदार्थ में अपनी व्युत्पत्ति के अनुसार ही अर्थ--क्रिया होती हुई पाई जाय तो उस समय में उस पदार्थ को उस वाचक शब्द से बोला जाय, अन्यथा नहीं, ऐसी धारणा एवंभूत नय की है। जैसे अध्ययन कराता हुआ व्यक्ति ही अध्यापक है यदि वे अन्य कार्य करते हैं तो अध्यापक नहीं हैं। व्यापार करता हो तो व्यापारी, अन्यथा व्यापारी नहीं। इस प्रकार की मान्यता एवंभूत नय की है। जब व्युत्पत्ति--सिद्ध अर्थ से युक्त पदार्थ हो तो उस शब्द से उस पदार्थ को कहना, यही तात्पर्य एवंभूत नय का है।

किन्तु जब अर्थ--क्रिया के अभाव में पदार्थ को पदार्थत्व रूपसे नहीं माना जायगा तो ऐसे समय में वह नय एवंभूत नयाभास कहा जायगा, क्यों कि ऐसी मान्यता तो पदार्थत्व का सर्वथा निषेध करने वाली ही होती है। अतएव यह मिथ्या है।

इस प्रकार नयका संक्षिप्त स्वरूप जानना चाहिए।

प्रकाशित हो गई, शीघ्र मंगावें !

प्राकृत-व्याकरण का सर्वाधिक मान्य ग्रन्थ हिन्दी विस्तृत व्याख्या के साथ प्रकाशित हो गया है। यह मूलकृति आचार्य हेमचन्द्र--कृत है और इसी पर विस्तृत व्याख्या उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी म. सा. ने लिखी है। बिना अध्यापक की सहायता के ही प्राकृत-व्याकरण का परिपूर्ण बोध करा देने वाली यह अपूर्वकृति अब हिन्दी में सुलभ हो गई है। इस ग्रन्थ में मूल-सूत्र, संस्कृत-टीका, हिन्दी व्याख्या तथा शब्द--साधनिका के होने से अब पढ़ने में परिपूर्ण सरलता हो गई है। शब्द--कोष देने से ग्रन्थ की विशिष्टता कई गुनी अधिक बढ़ गई है। प्रत्येक साधु-साध्वी के लिए तथा प्राकृत-भाषा-प्रेमी के लिए यह अवश्य पठनीय है। बडी साईज के छः सौ पृष्ठों में खुलासावार हिन्दी व्याख्या लिखी गई है, सजिल्द और जेकेट में पुस्तक सुशोभित है। प्रथम भाग अर्धमूल्य छः रुपये में ही ज्ञान-प्रसार हेतु पुस्तक विक्रयार्थ तैयार है। डाक-व्यय अलग।

पता--**श्री दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ठि.--मेवाड़ी बाजार, पो.--ब्यावर अजमेर राजस्थान**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्दगी के हीरे

(धर्म मार्ग का अनुसरण करने वाले गृहस्थ के लिए आदरणीय ३५ प्राथमिक धर्म नियम)

(पंडितवर्य मुनि श्री पुष्कर मुनिजी म. सा.)

पात्रता :

नीति और धर्म का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि साधारणतया दोनों का पृथक्करण करना भी कठिन हो जाता है। वास्तव में नीति धर्म की नींव है। इमारत की मजबूती नींव की दृढ़ता पर निर्भर है। इसी प्रकार धार्मिकता का प्रधान आधार नैतिकता है। जिस मनुष्य के जीवन में नैतिकता का कोई मूल्य नहीं है, उसमें धार्मिकता का अंकुर पनप नहीं सकता। अतएव अनिवार्य है कि धर्म की प्रतिष्ठा से पहले जीवन में नीति की प्रतिष्ठा की जाय।

मार्गानुसारी के गुण

जैनसाहित्य में जीवन को नीतिमय बनाने के लिए आवश्यक कतिपय विषयों का उल्लेख किया गया है, जिन्हें 'मार्गानुसारीके गुण" कहते हैं। धर्ममार्ग का अनुसरण करने वाले गृहस्थ को ये गुण अवश्य प्राप्त करने चाहिए। इनके अभाव में धार्मिकता, प्रदर्शन और उपहास की वस्तु बन जाती है। वे गुण इस प्रकार हैं--

पहली बात- गृहस्थ न्याय-नीति से ही धनोपार्जन करे। मित्रद्रोह, स्वामीद्रोह, राजद्रोह रिस्वत, ब्लैक मार्केटिंग, चोरी, डकैती आदि अनैतिक साधनों को अपनाना धर्मिकता का गला घोटना है। इससे समाज में अव्यवस्था, उच्छृंखलता और अशान्ति उत्पन्न होती है व्यक्ति का जीवन भी निन्दनीय और अशान्त बन जाता है।

दूसरी बात—समाज में जो ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध शिष्ट जन हैं उनका यथोचित सम्मान करना उनसे शिक्षा ग्रहण करना, और उनके आचार की प्रशंसा करना।

तीसरी बात–समान कुल और आचार-विचारवाले, स्वधर्मी किन्तु भिन्न गोत्रोत्पन्न जनों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध करना।

चौथी बात-चोरी, पर-स्त्री-गमन, असत्य भाषण आदि पापकर्मो का ऐहिक-पारलौकिक कटुक विपाक जानकर पापाचार का त्याग करना।

पाँचवीं बात-अपने देश के कल्याणकारी आचार-विचार का और संस्कृति का पालन-संरक्षण करना और विदेशी व्यवहार की नकल न करना।

छठी बात—दूसरे की निन्दा न करना।

सातवीं बात-ऐसे मकान में निवास करना जो अधिक खुला और अधिक गुप्त न हो, जो सुरक्षा वाला भी हो और जिसमें अव्याहत वायु एवं प्रकाश आ सके।

आठवीं बात-सदाचारी जनों की संगति करना।

नौवीं बात-माता-पिता का सम्मान-सत्कार करना, उन्हें सब प्रकार से सन्तुष्ट रखना।

दसवीं बात-जहाँ स्वचक्र या परचक्रका भय हो, वातावरण शान्तिप्रद न हो, जहाँ रहने से निराकुलता के साथ जीवन-यापन करना कठिन हो, ऐसे ग्राम या नगर में निवास न करना।

ग्यारहवीं बात-देश जाति एवं कुल से विरुद्ध कार्य न करना, जैसे मदिरापान आदि।

बारहवीं बात-देश और काल के अनुसार वस्त्राभूषण धारण करना।

तेरहवीं बात-आय से अधिक व्यय न करना और अयोग्य क्षेत्र में व्यय न करना।

चौदहवीं बात-धर्मश्रवण की इच्छा रखना, अवसर मिलने पर श्रवण करना, शास्त्रों का अध्ययन करना, उन्हें स्मृति में रखना, जिज्ञासा से प्रेरित होकर शास्त्रचर्चा करना, विरुद्ध अर्थ से बचना, वस्तुस्वरूप का परिज्ञान करना और तत्त्वज्ञ बनना बुद्धि के इन आठ गुणों को प्राप्त करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्द्रहवीं बात-धर्मश्रवण करके जीवन को उत्तरोत्तर उच्च और पवित्र बनाना।

सोलहवीं बात-अजीर्ण होने पर भोजन न करना, यह स्वास्थ्यरक्षा का मूल मंत्र है।

सत्रहवीं बात-समय पर प्रमाणोपेत भोजन करना, स्वाद के वशीभूत हो अधिक न खाना।

अठारहवीं बात- धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ का इस प्रकार सेवन करना कि जिससे किसी में बाधा उत्पन्न न हो। धनोपार्जन बिना गृहस्थाश्रम चल नहीं सकता और गृहस्थ काम, पुरुषार्थ का भी सर्वथा त्यागी नहीं हो सकता, तथापि धर्म को बाधा पहुँचा कर अर्थ,काम का सेवन न करना चाहिए।

उन्नीसवीं बात-अतिथि, साधु और दीन जनों का यथा-योग्य आदर करना।

बीसवीं बात-असत् के लिए आग्रहशील न होना।

इक्कीसवीं बात-सौजन्य, औदार्य, दाक्षिण्य आदि गुणों के प्रति पक्षपात होना और इन गुणों को प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील होना।

बाईसवीं बात-अयोग्य देश और अयोग्य काल में गमन न करना।

तेईसवीं बात-देश, काल, वातावरण और स्वकीय सामर्थ्य का विचार करके ही कोई कार्य प्रारम्भ करना।

चौबीसवीं बात —आचारवृद्ध और ज्ञानवृद्ध पुरुषों को अपने घर आमन्त्रित करना, आदरपूर्वक बिठलाना, सम्मानित करना और उनकी यथोचित सेवा करना।

पच्चीसवीं बात-माता, पिता, पत्नी, पुत्र आदि आश्रितों का यथायोग्य भरण-पोषण करना, उनके विकास में सहायक बनना।

छब्बीसवीं बात—दीर्घदर्शी होना। किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व ही उसके गुणावगुण पर विचार कर लेना।

सत्ताईसवीं बात-विवेकशील होना। जिसे हित-अहित, कृत्य-अकृत्य का विवेक नहीं होता, उस पशु के समान पुरुष को अन्त में पश्चात्ताप करना पड़ता है।

अट्ठाईसवीं बात-गृहस्थ को कृतज्ञ होना चाहिए। उपकारी के उपकार को विस्मरण कर देना योग्य नहीं।

उनतीसवीं बात-अहंकार से बचकर विनम्र होना चाहिए। विनयवान् पुरुष सर्वत्र प्रशंसा पाता है और आदृत होता है।

तीसवीं बात-लज्जाशील होना चाहिए। लज्जाशीलता से मनुष्य बहुत से दुर्गुणों और पापों से बच जाता है।

इकतीसवीं बात-करुणाशील होना चाहिए। करुणा सम्यक्त्व का अंग है, धर्म का मूल है।

बत्तीसवीं बात-सौम्य होना चाहिए।

तैंतीसवीं बात-यथाशक्ति परोपकार करना चाहिये।

चौंतीसवीं बात-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य, इन आन्तरिक रिपुओं से बचना चाहिए।

पैंतीसवीं बात-इन्द्रियों को उच्छृङ्खल न होने देना चाहिए। इन्द्रियविजेता गृहस्थ ही धर्म का आराधन करने की पात्रता प्राप्त करता है।

गृहस्थ के जीवन में इन सद्गुणों की प्रतिष्ठा होगी तो उसमें धार्मिकता के अंकुर अनायास ही पनप उठेंगे। ये गुण गृहस्थधर्म की पात्रता की प्राप्ति के साधन हैं।

दुर्व्यसन।

इन उल्लिखित गुणों के साथ, गृहस्थ जीवन को धारण करने से पूर्व, कुछ और बुराइयों से भी बचना आवश्यक है। वे बुराइयाँ इतनी भयंकर हैं कि उनके रहते धार्मिकता तो क्या, भद्रता भी जीवन में नहीं आ सकती। जैनधर्म में उन्हें 'दुर्व्यसन' की संज्ञा प्रदान की गई है और वे मुख्य रूप से सात हैं-

द्युत: जुआ

जुआ खेलने की कुटेव से, कौन-से पापों का प्रवेश हो नहीं जाता? जुआरी सर्वत्र निन्दनीय और अविश्वस्त गिना जाता है। इसका फल कभी-कभी अत्यन्त कटुक होता है और वह समस्त जीवन को नष्ट-भ्रष्ट बना देता है। धर्मराज की गौरवार्ह पदवी से विभूषित युधिष्ठिर जैसे शक्तिशाली पुरुष को जुए की बदौलत कितनी विपदाओं का सामना करना पड़ा यह सर्वप्रसिद्ध है। राज्य से हाथ धोना पड़ा! महाभारत करके कुल और देश की असीम क्षति बर्दास्त करनी पड़ी! पश्चात्ताप के दावानल का ईंधन बनना पड़ा! उन्हीं को नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके प्रबल बलशाली भाइयों को भी लोमहर्षक यातनाएँ सहनी पड़ीं !

और नल जैसे महाराजा को दर-दर का भिखारी किसने बनाया था ? जुआ ने ही न ?

जुआ ऐसा उन्माद है जिसके वशीभूत होकर मनुष्य आँख रहते अंधा और मस्तिष्क की नसें ठीक रहते पागल हो जाता है। वह अपने भविष्य को भूल जाता है। परिवार को घोर संकट में डाल देता है ! अतएव धर्म-मार्ग के अनुयायी को इस दुर्व्यसन से बचना चाहिए।

मांसभक्षण—

यह निर्दयता और पशुता की सब से बडी निशानी है। वह मनुष्य, नहीं पिशाच है जो अपने जैसे चलते फिरते और पीडा से प्रत्यक्ष आर्ति अनुभव करते प्राणी की जीवनलीला समाप्त करके उसे जीभके क्षणिक संतोषके लिए,उदरस्थ कर जाता है।

मानव, सभ्यता के उच्च शिखर पर आरूढ़ कहलाता है, किन्तु उसकी मांसभक्षण की आदत सिद्ध करती है कि उसमें पशुता का निम्न स्तर अब भी मौजूद है। मनुष्यभक्षी मनुष्य असभ्य और असंस्कारी गिना जाता है तो पशुपक्षी का मांसाहार-भक्षण करने वाले मनुष्य को सभ्य और संस्कारी कैसे कहा जा सकता है ? मनुष्य में जो चेतना है, वही क्या पशु में नहीं है ? उसे सुख-दुख का अनुभव नहीं होता ? उस निर्दय और नृशंस मनुष्य के वज्र-कठोर अन्तःकरण का धर्म का मृदुल अंकुर कदापि नहीं उग सकता जो पंचेन्द्रिय प्राणी की हत्या से उत्पन्न मांस से अपनी जिव्हा को तृप्त करता है। अतएव जो धर्म-साधना के पथ का पथिक बनना चाहता है, उसे अपना चित्त कोमल और करुणामय बनाना होगा और मांसभक्षण जैसे राक्षसी कृत्य से बचना होगा।

मदिरापान —

मदिरापान के सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। यह ऐसी बुराई है जिसे इसका सेवन करने वाले भी घोर बुराई मानते हैं। जो एक बार मदिरापान का व्यसनी बन चुका है, वह इतना लाचार, असमर्थ एवं सत्त्वहीन बन जाता है कि उससे बचना चाह कर भी नहीं बच सकता। मदिरापान से किस प्रकार आबाद घर बर्बाद होते हैं, किस प्रकार उदीयमान जीवन विनष्ट हो जाता और किस प्रकार परिवारका स्वर्ग श्मसान बन जाता है, यह एक रोमांचकारी करुण कहानी है, जिसे भुक्तभोगी भलीभांति जानते हैं। अतएव जो चाहता है कि उसकी इंसानियत का दिवाला न निकले, उसे मदिरापान से कोसों दूर रहना चाहिए।

खेद है कि भारत जैसे धर्मप्रधान देश में यह बुराई अब भी मौजूद है, जब कि देश स्वाधीन हो चुका है। भारत सरकार अगर प्रजाजीवनकी कुशल चाहती है तो उसे शीघ्र-से शीघ्र मदिरा के आयात, निर्माण और सेवन पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाना चाहिए। जिस देश की दरिद्र प्रजा भरपेट भोजन नहीं पाती, उस देश में करोडों रूपये मदिरापान में बर्बाद हों और परिणामस्वरूप करोडों जीवन अकर्मण्य, मुर्दा और निकम्मे बन जाएँ, उस देश का प्रजावत्सल शासन कैसे यह सहन कर सकता है, यह विस्मयका विषय है।

वेश्यागमन –

यह दुर्व्यसन कुल की कीर्ति पर कलंक की कालिमा पोतने वाला है ! विश्वासघात का प्रगट विज्ञापन है। सभ्यता और शिष्टता का दिवाला है ! उस देश और समाज को कैसे सभ्य कहा जा सकता है, जिसकी नारियाँ उदर की ज्वाला को शान्त करने के लिए अपने इज्जत-आबरू और शरीर को बेचने के लिए विवश होती हैं। सन्तोष है कि शासन का ध्यान इस बुराई की ओर आकर्षित हुआ है और वेश्यावृत्ति के उन्मूलन करने के प्रयत्न चल रहे हैं।

शिकार—

मांसभक्षण और शिकार का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, तथापि कभी-कभी केवल मनोरंजन के लिए भी शिकार किया जाता है। पर बहुत बार मैं सोचा करता हूँ, वह कैसा मन है और किसका मन है, जो निरपराध जीवधारियों की जीवन-लीला समाप्त करके रंजित होता है ? वह मानव का मन नहीं हो सकता किसी पिशाच का, दैत्य का, राक्षस का ही मन हो सकता है। सहृदय और शिष्ट पुरुष किसी के चित्त को आघात पहुँचाने वाला उपहास वचन भी नहीं कहते तो किसी मूक गरीब प्राणी के प्राणों का मनोरंजन के लिए घात किस प्रकार कर सकते हैं ? शिकार का व्यसन अत्यन्त घृणित व्यसन है और जो पापभीरु हैं वे इसे अपना नहीं सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस व्यसन के रहते गृहस्थ के योग्य चारित्र (गृहस्थ धर्म) का पालन नहीं हो सकता।

चोर्यकर्म—

चोरी की कुटेव भी गृहस्थधर्म का विघात करने वाला है। जो मनुष्य इस दुर्व्यसन का शिकार हो जाता उसे चोर समझ कर लोग घृणा और शंका की दृष्टि से देखते हैं और उसका विश्वास नहीं करते। चोर का चित्त क्षण भर के लिए भी शान्ति नहीं पाता। उसके मन में सदैव उथल-पुथल, व्यग्रता और व्याकुलता बनी रहती है। धर्म का परिपालन करने की पात्रता प्राप्त करने के लिए इस व्यसन से दूर रहना भी आवश्यक है।

परस्त्री-गमन—

यह विषयासक्ति का वर्धक, समाज की सुव्यवस्था का विनाशक और अनेक भयंकर अनर्थों तथा पापों का जनक कुव्यसन है। चोरी और परस्त्री-गमन का त्याग चारित्र के आधारभूत पाँच व्रतों में सम्मिलित हैं।

इन सात दुर्व्यसनों का त्यागी ही गृहस्थ धर्म का पात्र बनता है। अतएव लौकिक और लोकोत्तर दोनों दृष्टियों से इससे बचना आवश्यक है।

मर्गानुसारी के ये गुण जिन्दगी के हीरे हैं, जो जिन्दगी को चमकाते हैं, बहुमूल्य बनाते हैं और दुर्व्यसन, जीवन को नीरस व सत्त्वहीन बनाते हैं। साधक का कर्त्तव्य है कि वह दुर्व्यसनों का परित्याग कर सद्गुणों को ग्रहण कर जीवन को सुखमय, मंगलमय बनावे।

(जैन प्रकाश से साभार)

– आचार्य श्री एवं उपाध्याय श्री जी का शुभ पदार्पण –

मदनगंज—सम्मेलन के पश्चात् अजमेर से विहार कर उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्दजी म० सा० व योगनिष्ठ पं० श्री फूलचन्दजी म० सा० दिनांक १६–३–६४ को मदनगंज पधारे। यहाँ विराजित पं० श्री महेन्द्रमुनिजी, श्री सुमन-मुनिजी, पं० श्री मिश्रीलालजी म० सा० व अन्य सभी मुनिराज व नगर के श्रावक श्राविकाओं ने बहुत उत्साह के साथ स्वागत किया। दि० १७–३–६४ को आचार्य–सम्राट् श्री आनन्दऋषिजी म० सा० का पदार्पण बहुत स्वागत के साथ हुआ। उपाध्याय श्री जी एवं अन्य सभी मुनिराज व श्रावक श्राविकायें पूरे उत्साह के साथ स्वागत में सम्मिलित हुए व जलूस के रूप में नगर में होते हुए स्थानकवासी जैन भवन में आचार्य श्री आदि सभी मुनिराज विराजमान हुए व उपाध्यायजी एवं आचार्य श्री जी का सामाजिक एकतापर धार्मिक प्रवचन हुवा। स्थानीय सामाजिक एकता के लिए प्रयत्न चालू है। पंजाब प्रवर्तक श्री शुक्लचन्दजी म० सा० का विहार जयपुर की तरफ हो गया है। शीघ्र ही महासतीजी कमलावतीजी, महासतीजी जनककंवरजी व महासतीजी श्री सुमतिकंवरजी के पधारने की संभावना है।

चम्पालालजी चोरडिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय दर्शनों की पारस्परिक समानता !

प्रस्तुत विषयपर सुविचारक विद्वानों के अभिप्राय अपेक्षित हैं। "भारतीयदर्शन" ग्रन्थ के विद्वान् लेखक प्रोफेसर श्री बलदेव प्रसादजी उपाध्याय एम्. ए साहित्याचार्य ने ग्रन्थ के उपोद्घात-प्रकरण में अपने अभिप्राय अङ्कित किये हैं वे यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं। लेख की प्रत्येक पंक्ति से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। "सम्पादक"

किसी देश का विचारशास्त्र उस देश की सभ्यता और संस्कृति का सबसे मूल्यवान् पदार्थ होता है। उस देश के धार्मिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव विचारशास्त्र की विभिन्न धाराओं पर निश्चित रूप से पडता है। अतः किसी देश में उत्पन्न होने वाले विचारशास्त्र के विभिन्न सम्प्रदाय आपस में सिद्धान्तों की पृथक्ता भले ही दिखलावें, परन्तु वातावरण में समानता होनेके कारण से इन सम्प्रदायों के मतों में अनेक समानभाव दृष्टिगोचर होते हैं। इसी कारण भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों के भी अनेक सिद्धान्तों में एकता दृष्टिगोचर होती है।

व्यावहारिक उद्देश्य:— सब से बडी विशेषता भारतीय दर्शनों की यह है कि उनका उद्देश्य व्यावहारिक है। जनता की आधि-व्याधि-प्रपूरित विषम दैनिक जीवन से हटकर वे किसी शान्त, नीरव, काल्पनिक जगत् में विचरण नहीं करते। विपद्ग्रस्त प्राणियों को विपत्ति से सदा के लिए मुक्ति प्राप्त करा देना उनका प्रधान लक्ष्य है। उनका लक्ष्य मानसिक कौतूहल का निराकरण मात्र नहीं है, अपितु ऐसा जीवन व्यतीत करना सिखलाना है जो राग-द्वेष के तुमुल द्वन्द-युद्ध से बहिष्कृत होने के कारण नितान्त आदरणीय और स्पृहणीय है।

वर्तमान से असंतोष—इस व्यावहारिक उद्देश्य का कारण यह है कि भारतीय दर्शन वर्तमान जीवन के आध्यात्मिक असंतोष के ऊपर अवलम्बित है। भारतीय दर्शन को नैराश्यवाद के लान्छन से बचाते हुये हमने ऊपर दिखलाया है कि यह नैराश्यवाद आरम्भिक है, आवसानिक नहीं। वर्तमान से असंतोष, दिन-प्रति दिन की दुःखद घटनाओं से आध्यात्मिक नैराश्य, विचारशास्त्रका जनक होता है; इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हम पहले ही कर चुके हैं। दुःखमय वर्तमान से असंतोष हुये विना सुखमय भविष्य की कल्पना दुराशामात्र है।

इसलिए भारतीय दर्शनके सम्प्रदाय इस मौलिक प्रश्न को लेकर आगे बढते हैं। बुद्ध ने निरतिशय गाढ़समाधि के बल पर जिन 'चार' आर्य सत्यों' को खोज निकाला वे समग्र सम्प्रदाय में उसी प्रकार माननीय हैं। व्यास तथा विज्ञानभिक्षु का यह कथन नितान्त सत्य है कि अध्यात्म-शास्त्र चिकित्सा शास्त्र के समान चतुर्व्यूह है। जिस प्रकार चिकित्सा शास्त्र रोग, रोग-निदान, आरोग्य, तथा भैषज्य-इन चार तथ्यों के यथार्थ निरूपण में प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार आध्यात्म-शास्त्र दुःख, दुःख-हेतु, मोक्ष तथा मोक्षोपाय-इन सिद्धान्त-चतुष्टय को मूलभूत मानकर इनकी व्याख्या में यथाशक्ति प्रयत्नशील रहता है। इस जगत् के कार्य-कलाप पर दृष्टिपात करने पर विवेकी जन इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि यह संसार नितान्त दुःखमय है तथा दुःख ही परम सत्य-भूत पदार्थ है। यह पहिला सत्य है। दूसरा सत्य इस दुःख का कारण द्रष्टा तथा दृश्य का संयोग है (यो. सू. २। १७)। तीसरा सत्य यह है कि इस दुःख का आत्यन्तिक निरोध (रोकना) है और अन्तिम सत्य इस निरोध के मार्ग की व्याख्या करने में है। इस प्रकार भारतीय दर्शन दुःख-सत्ताको इस जगतीतल पर विद्यमान मानकर अवश्य प्रवृत्त होता है परन्तु वह वहीं समाप्त नहीं हो जाता। प्रत्युत आगे बढ़कर उसके आत्यन्तिक निवारण का मौलिक उपाय खोज निकालता है। सांख्य-कारिका के आरंभ में विचारशास्त्र की प्रवृत्ति का यही कारण बतलाया है। इस प्रकार भारतीय दर्शनों में वर्तमान दशा से असंतोष प्रकट कर उसके सुधारने की प्रवृत्ति साधारण रूप से पाई जाती है। भारतीय संस्कृति में निराशावाद के अभाव का साहित्यिक प्रमाण भी है। संस्कृत-नाटकों में दुःखान्त नाटक (ट्रैजीडी) का अभाव है। संस्कृत नाटककार मनुष्य मात्र के हृदय में आशा संचारके उन्नत भावना से प्रेरित होकर दुःखमय अन्त दिखलाने की कभी कल्पना ही नहीं करता। नाटक के भीतर दुःखमयी घटनाओं का प्रदर्शन करने पर भी वह अन्त में इन्हीं घटनाओं को सुखमयी, आनंद-वर्धिनी घटनाओं के रूप में परिवर्तित करने में तनिक भी नहीं हिचकता।

नैतिक व्यवस्था में विश्वास—मनुष्य स्वभाव से ही आशावादी है। निराशावाद की कालिमा उसके जीवन तथा विचार के नभोमंडल को क्षण भर के लिए भले ही दूषित कर दे परन्तु आशावाद की नैसर्गिक प्रवृत्ति इस कालिमा को बहुत शीघ्र धो डालने में समर्थ होती है। क्रान्तदर्शी कविजनों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा सिद्ध पुरुषों की दृष्टि ने इस तत्त्व का प्रत्यक्षीकरण बहुत ही पहले कर लियाथा कि इस विश्व में अव्यवस्था के लिए तनिक भी स्थान नहीं है। प्रत्युत सर्वत्र व्यवस्था ने अपना साम्राज्य जमा रखा है। यह जगत् व्यवस्था-नर्तकी की मनोरम रंगशाला है जिसकी छोटी से छोटी वस्तु भी यदृच्छा से प्रवृत्ति नहीं होती, प्रत्युत एक व्यापक नियम के वशीभूत होकर अपने जीवन का विस्तार करती है। दिन के अनन्तर रात का आगमन, नित्य प्रातः काल सुवर्णमय रश्मिओं को छिटकाते हुये पूर्व क्षितिज पर भगवान् सविता का मंगलमय उदय, रात्रिके समय रजतरश्मिओं को विस्तार करने वाले सुधाकर का आविर्भाव तथा क्रमशःवृद्धि और ह्रास आदि प्राकृतिक दृश्यों को निरीक्षण करनेवाले वैदिक ऋषियों के हृदय में यह विश्वास स्वाभाविक रीतिसे उत्पन्न हो गया कि इस जगत् के मूल में व्यवस्था का सिद्धान्त कार्य कर रहा है। ऋग्वेद के ऋषियोंने इस अपरिवर्तनीय नैतिक व्यवस्था को 'ऋत' को सज्ञा दी है। इस जगत् में सबसे प्रथम उत्पन्न होने वाला यही 'ऋत' ही है। 'ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत' (ऋ. वे. १०-१९०-१) ऋत की उत्पत्ति पहले हुई, तदनन्तर सत्य का आविर्भाव सम्पन्न हुवा। भारतीय दार्शनिकों ने इसी 'ऋत, के सिद्धान्त को भिन्न २ रूपों में अपनाया है। वैदिक कार्यकलाप अनुष्ठान किये जाने पर सर्वथा लुप्त नहीं हो जाते, प्रत्युत एक 'अपूर्व' की सृष्टि करने में वे समर्थ होते हैं। यही अपूर्व फलोत्पत्ति का प्रधान कारण है। अतः मीमांसा ने ऋत को ही 'अपूर्व' के रूप में अंगीकार किया है। न्याय वैशेषिक में 'अदृष्ट' की कल्पना का मूल आधार 'ऋत, की यही वैदिक कल्पना है।

कर्म सिद्धान्त—जगत् की नैतिक सुव्यवस्था का मूल कारण है कर्म-सिद्धान्त, जिसे प्रत्येक दर्शन स्वीकार करता है। जो कुछ कार्य हम अपने प्रयत्न से करते हैं, उसका फल अवश्य उत्पन्न होता है, उसका नाश कथमपि नहीं होता (कृतप्रणाश) और जिस फल को हम इस समय भोग रहे हैं वह पूर्व जन्म में किए गये कर्मका ही परिणाम है—विना कारण उद्भूत होने वाला नहीं है (कृताभ्युपगम) कर्म सिद्धान्त का यही तात्पर्य है कि इस विश्व में यदृच्छा के लिए कोई भी स्थान नहीं, सर्वत्र नैतिक सुव्यवस्था का साम्राज्य विराजमान है। कर्म-सिद्धान्त अंगीकार करने से मनुष्यके आन्तरिक शक्तियों के विकास के लिए उसे पर्याप्त अवसर मिलता है। कर्मसिद्धान्त की उत्पत्ति उपनिषद् काल में हुई थी और वेदमूलक दर्शनों के समान जैन तथा बौद्धदर्शनों ने इस सिद्धान्त को वहीं से ग्रहण किया है। (यहाँ मौलिक मतभेद है। सं.)

अविद्या से बन्धन तथा विद्या से मुक्ति लाभ

संसार के जितने बन्धन हैं उनका एकमात्र कारण है अविद्या। अविद्या से ही इस जगत् में प्राणीमात्र का जन्म-मरण हुवा करता है तथा वह अपने को विपुल क्लेशों का भाजन बनाये हुए है, इस सिद्धान्त को भारतीय दर्शन के समस्त सम्प्रदाय एक रूप से स्वीकार करते हैं। अविद्या के निरूपण में भी सर्वत्र ऐकमत्य है। योग सूत्रों के अनुसार अनित्य, अशुचि, दुःख तथा अनात्मा को क्रमशः नित्य, शुचि सुख तथा आत्मा मान बैठना अविद्या कहलाता है (अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या। योग सू. २-५)। यह अविद्या ही अन्य समस्त अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश-क्लेशों की जननी है। वस्तु के यथार्थ स्वरूप का अनिर्धारण अविद्या का सामान्य लक्षण है। समस्त दार्शनिक ज्ञान की सहायता से इस अविद्या के निराकरण करने की युक्तियों को बतलाते हैं। ज्ञान ही मुक्ति का एकान्त उपाय है। ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः- यह औपनिषद सिद्धान्त सबको सम भावसे मान्य है।

मोक्ष—तत्त्व ज्ञान के साधन से केवल मानसिक कौतूहल की निवृत्ति ध्येय नहीं है, अपितु उसका उपयोग व्यावहारिक जगत् के तापत्रय—आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक सन्तापों—से सदा के लिए प्राणीमात्र को छुटकारा प्राप्त कराने में है, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ऊपर किया जा चुका है। इसी कारण जैन धर्म के आचार्योंकी संज्ञा' तीर्थङ्कर' है। इस शब्दका अर्थ है नदी के ऊपर उस पार जाने के लिए मार्ग का निर्माण-कर्त्ता। इस अभिधान की उपयुक्तता इस कारण से है कि साधन-मार्ग के उपदेशक आचार्य गण इस आधिव्याधि-प्रपूरित भवसागर से पार जाने के लिए साधनभूत तत्त्वज्ञान की साधना की शाश्वत शिक्षा देते हैं। मनुष्यमात्र का जीवन जिन ध्येयों को आगे रख कर प्रवृत्त होता है, उन्हें शास्त्रीय भाषा में पुरुषार्थ कहते हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार पुरुषार्थ चार प्रकार के होते हैं-धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष। इनमें मोक्ष सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। विचार शास्त्ररूपी कल्पतरु का मोक्ष ही अमृतफल है। मोक्षके विषय में एक विचित्र धारणा फैली हुई है कि इसकी प्राप्ति का स्थान यह शरीर नहीं है। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। अधिकांश दर्शनों में इस जन्म में ही ताप-सन्ताप से आत्यन्तिक निवृत्ति प्राप्त करलेना-जीवन्मुक्ति—चरम लक्ष्य स्वीकृत किया गया है। यह नितान्त दूरस्थ आदर्श अदृश्य है, परन्तु ऐसा नहीं है कि इस जन्म में साध्य न हो सके। मानव जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का लक्ष्य काल्पनिक परलोक में दुःखनिवृत्ति न होकर जीते जी इसी देह में उस आदर्श को करने में है। जैन, बौद्ध तथा वेदान्त आदि षड्दर्शन जीवन्मुक्ति को भी जीवन का लक्ष्य बतलाते हैं। विशिष्टाद्वैत आदि वैष्णव दर्शनों में भी यद्यपि जीवन्मुक्ति का आदर्श माननीय नहीं है, तथापि तत्त्वज्ञान के साधन से आत्मा ऐसी उन्नत अवस्था में पहुँच जाती है जिसमें जीवन का उद्देश्य ही साधारण कोटि से बदल कर एक महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य प्राप्त कर लेता है। जीवन्मुक्ति का आदर्श उपनिषदों की बहुमूल्य देन है। कठोपनिषद् (२।३।१४) ने स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया है कि जब हृदय में रहने वाले समग्र कामनाओं का नाश हो जाता है, तब मनुष्य अमरत्व को प्राप्त कर लेता है और यहीं उसे ब्रह्म की उपलब्धि हो जाती है। मोक्ष के ध्येय के विषय में दार्शनिकों में मतैक्य होने पर भी उसके स्वरूप के विषय में पर्याप्त मतवैषम्य है। कुछ दार्शनिक (न्याय तथा वैशेषिक) मोक्ष की उन्नत अवस्था में केवल दुःख की निवृत्ति मात्र मानते हैं। (अभावात्मक) परन्तु अन्य दार्शनिकों (मीमांसा, वेदान्त, जैन तथा महायान बौद्ध) के मत में उस समय आनंद की उपलब्धि निश्चित रूपेण होती है (भावात्मक)।

मोक्ष मार्ग– मोक्ष की प्राप्ति के विभिन्न उपायों में जो अनेक दर्शनों ने बता रक्खा है, एक विचित्र एकता के भाव दृष्टिगोचर होते हैं। विचारशास्त्र सिद्धि के द्वार तक पहुँचाकर विरत हो जाता है। इस द्वार के भीतर प्रवेश करने के लिए साधना की नितान्त आवश्यकता है। हम लोग गाढ़ अन्धकार से परिपूरित इस संसार में अपने गन्तव्य स्थानों को जाने के लिए अपने-अपने रास्ते टटोल रहे हैं। दर्शन शास्त्र उज्ज्वल प्रकाश की किरणों को दिखलाकर हमारे लिए मार्ग की सूचना देता है परन्तु केवल शुष्क ज्ञान हमें लक्ष्य प्राप्ति में कथमपि सहायता नहीं दे सकता। सुविचारित औषध भी क्या नाममात्र से आतुर पुरुष को रोग से उन्मुक्त करने में समर्थ हो सकती हैं? उसके लिए चाहिए काल्पनिक तत्त्वज्ञान को व्यावहारिक रूप में परिवर्तन करना। इसका वर्णन योग सूत्रों में पूर्ण रुपेण किया गया है। योगदर्शन में वर्णित प्रक्रियायें भारत के प्रत्येक दर्शन को सर्वथा मान्य हैं। बौद्धधर्म में मोक्षोपयोगी त्रिविध साधनों में समाधि विशिष्ट साधन के रूप में स्वीकार की गई हैं। जैन धर्म 'सम्यक् चारित्र्य' के लिए यम, नियम तथा ध्यान को सबसे अधिक महत्त्व देता है। न्यायदर्शन में भी यौगिक प्रक्रियायें आत्म–साक्षात्कार के लिए अत्यावश्यक बतलाई गई हैं। सांख्य–दर्शन में इन प्रक्रियाओं की स्वीकृति स्वतः सिद्ध है। वेदान्त-दर्शन में भी ज्ञानके आन्तरिक साधन रूप में योग-सम्मत यम, नियमादि का उपयोग स्वीकार किया गया है। यद्यपि उनकी कल्पनाओं में कुछ पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है। इन दर्शन के अनुयायियों का यह दृढ़ विश्वास है कि तर्क के द्वारा सिद्ध किया गया दार्शनिक सिद्धान्त तब तक हमारे अज्ञान को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकता, जब तक उसे हम आत्मसात् न कर लें और इसके लिए इन तत्त्वों का निरन्तर अविच्छिन्न रूप से अभ्यास तथा मनन आवश्यक है। हमारे व्यावहारिक जीवन के ऊपर अविद्या, राग तथा द्वेष का तमःपटल इतना गाढ़ है कि ज्ञान तत्त्व के निरन्तर मनन तथा अभ्यास के बिना वह छिन्न भिन्न नहीं किया जा सकता। इसीलिए भारतीय दर्शन में तर्क-सिद्ध तत्त्वों के ऊपर निरन्तर गाढ़ मनन तथा निदिध्यासन की बात स्वीकार की गई है।

उपनिषद् का कहना है कि प्राणीमात्र के जीवन-यापन के हेतु दो मार्ग हैं–प्रेयोमार्ग तथा श्रेयोमार्ग। प्रेयोमार्ग में मनुष्य आपाततः रमणीय विषयों की ओर आकृष्ट हो कर संसारमें प्रवृत्त होता है। इस प्रवृत्ति के मूल कारण हैं राग तथा द्वेष। सुख देने वाले पदार्थों से राग अनुराग तथा प्रेम उत्पन्न होता है (सुखानुशयी रागः) और दुःख पहुँचाने वाली चीजों से चित्त स्वतः घृणा करने लगता है (दुःखानुशयी द्वेष) इन्हीं राग-द्वेषों का प्रभाव हमारे चित्त तथा इन्द्रियों पर इतना अधिक होता है कि वे अवश बन श्रेयोमार्ग की अवहेलना कर प्रेयोमार्ग का ही अवलम्बन किया करती हैं। श्रेयोमार्ग वास्तव में परम मंगल साधन करने का रास्ता है। जब तक विषयोन्मुखी इन्द्रियों को बाह्य पदार्थों से बलात् खींच कर अन्तर्मुखी बनाया जायगा, तब तक सच्चे कल्याण की साधना हो नहीं सकती। इस प्रकार मंगल मार्ग पर चलने के लिए आत्म-संयम तथा शुद्धि की नितान्त आवश्यकता है। चित्त शुद्धि के लिए योग दर्शन ने अष्ट योगाङ्गों की व्यवस्था बतलाई है–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। इन उपायों को प्रत्येक दर्शन ने आवश्यक बतला कर स्वीकृत किया है।

इस प्रकार भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों में महती एकता आलोचकों की दृष्टि को आकृष्ट किए बिना नहीं रह सकती। भारतीय दर्शन एक ही परमात्मतत्त्व की विवेचना अनेक दृष्टियों से सिद्ध कर अपनी सर्वांगीणता का पर्याप्त परिचय देता है। परमार्थ भूत पदार्थ की प्रमाण मीमांसा, ज्ञेय-मीमांसा, आचार-मीमांसा तथा मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से चतुरस्र विवेचना भारत में की गई है। इसी लिए भारतीय दर्शन को यदि हम संश्लेषणात्मक (सिन्थेटिक) कहें तो कथमपि अनुचित न होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्त्तव्य

लेखक—श्री. बन्सीलालजी भगवानदासजी कोठारी

जिस मनुष्यको जिस अवस्थामें जिस रीतिसे जो जो शुद्ध प्रवृत्तियाँ करनी उचित ज्ञात हों, वे प्रवृत्तियाँ उस मनुष्यकी उस अवस्थाकी कर्त्तव्यरूप समझी जाती हैं। 'कृ' अर्थात् 'करना' इस संस्कृत धातुसे कर्त्तव्य अथवा 'करने योग्य' इस शब्दकी सिद्धि होती है। सब मनुष्योंके कर्त्तव्य सर्व अवस्थामें समान नहीं रहते। जो मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार कार्य हाथमें ले, उस कार्यको सिद्ध करनेके लिए दूसरेकी सहायताकी आशा पर निर्भर न रहकर अपने भुजबल पर ही निर्भर रहते हैं, भय, शोक और दीनता को एक ओर रखकर निडर और साहसी बन स्वाश्रयी बन जाते हैं वे ही मनुष्य अधिकतर कर्त्तव्य-पालन करनेमें समर्थ हो सकते हैं। जिस रीतिसे इन्द्रिय-दमनमें स्वात्मबलकी आवश्यकता है, उसी प्रकार कर्त्तव्य पालनमें भी स्वात्मबलकी आवश्यकता है।

मनुष्य मात्रके जीवनकालके चार भाग और उनकी चार पृथक्-पृथक् अवस्थाएँ हैं; उन अवस्थाओंमें क्रम से-(१) शिक्षा (२) नीति (३) परार्थ और (४) त्याग ये चार फल प्राप्त करने पड़ते हैं। इन फलोंके भेदानुसार कर्त्तव्यके भी चार विभाग हैं। विद्वानोंने इस आयुष्यके चार भाग किए हैं- (१) बाल्यावस्था (२) तरुणावस्था (३) मध्यावस्था (४) वृद्धावस्था। प्रथम अवस्था २५ वर्षतककी है और इसे सामान्यत: ब्रह्मचर्याश्रम कहते हैं। इस अवस्थामें अखंड ब्रह्मचर्यका पालन कर शिक्षा प्राप्त करना बतलाया है। सब प्रकारका विद्याभ्यास इस अवस्थामें कर लेना और इसके पश्चात् की अवस्थामें उसका उपभोग करना यही उचित है। दूसरी यौवनावस्थाके लिये नीतिसे धन प्राप्त करना ऐसा विद्वानोंने बताया है। इस अवस्थाको गृहस्थाश्रम कहते हैं।

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये नार्जितो धर्मः चतुर्थे किं करिष्यति॥

अर्थात्-जिसने प्रथमावस्थामें विद्या उपार्जित नहीं की; द्वितीयावस्थामें धन प्राप्त नहीं किया और तृतीय अवस्थामें धर्म नहीं किया; वह चौथी अर्थात् चरम अवस्थामें क्या कर सकता है? तीसरी मध्यावस्थामें 'परार्थ अर्थात् परोपकार करनेका आदेश है। कोई इसको वानप्रस्थाश्रम भी कहते हैं। और चौथी अवस्था परोपकार और देश-सेवाके लिये योग्य कही है। इसे संन्यासाश्रम भी कहते हैं।

प्रत्येक मनुष्य को शक्ति और संयोग एकसे प्राप्त नहीं होते। किसीमें विशेष शक्तिके अभावसे एक अवस्थामें भी एकसे अधिक कर्त्तव्य समान अधिकारसे साथ ही रहते हैं। अर्थात् कर्त्तव्योंकी परस्पर समानता और विषमता सहचार और असहचार, क्रम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उत्क्रम, इन सबका आधार मनुष्यकी शक्ति द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव प्रभृति प्राप्त हुए संयोगोंपर निर्भर है।

विपत्तिके समयमें भी अधीर न होते मनुष्यको धैर्य धारण करना चाहिए। मनमें सरलता और सन्तोष-वृत्ति धारण करना चाहिए। यह आवश्यक है कि–वह सत्याग्रही बनें, व्यर्थ इच्छाओंका दमन करें, क्रोध, मद, मान, लोभ प्रभृति प्रचण्ड प्रकृतियों को अंकुशमें रखकर विजय प्राप्त करें, मनमें उत्साह और साहस रक्खें। इन्द्रियोंको वशमें रख विषय–वासनाके वेगमें न भूलें। सम्पत्ति और साधनाओंके अनुसार उदारता दिखावें और न्यायप्रविष्ट परमार्थ के मार्गमें प्रेम रक्खें। इस प्रकार मनुष्यके हृदयरूपी क्षेत्रका जहाँ सद्भाव हो वहीं कर्त्तव्यरूपी प्रधान–बीजमेसे कार्यरूपी मनोरम वृक्षके अंकुर निकलना सम्भव है। सर्वदा और सर्वथा चिद्वृत्तिका शुभ विचारोंसे पोषण करना, यही हृदय विशुद्ध करनेका प्रमुख उद्योग है।

न दैवमिति संचिन्त्य, त्यजेदुद्योगमात्मन।
अनुद्योगेन कस्तैलं, तिलेभ्य प्राप्तुमर्हति॥

अर्थात्—जैसा कर्ममें होगा वैसा होगा ऐसा धारकर अपना उद्योग नहीं छोड़ना चाहिए। कारण कि–तिलमें तेल होते हुए भी वह बिना उद्योगके नहीं निकल सकता।

जब मनुष्यको अच्छे योग मिलते हैं तब कर्त्तव्य का मनमें ध्यान आता है, और संयोग अनुकूल बना–कर, यह कर्त्तव्य करूँ ऐसी इच्छा उत्पन्न होती है। अर्थात् कर्त्तव्य प्रथम इच्छाके रूपमें प्रकट होता है। यह कर्त्तव्यकी प्रथमावस्था; इच्छा होनेपर उसके अनुसार अपने और दूसरोंके विचारोंका बल प्राप्त होता है। उस बलसे प्रतिकूल विचारोंको अलग हटा कर्त्तव्यकी ओर प्रवृत्ति होती है, यह कर्त्तव्यकी दूसरी अवस्था है। प्रवृत्ति होते-होते अभ्यास और अनुभवसे मार्गकी कठिनाइयाँ दूर होती हैं। अनुकूलता प्राप्त होनेके साथ-साथ ही शक्तिमें भी वृद्धि होती जाती है, यह कर्त्तव्यकी तीसरी अवस्था है। वह कर्त्तव्य पूर्णतया पालन करनेका बल प्राप्त हो जाय, और चाहे जैसे संयोगोंमें भी उससे विचलित न हो इतनी दृढ़ता हो जाय, वही कर्त्तव्यकी चौथी अवस्था है। इस अचल अवस्थाको प्राप्त हुवा कर्त्तव्य उसके सब प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न होता है। जिनमें इस प्रकार के कर्त्तव्यकी बुद्धिका निवास होता है वे ही मनुष्य मनुष्यताको सफल कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी, अहमदनगर

इस वर्ष की परीक्षाओं में निम्न छात्र सर्वाधिक अंक प्राप्तकर सर्वप्रथम आये हैं।

अ. नं.	परीक्षा नाम	क्रमांक	नाम छात्र			केन्द्र
१	जैन सिद्धान्त शास्त्री	५	बा, ब्र. श्री पुष्पाबाई महासतीजी	(प्रथम)		उपलेटा
२	,, ,, ,,	७	श्री ज्योतिबाई महासतीजी	(द्वितीय)		जामनगर
३	जैन सिद्धान्त प्रभाकर	५९	साध्वी श्री प्रवेशकुमारीजी	(प्रथम)		जालन्धर
४	,, ,, ,,	४५	कु० मंगला मिश्रीलाल जैन	(द्वितीय)		कोटमुंबई
५	,, ,, ,,	४३	श्री जैन मुनि सुमतिप्रकाशजी	(प्रथम)		मेरठ
६	जैन सिद्धान्त विशारद	९४	कु० निर्मला मनुलाल भिमाणी	(प्रथम)		मालेगांव
७	,, ,, ,,	९२	कु० कुमुद बन्शीलाल मुथा	(द्वितीय)		अहमदनगर
८	जैन सिद्धान्त प्रथमा	२५६	कुसुमबहन कान्तिलाल शाह	(प्रथम)		घाटकोपर
९	,, ,, ,,	२५८	मधुरवंतीबहन त्रिलोचनदास	(द्वितीय)		,,
१०	,, ,, ,,	२९३	रामहजारी बर्मा	(प्रथम)		बालोतरा
११	,, ,, ,,	४३५	भूपतराय जैन	(द्वितीय)		बाराँ
१२	जैन सिद्धान्त प्रवेशिका	१२०२	हंसाबेन आरगाला	(प्रथम)	(छात्रा)	घाटकोपर
१३	,, ,, ,,	२१८८	आशा जैन	(द्वितीय)	(छात्रा)	होशियारपुर
१४	,, ,, ,,	१६६८	गुलाबचंद कांकरिया	(प्रथम)	(छात्र)	कुचेरा
१५	,, ,, ,,	१६६९	सुरेन्द्रसिंह मेहता	(द्वितीय)	(छात्र)	,,
१६	जैन सिद्धान्त प्रतिक्रमण	३९५३	गौतमचंद मुथा	(प्रथम)	(छात्र)	,,
१७	,, ,, ,,	३९५२	नेमीचंद कर्णावट	(द्वितीय)	(छात्र)	भोपालगढ
१८	,, ,, ,,	३९४४	कमला बोहरा	(प्रथम)	(छात्रा)	जोधपुर
१९	,, ,, ,,	४७४३	नवरत्नमल दरडा	(प्रथम)	(छात्र)	कुचेरा
२०	,, ,, ,,	४७२३	नेमीचंद कर्णावट	(द्वितीय)	(छात्र)	भोपालगढ
२१	जैन सिद्धान्त सामायिक	५०२३	जसवंतकुमारी नागोरी	(प्रथम)	(छात्रा)	भीलवडा
२२	,, ,, ,,	५०२६	इन्द्राकुमारी नगौरी	(द्वितीय)	(छात्रा)	,,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महावीर जन्म-तिथि पर स्वेच्छया काम-काज स्थगित रखने के लिए अपील

भगवान् महावीर की जयंती (जन्म तिथि) जो चैत्र शुक्ल १३, तदनुसार अप्रैल २४, शुक्रवार को पड़ती है, केवल जैनियों के लिये ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानव-समाज के लिए एक परम-पावन एवं कल्याणकारी तिथि है। मानव समाज को अहिंसा, अपरिग्रह एवं समभाव के महामंत्र इन्हीं महाप्राण से उपलब्ध हुए।

इन महामंत्रों का महत्त्व और इनकी उपयोगिता आज अधिक स्पष्ट रूप में सामने आयी है। विज्ञान और यांत्रिक साधनों के विकास के साथ ही महा प्रलयकारी शक्ति के रूप में अणु-परमाणु अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण की पराकाष्ठा से मानव-समाज आज भयातुर है। विनाश एवं प्रलय की आशंकाओं के निपट अंधकार के बीच अहिंसा की विरासत आज भी प्रकाश की सुनहरी किरणें बिखेर रही है।

किंतु, घोर विडम्बना की बात है कि, सारी दुनियाँ में अहिंसा का ढिंढोरा पीटने के बाद भी हमारा राष्ट्र अहिंसा मंत्र के आदि-प्रवर्त्तक एवं सृष्टा के प्रति उदासीन है। महाराष्ट्र तथा इने-गिने कुछ अंचलों को छोड देश के समस्त राज्यों में महावीर जयंती जैसे महापर्व पर सरकारी छुट्टी न होना इसका प्रमाण है।

जैन सम्प्रदाय के लिये तो वस्तुतः इस दिन सार्वजनिक छुट्टी का उतना महत्त्व नहीं है। सरकारी छुट्टी न होने पर भी जैन भाई-बहन इस दिन स्वेच्छया अपना समस्त कामकाज स्थगित रख भगवान् महावीर के प्रति अपनी श्रद्धा एवं निष्ठा-ज्ञापन कर सकते हैं। **किंतु, भगवान् महावीर की वाणी और उनकी अहिंसा का दिव्य संदेश सम्पूर्ण मानव समाज के लिए अपूर्व वरदान के रूप में है। प्रचारके इस आधुनिक युग में मनुष्य का ध्यान आकृष्ट करने के लिये सार्वजनिक छुट्टी एक अच्छा माध्यम है।**

स्वाधीनता की उपलब्धि के बाद देश के जन-जीवन में नयी प्रवृत्तियों का उदय हुआ है। विभिन्न विश्वासों और विचार-धाराओं के महापुरुषों की जयंतियाँ और पुण्य-तिथियाँ मनायी जाने लगी हैं। इन तिथियों पर सरकारी और सार्वजनिक छुट्टियाँ घोषित हुई हैं। लेकिन यह जैन समाज ही है, जो अभी तक प्रगाढ़ निद्रा में है।

अब समय आ गया है, जब कि हम अपनी चिर निद्रा का परित्याग करें। **भगवान् महावीर की परम पावन जन्म तिथि पर सरकारी छुट्टी घोषित करने के लिए भारत सरकार और राज्य सरकारों को प्रभावित कर सकें, इसके लिए यह आवश्यक है कि हम इस महा तिथि पर स्वेच्छया अपना सारा काम-काज स्थगित रखें और उस दिन अपने बच्चों को स्कूल-कालेज न भेजें तथा** अपने-अपने नगर और क्षेत्रों में इस उपलक्ष्य पर आयोजित सभाओं एवं समारोहों में बडी संख्या में सपरिवार सम्मिलित होकर तीर्थङ्कर भगवान्‌के जीवन-दर्शनको चर्चा सुनें और उसमें भाग लें।

अतएव, इस परिपत्र द्वारा हम आप सबों से भगवान् महावीर की जन्मतिथि पर अपना सारा कामकाज स्थगित रखने की अपील करते हैं। हमारा विश्वास है कि इस कदम से अहिंसा और विश्व-शांति के पक्ष को निश्चय ही बल मिलेगा, जिसकी आज संसार को सर्वोपरि आवश्यकता है।

निवेदकः—कमल सिंह दुधोरिया

सभापति (मुर्शिदाबादसंघ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत जैन महा-मण्डल के अधिवेशन की संक्षिप्त रिपोर्ट

भारत जैन महामण्डल का ३८ वाँ अधिवेशन जो २१-२२ मार्च १९६४ को सांगली 'महाराष्ट्र' में, कलकत्ते के सुप्रसिद्ध सेठ श्री सोहनलालजी दुगड़ की अध्यक्षतामें मनाया गया था वह अत्यन्त ही सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। उस अवसरपर दक्षिणके २५-३० हजार जैन-बन्धुओंने एकत्र होकर मण्डलके कार्यो के प्रति अत्यन्त दिलचस्पी बतायी। शायद ही आजतकके इतिहासमें ऐसा सफल अधिवेशन कोई ही हुआ हो। मण्डलके प्रति दक्षिणके जैन-बन्धूओंमें विशेष प्रेम और आत्मीयताके दर्शन हुए। अधिवेशन में श्री सोहनलालजी दुगड़ने उपस्थित जनताको भूख, बेकारी और गरीबीके विरुद्ध संघर्ष करनेका आह्वान किया। उन्होंने पाकिस्तान और चीनके खतरेके प्रति भी जनताको सजग रहनेकी चेतावनी दी। महाराष्ट्र राज्यके शिक्षा-मंत्री श्री शान्तिलालजी शाहने भी अपने भाषणमें अज्ञानताको दूर करनेके उपायोंको समझाया और मण्डलके अधिवेशनकी भी सराहना की। श्री सोहनलालजी दूगड़के भाषणमें कुछ ऐसा जादू था कि जनता मराठी-भाषी होनेपर भी उनके हिन्दीमें भाषणको बडी तन्मयतापूर्वक सुन रही थी। अधिवेशन में बम्बई, कलकत्ता, देहली, पूना, बनारस, इन्दौर, नागपुर, वर्धा आदि स्थानोंसे सुप्रसिद्ध नेता और कार्यकर्त्ता आए थे। साहू श्री श्रेयांसप्रसादजी, सेठ लालचन्दजी हीराचन्दजी दोशी, चिमनलाल चकुभाई शाह, पोपटलाल रामचन्द्र शाह, परमानन्दभाई कापडिया, शादीलालजी जैन आदि बहुत से सुप्रसिद्ध व्यक्ति उपस्थित थे। श्री दूगडजीने वहाँ की जैन व अजैन संस्थाओंको खुले हृदयसे दान दिया था। उन्होंने हरिजनोंके खान-पानके लिए २००० दो हजार रुपयेका दान दिया। उन्होंने इस अवसरपर बम्बई, चिचवड, सांगली, कोल्हापुर, हैद्राबाद, व राधनपुरमें विभिन्न संस्थाओंको करीब पौने दो लाख रूपये दानमें दिये।

सांगली अधिवेशन उत्तर और दक्षिणके जैन बन्धुओंका संगम बना। वहाँ सभी सम्प्रदायके जैन बन्धुओं, प्रतिनिधियों और विचारकोंने एक जगह मिलकर एक दूसरेकी भावनाओंको समझा और परखा और जैन समाज की प्रगतिके लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये जो साथमें हैं।

हम सांगली अधिवेशनके स्वागताध्यक्ष श्री बी. बी. चौधरी और श्री के. ए. चौघुले तथा वहांके कार्यकर्ताओं और स्वयंसेवकोंको हार्दिक धन्यवाद देते हैं। उन्होंने इनी बडी व्यवस्था का भार बडी ही चतुरतापूर्वक वहन किया यह भी कम गौरवकी बात नहीं है मण्डलके अधिवेशनको सफल बनानेमें उन्होंने जो महत्वपूर्ण योग दिया उनके लिए वे धन्यवादके पात्र हैं।

आशा है इस अधिवेशन से दक्षिणमें भारत जैन महामण्डलके कार्यका विशेष प्रसार होगा।

रमणलाल सी. शाह–प्रधान मन्त्री

भारत जैन महामण्डल,–५५ कालिकादेवी रोड, बम्बई २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांगली में भारत जैन महामण्डल के ३८ वें अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव

प्रस्ताव न. १– सांगली 'महाराष्ट्र'
दि. २२–३–६४

भारत जैन महामण्डलका यह अधिवेशन निम्नलिखित दिवंगत आत्माओंके प्रति समवेदना प्रकट करता है और उनकी स्मृतिमें विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

१) भारत गणराज्यके राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादजी २) अमेरिकाके राष्ट्रपति जॉन केनेडी ३) महात्मा भगवानदीनजी नागपुर। ४) लाला नन्हमलजी जैन, दिल्ली। ५) लाला तन, सुखरायजी जैन, दिल्ली। ६) भीकमचन्दजी देशलहरा, बुलडाना। ७) प० पन्नालालजी सोनी, व्यावर। ८) गणपतरायजी सरावगी, कलकत्ता। ९) खूबचन्दजी सेठिया, लन्दन। १०) श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन। ११) भंवरलालजी लुंकड़, जलगांव। १२) पन्नालालजी सरावगी, कलकत्ता। १३) वीरचन्द पानाचन्द शाह, बम्बई।

प्रस्ताव नं० २ सांगली 'महाराष्ट्र'
दि० २२–३–६४

जैनोंके विभिन्न सम्प्रदायोंमें अनेक विषयोंको लेकर मतभेद या विवाद चलते हैं। यह स्थिति जैन सिद्धान्त की आत्मा और समयको देखते हुए अत्यन्त हानिकर है। भारत जैन महामण्डलकी प्रार्थना है कि ऐसे सभी विवाद और मसले पारस्परिक बातचीतके द्वारा या मिलजुलकर समाप्त कर दिये जाय। सम्बन्धित संस्थाओंके अनुरोध पर महामण्डल को समसमय पर पारस्परिक सुलझाव, निपटानेके लिए समितियां बनाकर अपना हार्दिक और पूरा-पूरा सहयोग दिया जायगा।

महामण्डलका अधिवेशन सभी संप्रदायों और आम्नाओंसे यह भी अनुरोध करना अपना कर्तव्य समझाता है कि सभी संप्रदाय अपनी मान्यताओंके प्रति आस्था रखते हुए भी अपने विचार मान्यताओं, विश्वासों और परम्पराओंके प्रति समादर रखे। और अपने प्रचारमें टीका आलोचना, कटुता आदिका प्रकाशन लेखों या पुस्तकोंके रूपमें न किया जाय। इस तरह पारस्परिक ऐक्य सौहार्द के निर्माण में मिलजुलकर सक्रिय कदम बढ़ावें।

प्रस्तावक–जवाहरलालजी मुणोत,
अनुमोदक–मोतीलाल वीरचन्दजी,
केशवरावजी चौघुले,
मानसिंहजी वैद,

प्रस्ताव नं. ३ सांगली 'महाराष्ट्र'
दि० २२–४–६४

आहार-विशेषज्ञोंका मत है कि स्वास्थ्य एवं मानवताकी दृष्टिसे वनस्पत्याहार 'शाकाहार' सर्वश्रेष्ठ है। लेकिन देखा जा रहा है कि इधर मांसाहारकी प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती जा रही है। और कुछ कारणों से उसे उत्तेजन भी दिया जा रहा है। ऐसी स्थिति में निरामिषहारियों का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे जनता के सम्मुख ऐसे साधन उपलब्ध करदें कि लोगों का आकर्षण शाकाहार के प्रति बढे उसको वे उपयोगी पावे। शाकाहार के प्रति उपेक्षा और मांसाहार के प्रति उत्तेजन की सरकार की नीति के प्रति भारत जैन महामण्डल को बहुत चिन्ता है।

महामण्डल की प्रार्थना है कि प्राचीन भारतीय परम्परा स्वास्थ्य, आर्थिक स्थिति तथा मानवीय स्पर्श की दृष्टि से इस प्रश्न पर जितना विचार करे और शाकाहार का वातावरण निर्माण करने में अपनी शक्ति लगाये।

प्रस्तावक— सोहनलालजी दुगड सभापति
अनुमोदक—शादीलालजी जैन
डॉ आहले एम्. एस्.
बसन्तलालजी नरसिंहपुरा

प्रस्तव न० ४ सांगली 'महाराष्ट्र'
दि. २२–३–६४

जैन धर्म के २४ वे और अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण को १० वर्ष बाद ढाई हजार बर्ष पूरे हो रहे हैं। अहिंसा अनेकान्त और अपरिग्रह जैसे मूलभूत और शाश्वतसिद्धान्तों के प्रतिपादक वीर प्रभु की वाणी आज भी विश्व मानवता के लिए परम कल्याणकारी है। वीर प्रभु का ढाई हजारवां निर्वाण-महोत्सव राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तर पर उत्साहपूर्वक व्यापक दृष्टि से संयोजित किया जाय कि सम्पूर्ण विश्व उनके उपदेशों को समझ सके और सम्यक् जानकारी प्राप्त कर सके इसके लिए अनेक आयोजन जरूरी होंगे और उनके लिए संयुक्त प्रयत्नों की आवश्यकता रहेगी। विद्वानों 'श्रीमानों' तथा सभी प्रकारके कार्यकर्त्ताओंसे अनुरोध है कि इस पुनीत प्रसंग को सब तरह से सम्पन्न समृद्ध और सफल बनाने का प्रयत्न करें।

प्रस्तावक–फूलचन्दजीभाई बंबई

अनुमोदक–फकीरचन्दजी जैन, भुसावल

डा० एन्० एन्० उपाध्ये, श्रीमती कलंत्रीबाई

प्रस्ताव नं० ५ सांगली 'महाराष्ट्र'

दि. २२–३–६४

यदा–कदा जैन धर्म, जैन सिद्धान्त और जैन समाज के प्रति भ्रांति-पूर्ण तथा जैन स्वत्वों को हानि पहुंचानेवाली एवं समाज के प्रभाव को निर्बल करनेवाली बातें प्रकट होती रहती हैं। प्रायः ऐसी बातों के मूल में जैन धर्म तथा सिद्धांतों की सम्यक् जानकारी का अभाव ही होता है अथवा आपसी द्वेष 'जैन स्वत्वों के प्रति उपेक्षा या प्रतिकूल आदि प्रवृत्तियाँ होती हैं।

समय–समय पर इन घटनाओं के प्रतिकार के प्रयत्न भी होते रहते हैं। लेकिन इन प्रयत्नों में प्रायः आवेश और संगठन का अभाव होता है और इसी कारण वे असफल हो जाते हैं। महामण्डल का यह अधिवेशन सम्पूर्ण जैन समाज से निवेदन करता है कि ऐसे प्रश्न सामने आने पर उनका गहरायी से विश्लेषण हो तथा संगठित रूप से व्यवस्थित प्रयत्न किये जायं ताकि गलतफहमी दूर हो सके 'स्वत्वों को न्याय मिले और उनकी उचित रक्षा हो सके। किसी एक सम्प्रदाय पर हुए आक्रमण को पूरे समाज पर आक्रमण मानना पूरे जैन समाज का कर्तव्य हो जाना चाहिए। महामण्डल इस दिशा में समुचित सेवा देने के लिए सदैव तत्पर रहेगा।

प्रस्तावक–श्रीपोपटलाल शाह ,पूना

अनुमोदक–श्री अचलसिंहजी आगरा

चन्द्रकान्त कागवा बेलगांव

बापूसाहेब चौधरी 'सांगली

चन्दूलाल कस्तूरचन्द 'बम्बई'

प्रस्ताव नं. ६ सांगली 'महाराष्ट्र'

दि २२–३–६४

तेजी से बदलती हुई देश की वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए भारत जैन महामण्डल यह अनुभव करता है कि भारत जैन महामण्डल अपने पूर्व स्वीकृत प्रस्तावानुसार अहिंसक समाज व्यवस्था की प्रवृतियों को यथाशक्ति तेजी से बढावे तथा आर्थिक समता एवं अपरिग्रह के विचारों को प्रचारित कर अहिंसक समाज व्यवस्था के निर्माणमें सक्रिय सहयोग दे।

प्रस्तावक–बुधमल शामसुख, कलकत्ता

अनुमोदक–ओंकारलालजी बोहरा कलकत्ता

प्रस्ताव नं ७ सांगली 'महाराष्ट्र'

दि० २२–३–६४

देश में जीवनोपयोगी वस्तुओं की कमी, महंगाई कालाबाजार असंतोष तथा भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति को मण्डल चिन्ता की निगाह से देखता है। मण्डल समझता है कि इनके निवारण का उपाय उत्पादन बढाना है। उत्पादन बढ़ाने की दिशा में जैन समाज का महत्वपूर्ण सहयोग उद्योगों और खेती के क्षेत्र में प्राप्त हो रहा है। किन्तु देश की परिस्थिति को देखते हुए और अधिक उत्पादन में लगे यह जरूरी है। सरकार से भी निवेदन है कि वह उत्पादन प्रयास के संकल्प की पूर्ति में यथासंभव अधिक सहयोग दे और जो देश के उत्पादन में उपयोगी लेना चाहते हैं, उनको शक्ति साधन, तथा व्यावहारिक बुद्धि का लाभ प्राप्त करे।

प्रस्तावक–श्रीलालचन्दजी हीराचन्दजी दोशी, बम्बई

अनुमोदक श्री ओंकारलाल बोहरा, कलकत्ता

देवचन्दजी मोहनलालजी लंकड, न. क. आंकिवाट

प्रस्ताव नं. ८

भारत जैन महामण्डल पिछले अनेक अधिवेशनों से समाज का ध्यान इस ओर आकृष्ट करता जा रहा है कि सम्प्रदायों में भाईचारा बढाने, निकटता लाने तथा स्नेह-सौहार्द बढाने के लिए यह जरूरी है कि महावीर-जयन्ती और वीर-निर्वाण-उत्सव तथा क्षमावणी आदि पर्व हर जगह समन्वय तथा सहयोग की भूमिका से एक साथ एक ही समय मनाये जांय और सभी जैन उत्साह से साथ दें। इसी तरह इस पर भी जोर दिया जा रहा है कि विभिन्न संप्रदायों के स्वामी मुनियों, व्रती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचारियों आदि के प्रति आदर रखकर उनके ठहरने, आहार, उपदेश, श्रवण आदि की व्यावस्था में किसी प्रकार का भेदभाव न रखा जाय। महामण्डल का यह अधिवेशन इस बात को आज की परिस्थिति में दोहराना चाहता है।

ऐसे ही समस्त जैन समाज में मेल-मिलाप तथा स्नेह-सम्पर्क स्थापित करने के लिए हमारी उपेक्षित जातियाँ जैसे सागर ताड़, आदि को समाज धार्मिक तथा अन्यप्रांतीय स्तर पर रोटी-बेटी व्यवहार को प्रोत्साहन दिया जाय तथा यथासंभव यह कार्य अत्यन्त सादगी पूर्वक तथा बिना दान-दहेज के सम्पन्न हो।

प्रस्तावक–जटुभाई मेहता,
अनुमोदक–डॉ. आहले एस्. एस्.
लाला भगतरावजी
ए. वी. चौघुले,
परमानन्द भाई कापडिया

प्रस्ताव. नं. १ सांगली महाराष्ट्र,
दि. २२-३-६४

समाज में विभिन्न सेवा कार्य चलते हैं और उसमें बहुस्त्रों कार्यकर्त्ता लगे हैं। मण्डल की यह अधिवेशन उनसे निवेदन करता है कि वे अपने कार्यक्षेत्र पूरे जैन समाज तक बढ़ावे। मानव जाति के कल्याण में अहिंसा एवं अनेकान्त जैसे सर्वकल्याणकारी तत्त्वों की महत्त्व सर्वविदित है। इनके महत्त्व-उद्घाटन के लिए जैन-दर्शन और साहित्य का सभी भाषाओं में प्रकाशन आवश्यक है। इस क्षेत्र में जो कार्य विभिन्न संस्थाओं की ओर से चल रहे हैं, मण्डल उनकी प्रशंसा करता है। लेकिन यह कार्य अधिक सुव्यवस्थित और योजनापूर्वक हो इसलिए समस्त प्रकाशन संस्थाओं और देश के विद्वानों और कार्यकर्ताओं से अनुरोध है कि वे ऐसे साहित्य का निर्माण एवं प्रकाशन करें जो सरल हो और सबकी समझ में आसके।

प्रस्तावक–डा०ए०एन० उपाध्ये, कोल्हापुर।
अनुमोदक–पं० हीरालालजी शास्त्री, सोलापुर
डा० रतनकुमारजी, नागपुर।
सौ० पारसरानी मेहता, भुसावल।
श्री जटुभाई मेहता, बम्बई।

— पारितोषिक सूची —

प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण पदक प्राप्त छात्रों के अतिरिक्त

प्रवेशिका द्वितीय श्रेणी उत्तीर्ण	छात्रों के लिए–	प्रथमा पाठचग्रंथ भाग २
" " "	छात्राओं के लिए–	आवश्यकसूत्र सार्थ
प्रथमा द्वितीय श्रेणी"	छात्रों के लिये–	नवतत्त्व सार्थ
जैन सि. विशारद "	छात्र एवं छात्राओं के लिये–	प्रमाणनय तत्त्वालोक
जैन सिद्धान्त प्रभाकर "	" " "	तत्त्वार्थसूत्र (पं. सुखलालजी)
सामायिक परीक्षा प्रथम श्रेणी–		प्रतिक्रमण सूत्रमूल
प्रतिक्रमण परीक्षा द्वितीय श्रेणी उत्तीर्ण	छात्रों के लिए	जैन पाठावली भाग १
" " " "	छात्राओं के लिये	कन्या सुबोधिनी भाग १

पं. बदरीनारायण शुक्ल
(परीक्षाधिकारी)

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी (अहमदनगर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोल जय महावीर भगवान्

रचयिता :—पं. बलदेवमिश्र, "सिद्धान्त विशारद" (गोरखपुरीय)

कर मन ! मनस्विता का भान ।
बोल जय महावीर भगवान् ।।

चैत शुदी तेरस वासर त्रिशला के उदर से आकर,
अपूर्व--अनुपम--दिव्य--रूप जगती में पाकर ।
अघ-पुञ्ज-भूतल का हरने उर में करुणा लाकर,
महावीर ने जन्म लिया है, "चौविसवाँ तीर्थङ्कर" ।

धर मन ! सु-समता का ध्यान।
बोल जय महावीर भगवान् ।।

सत्य-अहिंसा की चिनगारी जिसने थी छिटकाई,
धर्म-कर्म की धुंधली राहें उजली कर दिखलाई ।
अनेकान्त और स्याद्वाद की ऐसी ज्योति जगाई,
उज्वलता में जिसकी, जीवों ने जीवन-निधि पाई ।

वर मन ! महानता विज्ञान ।
बोल जय महावीर भगवान् ।।

आडम्बर का वेष नहीं अरु लेश-मात्र नहिंअहंकार,
केवल ज्ञानी, केवल दर्शी, नमन उन्हें मेरा शतबार ।
दया के सागर ! सब गुण आगर ! निर्विकार मनके उदार,
चरणों में नतमस्तक होकर करता हूँ जय नमस्कार ।

टेर मन ! वर्द्धमान जिनमान ।
बोल जय महावीर भगवान् ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ ४ से)

युनिवर्सिटी में अर्धमागधी के अध्ययन की स्थापना की जाए तो अर्धमागधी और जैन साहित्य की उपासना से सम्बन्धित उपलब्ध विद्वानों को इस कार्य में लगाया जा सकता है। ऐसे प्रत्येक उच्च अध्ययन के केन्द्रों में अभ्यासी तैयार हो सकते हैं। यदि उनका एम. ए. या पी. एच. डी. का अभ्यास हुआ हो तो उन्हें गौरवपूर्ण स्थान भी मिल सकता है। बाद में वे अलग-अलग स्थानों के कालेजों और शिक्षण संस्थाओं में अर्धमागधी तथा जैन साहित्य के अध्ययन को वेग दे सकते हैं। संशोधन संस्थाएँ (रिसर्च इंस्टीटयूट) तथा साहित्य प्रकाशन संस्थाएँ स्थापित कर अंग्रेजी या अन्य भाषाओं में इस से सम्बन्धित कोई ग्रन्थ हो तो उसका प्रकाशन कर प्रचार किया जाय। आज के अनेकों प्रश्नों के निराकरण में उनका प्रकाशन उपयोगी हो सकता है।

जिनदास गणि, सिद्धसेन दिवाकर, जिनभद्राचार्य हरिभद्राचार्य, अभयदेव, हेमचन्द्राचार्य वगैरह आचार्यों के ग्रंथों का सांगोपांग अध्ययन होना बाकी है इनकी सांस्कृतिक विरासतों को जानना और जानकर सुरक्षित रखना, यह जैनियों का कर्तव्य है, यह ऋण अदा करने के लिए जैन समाज को बहुत कुछ करना चाहिये। जैन समाज विशेष समृद्ध है एवं समर्थ है; यह कार्य उठाने में वह गौरव का ही अनुभव करेगा।

जैन समाज में तीर्थोद्धार की तरह ग्रंथोद्धार को भी महत्त्व दिया गया है। तीर्थोद्धार स्थूल तरीके से देखा जा सकता है, इसलिए इसमें अपार धनराशि खर्च की गयी है। परन्तु ज्ञानोद्धार सूक्ष्म है, इसलिए उसका मूल्य और भी कई गुना अधिक है। परन्तु आंखों से नहीं देखा जाता इसलिए इस ओर उपेक्षा हुई है। इस का सही महत्त्व हम जानें और इस दिशा में सही कदम उठाएँ तो इससे हमारी प्राचीन सांस्कृतिक समृद्धि के हम उत्तम फल पा सकेंगे।

जैन धर्म की एक खास विशेषता है। कार्तिक सुदी पंचमी को जैनी ज्ञान पंचमी के रूप में मानते हैं, और उसका महत्त्व जैन धर्म की दृष्टि से काफी बड़ा है। जैनेतर उसे पर्व नहीं मानते और कहीं भी दूसरे स्थान में ज्ञानोद्धार के लिये इतना महत्त्वपूर्ण पर्व दृष्टिगोचर नहीं होता।

ज्ञानपंचमी का सच्चा महत्त्व तो ज्ञानोद्धार के लिए संस्था की स्थापना में ही है। स्थूल रूप से ज्ञानपंचमी मनाने के साथ अपना धर्म समझ कर उच्चतर अभ्यास के लिए इस दिन किसी संस्था की स्थापना का विचार हम करें तो यह पर्व सफल हो सकता है।

आज के युग में शिक्षा का अत्यंत महत्त्व है यह हम सब जानते हैं। तिरुपति के जैसे विशाल मंदिरों में भी कॉलेज वगैरह बडी-बडी शिक्षण संस्थाएँ प्रारंभ हुई हैं। अन्यत्र भी ऐसे फंडों का उपयोग शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करने में हो रहा है। परंतु जैन समाज में अभीतक अर्धमागधी व जैन साहित्य के सांगोपांग अध्ययन का विचार नहीं किया गया है। हमें इसे तत्काल अमल में लाना चाहिए, ताकि हमारी संस्कृति की अमूल देन की रक्षा कर सकें। आज की यह परम आवश्यकता है। इससे केवल जैन संस्कृति का प्रवाह ही जीवित रहेगा, यह बात नहीं, अपितु समग्र भारतीय सस्कृति को यह पुष्ट करने में मदद करेगी। हमारे देशमें जो नवोत्थान हो रहा है, ऐसे समय में सांस्कृतिक प्रवृत्ति की योजना हमें सबल बनायेगी।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—० समाचार ०—

म. प्र. स्था. जैन युवक संघ के अधिवेशन और शिबिर के लिए आमंत्रण भेजिये

शाजपुर—म. प्र. स्थानकवासी जैन युवक संघ का तृतीय अधिवेशन २८,२९ जुलाई सन १९६२ को उज्जैन में सम्पन्न हुआ था जिसमें अन्य समाजोपयोगी महत्वपूर्ण निर्णयों के साथ ही दो वर्षों के लिए पदाधिकारियों के निर्वाचन सम्पन्न हुए थे। अधिवेशन को सम्पन्न हुए दो वर्ष का समय होने वाला है। संघ के विधानानुसार अब किसी अनुकूल स्थल पर अधिवेशन आमंत्रित कर नवीन पदाधिकारियों के चुनाव किये जाने आवश्यक हैं।

म. प्र. में जिन स्थानों पर किसी भी संत सतियां जी के चातुर्मास नहीं हो सकें, उन स्थानों पर पर्यूषण के दिनों में स्वाध्यायी, कार्यकर्ताओं को भेजा जाता है जिसके लिये लगभग ५१ महानुभावों के नाम प्राप्त हो चुके हैं। अब यह आवश्यक है कि पर्यूषण के दिनों में की जाने वाली प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में इन स्वाध्यायी कार्यकर्ताओं को मार्गदर्शन देने हेतु तथा युवकों को जैन धर्म के इतिहास, दर्शन, आचार पद्धति आदि के सम्बन्ध में जानकारी देने हेतु एक "जैन युवक शिक्षण शिबिर" आयोजित किया जावे।

अतः म. प्र. स्था. जैन युवकसंघ के सभी पदाधिकारियों, परामर्शदाताओं, कार्यकारिणी के सदस्यों तथा स्थानीय युवकसंघ के सभी पदाधिकारियों व कार्यकर्ताओं से निवेदन है कि वे इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए आमंत्रण पत्र भिंजवाने की कृपा करें जिससे प्राप्त आमंत्रणों पर विचार कर अधिवेशन एवं शिक्षण-शिबिर के स्थल एवं निश्चित तिथियों की घोषणा की जा सके।

विनीत—

मनोहरलाल जैन — प्रधान मंत्री
सागरमल जैन — अध्यक्ष

शुजालपुर में सेठ बापूलालजी का निधन

अखिल भारतीय स्थानकवासी जैन कान्फरन्स के उपाध्यक्ष श्री सौभाग्यमलजी जैन के पिता श्री सेठ बापूलालजी का स्वर्गवास दि. १५-३-६४ को शुजालपुर में हो गया। उनकी उम्र ८२ वर्ष की थी। सेठ साहब बैल गाडी से अपने गाँव पर जा रहे थे कि मार्ग में उन्हें पक्षाघात हो गया और काफी उपचार के पश्चात भी उनका निधन हो गया। आप अपने पीछे पुत्र, पुत्री, पौत्र, प्रपौत्रिओं का पूरा-पूरा परिवार छोड गये हैं।

सेठ साहब धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में हमेशा अग्रगण्य रहते थे। वे स्थानीय समाज के अध्यक्ष थे। उनके निधन से स्थानीय जैन समाज को जो गम्भीर क्षति पहुंची है, उसकी पूर्ति का होना संभव नहीं है।

आज दिनांक १६-३-६४ को सन्मान के साथ प्रातःकाल अंत्येष्टि क्रिया सम्पन्न हुई। सैकडों नागरिक परिचित सम्बन्धी शवयात्रा में शरीक हुए। शहर में इस निधन से सर्वत्र शोक छा गया तथा बाजार बन्द रहा।

मदनसिंह जैन

आभार-प्रदर्शन

मेरे पूज्य पिताजी श्री बापूलालजी के निधन के कारण मेरे मित्रों, स्नेहीजनों, संबन्धियों की ओर से कई संवेदना संदेश मुझे प्राप्त हुवे हैं जिनकी संख्या काफी अधिक है। उन सब मित्रों, स्नेहीजनों, सम्बन्धियों का पृथक् २ पत्र द्वारा आभार मानना कठिन है। मैं इसके द्वारा उन सब सज्जनों का आभार मानता हूँ। निश्चय रूप से इन संवेदना संदेशों से मुझे धैर्य, शान्ति तथा साहस मिला है।

यदि मैं सब सज्जनों को पृथक् २ पत्र न भेज सकूं तो, मुझे क्षमा करेंगें ऐसी मैं आशा करता हूँ।

—सौभाग्यमल जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—: आजीवन सदस्य :—

१	के. च. भटेवडा	राहू (पूना)
२	ता. रां. मा. मुन्द्राबाईजी	आष्टा
३	इन्दरबाईजी	,,
४	श्रीमती रा. डागा	भोपाल
५	जी. ते. ललवानी	श्रीरामपुर
६	मे. ध. जैन	मगरदा
७	कि. चौधरी	शुजालपुर
८	गें. इ. जैन ,,	,,
९	क. दी. जैन ,,	,,
१०	सू न. जैन ,,	,,
११	रा. चौ की ,,	,,
१२	का. ही. जैन ,,	,,
१३	ज. खो. डोशी	इन्दौर
१४	इ. मू. चोपडा	भामाठाण
१५	मे. टाटिया	सारंगपुर
१६	प्रे. जी. वेदमुथा	वर्धा
१७	दे. भि. काकरिया	राहू
१८	श्री न. पितलिया	सीहोर
१९	के. घी. बाफणा	नागपुर
२०	क. लं. राका	शुजालपुर
२१	स. व. जैन	शाजापुर
२२	सु. जी. सिदरसीवाला	,,
२३	वैं. र. स. मुणोत	वांबोरी
२४	भं. के. जोगड	बोदवड
२५	झु. ध. मुथा	अहमदनगर
२६	अ. मा. गुगले	पाथर्डी
२७	ना. भ्र. र. भंडारी	पीपला
२८	सौ. गु. भ्र. सि. बोरा	अ.नगर
२९	ब. झं. कोठारी	,,
३०	ला. पा. मा. कोंडाबाईजी	पाथर्डी
३१	सौ. च मो. लुणिया	जंजीरा
३२	मि. रा. भटेवडा	केडगांव
३३	फ. मृ. शिंगी	नेवासा
३४	भा. खु. गांधी	आश्वी
३५	ना. क. छाजेड	चकलाआंबा
३६	उ. बा. देसरडा वकील	चाळीसगांव
३७	भ. झु. गुगळे	करंजी
३८	चां. भ. मुणोत	वांबोरी
३९	कि. बी. पटवा	पाथर्डी
४०	छो ने गुगळे	लोहसर
४१	ही. भ्र. न. सुरपुरिया	पूना
४२	रा. भ्र. म. कोठारी	सतारा
४३	भी. मा. कर्नावट	सिरसमार्ग
४४	बा. डा. वद्धानी	अमरावती
४५	सु. भ्र. मो. मुथा	देवळाली
४६	प. कि. छाजेड	म्हसे
४७	मू. रि. संकलेचा	मजलेगांव
४८	हां. भ्र. च. शिंगी	अहमदनगर
४९	चं. ध. वैद	चांदा
५०	सु. सु. कुचेरिया	पाथर्डी
५१	वि. शा. संकलेचा	अमरावती
५२	न. मु. बोरा	पीपला
५३	चाँ. मू. चंगेडिया	बरोरा
५४	एक गुप्तदानी सद्गृहस्थ	अ.नगर
५५	भी. के. ललवानी	मनमाड
५६	ब. मा. गांधी	पिंपलगांव
५७	प्रे. भ्र. ज. बोरा	,,
५८	मो. चु. मुथा	वांबोरी
५९	सौ. रू. सू भ्र. झुंबरलालजी	,,
६०	मू. द. चंगेडिया	सोनई
६१	पू. मो. नाहर	घोडेगांव
६२	ने. ब भटेवडा	वांसदा
६३	ब. च. सिंगी	देवळाली
६४	श्री. रा. मुथा	,,
६५	झु. पू. बाफना	श्रीरामपुर
६६	ने. गु. मुथा	बेलापुर
६७	चु. पू. तातेड	,,
६८	मो. र. हिरन	,,
६९	के. मां. संचेती	चिंचवड
७०	ह. सो. मुनोत	निंबारी
७१	गं. मो. कोठारी	पूना
७२	क. के. कांकलिया	पूना
७३	मो. ल. खिंवसरा	,,
७४	र. मा. ओस्तवाल	सांगली
७५	छो ब. गुगळे	वांबोरी
७६	इं. गं. कोठारी	,,
७७	ने, झुं. सुराणा	राहुरी
७८	चां. मो. भंडारी	घोडनदी
७९	घू. भि. फुलफगर	घोडनदी
८०	चं. शो. गादिया	,,
८१	चां. सु. कोठारी	बेलापुर
८२	रा. पो. गांधी	रस्तापुर
८३	जे. शां. संघवी	उत्राण
८४	भू. रा. कोठारी	केडगांव
८५	चु. भ्र. प्रे. देसरडा	न्हावरा
८६	कां. जा. नाहर	आलेगांव
८७	प. ही. कटारिया	वाल्की
८८	फू. बा. बाफना	राहुरी
८९	मा. गं. चोरडिया	बोरी
९०	पु. शो. चोरडिया	,,
९१	रा. ल. भंडारी	सिरसाला
९२	ध. द. संचेती	पूना
९३	ज. चु. सांड	रहाता
९४	ह. न. गांधी	श्रीरामपुर
९५	झुं. भ्र. ही. भलगट	गुलबर्गा
९६	ब. चं. गुगले	मलाड
९७	र. ही. लूंकड	श्रीरामपुर
९८	कु. न. गांधी	,,
९९	मु. लुणावत	धामणगांव
१००	शांतिलालजी चौवरी	राजगढ़
१०१	न. शा. भाई	मलकापुर
१०२	ही. ल. मुथा	लक्ष्मेश्वर
१०३	सि. र. भुरा	सिवनी
१०४	चं हि. कुंकुलोल	कोल्हार
१०५	वि. पु. राकेचा	,,
१०६	ना. भ्र. रा. गुगले	,,
१०७	स. म. रांका	,,
१०८	फ. ज. गुगलिया	,,
१०९	मो. झुं. रांका	चिंचोली
११०	प. का. रांका	,,
१११	हु. च. समदडिया	अस्तगांव
११२	भा. झुं. गुगले	पाथर्डी
११३	उ. ह. कातरेला	अमरावती
११४	कां. मा. गांधी	मुंबई
११५	जे. मा. कटारिया	खरवंडी
११६	जे. धां. कटारिया	,,
११७	ह. त. गांधी	बाम्बोरी
११८	मो. द. डोशी	अ. नगर
११९	जी. मे. बोरा	वाम्बोरी
१२०	उ. बा. धाडीवाल	संगमनेर
१२१	मो. ला. मुणोत	भिंगार
१२२	भे. दी. गांधी	लोणावला
१२३	ज. सु. गुजराथी हलवाई	मालेगांव
१२४	मो. ज. ओस्तवाल	वाम्बोरी
१२५	ने. घ. कटारिया	खरवंडी
१२६	खु. मि. मुणोत	करंजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२७	श्री. बं. ने. पारख	संगमनेर
१२८	,, ता. रा. चोरडियाम्हा.	पिंपलगाव
१२९	,, पु. को भंडारी	कडा
१३०	,, वु. गु. मुथा	घाटसिरस
१३१	,, गीगीबाई फिरोदिया	अ. नगर
१३२	,, न. धो. कटारिया	लोणी
१३३	,, ह. अ. चोरडिया	अकोलनेर
१३४	,, सौ. रु. झुं. कटारिया	चांदा
१३५	,, पु. प. मुथा	घाटसिरस
१३६	,, मु. भ. ता. डोशी	अ. नगर
१३७	,, मा. ध. बोथरा	खरवंडी
१३८	,, स. मो. लुणावत	जालना
१३९	,, पु. मा. कटारिया	इचलकरंजी
१४०	,, ही. रा. भटेवडा	पूना
१४१	,, ही. क. खाटेड	पूना
१४२	सौ. शांताबाई मो. नाहर	पूना
१४३	श्री. रा. शो. टाटिया	पूना
१४४	,, फू. तु. मालू	खडकी
१४५	,, मा. रा. बाफना	वडगांव
१४६	,, ध. ही. बाफना	वडगांव
१४७	,, ह. रा. बाफना	वडगांव
१४८	श्री. आ. स. चोरडिया	खेड
१४९	,, दी. ध. चोरडिया	पिंपळवंडी
१५०	,, रा. ला. चोरडिया	बोरीबुद्रुक
१५१	,, भा. कुं. गांधी	संगमनेर
१५२	,, चु. र. भंडारी	अश्वी
१५३	,, द. रा. गांधी	प्रवरासंगम
१५४	,, ग. न. चोपडा	खांबा
१५५	,, शो. च. भटेवडा	राजुरी
१५६	,, मि. मो कोठारी	अहमदनगर
१५७	,, फ. आ. फिरोदिया	साकूर
१५८	,, जा. भि. भंडारी	मंचर
१५९	,, फ. रा. कटारिया	संगमनेर
१६०	,, शां प्रे. कटारिया	अहमदनगर
१६१	" उ. श. चोपडा	साकूर
१६२	" च. लू. हिरण	साकरवाडी
१६३	" बं. फ. बाफना	साकूर
१६४	" के. बं. कटारिया	अ. नगर
१६५	,, क. बु. फिरोदिया	साकूर
१६६	,, धा. जे. शाह	यवतमाल
१६७	,, ही. जे. चोरडिया	पूना
१६८	,, ने. चां. शिंगी	घोरपडी
१६९	श्री. रू. मा. नाहर	राजणगांव
१७०	,, श. भा. दूगड	अमलनेर
१७१	,, कोट व. स्था. संघ	मुंबई
१७२	,, मोहनलालजी कामती	इन्दौर
१७३	,, भा. छ. तुरखिया	इन्दौर
१७४	,, भ. शा. वाकड	इन्दौर
१७५	,, शि. जो. सर्राफ	देवास
१७६	,, र. भु. बजाज	,,
१७७	,, इ. सांड	बडावदा
१७८	सौ. मां. लसोड	प्रतापगढ
१७९	श्री. वि. ल. गेलडा	बोदवड
१८०	,, स्वा. नै. भटेवडा	चाकण
१८१	,, व. स्था. श्रा. संघ	वदनोर
१८२	,, कि. मि. भलगट	भंडारा
१८३	,, कि. झु. भलगट	,,
१८४	,, कि. जं. भलगट	,,
१८५	,, ह भि. बाफना	पांडुरणा
१८६	,, अ. मो. डांगी	भीलवाडा
१८७	,, भी. क. संचेती	नांदूरा
१८८	,, मो क. झामड	पीपलगांवराजा
१८९	,, ज. खो. डोशी	अमरावती
१९०	,, नेमानाथ जैन	देवास
१९१	,, का. पू. जैन	आगर

To

श्रीमान

मुकाम

पोस्ट

जिल्हा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ अर्हम्

सुधर्मा

श्री ति. र. स्था. जैन धा. प. बोर्ड, पाथर्डी की मुखपत्रिका

वर्ष ५) मई १९६४ (अंक १०

इस अंक में

१	श्री वीरस्तुति	श्रीमन्नन्दी सूत्र से	१
२	भगवान् महावीर और उनका संघ	बदरीनारायण शुक्ल	२
३	भगवान् महावीर की शिक्षा	डा. कुन्तलकुमारी	३
४	जागे देश हमारा (काव्य)	श्री ज्ञान भारिल्ल	९
५	भगवान् महावीर और अहिंसा	श्री सौभाग्यमलजी जैन	१०
६	चरम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर	पं. मुनिश्री भानुऋषिजी म.	१३
७	भगवान् महावीर	श्री मधुकान्ता जैन	१६
८	सूत्रकृतांग के कुछ सुभाषित	श्री बन्सीलालजी कोठारी	१९
९	अजमेर के प्रांगण में श्रमणी-वृन्द का अभूतपूर्व संगठन	बदरीनारायण शुक्ल	२१
१०	विविध समाचार	संकलित	२५
११	परीक्षा बोर्ड (पाथर्डी) की आगामी परीक्षाएं	बदरीनारायण शुक्ल (परीक्षाधिकारी)	२८

[सम्पा]दक—पं. बदरीनारायण शुक्ल-पं. शोभाचंद्र भारिल्ल—प्रबन्ध सम्पादक—पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवर्ण नामावली

सदुपदेशक

परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज

संस्थापक–दानवीर शाह केशवजी जवेरचन्द, जामनगरवाले, जालना

आधारस्तम्भ

१ श्री. चन्द्रभानजी रूपचंदजी डाकलिया, श्रीरामपुर (नगर)
२ „ केशरचंदजी कचरदासजी बोरा आश्वी „
३ „ सूरजमलजी कस्तूरचन्दजी गांधी अहमदनगर
४ „ माणकचंदजी किसनदासजी मुथा „

संरक्षक

१ श्री. तिलोकचंदजी खूबचंदजी गुंदेचा चांदा (नगर)
२ „ फकीरचंदजी उत्तमचंदजी गुगले चिचोंडी शिराळ „
३ „ माणकचंदजी उत्तमचंदजी गुगळे पाथर्डी „
४ श्रीमती शक्करबाई रतनचंदजी सुराणा द्रुग (मध्यप्रदेश)
५ श्री. पन्नालालजी गुलराजजी गांधी मावावाले पूना
६ स्व. श्री.पन्नालालजी गुगले पाथर्डी के स्मारक
७ श्री. मगनीरामजी फकीरचंदजी दुधेडिया श्रीरामपुर
८ सौ. धोंडाबाई भ्र. उत्तमचंदजी संचेती पूना
९ श्री, कुन्दनमलजी कस्तूरचंदजी बोरा „
१० नवलमलजी सरदारमलजी पुंगलिया नागपुर
११ भिकमदास पोखरणा चै. ट्रस्ट पूना
१२ श्री. उदयरामजी हरकचन्दजी रैदासणी बीबी

सहायक सदस्य

१ श्री. उत्तमचंदजी कचरदासजी भटेवड़ा राहू (पूना)
२ „ बंशीलालजी अमोलकचंदजी भटेवड़ा „ „
३ „ माणकचंदजी भीवराजजी भटेवड़ा „ „
४ सौ. श्रीकुंवरबाई भ्र. मूलचंदजी भटेवड़ा „ „
५ श्री. प्रतापमलजी फूलचंदजी बनवट आष्टा
६ सौ. उमरावबाई भ्र. हस्तमलजी जैन शाजापुर
७ श्री. केशरीमलजी बापूलालजी जैन शुजालपुर
८ „ रंभाबाई भ्र. गणपतसिंहजी जैन „
९ सौ. तेजकुंवरबाई धर्मपत्नी डालचंदजी चौधरी „
१० श्री. मोजीलालजी भीमसिंहजी जैन „
११ „ बीजराजजी जुगराजजी संचेती मलकापुर
१२ „ तेजमलजी भीवराजजी संचेती „
१३ श्री. जवरीबाई भ्र. धूलजीभाई शाजापुर
१४ श्री. हिंमतलालजी सा. जैन शाजापुर
१५ „ कनकमलजी चुन्नीलालजी गांधी चाँदा
१६ „ नारायणदासजी मोहनलालजी मंडलेचा येवला
१७ „ भागूबाई भ्र. चंदनमलजी गादिया बेलापुर
१८ „ मगनलाल सुंदरजी शाह अमरावती
१९ „ हेमकुंवरबाई भ्र. कालीदासजी शाह सातारा
२० „ मयाशंकर चत्रभुज शाह अमरावती
२१ „ शान्तिलाल पोपटलाल काठेड अहमदनगर
२२ श्री. कचरदास मोहनलाल लोढा अहमदनगर
२३ „ गेंदमल राजमल जैन शुजालपुर
२४ श्री. लाभचन्दजी गुलाबचन्दजी चोरडिया हिंगणघाट
२५ „ कुंदनमलजी लुंकड की सुपुत्री सायरबाईजी बेंगलोर
२६ „ सिमरतमलजी चुनीलालजी मुथा वांबोरी
२७ „ धनराजजी मोतीलालजी कांकरिया पूना
२८ „ खुशालचंद संपतलाल भूरट घोड़नदी
२९ „ मोतीलालजी मोहनलालजी सिंगी पूना
३० „ मिश्रीलालजी हस्तीमलजी दुगड घोड़नदी
३१ „ कचरदासजी प्रकाशमलजी भलगट अहमदनगर
३२ „ सुखरामजी प्रेमराजजी मुथा बेलापुर
३३ „ सौ. शांताबाई बाबूलालजी रैदासनी नशीराबाद
३४ „ ताराचंदजी भीवराजजी भटेवडा राहू (पूना)
३५ „ तुलसाबाईजी कोचर हिंगणघाट
३६ „ जसराज कालाभाई लाठिया मुर्तिजापुर
३७ „ बापूलाल प्रेमचंद संघवी अकोला
३८ „ शाह नागजी पानाचंद बारवडा रायपुर
३९ „ रूपचंदजी गोकुलचंदजी कोठारी कोपरगांव
४० „ चन्दनमल नन्दरामजी गांधी श्रीरामपुर
४१ „ दलीचन्द गुलाबचन्दजी पारख नागपुर
४२ „ उत्तमचन्दजी चुनीलालजी मुथा वाम्बोरी
४३ „ कचरदास रूपचंदजी कर्नावट इचलकरंजी
४४ „ हंसराजजी गुलाबचंदजी लुणावत लोणावला
४५ „ गेंदालालजी मोतीलालजी जैन ट्रस्ट इन्दौर
४६ „ राजमल नन्दलाल मेहता चै. ट्रस्ट भुसावल
४७ सौ. सुगनबाई चांदमल जैन देवास

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के लिए

प्रकाशक व मुद्रक पं० बदरीनारायण द्वारकाप्रसाद शुक्ल

मुद्रण व प्रसिद्धिस्थल श्री सुधर्मा मुद्रणालय ८३२ जना कापड बाजार पाथर्डी. जि० (अहमदनगर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की ज्योति जगाने हेतु विविध निबन्ध–प्रबन्ध माला स्वरूप धार्मिक आध्यात्मिक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक **मासिक पत्रिका।**

सुधर्मा

मूल्य
वार्षिक ६–००
१ अंकका ०–५०
卐
प्रत्येक १५ तारीख को प्रकाशित होगी।

सुष्ठु धर्मः समाख्यातो वीरेण परमार्हता ।
सर्वत्र तत्प्रचाराय सुधर्माख्या सुपत्रिका ॥

वर्ष ५) **१५ मई १९६४** **(अंक १०**

卐 श्री वीरस्तुति 卐

मूल—जयइ सुआणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरू लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ॥
भद्दं सव्वजगुज्जोयगस्स, भद्दं जिणस्स वीरस्स ।
भद्दं सुरासुरनमंसियस्स, भद्दं धूयरयस्स ॥

छाया—जयति श्रुतानां प्रभवः, तीर्थकराणामपश्चिमो जयति ।
जयति गुरुर्लोकानां, जयति महात्मा महावीरः ॥
भद्रं जगदुद्योतकस्य, भद्रं जिनस्य वीरस्य ।
भद्रं सुरासुरनमंस्यितस्य, भद्रं धूतरजसः ॥

अर्थ—श्रुत–शास्त्रों के कारण, (प्ररूपक) तीर्थङ्करों में अन्तिम, (वर्तमान अवसर्पिणी की दृष्टि से) और लोकगुरु महात्मा–भगवान् महावीर जयवान् हों।

सकल संसार के प्रकाशक, (भावप्रकाशप्रदाता) देव–दानवादि से नमस्कृत, कर्मरज से रहित श्री महावीर जिनेश्वर का कल्याण हो—भगवान् महावीर कल्याण-प्रद हों ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

☆ श्रमण भगवान् महावीर और उनका संघ ☆

सम्पादक—बदरीनारायण शुक्ल

आत्मनिर्भर परमपुरुषार्थी घोरतपस्वी महात्मा महावीर अपने अलौकिक पराक्रमसे परमात्मपद को प्राप्त किये' यह घटना लगभग ढाई हजार वर्ष की ही पुरानी है। इस ऐतिहासिक महापुरुष ने स्वार्थ-त्याग और आत्मार्थस्वीकार का जो अद्भुत आदर्श प्रस्तुत किया वह मानव-महात्म्य को सर्वथा सुस्पष्ट कर रहा है। ऐसे माहात्म्य के सामने ही देव और महादेव भी नत-मस्तक होते रहते हैं।

भगवान् महावीर ने अपनी अनुभूति के आधार पर परोपकाराय जो अमूल्य उपदेश दिये हैं उनका आचरण करनेवाला निःसन्देह उस परमपद को प्राप्त कर सकता है जिसे स्वयं महावीर ने प्राप्त किया। क्योंकि साधना की विशुद्धि साधक के साध्य को अवश्य सिद्ध करने में समर्थ होती है।

साधक की पात्रता के अनुसार साधना के दो भेद भगवान् ने बताये, प्रथम साधना प्रथम कोटि के साधकों—संयमी वर्ग के लिए और दूसरी साधना द्वितीय कोटि के साधकों—गृहस्थ वर्ग के लिये बताई गई। संयमी साधक अपनी साधना में समग्रता को लिए होने के कारण साधु कहा जाता है जब कि गृहस्थ साधक की साधना में अपूर्णता होने के कारण वह संयमासंयमी अर्थात् श्रावक कहलाता है। देश-व्रती श्रावक की साधना सर्वव्रती साधु की साधना की दृष्टि से अणु है, किन्तु दोनों प्रकार के साधकों को अपनी साधना के आधार से आत्मकल्याण रूप समान उद्देश्य को लक्ष कर ही प्रवृत्ति करनी होती है। यह नहीं कि सर्व साधक का उद्देश्य सर्व मोक्ष है तो देश साधक का उद्देश्य अल्पमोक्ष हो सकता है। जैसे एक ही उद्दिष्ट स्थल पर पहुँचने के लिए विविध साधनों से प्रयाण करनेवाले यात्री गतिमान साधनों की प्रगति-अनुसार अनुक्रम से पहुँच सकते हैं, पर सभी का लक्ष्य गन्तव्य स्थल पर पहुँचने का ही होगा, न कि मध्य तक पहुँचकर रुकने का। इसका अर्थ यह भी नहीं होगा कि प्रत्येक साधु सभी श्रावकों से पहले मोक्षगामी होंगे। किन्तु जिस साधक की आत्मा के साथ जितना गाढा कर्मबन्ध होगा उस साधक को उन कर्मों के विशटन—पृथक्करण में उतना ही अधिक प्रयत्न अपेक्षित रहेगा। यह अवश्य है कि साधन की विशुद्धि और प्रबलता के अनुसार कर्मक्षय की गति में भी उतनी ही तीव्रता आयेगी। सारांश यह कि दोनों श्रेणियों के साधकों की कर्मस्थिति और साधन विशुद्धि के अनुसार मोक्ष-प्राप्ति का तारतम्य होगा।

भगवान् महावीर ने साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका रूप से जिस चतुर्विध संघ की स्थापना की, उसे संसार का एक सुधरा हुआ विशुद्ध वर्ग मानने में आज भी किसी को हिचकिचाहट नहीं होती, काश यह वर्ग अपने साधनों में किसी किस्म की विकृति नहीं आने देता। वीतराग-समुपदिष्ट पथ के पथिक को आदरणीय और वन्दच न माना जाय तो और किसे यह श्लाघ्यपद प्राप्त हो सकता है? परन्तु जब इस संघ के सभासदों में भी सर्वसाधारणवत् राग-द्वेष की प्रचुरता ही दृष्टिगोचर हो रही हो—तो आज की (वैज्ञानिक युग की) दृष्टि और स्थिति से प्रभावित जन-समुदाय इस वर्ग पर वैसी श्रद्धा कैसे रखने लगे? जहाँ पारस्परिक वैमनस्य इतना अधिक बढ रहा हो कि एक साधु-समुदाय दूसरे निजी साधु-समुदाय को ही सर्वथा हेय की दृष्टि से देखने लगे, इसी प्रकार एक गृहस्थवर्ग दूसरे (अपने ही) साधु वर्ग में अत्यंत पृथक्त्व की भावना रक्खे, तो क्या इसका प्रभाव दूसरों पर नहीं पडेगा? इसी व्यथा से व्यथित होकर कई सरल आत्माएँ संघ की भेद-नीति को सहन करने में असमर्थ होने से ऐक्य योजना को पुरस्कृत करती हैं। उनके प्रयास में जितनी सफलता प्राप्त होगी उतना ही भगवान् महावीर का संघ आदर्श और चिरस्थायित्व को धारण कर सकेगा। • • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* भगवान् महावीर की शिक्षा *

[भाषणकर्त्री—श्रीमती उत्कल भारतभूषण डा० कुन्तलकुमारी देवी]

(महावीर जयन्ती २४५६ के शुभ प्रसंग पर दहेली में दिये गये अंग्रेजी भाषण का हिन्दी अनुवाद)

सब से पहले मैं बिना किसी संकोच के स्पष्टतया यह बतला देना चाहती हूँ कि मैं एक अजैन व्यक्ति हूँ परन्तु फिर भी भारतवर्ष के महान् नेता स्वामी महावीर के प्रति मेरे हृदयमें भक्ति-भाव की जो मात्रा है वह बहुत चढी-बढी है ।

संसार इस समय एक सत्यको—वस्तुतः एक महान् सत्य को—अनुभव करने के लिये जागृत हो रहा.है, जिस के मूल तत्त्व (सिद्धान्त) भारत माता के हृदय में शताब्दियों से गुप्त पडे हैं । लोगों को इन तत्त्वों के जानने और उनकी विस्तृत व्याख्या करने का कोई बहुत बडा अवसर प्राप्त नहीं हुआ, उन्होंने इसके लिये न तो इच्छा ही की और न आवश्यक बलिदान—स्वार्थत्याग—ही किया । वे केवल इसे समय तथा शक्ति का दुरुपयोग ही समझते रहे, परन्तु अब समय बदल गया है । संसार ने शताब्दियों के दुःख, कष्ट तथा विषयवासनाओं की पूर्ति-द्वारा हर्ष और आनन्दकी निरर्थक चेष्टा के बाद महान् सत्य के उन सिद्धान्तों की ओर अपनी आँखें फेरली हैं, जिन पर सैकडों वर्ष हुए, वर्तमान वैज्ञानिक युग के प्रारंभ से पहले, आत्मसंयमी, सर्वसंगत्यागी, दिव्यदृष्टि, सृष्टि में सर्वानन्दमयी, पूर्ण तथा स्वतंत्रात्मा, तीर्थङ्कर, महान् तथा सुकृती, श्रेष्ठ और दिव्य स्वामी महावीर ने आचरण और उपदेश किया था, और जो आज भी विज्ञान के सारभूत विषयों तथा मानवीय ज्ञान के साथ टक्कर लेने की वास्तविक शक्ति को लिये हुए हैं ।

महान् सत्यके उन्हीं सार सिद्धान्तों पर आज कुछ विचार किया जाता है ।

वस्तुतः सत्य संसार की मूल वस्तु है, सत्य पर ही अखिल सृष्टि निर्भर है और सत्य ही हमारा अंतिम लक्ष्य है और वह सत्य है स्वात्मानुभव । यह स्वात्म—अनुभव, जिसे हजरत ईसा ने कहा है कि "Know Thysell" "अपने आपको जानो" कदापि प्राप्त नहीं होगा जबतक कि हम उन महान् सिद्धान्तों का अनुष्ठान नहीं करेंगे जो कि संख्या में तीन हैं । इनमें से पहला सिद्धान्त है अहिंसा, दूसरा नश्वर वासनओंका जीतना, और तीसरा है आत्माका परमात्म पद को प्राप्त होना अथवा सिद्ध करना ।

अब मैं इन तीनों को एक एक करके लेती हूँ:—

१ अहिंसा

अहिंसा के विषय में मैं कह सकती हूँ कि पृथिवीतल पर कोई भी धर्म ऐसा नहीं है जिसने अहिंसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का व्यवहार अथवा उसके व्यवहारका उपदेश ऐसी पूर्णता तथा उत्तमता के साथ किया हो जैसा कि जैनिओं के धर्म (जैनधर्म) ने किया है। हम इसके साथ ही बौद्धधर्म को देखते हैं जिसका सिद्धान्त इस विषय में वस्तुतः जैनधर्म के समान है, कदाचित् मनुष्यके अन्तिम लक्ष्य और कर्मसिद्धान्त की अपेक्षा दोनों में थोडा भेद है; परन्तु क्या यह सत्यार्थ नहीं है कि बौद्ध धर्म-अहिंसा में जो सत्य संनिहित है उसके व्यवहार की सीमा से दूर चला गया है? बौद्ध धर्म में यद्यपि सभी छोटे छोटे जीवों के लिये भी दया करने का विधान है किन्तु बौद्ध लोग इस नीति का उस प्रकारसे अनुसरण नहीं करते जैसा कि जैनधर्ममें इसका अनुष्ठान किया जाता है। सभी बौद्ध देशों में लोग मांस ओर मछली खाते हैं और इस प्रकार वे अहिंसा के वास्तविक आचार को दूषित करते हैं। परन्तु जैन में ऐसी विधि कहीं भी नहीं पाई जाती। यह विधि कैसे बन सकती है जब कि दूसरा ही पद नश्वर वासनाओंको जीतना है। यदि मनुष्य अपने सजातीय प्राणियों के मारने से अपने को नहीं रोक सकता तो वह नश्वर विषयवासनाओं को क्यों कर जीतेगा? लोग जैनियों की हँसी उडाते हैं—कहते हैं कि ये अति को लिये हुए हैं, ये निरर्थक घोर तपस्यायें करते हैं, ये नास्तिक हैं, ये हमारी तरह किसी एक नित्य परमात्मा पर श्रद्धा नहीं रखते। और ये ही ईश्वर को न माननेवाले लोग कहते हैं कि केवल एक खटमल को मारना भी पाप है। परन्तु मैं कहती हूँ कि हाँ, यह वस्तुतः पाप है। जो मनुष्य एक छोटे से असहाय कीडे को मारने में संकोच नहीं करते वे वस्तुतः एक दूसरे को घात करने में कोई संकोच नहीं कर सकते। इसी से तो वे ईश्वर के नाम पर हिंसा करते—बलि चढ़ाते—हैं, धर्म के नाम पर एक दूसरे का रक्तपात करते हैं। यहूदियों और मुसलमानों के धार्मिक इतिहास को देखिये! ईश्वर के नाम पर नगर के नगर उजाड़ दिये गये, बच्चों तथा स्त्रियों को घर–द्वार से बिहीन और अनाथ कर दिया गया। भारत का पुरातन इतिहास देखिये! देवताओं के नाम पर सुर-असुर मारे गये तथा निर्दयता के साथ नष्ट कर दिये गये। ये असुर उन आर्यजनों (आदिम वासियों) के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति न थे जो उस समय भारत में निवास करते थे (बाहर के) आर्यो ने उन्हें मार डाला, उनके घर-बार बर्बाद कर दिये और जो कुछ उन के पास अच्छी से अच्छी वस्तुएँ थीं वे सब छीन लीं। और इन रक्तपातों को धर्मयुद्ध कह कर महाकाव्य लिखे गये तथा ललित साहित्य की रचना की गई। असंख्य शताब्दियों से संसारके इतिहास में धर्म का आचार हिंसा के आधार पर होता रहा है और उस धर्म के व्याख्याताओं ने अपने परमात्मा को परम दयालु, विश्वप्रेमी तथा न्याय और कृपा का सातिशय अवतार बतलाया है!

ईसाई मत के सिद्धान्तों और वर्तमान ईसाई संसार के व्यवहारों को देखिए! आपको अवश्य ऐसे स्वर्गीय ईश्वर से भेंट होगी जो समस्त साधारण पातकियों को दहकती हुई अग्नि में तथा गंधक के शाश्वत नरक में डालने के लिए सदैव क्रोधातुर रहता है। ऐसे भय-संघर्षों में से अहिंसा अपना मधुर तथा कोमल मार्ग कैसे पा सकती है?

यदि संसार को स्थिर रखना है, यदि दुर्बल प्राणियों को सुरक्षित और सबल बनाना है तो अहिंसात्मक व्यवहार के अतिरिक्त दूसरा इसका और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई उपाय नहीं है। अहिंसा संसार को पोषण करने वाली माता है। यही वास्तविक बल है। यही उन मनुष्यों का पराक्रम है जिनमें पाशविकता नहीं है। यही आत्मा की वास्तविक सामर्थ्य और शक्ति है।

अब आप जगन्मूर्ति महात्मा गांधी पर दृष्टि डालिये। वे किस शक्ति के आधार पर काम करते रहे हैं, कौन से मूल सिद्धान्त पर उन्होंने अपने आप को और अपने हजारों अनुयायियों को प्राणोत्सर्ग के लिए शक्तिशाली बना लिया है? यह केवल अहिंसा है। इसी लिये मैं कहती हूँ कि संसार इस महान् सत्य का अनुभव करने के लिए जाग उठा है कि शक्ति कदापि हिंसा में नहीं किन्तु वह अहिंसा में संनिहित है। अहिंसा मानवीय धर्म का सब से अधिक दिव्य भाग है। बिना अहिंसा के कोई धर्म 'धर्म' ही नहीं हो सकता और न बिना अहिंसा के कोई ऊँचा भाव ही बन सकता है। यह अहिंसा ही वास्तविक प्रेम है, यही वास्तविक दया है, यही वास्तविक धर्म है।

२. नश्वर वासनाओं का विजय

और इस धर्म पर आचरण करने के लिए हमें सैकडों नश्वर वासनाओं तथा शारीरिक विषय-लालसाओं का त्याग करना होता है। यही कारण है कि जैनधर्म का मार्ग इतना कठिन है और जो मनुष्य उसे प्राप्त करता है वह वास्तव में एक जैन है, एक वीर पुरुष है। इच्छाओं तथा इन्द्रिय-जनित आनन्द पर विजय प्राप्त करना कोई साधारण तथा सुगम कार्य नहीं है। यह एक बड़ा भयङ्कर युद्ध है, और वही मनुष्य वास्तविक वीर—यथार्थ योद्धा—है जो इस विषय कंटकाकीर्ण मार्ग में गमन करता है। संसार नाना प्रकार के प्रलोभनों से भरा हुआ है, इन्द्रियाँ सर्वत्र आसक्तिशीलता को लिए हुए हैं—आँखें, कान, मनोवृत्तियाँ विषय सुखों का आस्वादन चाहती हैं; परन्तु एक जैनी, जो महावीर स्वामी की शिक्षाओं के सत्य का यथार्थ अनुगामी है, इन उन्मादिनी इच्छाओं का नियंत्रण करता है। क्यों?

३ परमात्मपद की प्राप्ति

यहीं से तीसरी अवस्था का आरम्भ हो जाता है। यह अवस्था परमात्मपद को प्राप्त करना है; यह अन्तरात्मा का अनुभव है।

यदि एक मनुष्य अपने आपको संसार के क्षण-वर्ती पदार्थों में भ्रष्ट करता है तो वह अपने शाश्वत लाभों को नष्ट कर देता है। बाह्य मिथ्या और आन्तर सत्य तथा यथार्थ है। इसी में आत्मा के आनन्द का वास है, और बाह्य पदार्थों में अकथनीय दुःख, बन्धन तथा प्रपंच भरे हुए हैं।

सर्वानन्दमय आत्मा को स्वतन्त्र—मुक्त—करने के लिए जैन शास्त्र यह उपदेश देते हैं कि 'संसार से अलग हो जाओ, सर्व संग का परित्याग कर दो, शरीर से भी अनुराग मत रक्खो—विषयासक्ति को छोड़ दो;—तभी तुम 'वीर' एवं 'जिन' होगे।

वीर होना तथा विषयासक्ति पर विजय प्राप्त करना कैसा सुन्दर तथा सुहावना शब्दनाद है। किसी भी दूसरे धर्म में यह सिद्धान्त ऐसे समुचित रूप से तथा सुविचारताके साथ निरूपण नहीं किया गया है।

बौद्ध धर्म में हम यह उपदेश पाते हैं कि, संसारी जीव-दुःखों से परिपूर्ण है और इन दुःखों से मुक्त होनेका साधन—अपनी इच्छाओं के नाश का नाम ही निर्वाण है। परन्तु जैनधर्म एक बिल्कुल दूसरे प्रकार से शिक्षा देता है। वह कहता है—" वीर बनो, जिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनो और अपने सर्वानंदमय स्वभाव को प्राप्त करो। आत्मा आनन्द चाहता है, उत्कर्ष चाहता है। तुम्हारा उत्कर्ष मात्र इस दुःखमय कारागार (शरीर) में रहते नहीं होगा' तुम परमात्मा हो, परमेश्वर से किसीप्रकार कम नहीं हो, तुम्हारे स्वाभाविक गुण पृथ्वीरज में नहीं पाये जाते, तुम इससे बहुत ऊँचे हो, तुम प्रताप-सूर्य हो। ऐ मर्त्य मनुष्य! भय मत करो, तुम अविनशी ईश्वर हो– शक्तिरूप से परमात्मा हो– ये केवल तुम्हारे कर्म हैं तुम्हें पुद्गल के साथ बाँधे हुये हैं और वे भी तुम्हारे कर्म –– सदाचार– ही होंगे जो तुम्हारी बेडियों को काट कर तुम्हें फिर से तुम्हारे सर्वानन्दमय स्वरूपका बोध कराएँगे।"

फिर कहिये ! यह धर्म कैसे नास्तिक हो सकता है ? परमात्मपद को प्राप्त करना, ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिसका उपहास किया जाय। यह एक गहरे विचार का मामला है।

बहुत से मनुष्यों ने अज्ञानवश जैनधर्मको अनी-श्वरवादी–एक प्रकारका नास्तिक– समझा है। परन्तु वास्तव में यह वैसा नहीं है। यह वर्तमान युग का नास्तिक नहीं है। यह योरोपका अनीश्वरवादी नहीं है। यह "खाना पीना और मौज उडाना" नहीं, इस खयाल से कि हमें कल को मरना होगा और कौन जानता है कि मरने के बाद क्या होता है यह ईश्वर विषय पर 'रेड रशिया वार' (रूसवलों के युद्ध) के साथ सादृश्य नहीं रखता। योरोप के नास्तिक सिद्धान्त में किसी प्रकारके ईश्वर को स्थान नहीं है। वह अनात्मवादी की तरह से ही अनीश्वर-वादी है। वह प्रकृतिपूजा का एक रूप है। वह केवल शारीरिक सुखों को पुट करने का मार्ग है। यही वजह है जो वर्तमान युग सदाचार (नीति) की भयं-कर गिरावट के कारण कष्ट पा रहा है। हमें भया-नक अपराधों का, अवक्तव्य पतनों का और घृणा तथा क्रोध से संतप्त संसारकी उन जातियोंका वृत्तान्त सुनसुन कर आश्चर्य होता है, जो बाह्य में तो शान्ति दिखाती हैं, अंतर्राष्ट्रीय सभाएँ स्थापित करतीं हैं परन्तु भीतर से उनके विचार मार-काट, लूट-खसोट, प्रतिहिंसा, और लोभलालच से भरे हुए हैं। वे एक दूसरेकी बढतीको नहीं देख सकतीं। वे एक मेज के मित्रों की तरह प्रच्छन्न शत्रु हैं जो गुप्तरूप से एक दूसरे का पतन और नाश चाहतीं हैं।

इन सब बातों के होने का कारण क्या है ? उत्तर बहुत सरल है। यही कि मनुष्यने अपनी नश्वर वासनाओं को पुष्ट करने का विचार बहुत बढा लिया है। गोबरके ढेर में पडे हुए गुबरीले की तरह मनुष्य पतन करने वाली वस्तुओं में आनन्द मानता है, उन्हें अपने विज्ञान की उत्तम प्राप्ति समझता है और इन तपस्या के आचारों की हँसी उडाता है – धार्मिक विचारोंका ही उपहास करता है।

अब विज्ञान ने तो ईश्वर और आत्मा के प्रश्नको उठा दिया है, उसके लिये तो एक मात्र शरीर का ही प्रश्न अवशिष्ट रह गया है। परन्तु जैनधर्म उसकी इस बात से किसी तरह भी सहमत नहीं हैं।

हाँ, हम लोगों के लिये जो एक ईश्वरमें श्रद्धा रखते हैं सर्वेश्वर व्यक्ति परमात्मा की अश्रद्धा से सम्बंध रखने वाली उसकी व्याख्याओंको मानना कठिन है। परन्तु एक ईश्वर के मानने वालों में जो परस्पर मतभेद–विरोध–हैं उसे देखते हुए एक मनुष्य स्वभाव से ही ईश्वरके अस्तित्वविषयमें मूढ हो जाता अथवा संदेह करने लगता है। उदाहरण के तौर पर संसार के वर्तमान ईश्वरवादी (आस्तिक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतों को लीजिये। मुसलमानों का खुदा आर्यों के ईश्वरसे भिन्न है और यहूदियोंका परमात्मा हिन्दुओं के तथा ईसाइयों के भी ईश्वरसे और अधिक भिन्न है। इन धर्मोंके अनुयायी सदा एक दूसरे से झगड़ा करते हैं, हमेशा के लिये एक दूसरेके धार्मिक विचारों को पाखण्ड बतलाते हैं—एक दूसरे के ईश्वर की निन्दा करते हैं। वे सदा अपने ही सिद्धान्तोंको ठीक बतलाते और अपने धर्मशास्त्रों को ईश्वरप्रेषित प्रतिपादन करनेका यत्न करते हैं। तथा साथ ही, वे अन्य धर्मोंको क्षुद्र और असत्य ठहराना चाहते हैं। कहिये! ईश्वर अपने ही विरुद्ध कैसे खड़ा हो सकता-बोल सकता—और आँखमिचौली खेल सकता है और फिर यह कैसे अविरुद्ध हो सकता है कि एक सर्वशक्तिमान, सर्वानन्दमय, विश्वप्रेमी और परमदयालु परमात्मा ऐसे विश्व की सृष्टि करे जो दुखदर्दों तथा कष्टों से पूर्ण है? एक विचारशील के लिये यह बात बहुत ही खटकती है। ईश्वर इन दीन मर्त्य प्राणियों के कष्टों को जानते हुए भी व्यर्थ दुःख उठाने के लिए उनकी सृष्टि कैसे कर सकता है? यदि ईश्वर वास्तव में जगत् का परम पिता होता तो क्या मर्त्य पिता से भी अधिक निर्दयता के साथ यह चाहता कि उसके बच्चे ये अनन्त कष्ट भोगें? यही कारण है कि प्रायः सभी ईश्वरवादी धर्मों में हमें दो ईश्वरों के अस्तित्व का सिद्धान्त दिखाई देता हैं, एक पाप का ईश्वर और दूसरा पुण्य का ईश्वर है। दोनों समान शक्तिशाली हैं और बराबर एक दूसरे के साथ युद्ध करते हैं। और बेचारे दीन मनुष्य दोनों के निर्दय संग्राम में पीडे जाते हैं। ईसाई मत में, मुसलमानी मजहब में, यहूदी और पारसी धर्मों में ईश्वर और शैतान साथ साथ दिखाई पड़ते हैं। और इन एजंटों के द्वारा होने वाले विश्व के दृश्यों की व्याख्या करने के लिये बहुत से सिद्धान्त गढे गए हैं। परन्तु दुःख, मृत्यु और परलोक का प्रश्न अभी तक गहरे अन्धकार में ही पड़ा हुआ है—ये धर्म इस विषय में कुछ भी स्पष्ट नहीं बतलाते। यदि कहा जाय कि आत्मा अपने कर्मों के अनुसार दुख भोगता है और ईश्वर इसमें हस्तक्षेप करने के लिये असमर्थ है वह केवल आत्मा के कष्टभोग का एक साक्षीमात्र है तो क्या फिर ऐसे निर्बल और निःशक्त ईश्वर की उपेक्षा करना और अकेले कर्म पर ही भरोसा रखना अधिक युक्तियुक्त न होगा?

यदि कोई मनुष्य अपना हाथ अग्नि में डाले तो वह अवश्य जल जायगा। हम जैसा बीज बोते हैं वैसा ही फल पाते हैं, शायद इसी युक्तिके आधार पर परमात्मपद-प्राप्ति के युद्ध में आत्मा को वीर और बलिष्ठ बनाने के लिये जैनधर्म ने ईश्वरके प्रश्न को बिलकुल ही छोड़ दिया है।

चाहे कुछ भी हो, हम लोग जो केवल एक ईश्वर में विश्वास रखते हैं अब भी इस विषय में मतभेदको लिये हुए हैं और एक अदृष्टपरमात्मा पर भरोसा करते और अपनी समस्त निर्बलताओं तथा त्रुटियों को उसी के कंधों पर डाल देते हैं, और एक अज्ञात व्यक्ति की पूजा-प्रार्थना करना पसंद करते हैं। यह हमारी कमजोरी है। शायद वह समय शीघ्र आ जाय कि हमारी यह कमजोरी भी न रहे। और मैं कहती हूँ कि वह समय निकट आ गया है। पाश्चात्य संसार ने ईश्वर के अस्तित्व को हृदय से प्रायः निकाल ही दिया है, और उसके स्थान पर ऐसे विभिन्न सम्प्रदाय तथा विभिन्न समाज उदय को प्राप्त होगये हैं जो जैनधर्म के साथ बहुत ही सादृश्य रखने वाले विचारों को मानते और उन पर अमल करते हैं।

उदाहरण के तौर पर हम थ्योसोफिकल सोसाइटियों को ले सकते हैं। उनकी शिक्षाएं और आत्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्त्व-प्रचार की बातें जैनधर्म के साथ बहुत ही मिलती जुलती हैं, वे भी एक प्रकार से जैनधर्म के ही शिक्षक हैं। ऐसे समाजों की संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। इस समय उगते हुए युवक–संसार का यह मत है कि या तो धर्म में सहिष्णुता हो, या एकता हो अथवा बिल्कुल ही कोई धर्म न रहे; धर्म ने संसार को बहुत ही अस्वस्थ–असाधु–बना दिया है, इसलिए उसे छोड़ देना चाहिए। और उसके स्थान पर वे मनुष्यता तथा विश्वबन्धुता का उपदेश देते हैं। क्या यह सब महर्षि महावीर की शिक्षाओं का सार नहीं है? जब पारस्परिक मतभेद–विरोध–दूर हो जाते हैं तो केवल प्रीति और मित्रता रह जाती है, जो आपस में बन्धुता के भाव पैदा कर देती है। ये मर्त्य मनुष्य, जिनमें आप और मैं सब सम्मिलित हैं, वस्तुतः दिव्य–ईश्वरतुल्य प्राणी हैं, यह विचार आत्मा को शान्ति और संतोष का दाता है। इससे क्षोभ मिट जाता है, नरक का भय दूर हो जाता है और हम ऊँचे से ऊँचे उठते एवं उन्नति करते चले जाते हैं।

जब सब लोग इन उदात्त सिद्धान्तों को समझ जायँगे, जब पशु से मनुष्य तक सभी एक दूसरे से भाई की तरह हाथ मिलाएँगे और सम्पूर्ण सृष्टि परस्पर आनन्दमग्न होगी तो उस समय यह संसार कितना सुन्दर एवं मनोज्ञ मालूम देगा?

यह दृश्य महर्षि महावीर स्वामी के ज्ञान में झलका। उन्होंने इसे स्वयं देखा, अनुभव किया और संसार के हित के लिए–अपने दुःखित भाइयों के लिये –– इसका उपदेश दिया।

उनका संदेश संसार भर के उन सभी प्राणियों के लिये, जो असंख्य जन्मों तथा मरणों के थका देनेवाले मार्ग में परिभ्रमण कर रहे हैं, यह है कि– तुम्हारे ही कर्मों से दुःख दूर होंगे, पाप धुल जायँगे और तुम पूर्ण सुखी तथा आनन्दमय ईश्वर हो जाओगे। और यह सब कुछ तुम्हारे ही हाथ की बात है। यह किसी सुरलोकस्थ ऐसे महान् देवताकी शक्तिके आधीन नहीं है, जो तुम से बहुत दूर है–। तुम्हारे दुःख शोकों तथा कष्टों के क्षणों से दूरवर्ती है। यह तुम से बाहर नहीं है, मुक्ति तुम्हारे ही अन्दर है, पूर्ण आनन्दका रम्य स्थान तुम्हारे ही आत्माके भीतर विद्यमान है। ये सब तुम्हारे ही कृत्य होंगे जो उस अपूर्व आनन्द का तुम्हारे आत्मा में विकाश करेंगे। क्यों दुःख उठाते और चिल्लाते हुये धूल में पडे हो? निर्बलता, अन्धकार (अज्ञान)–भय और मृत्यु से ऊपर उठो। तुम अविनाशी हो, तुम दिव्य हो संसार इस दिव्य गीत को हर्षावेशसे सुनता है और इसी में उसकी मुक्ति है।

सारांश महावीर स्वामी की शिक्षा में सत्य के तीन बडे सिद्धान्त संनिहित हैं– एक अहिंसा, दूसरा नश्वर वासनाओं पर विजय, और तीसरा परमात्मपद की प्राप्ति। अब आप स्पष्ट देख सकते हैं कि ये तीनों अवस्थाएँ एक दूसरेके साथ सम्बद्ध हैं। मनुष्य अहिंसा का पालन करता है और उसके पालन द्वारा नश्वर विषयवासनाओं पर विजय प्राप्त करता है और इस तरह परमात्मपद को प्राप्त हो जाता है।

यही भगवान् महावीर की शिक्षाओं का सार है। उन्होंने खुद अहिंसा का पूर्ण रूपसे पालन किया, संसार के विषयभोगों को त्याग दिया और परमात्मपद को प्राप्त किया।

क्या ही अच्छा हो, कि हम उनके इस पवित्र आदर्श का अनुकरण करें और शुद्ध कैवल्य तथा नित्यानंद अवस्था को प्राप्त हो जायँ।

अनुवादक––**भोलानाथ जैन मुख्तार**

(अनेकांत से साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागे देश हमारा।

(ज्ञान भारिल्ल)

जागे देश हमारा।
धर्म-घरा हो शस्य श्यामला
सद्गुण रस-सिंचन से,
सत्य-सूर्य आलोकित होकर–
प्रगटे पुण्य-गगन से,
तप के पापक में जल-जल कर
आत्माएँ निर्मल हों–
मन के शुभ्र-गगन में चमके
सद्भावी ध्रुव-तारा।
जागे देश हमारा।

मानवता उद्बोधित होकर
ऊपर उठती जाए,
आत्म-विकास मनुज का ऐसा
हो कि तमस् घबराए,
अमृत-पुत्र हम आवाहन जब
करें शांति-समता का–
भूले-भटके बोल उठें
"यह किसने हमें पुकारा?"
जागे देश हमारा।

अन्धकार-अन्याय जहाँ हो
हम दीपक प्रकटाएँ,
शक्ति आसुरी के सन्मुख हम
"महावीर" बन जाएँ,
ऐसा हो प्रभाव सात्विक जीवन
का विश्व कहे यह–
"और नहीं कुछ, और नहीं कुछ
केवल धर्म सहारा।"
जागे देश हमारा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् महावीर और अहिंसा

लेखक-श्री सौभाग्यमलजी जैन

उर्दू के एक कवि ने ठीक ही कहा है:-

बडी मुशकिल से पैदा एक वह आदमजात होता है।
जो खुद आजाद जिसका हर नफस आजाद होता है॥

आजसे लगभग २५०० वर्ष पूर्व आधुनिक बिहार राज्यांतर्गत तत्कालीन 'मगध' देश में एक ऐसे महापुरुष का जन्म हुवा था जिसने मानव जीवन का 'अंतिम लक्ष्य मुक्ति' प्राप्त की थी। उस महापुरुष का नाम वर्द्धमान था किन्तु उसके जीवन में अभूत पूर्व साहस विद्यमान होने के कारण उनको महावीर के नाम से अभिहित किया गया।

ऐसे महापुरुषों की कडी में, वर्तमान तीर्थकरों की सूची में सबसे प्रथम भगवान् ऋषभदेव का नाम आता है। चाहे आधुनिक इतिहासकारों ने भगवान् ऋषभदेव का अस्तित्व स्वीकार न किया हो किन्तु यह तथ्य इतना सुनिश्चित है कि उनकी गुणगाथा जैन साहित्य के अतिरिक्त वैदिक साहित्य तथा अन्य प्राचीन भारतीय साहित्य में भी वर्णित है। भगवान् ऋषभदेव सारी आर्य जाति के उपास्यदेव थे। यही कारण है कि उनकी मान्यता देश की प्राचीन जातियों में अद्यापि प्रचलित है। उन्होंने मानवाजाति को सभ्यता का पाठ पढ़ाया और नैतिक तथा धार्मिक नियम स्थिर किये। इसके पश्चात् अन्य तीर्थकरों का युग आता है।

बाईसवें तीर्थकर भगवान् नेमीनाथ भारतवर्ष के उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ तथा कर्मयोगी श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। उन्होंने तत्कालीन क्षत्रिय समाज में प्रचलित मांसाहार प्रथा के विरुद्ध अपने व्यक्तिगत सुखों को तिलांजलि देकर एक ऐसी सुदीर्घ प्रचलित रीति से विद्रोह का शंख फूंका कि वह प्रथा उस समय निःशेष हो गई। यही कारण है कि आज काफी अधिक समय व्यतीत हो जाने पर भी सौराष्ट में (जो भगवान् नेमीनाथ का कार्य क्षेत्र रहा है।) पशु हिंसा के विरुद्ध घृणापूर्ण वातावरण हैं। उसके पश्चात् भगवान् पार्श्वनाथ का युग आता है। उस समय देश में अविवेक पूर्ण हिंसा मिश्रित तपस्या (जिसमें केवल देह-दमन ही होता था) के स्थान पर मानव समाज को विवेकपूर्ण अहिंसक तप का संदेश दिया गया। उन्होंने बताया कि तप का उद्देश्य केवल देह-दमन ही नहीं है अपितु आत्मा का आध्यात्मिक विकास उसका उद्देश्य है। उन्होंने तत्कालिन तापस संप्रदाय के द्वारा प्रचलित लोक मूढ़-मान्यता के बजाय अधिक संस्कृत तथा अहिंसक तपस्या का मार्ग मानव जाति को बताया। कुछ विद्वान् ऐसे मत के हैं कि देश में प्रचलित, 'नाथ संप्रदाय' इन महापुरुषों के सदुपदेश से प्रभावित रहा है और उक्त संप्रदाय ने भारतीय अध्यात्म को बहुत प्रेरणा दी है। भगवान् पार्श्वनाथ के २५० वर्ष के पश्चात् ही 'वर्द्धमान' महावीर का अवतरण होता है। जिनकी शुभजन्म तिथि "चैत्र शुक्ल त्रयोदशी" है। श्रमण संस्कृति में दोनों समकालीन महापुरूष भगवान् महावीर तथा भगवान् बुद्ध निश्चय रूपसे भगवान् पार्श्वनाथ के "चातुर्याम धर्म" से प्रभावित रहे हैं। भगवान् महावीर के माता-पिता भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी ही थे।

भगवान् बुद्ध ने भी ज्ञान लाभ प्राप्त करने के पूर्व जिन विभिन्न पंथों को अंगीकार किया उनमें 'निग्रंथ संप्रदाय' भी था। यह निर्विवाद है कि भगवान् पार्श्वनाथ का अनुयायी संप्रदाय ही 'निग्रंथ संप्रदाय' कहा जाता था। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि भगवान् पार्श्वनाथ तथा महावीर का उपदेश और संदेश पूर्व में निर्ग्रंथ संप्रदाय के नाम से अभिहित था। किन्तु भगवान् महावीर के निर्वाण के लगभग ७५ वर्ष पश्चात् निर्ग्रंथ संप्रदाय का नाम 'जैन धर्म' प्रारंभ हो गया। आचार्य काका कालेलकर के शब्दों में:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"धर्मानंदजी इस निश्चय पर पहुंचे थे कि पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्ममें से ही बौद्ध और जैन ये दो विचार-धाराएँ निकली हैं। उनका यह भी अभिप्राय था कि बौद्ध और जैन विचार पद्धति की बुनियाद में जो दार्शनिक जीवन दृष्टि है उसे स्वीकार करने से ही समाजवाद और साम्यवाद कृतार्थ हो सकेंगे और मानवजाति का कल्याण करने की साधना आज के मानवों के हाथों में आ सकेगी"। (श्री धर्मानन्द कोसम्बी द्वारा लिखित भगवान् बुद्ध की प्रस्तावना पृष्ठ से)

भगवान् महावीर का समग्र जीवन तत्कालिन प्रचलित सामाजिक विषमता, धार्मिक अंध-विश्वास, अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह का जीवन था। उन्होंने ३० वर्ष की अवस्था में अपने शरीर की ममता छोडकर कठोरतम तप साधना करने का निश्चय किया और तदनुसार वे १२ वर्ष तक अनवरत साधना करते रहे। उसके परिणाम स्वरूप उन्हें केवल्य लाभ हुवा। बाद में उन्होंने समाज को अपना संदेश देना प्रारंभ किया। इस प्रकार मानव जाति में अमृत वर्षा करते हुए उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

यदि हम इन समस्त महापुरुषों के उपदेशों पर दृष्टिपात करें तो हमें इस परिणाम पर पहुँचना होगा कि समस्त उप-देश का सार "अहिंसा" था। समस्त महापुरूषों ने अपने उपदेश में इस बात पर अत्यधिक जोर दिया कि मनुष्य किसी प्राणी को मन, वचन, काया से हानि न पहुँचावे, वध न करे न किसी के द्वारा हानि पहुंचावे या वध करावे न किसी हानि पहुंचाने वाले या वध करनेवाले का अनुमोदन ही करे। जैन साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ "आचारांग सूत्र" के निम्न उद्धरण पर विचार करने से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

'सेवेमिये अईया, जे य' पडपुन्ना आगिमस्सा अरहंतो भगवंतो ते सव्वे एवं भावयंति एव भासंति, एवं पण्णविंति, एवं परूविंति सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, न हंतवा हज्जावियव्वा, न परियावेयव्वा न उदवेयवा ॥

आचारांग सूत्र प्र. श्रुतखंड ४ र्थ अध्याय उदेश्या

इसमें भी कोई संदेह नहीं कि यदि कोई मनुष्य किसी प्राणधारी को सामाजिक अथवा आर्थिक दृष्टि से शोषण करे तो वह भी हिंसा कही जानी चाहिये। भगवान् महावीर से पूर्व 'अहिंसा' का रुप क्या था? उसमें सामाजिक आर्थिक शोषण भी हिंसा की परिभाषा में शामिल था क्या? यह विद्वानों के लिये खोजका एक विषय है। आज-कल जो जैन साहित्य उप-लब्ध है वह अंतिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर द्वारा उपदेश के आधार पर गणधरों द्वारा निर्मित साहित्य है। बहरहाल भगवान् महावीर के पूर्व का कोई साहित्य (जैन) आज उपलब्ध नहीं है इस कारण उक्त प्रश्न की खोज सरल नहीं है। किन्तु इतना निश्चित है कि अहिंसा का विकास जो भगवान् महावीर के काल में हुवा वह अद्वितीय था। उन्होंने केवल सामाजिक शोषण, आर्थिक शोषण रूप हिंसा को ही नहीं अपितु वैचारिक हिंसा को भी त्याज्य माना। भगवान् पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म में पुरुष के लिये स्त्री परिग्रह माना जाता है। और इसी कारण संभवतः उसका समावेश अपरिग्रह व्रत में कर लिया गया था। यह स्पष्ट है कि इसमें स्त्री का एक स्वतंत्र अस्तित्व होने से इन्कार किया गया था। किन्तु भगवान् महावीर ने इस विचार के स्थान पर स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व मानकर पाँच महाव्रतों की स्थापना की।

इसी प्रकार भगवान् महावीर ने देखा कि देश में विभिन्न विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करनेवाले कई 'वाद' विद्यमान है। और उनके पास आंशिक सत्य भी है। तो उन्होंने अन्य वादों को एकांतवाद कहा और संसार को अनेकांतवाद का उप-देश दिया। वास्तव में यदि हम अपने से भिन्न विचारधारा वाले किसी व्यक्ति के प्रति न्याय करना चाहते हैं तो हमें अनेकांत का सिद्धांत अपनाना आवश्यक है। अनेकांत विचार पद्धति वास्तव में बौद्धिक अहिंसा है। विश्व की प्रत्येक वस्तु अनंत धर्मात्मक है। इस कारण उस वस्तु के किसी एक पहलू को दृष्टिगत रखकर जो विवेचन होगा वह वस्तु का समग्र चित्र नहीं हो सकता। इस कारण यदि हम उस वस्तु के भिन्न २ पहलुओं के वर्णन को एकत्रित कर लें तो समग्र सत्य के दर्शन हो सकते हैं अनेकांत विचार पद्धति के द्वारा जिस भिन्न २ दृष्टिकोणों को जिस भाषा में व्यक्त किया जाता है उसे "स्याद्वाद" कहा जाता है। जैन तार्किक विद्वानों ने इसे "सप्तभंगीन्याय" तथा "सप्तनयवाद" भी कहा है। तात्पर्य यह कि तार्किकों ने "अने-कांत विचार पद्धति" अथवा "स्याद्वाद" को "संख्या" में सीमित करने का प्रयत्न किया। वास्तव में जैन विचारकों ने मोटे तौर पर केवल दो नय (निश्चय तथा व्यवहार) स्वीकार किये किन्तु विशालता की दृष्टि से 'नय' की संख्या उतनी ही बताई जितनी विचार पद्धति हो सकती है। तात्पर्य यह है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि 'नयों' की गिनती नहीं हो सकती। उन्हें सीमित नहीं किया जा सकता। यह सत्य है कि जैनागमों में इस अनेकांत विचार पद्धति के विचार बीज रूप से मौजूद थे। किन्तु उसका विस्तार भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् अनेक जैनाचार्यों ने किया है। जिसमें सिद्धसेन दिवाकर, समंतभद्र, हरिभद्र, अकलंकदेव, यशोविजय, माणिक्यनंदि आदि मुख्य हैं।

इन विद्वानों ने स्याद्वाद विचार पद्धति पर विपुल साहित्य का निर्माण किया। यह निर्माण कार्य भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् प्रारम्भ हुआ। इसमें संदेह नहीं कि यदि विश्व में प्रचलित विभिन्न वाद, पंथ, मत के प्रति न्याय करना हो तो इस स्याद्वाद विचार पद्धति को अपनाये बिना चारा नहीं है। सत्य का ठेका कोई वाद, पंथ, मत नहीं ले सकता न सत्यको सीमाओं में बांधा जा सकता है। इसका सीधा मार्ग 'समन्वय' है। मानवजाति को धार्मिक सहिष्णुता, सर्वधर्म समभाव, अनेकांत विचार पद्धति, से ही प्राप्त हो सकती है। इसे आधुनिक सीधी सरल भाषामें 'अनाग्रही विचार' पद्धति भी कहा जा सकता है। एक जैनाचार्य ने एक वाक्य में इस विशाल सिद्धांत का निचोड़ रख दिया है कि– आग्रही व्यक्ति का दृष्टिकोण "यन्मदीयं तत्सत्यं' रहता है जब कि अनाग्रही का "यत्सत्यं तन्मदीयम्" रहता है।

एक जैन विद्वान् ने भारतीय षड्-दर्शन में आंशिक सत्य का दर्शन भिन्न २ नयों (दृष्टिकोणों) के माध्यम से देखा। उन्होंने नैगम नय द्वारा न्याय, वैशेषिक दर्शन का संग्रह नय द्वारा वेदान्त दर्शन, का ऋजु-सूत्र नय द्वारा बौद्ध दर्शन का, शब्द नय द्वारा व्याकरण का, और व्यवहार नय द्वारा चार्वाक् दर्शन का अस्तित्व स्वीकार किया है।

मानवजाति के सन्मुख यह एक अत्यन्त आश्चर्य का विषय रहेगा कि जिस जैन धर्म ने विश्व के प्रचलित विभिन्न वादों, पंथों, धार्मिक मान्यताओं के समन्वय का दावा किया तथा समस्त वादों, पंथों, धार्मिक मान्यताओं में आंशिक सत्य का दर्शन किया उसी के अनुयायी समाज में श्वेतांबर, दिगंबर विवाद कैसे पैदा हो गये? इस विवाद में समय के प्रभाव से सदैव वृद्धि होती गई। दोनों सम्प्रदायों में उप-सम्प्रदायों का निर्माण हुआ जिसके परिणाम स्वरूप आज जैन धर्मानुयायी जैन-समाज सम्प्रदाय, उप सम्प्रदाय आदि में विभक्त है। इस सम्बन्ध में पिछला इतिहास बहुत कटु है। हमारे पूर्वजों में से अधिक ने छोटे २ मत भेद के प्रश्न को महत्वपूर्ण निरूपित करते हुए पृथक् २ उप संप्रदायों का निर्माण किया। यह विश्व के आचार्यों में एक महान् आश्चर्य है। यह माना जावेगा कि हमारे पूर्वज सैद्धांतिक दृष्टि से अनेकांती विचार पद्धति के साथी होते हुए भी व्यवहार में उप सम्प्रदायी के निर्माण के कारणीभूत मत भेदों का निराकरण नहीं कर पाये, भिन्न मत अथवा भिन्न रूचि में आंशिक सत्य का दर्शन नहीं कर पाये। इसमें संदेह नहीं कि हमारे पूर्वाचार्यों में से कई ने इस सम्बन्ध में उदार दृष्टिकोण अपनाया किन्तु उनकी वाणी अधिक प्रभावशाली न हो सकी। वास्तव में इन उप संप्रदायों के भीतर निर्मित मत-भेद आदि रूचि वैचित्र्य एक महत्वपूर्ण कारण था। यदि हमारे पूर्वाचार्य इस वास्तविकता पर पूर्ण ध्यान दे सकते तो भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट अहिंसा के बौद्धिक पक्ष अनेकांत विचार पद्धति को अधिक बल मिलता और जैन समाज अधिक अखण्ड और बलशाली रहता। यह कटु सत्य हमें स्वीकार करना चाहिए कि इसी कारण जैन समाज में प्राणी हिंसा के विरुद्ध जो वातावरण गत २५०० वर्षों में निर्मित हो सका उतना अच्छा वातावरण सामाजिक आर्थिक एवं बौद्धिक अहिंसा के लिए तैयार न हो सका। जाति-पांति छूतांछूत का एकदम विरोधी जैनधर्म अपने समाज से यह रोग इतने लम्बे काल में भी समाप्त नहीं कर सका। अपरिग्रह-वाद का समर्पक जैनधर्म अपने ही समाज में 'परिग्रह परित्याग व्रत' को Popular नहीं कर सका और इसी प्रकार अनेकांत विचार पद्धति का हामी जैन धर्म अपने आंतरिक मत-भेदों का समन्वय करके विशाल जैन समाज का निर्माण नहीं कर सका। क्या अभी समय नहीं आया है कि जब हम "अहिंसा" सिद्धांत की विशालता को ध्यान में रखकर अहिंसा के अन्यपक्ष सामाजिक तथा आर्थिक न्याय, सर्वधर्म समभाव, धार्मिक सहिष्णुता, बौद्धिक अहिंसा पर भी जोर डाले?

जेण विणा लोगस्स,
ववहारो सव्वहा न निव्वहइ।
तस्स भुवणेक गुरुणो,
णमो अणेतंग वादस्स॥"

आशा है कि समाज का प्रबुद्ध विचारक वर्ग इस दिशा में विचार करेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर

ले.—पं. मुनिश्री भानुऋषिजी म. जै. सि. आचार्य (नान्दुरा)

एक वह युग था, कि जिसका पल-पल इस जगती तलके दीन-हीन असरण और धर्म-सेवक प्राणियों के लिये पुनर्जन्म के समान भारवान प्रतीत होता था। समस्त संसार में चारों ओर त्राहि-त्राहि की आर्त-पुकार मची हुई थी और कोई किसी के दुःख-सुख में शब्दों द्वारा योग-दान देनेवाला तक यहाँ दृष्टिगोचर नहीं होता था। मानव समाज का बच्चा-बच्चा तक अपने खुद के मतलब ही में मस्त और आसक्त था। देवी और देवताओं के सन्मुख गूंगे और अवाक् पशुओं और निर्बल नरों तक का निर्दयता पूर्वक बलिदान घर-घर और गली-गली में किया जाना प्रत्येक नर श्रेयस्कर और स्वर्ग प्राप्ति का एक मात्र अनुपम और सीधा सच्चा उपाय समझने लग गया था। उपाय नहीं वरन् स्वर्ग तृष्णासे तृषित वे नर!, वे धन के मदसे अन्धे मानवगण!, उन मूक पशुओं और अबल आदमियों के प्राण नाश के भय से घोर आक्रन्दक करते हुए भी यज्ञ भूमिस्थ वेदियोंकी धधकती हुई ज्वाला में स्वाहा कर देना अपने धर्म की चरम-सीमा मान बैठे थे और उन बलि जाने वाले पशुओं तथा नरों के निकले हुए गर्मागर्म रक्त से खास करके इस भारतमाता का विस्तृत भू-भाग एक ही समय में, रक्त-रंजित हो उठा था तथा अत्याचारों की बढती हुई मात्रा से हमारी यह भारत वसुन्धरा भरसक दहल उठी। ऐसे ही संकट भरे समय में किसी महापुरुष का प्राणी मात्र के लाभार्थ इस अवनीतल पर अवतीर्ण होना सम्भव था। बस, उस महापुरुष के रूप में जगत् प्रभु आजसे लग-भग ढाई हजार वर्ष के पूर्व दसवें स्वर्ग से चवकर क्षत्रिय राजेन्द्र सिद्धार्थ के कुण्ड ग्राम में परम सौभाग्यशाली माता-पिता के पुण्य-फल-स्वरूप आदर्श जननी त्रिशला के उदर में आये तत्पश्चात् चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन, शुभ मुहूर्त में भगवान् महावीर के नाम से उनका जन्म होता है।

फिर क्या था समस्त मानव गण और देवगण परम हर्षायमान होकर बडे समारोह के साथ उनका जन्मोत्सव मनाते हैं। उनकी शैशवावस्था, उनकी किशोरावस्था की सुन्दरता का सुख दायक सदन और मनोहारिता की मनोमुग्ध मंजूषा थी, यही नहीं उनका यौवनभी एक साधारण यौवन नहीं था। उनकी लावण्यता को देख कौन नर नाम धारी ऐसा था जो कुछ समय के लिए अपने आपको सर्व प्रकार से विसारकर उनके उस रूपराशि पर मुग्ध न हो जाता था।

इतना कान्त कलेवर होते हुए भी यौवन प्रकाश की उस अनुपम छटामें वासना-विशूचिका के चांचल्य-भाव का आभास तक नहीं था। प्रकृति का मतवालापन भी वहाँ अपना मान गँवाये नीचा सिर किये बैठा था। वैलासिक उच्छृंखलता युक्त अकांक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आगमन की भी आशंका वहां दृष्टिगोचर नहीं होती थी। भगवान्‌का वह यौवन मानसरोवर प्रसरित शारदीय सौरभवान प्रभात की भाँति शान्त और सुस्थिर था, उसमें उस शान्ति और सुस्थिरता की सुखदायक शोभा का ललित विकास अति ही दर्शनीय और नयनाभिराम था।

इसी अति विस्तृत विश्व-वारिधि, जो विकट विषय वासनाओं की उत्ताल-तरंग-मालाओं से तरंगायमान है, उद्वेलित है, और जिसका प्रत्येक कोना-कोना अनेकों प्रकारके पाप और ताप के प्रलोभनरूपी महान् विकराल जन्तुओं से समुचित रुपेण समाकीर्ण है तथा जहाँ अनेकों तामसी प्रवृतियाँ अपना भीषण बडवानल का रूप धारणकर रात-दिन प्रयाण कर रही है, जिनके कारण इस विश्व-वारिधि में से सत्या–नाशक धूम्र सदा उठता ही रहता है। ऐसे अगाध विश्ववारिधि को जगत् नायक ने पार करना अपना परम लक्ष्य और प्रधान कर्तव्य माना तथा त्याग तपस्या और उदारता के अर्णव–पोतों द्वारा अपने जीवन के तीस वर्षों के समय में अपने सुविशाल राज्य और उसके अतुलनीय वैभव को उतराईके रूपमें देकर इसे विश्व-वारिधि को उन्होंने पार किया।

भगवान् महावीर अहिंसा के अलौकिक अवतार, नि:स्वार्थ प्रेम की प्राणमयी प्रतिमा एवं लोकसेवा के अनुपम तथा सजीव मूर्तिरूप थे उनका पावन चरित्र स्वर्गीय गुणों का सुन्दर कोष था और वे महामना अपने समय के सर्वश्रेष्ठ पुरुष रत्न थे। उन्होंने अपनी नि:स्वार्थ सेवा, तपोयुक्त साधना, आदर्श त्याग, विमलभक्ति और अनन्य प्रेमके प्रकाशसे समस्त संसार को चमत्कृत एवं चकाचौंध कर दिया था। तथा वही ज्योति-विकीर्णकारी प्रकाश की चकाचौंध, संसार को इस अतीत-काल के पश्चात् आज भी, उसी प्रकार प्रकाशित कर रही है।

भगवान् महावीर मुक्ति के अति अगम मार्गका अनुसन्धान करते हुए अपने कर्तव्य के पथपर अहर्निशि अटल बने रहे। वे समय-असमय कई विघ्न-बाधओं के आते रहने पर तिलमात्र भी अपने कर्तव्य के कठिनतम पथ से कभी विचलित नहीं हुए। वे आगन्तुक आपदाओं को अपने भविष्योज्वलता का भव्य साधन समझकर सदा अपूर्व शान्ति, गुरू-गम्भीरता और उत्साहकपूर्वक उनका सामना करते हुए घोर तपश्चर्या और प्रबल साधन में आठो याम रत रहते थे।

जिस समय एक ओर त्रैलोक्य पूजनीय इस अटल अवस्था की अविकल आराधना में तल्लीन थे इसी समय दूसरी ओर अनेक देवाँगनाएँ वसन्तादिक अपने सहचरों के साथ शीतल-जल में स्नान कर अपने कांत-कलेवरों को नाना प्रकार के आभरणों से अलंकृत बना एवं शतशः स्वर्गीय शृंगारों से सजा तथा सब प्रकार से बन-ठनकर भगवान् को उनकी आराधना के अगम मार्गसे च्यूत करनेके अनेक उपचारोंके साथ लेकर वहाँ आ उपस्थित हुई। फिर वे अपने विशाल और विकसित नेत्रोंकी तिरछी चितवन रूपी पैनी शरावली और कामोद्दिपक अपने आंगोपांगो के हावों-भावों से उनके मन को डिगाने का भगीरथ प्रयत्न करने लगी किन्तु कहाँ तो आत्मिक बल से सम्पन्न अतुलित बलशाली वह धीर वीर! और कहा उनके मनको डिगाने वाले वे ऐहिक सुख साधन और वैलासिक अ.य.जन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् के कान्त-कलेवर की नयनाभिराम श्री को निहारते ही अप्सराओं की आपाद-मस्तक पराजय हुई। उस समय उस अप्सरा विजयी वीर के काम विकार से रहित प्रत्येक रोम-रोम की आभा अति ही दर्शनीय थी। अन्त में कुछ मुहूर्त के पश्चात् ही आई अप्सराएँ नत-मस्तक होकर अपने-अपने स्थान की ओर चली गयी। अहा! कितनी श्रेष्ठ संयम-शीलता थी उस ललाम-यौवन में! तप और त्याग का कैसा अपूर्व सम्मिश्रण था!

भगवान् के भव्य तनु में प्रत्येक अंगों के जोडों की जगह-जगह यौवन विकास के कारण निकले हुए जो सौरभान्वित चिकने और आर्द्र पदार्थ का जमाव हो रहा था उस पर छः चार मास तक मधुकर निकर मंडराते हुए अपने क्रूर स्वभाव का परिचय देते रहें। तथापि वे आत्मवीर! ज्यों के त्यों अटल और ध्यान मग्न बने रहे। यह उनकी सहन शीलता का एक अनुपम उदाहरण था। ग्वाल बालों ने लोहे के कीलों आदि से कर्णो और तनु को जगह-जगह छेद डालना अपना कौतूहलमय कर्तव्य मान लिया था। तब भी भगवान् पूर्ववत् ही अचल और अटल बने रहे। देखा आपने भगवान् महावीर की आदर्श क्षमा का समुज्वल और निर्मल नमूना! उन्होंने अपनी अल्पायु ही में जिन संख्यातीत कर्म दलों का एकाकी क्षयकर लिया था, वह उनकी अपूर्व-अपूर्व शक्ति ही का तो द्योतक था। ऐसे भगवान् की शूरताकी गाथा का सांगोपांग वर्णन करना मानवी शक्ति से परे की बात है। जिनकी समानता असंगत है, सहन-शीलता अनुपमेय है, आत्मबल अद्वितीय है, और वीरता अलौकिक शौर्य-सम्पन्न है हम उन्हीं भगवान् महावीर के दिव्य उपदेश, अमृतमयी-वाणी को आप तक अपनी भाषामें पहुँचाने की कोशिश कर रहे हैं। वह भगवान् महावीर हमारी आत्माको अमर बल दे जिससे हम उनके उन दिव्य उपदेशों को यथावत् संसार के आबाल-वृद्ध सभी के पास पहुँचाने में सामर्थ्यवान् और प्रयत्नशील हो सकें।

प्रयत्नशील बनने के लिए ही प्रतिवर्ष महावीर जयन्ति का आयोजन नगर-नगर, शहर-शहर और ग्राम-ग्राम में हुआ करता हैं।

शिक्षण के अभिलाषी मुनिराजों की सेवा में निवेदन—

श्री उपाध्यायजी प्यारचन्दजी महाराज साहब की स्मृति में रतलाम में सिद्धान्त-शाला स्थापित की हुई है। जैन आगम, प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी आदि के अध्ययन के अभिलाषी मुनिराजों एवं महासतीजी महाराज की सेवा में विनम्र प्रार्थना है कि रतलाम में विराजकर ज्ञान-ध्यान की वृत्ति वृद्धि कर स्थानीय संघ को सेवा का सुअवसर प्रदान करें। मन्त्री—

बापूलाल बोथरा

उपाध्याय प्यारचन्दजी म. जैन सिद्धांत
एवं पारमार्थिक समिति,
रजिस्टर्ड, रतलाम (मध्यप्रदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् महावीर

लेखक--श्री मधुकान्ता जैन, "विशारद" (खाचरोद)

भगवान् महावीर का जन्म ईसा से ५९९ ई० पूर्व वैशाली के समीप 'कुण्डग्राम' में हुआ था। सत्य और अहिंसा के सूत्रधार भगवान् महावीर आज हमारे सम्मुख नहीं हैं। किन्तु हम उनकी जयन्ती प्रति वर्ष चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को बडे उत्साह और प्रेम से मनाते हैं। इस दिन कई प्रान्तों में शासकीय छुट्टी रहती है। प्रत्येक नगर में सभाएँ होती हैं। भगवान् महावीर के जीवन पर विद्वान् पुरुषों द्वारा नाना प्रकार से प्रकाश डाला जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोरंजनकारी नाटक वाद-विवाद एवं कविता पाठ के प्रोग्राम प्रस्तुत किये जाते हैं। यह प्रथा आज-कल से नहीं सैंकडों वर्षों से चली आ रही हैं। हम प्रतिवर्ष उस महापुरुष के जीवन और उप-देश के विषय में भाषण सुनते हैं, लेख पढते हैं किन्तु फिर भी हम उस बात को ज्यों का त्यों स्वीकार करने को तैयार नहीं होतें। बात वास्तव में सही है। यह विज्ञान का युग हैं। प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर कसा जाता है। यदि वह उस पर पूर्ण उतरे तो वह शत-प्रतिशत सही है वरन् गलत समझा जाता हैं।

भगवान् महावीर का जीवन ऐतिहासिक सत्य है इस बात से किसी प्रकार भी इन्कार नहीं किया जा सकता।

(१) जन्मस्थान--नगरों में एक शिरोमणि वैशाली नगर आज भी विद्यमान है। इसके इति-हास में बडे-बडे परिवर्तन हुए। इस नगरी का वर्णन वाल्मिकी रामायण तथा (१) वराह पुराण (२) नारदीय पुराण (३) मार्कण्डेय पुराण (४) श्रीम-द्भागवत् में विस्तृत रूप से पाया जाता है। वैशाली के इतिहास को देखने से पता चलता है कि किसी समय वैशाली से कुछ दूर एक ग्राम था जो कुण्ड ग्राम के नाम से प्रसिद्ध था। यह ग्राम दो बस्तियों में बटा हुआ था। (१) क्षत्रिय कुण्डग्राम (२) ब्राह्मण कुण्डग्राम। क्षत्रिय कुण्डग्राम के अधिपति-राजा सिद्धार्थ थे तथा वे जैन धर्म के अनुयायी थे। भगवान् महावीर भी सिद्धार्थ कुल के दीपक रूप प्रसिद्ध हैं। हाल ही की कुछ जानकारी से ज्ञात हुआ है कि वैशाली के निकट 'वासुकुण्ड' नामक एक ग्राम है। यहाँ के कुछ लोग अपने आप को भगवान् महा-वीर के वंशज बताते हैं। उनके पास वंश परम्परा से कुछ जमीन थी जिसका वे लगान देते थे। किन्तु उसको खेती के काम में नहीं लेते थे। इसका कारण पूछने पर उन्होंने बताया कि यही वह स्थान है जहाँ भगवान् महावीर का जन्म हुआ था। सरकार के इतिहास विभाग ने भी इतिहास एवं कल्प सूत्र आदि का अवलोकन कर यह सिद्ध किया कि यह स्थान वही है जहाँ सिद्धार्थ नन्दन महावीर का जन्म हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाति एवं कुल--भगवान् महावीर क्षत्रिय कुल के थे। भगवान् महावीर के जन्म के समय कई जगह गण राज्य थे। कुण्ड ग्राम में भी दो बस्तियाँ थीं जैसा कि पहले कहा गया है। इनमें एक ब्राह्मणों की तथा दूसरी क्षत्रियों की बस्ती थी। क्षत्रिय बस्ती 'क्षत्रिय कुण्ड' नाम से प्रसिद्ध थी तथा ब्राह्मण बस्ती 'ब्राह्मण कुण्ड' नाम से। क्षत्रियों के नायक सिद्धार्थ थे। ये बड़े प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। इसी कारण वैशाली के महाराजा चेटक ने राजकुमारी त्रिशला का विवाह क्षत्रिय कुण्ड के अधिपति सिद्धार्थ से कर दिया था। भगवान् की माता का नाम भी त्रिशला है। अतः इतिहास-प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल के महाराजा सिद्धार्थ एवं महारानी त्रिशला के अंगजात भगवान् महावीर क्षत्रिय कुल के ही थे।

जीवन--भगवान् महावीर बुद्ध के समकालीन थे। महावीर का जन्म सम्पन्न राज-परिवार में हुआ। आपका जन्म का नाम वर्द्धमान है। जन्म के पश्चात् राज्य के प्रत्येक क्षेत्र में वृद्धि होने के कारण ही यह नामकरण किया गया। आपका जीवन एक मानवीय जीवन है। आत्मा ही परमात्मा है यह आपके जीवन से स्पष्ट प्रकट होता है। धन-धान्य एवं सुख-समृद्धि से परिपूर्ण परिवार में जन्म लेने के बावजूद भी आपने अपने जीवन को जलमें कमलकी भाँति अलिप्त और उच्च बनाया। आप विलक्षण बुद्धि-सम्पन्न होने के साथ ही अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक थे। विश्व कल्याण कर्त्ता भगवान् महावीर सर्वप्रथम हमारे सम्मुख एक सच्चे मातृ-पितृ सेवक पुत्र के रूप में आते हैं। माता-पिता का अपनी सन्तान पर कितना मोह होता है यह वही व्यक्ति जान सकता है जिसको यह सौभाग्य प्राप्त होता है। अतः महावीर स्वामी अपने माता-पिता को रंच मात्र भी कष्ट पहुँचाना नहीं चाहते थे। यही कारण था कि जब तक माता-पिता जीवित रहे भगवान् ने उनकी सेवा की तथा संसार में फैले हुए दुःख-क्लेशों का गहन अध्ययन करते रहे।

माता-पिता के स्वर्गवासी होने के पश्चात् आपने चारित्र (दीक्षा) ग्रहण किया। तथा विश्व-कल्याण के पथ पर अग्रसर हुए।

तत्कालीन परिस्थितियाँ एवं वातावरण-- भगवान् महावीर के शासन-काल में देश की विचित्र दशा थी। उस समय जिस धर्म का बोलबाला था, वह अपने वास्तविक रूप को भुलाकर केवल आडम्बर रूप में विश्वव्यापी बन रहा था। धर्म के नाम पर विविध प्रकार की हत्याएँ हो रही थीं। उच्च-वर्गी समाज के सर्वेसर्वा थे। मनुष्य की मुक्ति का एकमात्र सहारा वे ही बन गये थे।

ऐसे समय में सर्व प्रथम महावीर स्वामी ने अपने आप को जीतने का प्रयत्न किया। त्याग और तपस्या के बल पर अपनी आत्म-ज्योति को पूर्ण रूप से प्रज्वलित किया और बाद में उन्होंने अन्य समस्त प्राणियों को ज्योति प्रदान की। जैन सिद्धान्तों के अनुसार उक्त साधना-काल को 'छद्मस्थ अवस्था' के नाम से पुकारा जाता है। पूर्ण ज्ञान-ज्योति की सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् वह केवल ज्ञानी की श्रेणी में माना जाता है। अतः भगवान् महावीर ने प्रथम आर्य और अनार्य देशों में भ्रमण कर अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करते हुए आत्म-ज्योति को प्राप्त किया। पश्चात् वैदिक धर्म में फैले अत्याचारों के विरुद्ध सच्चे मानवीय धर्म की आवाज बुलन्द की। सर्व प्रथम उन्होंने कई ब्राह्मण पण्डितों को अपना शिष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

बनाया। वे अपने कर्म-काण्ड में पूर्ण निपुण थे। किन्तु भगवान् महावीर ने जब उन्हें नया एवं सत्य आध्यात्मिक अर्थ समझाया तो वे शीघ्र ही पारमार्थिक धर्म के स्वरूप को समझ कर उनके अनुयायी हो गये। भगवान् ने उनको समझाया कि वास्तव में यज्ञ क्या है, यज्ञ कुण्ड क्या है। समाधि किसे कहते हैं। आहुति किसकी दी जाय! स्नान कैसे किया जाय? आदि इस प्रकार धार्मिक पुरुषों की आध्यात्मिक भूख मिटाने का साधन वेद-वेदांग न होकर महावीर के द्वारा दिये गये उपदेशों का संकलन है जिन्हें गणधर कहलाने वाले ब्राह्मणों ने संकलित किया है। यह जैन आगम के नाम से प्रसिद्ध है।

उपदेश--भगवान् महावीर ने स्वयं तप, त्याग और चिन्तन को ग्रहण किया तथा इसका उपदेश भी दिया। उनका सिद्धान्त था कि प्रत्येक प्राणी जीना चाहता है। जब प्रत्येक जीवित रहने की इच्छा रखता है तो एक व्यक्ति दूसरे की बलि देकर कैसे सुखी बन सकता है। इस प्रकार सुख की आशा करना भूल है। यदि मुक्ति का अर्थ मानवता का पूर्ण विकास है तो वह अहिंसा के बिना नहीं हो सकता। अतः मुक्ति की परिभाषा करते हुए कहा गया–कि मुक्ति वह है जहाँ प्राणी को समता और स्वाधीनता का पूर्ण विकास प्राप्त हो। इस दृष्टि से देखा जाय तो ऐसा कौन-सा प्राणी होगा जो कहेगा कि मैं जीना नहीं चाहता। अतः मानवता-वाद का यही प्रथम सोपान है।

उनका दूसरा सिद्धान्त था आत्मा सभी की समान है। प्रत्येक प्राणी को चाहे वह किसी भी कुल में पैदा हुआ हो उसे अपनी आत्मा का कल्याण करने का पूर्ण अधिकार है। यही कारण है कि उनके प्रमुख शिष्यों में ऐसे व्यक्ति भी थे जो निम्न कुल में पैदा हुए थे। उन शिष्यों का पूर्व जीवन अत्यन्त क्रोधी और अत्याचारी था। किन्तु भगवान् के उपदेशों को ग्रहण कर वे ही शिष्य महान् बन गये। इस प्रकार भगवान् महावीर जात-पांत के भेदभाव को स्वीकार नहीं करते थे। मनुष्य अपने कर्म से उच्च एवं निम्न बनता है। यह उनका सिद्धान्त था।

उपसंहार--इस प्रकार भगवान् महावीर का जीवन एवं उनका उपदेश एक व्यक्ति को सच्चा मानव एवं मानव से परमात्मा तक पहुँचानेवाला एक श्रेष्ठ प्रकाश है। यदि उसे सही रूप में ग्रहण किया जावे तो वह विश्व के लिए ज्योति पुंज के समान होगा जो मुक्ति-पथ में मानव का मार्गदर्शन करेगा। अतः हम सभी का परम कर्तव्य है कि इस पुनीत जयन्ती के अवसर पर भगवान् महावीर के श्रेष्ठतम उपदेशों को ग्रहण कर उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि समर्पित करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सूत्रकृतांग के कुछ सुभाषित"

लेखक--श्री बन्सीलालजी भगवानदासजी कोठारी, (अहमदनगर)

(१) चित्तमन्तमचित्तं वा, परिगिज्झ किसामवि।
अन्नं वा अणुजाणाई, एवं दुक्खा ण मुच्चई ।।

जब तक मनुष्य (कामिनी, कांचन आदि) सचित्त या अचित्त पदार्थों में आसक्ति रखता है, तब तक वह दुःखों से मुक्त नहीं होता।

(२) संबुज्झह किं न बुज्झह ! संबोही खलु पेच्च दुल्लहा।
णो हूवणमंति राइओ, नो सुलभं पुणरावि जीवियं ।।

जागो ! समझते क्यों नहीं ? मृत्यु के बाद ज्ञान प्राप्त होना दुर्लभ है। बीती हुई रात्रियाँ नहीं लौटतीं और मनुष्य जन्म भी फिर मिलना सरल नहीं है।

(३) जमिणं जगती पुढो जगा, कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो।
सयमेव कडेहिं गाहई, णो तस्स मुच्चेज्जऽपुट्ठयं ।।

संसार में प्राणी अपने कर्मों से ही दुःखी होते हैं, और अच्छी-बुरी दशा को प्राप्त करते हैं। किया हुआ कर्म फल दिये बिना कभी नहीं छुटता।

(४) जइ वि य णिगणे किसे चरे, जइ वि य भुंजिय मासमंतसो।
जे इह मायाई मिज्जइ, आगंता गब्भाय णंतसो ।।

कोई भले ही नग्नावस्था में फिरे, या मास के अन्त में एक बार भोजन करे, परन्तु यदि वह मायावी हो, तो उसको बारम्बार गर्भवास प्राप्त होगा।

(५) महयं पलिगोव जाणिया, जा वि य वंदणपूयणा इहं।
सुहुमं सल्ले दुरुद्धरे, विउमन्ता पयहिज्ज संथवं ।।

इस संसार के वन्दन पूजन को कीचड़ का गड्ढा समझो--यह कांटा अति सूक्ष्म है, बडी कठिनाई से निकलता है; इसीलिए विद्वान् को उसके पास तक न जाना चाहिये।

(६) उदयं जई कम्ममलं हरेज्जा, एवं सुहं इच्छामित्तमेव।
अंधो व णेयारमणुस्सरित्ता, पाणाणि चेव विणिहन्ति मन्दा ।।

यदि पानी पापकर्मों को धो सकता हो, तो पुण्यकर्म भी धुल जावें ! यह सिद्धांत तो मनोरथ मात्र है। अन्धे नेता को अनुसरण करनेवालों के समान वे मूढ मनुष्य जीवहिंसा किया करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) **सुयं मे इहमेगेसिं, एयं वीरस्स वीरियं।**
सातागारवाणिहुए, उवसन्ते निरीहे चरे॥

बुद्धिमान् पुरुषों से मैंने सुना है कि सुखशीलता का त्याग करके, कामनाओं को शान्त करके निरीह होना ही वीर का वीरत्व है।

(८) **अप्पपिण्डासि पाणासि अप्पं भासेज्ज सुव्वए।**
खन्तेऽभिनिव्वुडे दन्ते, वीतगिद्धी सया जए।

सुव्रत धारण करनेवाला थोडा खाय, थोडा पिये; क्षमायुक्त, निरातुर, जितेन्द्रिय, और कामनारहित होकर सदा प्रयत्नशील रहे।

(९) **वए ण से होइ समाहिपत्ते, जे पन्नवं भिक्खु विउक्कसेज्जा।**
अहवा वि जे लाहमयावलित्ते, अन्नं जणं खिंसई बालपन्ने॥

जो अपनी प्रज्ञा से अथवा किसी अन्य विभूति के द्वारा मदमस्त होकर दूसरे का तिरस्कार करता है, वह समाधि को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

卐 卐 卐

छात्रों को आवश्यकीय सूचना—

बोदवड—श्री ओसवाल जैन बोर्डिंग में प्रविष्ट होनेवाले नये तथा पुराने सभी छात्रों को सूचित किया जाता है कि-ग्रीष्मावकाश के बाद तारीख १५ जून ६४ से बोर्डिंग तथा हायस्कूल चालू हो जायेगा। यहाँ पर नथमल हजारीमल रांका हायस्कूल में मैट्रिक तक शिक्षण दिया जाता है। तथा बोर्डिंग में खान, पान, रहन, सहन, इलेक्ट्री, फर्निचर आदि की सुन्दर सुव्यवस्था है। समाज के होनहार व गरीब छात्रों को सर्वप्रथम प्रवेश दिया जायेगा। अतः प्रवेशार्थी छात्र संस्था की तरफ से छपा हुआ, प्रवेश फार्म तथा नियमपत्र मुफ्त मंगवाकर तारीख ३१ मई के पूर्व फार्म भरकर १ रुपया प्रवेश फीस के साथ शीघ्राति-शीघ्र निम्न लिखित पते पर भिजवा देवें।

निवेदक—
सेक्रेटरी-**श्री ओसवाल जैन बोर्डिंग**
बोदवड, जिला-जलगांव (महाराष्ट्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

★ अजमेर के प्रांगण में श्रमणी-वृन्द का अभूतपूर्व संगठन ★

बदरीनारायण शुक्ल

विश्वसंस्कृति में भारतीय संस्कृतिका एक प्रमुख स्थान है। सदा से यह संस्कृति मुख्य रूपसे दो प्रमुख धाराओं में प्रवाहित होती आई है। पहली श्रमण संस्कृति तथा दूसरी वैदिक संस्कृति। श्रमण संस्कृति एक अनादि अनंत संस्कृति है, अतीत काल के अनंत तीर्थङ्कर भगवन्तों से लेकर आजतक यह संस्कृति अप्रतिबद्ध रूप से प्रवाहित होती चली आ रही है।

श्रमण-संस्कृति में तीर्थ-व्यवस्था को विशेष महत्त्व दिया गया है। सभी तीर्थकर अपने-अपने समय में तीर्थ का नवीनीकरण करते हैं। इस तीर्थ-व्यवस्था के साधु–साध्वी तथा श्रावक–श्राविका ये चार मुख्य अंग होते हैं। इसमें स्त्री तथा पुरुष दोनों के समान अधिकारोंका पूर्णरूपेण ध्यान रखा गया है। इसीलिए दो अंगोमें पुरुष को तथा दो अंगोमें स्त्री को प्रति–निधित्व दिया गया है।

अध्यात्मवाद श्रमणसंस्कृति की मूलधारा-धुरा है। आज चारों ओर भौतिकवाद फैल रहा है। विज्ञान के नये-नये आविष्कारों से सारा विश्व चकाचौंध हो रहा है। लोग अध्यात्मवाद को भूलते जा रहे हैं, यही कारण है कि मानव निरन्तर दुःख पा रहा है। समस्त आधि–व्याधि और दुःखों के निराकरण का एकमात्र उपाय अध्यात्मवाद ही है। इस अध्यात्म–वादकी छत्रछाया में सुदूर पूर्ण अतीत से लेकर आजतक एक दो नहीं अपितु अनंत आत्माएँ वास्त–विक सुख प्राप्त कर चुकी हैं। इतिहास के पन्ने इसके अनेक उदाहरणों से भरे पडे हैं। श्रमण वर्ग की एक बडी भारी संख्या आज भी देशके कोने २ में नियमानुसार पदयात्रा करते हुए इस जगत् कल्याण-कारी सिद्धान्त का निःस्वार्थ प्रचार कर रही है। श्रमणवर्ग का यह अपूर्वत्याग समूचे मानव समाज के लिए बडी ही गौरव की बात है। यहाँ यह बात विशेष रूपसे उल्लेखनीय है कि श्रमणवर्गकी भाँति– प्राचीन काल से लेकर अबतक हमारा श्रमणी-समाज भी इस दिशा में पीछे नहीं रहा है। आज जितने भी सम्मेलन, धार्मिक उत्सव आदि हुए हैं, उन सब में उसने अपना पूरा–पूरा सहयोग दिया है। वास्त-विकता तो यह है कि स्त्रियाँ सदा से ही प्रत्येक कार्य में आगे रहती आई हैं। सांसारिक स्थिति अथवा धार्मिक स्थिति दोनों ही में उनकी संख्या पुरुषों से अधिक रहती आई है। इतना होनेपर भी उनका पूर्वकालीन इतिहास अंधकार में है, यह बडे ही दुःख-की बात है। यदि हमारे श्रमणी-वर्ग ने इतिहास के साथ २ साध्वी समाज के इतिहास के स्थायित्व की ओर ध्यान दिया होता तो हमारे पूज्य श्रमणी-वर्गका ऐतिहासिक वृत्त अंधकार में न रहता। साधुओं का इतिहास तो भगवान् महावीर से लेकर आज तक किसी न किसी रूपमें प्राप्त होता है, पर श्रमणी–वर्ग का इतिहास क्रमबद्ध प्राप्त नहीं होता। भग–वान् महावीर के समय के नारी-रत्नों का तो वर्णन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होता है, पर उसके बादकी परम्परा अभी तक नहीं मिल सकी है। ऐतिहासिक विद्वानों को एवं विदुषी श्रमणी-वृन्द को भी इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

पूर्वकाल में श्रमणों के समान ही श्रमणी संघका भी सुदृढ संगठन होता था। भले ही उनकी सत्ता श्रमणवर्ग के हाथों में केन्द्रित रही हो। शासन की प्रभावना में उनका किसी प्रकार से कम योगदान नहीं रहा है। आज उनके उज्ज्वल इतिहास को पुनः श्रृंखलाबद्ध करने की अत्यन्त आवश्यकता है। भारतीय स्त्री जाति सदा से ही अधिकारों की नहीं, कर्तव्यों की मांग करती आई है। सीताका सतीत्व और चन्दनबाला का त्याग सदा उसका आदर्श रहा है। आज समस्त नारी जातिके कल्याण के लिए श्रमणी-वर्ग के एकीकरण की भी आवश्यकता है। भगवान् महावीर के समय आर्या चन्दनबालाजी छत्तिस हजार साध्वियोंका नेतृत्व करती थीं। यह नेतृत्व स्वयं भगवान ने उन्हें सौंपा था। अतः आज हमें उस महासती के नाम से प्रेरणा लेनी चाहिये।

जिस प्रकार शरीर के लिए दोनों आंखों का स्वस्थ होना आवश्यक है, उसी प्रकार श्रमण संस्कृति के संरक्षण के लिए श्रमण तथा श्रमणी दोनों ही की विशेष आवश्यकता है। संघ रूपी शरीर के प्रत्येक अंग को सुगठित और दृढ होना चाहिये तभी हम अपने कार्य क्षेत्र में सफल हो सकेंगे। ऊपर कहे गए उद्देश्यों की पूर्ति के लिए फाल्गुन शुक्ल तृतीया को अजमेर सम्मेलनके शुभ अवसर पर "श्री वर्द्धमान स्था. जैन चन्दनबाला श्रमणी-संघ" की स्थापना का पवित्र संकल्प किया गया। यह संगठन श्रमणी-समाज की सुव्यवस्था के हेतु ही किया गया है। उसमें श्रमणवर्गसे पृथक्ता की किंचित् मात्र भी भावना नहीं है, और न ही अधिकार लिप्सा का ही कोई विचार है, केवल श्रमणी-जीवन की साधना सर्वतोमुखी होकर सफल हो, एक मात्र इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह प्रयत्न किया गया है।

कार्यारम्भः--

फाल्गुन शुक्ल तृतीया के पवित्र दिन महासतियों के सामूहिक आयम्बिल तप के साथ अनुमानतः १४४ महासतियों की उपस्थिति में ९ बालब्रह्मचारिणी विदुषी सतियों ने "सेवो सिद्ध सदा जयकार" प्रार्थना के द्वारा कार्यका शुभारम्भ किया।

उद्देश्यः--

१-श्रमणीवर्ग में आचार-विचार संबंधी एकता स्थापित करके उन्हें अपने केंद्रभूत श्रमण संघीय संगठन के अनुरूप बनाना।

२-प्रधानाचार्य श्री जी तथा अधिकारी मुनिराजों द्वारा निर्धारित नियमों के पालन की समुचित व्यवस्था करना, तथा नियमों को पालन करना और साध्वी-वर्ग से पालन करवाना।

३-श्रमणीवर्ग के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था करना। "जैनधर्म प्रचारिणी समिति" के अन्तर्गत विदुषी सतियों को संगठित करके उनके द्वारा आवश्यक क्षेत्रों में जैनधर्म-प्रचार की व्यवस्था करना।

इस समय जैनधर्म प्रचारिणी सभा की मुखिया के रूप में सर्व सम्मति से विदुषी श्री सुमतिकँवरजी महासतीजी को स्वीकार किया गया है।

४-प्रचारिणी सतियों का वार्षिक प्रचार-विवरण आचार्य श्री जी की सेवा में मुखिया महासती जी श्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमतिकँवर जी म. प्रस्तुत करके उनका मार्ग दर्शन लेकर व्यवस्था सुधार करेंगे ।

५-प्रत्येक प्रान्त में सतियों के अध्ययन के लिए सिद्धान्त-शालाओं में व्यवस्था करना । अध्ययनकाल-५-या ७ वर्षका हो सकता है । स्थान २ पर महिला मंडल का संगठन बनाना ।

"श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन चन्दनबाला श्रमणी संघ"

अध्यक्षा श्री बालब्रह्मचारिणी सोहनकँवरजी महासतीजी, स्थविरा श्री बालकुँवरजी म; बालब्रह्मचारिणी श्री नंदकुँवरजी म. (नन्दाजी), बालब्रह्मचारिणी श्री उमरावकुँवरजी म. बालब्रह्मचारिणी श्री सुंदरकुँवरजी म. स्थविरा श्री प्रेमकुँवरजी म. स्थविरा श्री सौभागकुँवरजी म. की छत्रछाया में (नेतृत्व में) "श्रमणी संघ" की स्थापना की गई ।

१ विदुषी बा. श्री सुंदरकुँवरजी महासतीजी
२ श्री जैनमतिजी म.
३ विदुषी श्री वल्लभकुँवरजी म.
४ बाल. विदुषी श्री कमलावतीजी म.
५ पंडिता महासतीजी श्री सुमतिकुँवरजी म.
६ बाल. विदुषी श्री कुसुमवतीजी म.
७ विदुषी महा. श्री जसकुँवरजी म.
८ ,, ,, ,, प्रेमकुँवरजी म.
९ ,, ,, ,, सोभागकुँवरजी म.
१० विदुषी श्री पुष्पवतीजी म.
११ ,, ,, जयवन्तकुँवरजी म.
१२ श्री रोशनकँवरजी म.
१३ ,, नानकँवरजी म.
१४ ,, चंचलकँवरजी म.
१५ ,, विमलकँवरजी म.
१६ ,, सुगनकुँवरजी म.
१७ ,, दयाकुँवरजी म.
१८ ,, मेनकँवरजी म.
१९ ,, रूपकँवरजी म.
२० ,, उमरावकुँवरजी म.
२१ ,, चन्द्रवतीजी म.

प्रस्ताव

इस साध्वी संघ का नाम "श्री वर्द्धमान स्था. जैन चन्दनबाला श्रमणी संघ" रहेगा ।

१) इस संघ की सभी साध्वियों की श्रद्धना, प्ररूपणा एक होनी चाहिये, फरसना को एक बनाने का यथासंभव प्रयत्न होना चाहिये और जैन सिद्धान्तानुसार आचार-विचार उच्च कोटिका होना चाहिये ।

२) आगामी साधु-सम्मेलन में श्रमणी-संघीय सतियाँ अधिकारी मुनियों की आज्ञा, एवं कॉन्फरन्स के निमन्त्रण के विना सम्मेलन में नहीं जा सकेंगी ।

३) दूसरों को नीचा दिखाने के लिए द्वेष-भाव से गृहस्थों के सामने किन्हीं भी संत-सतियों की निन्दा नहीं करनी चाहिए । किसी से कोई दोष सुनले तो दोनों तरफ से पूछकर पूरा निर्णय करे फिर प्रेम से समझाकर दोष को दूर करे ।

४) इस सघ की सतियों को प्रतिदिन एक गाथा शास्त्र की अथवा दोहा या बोल कंठस्थ करना, सवासौ की स्वाध्याय करना और दुपहर को सामूहिक रूप से शास्त्र वाचन करना यह नियमित दैनिक कार्यक्रम रखना चाहिये और जगह-जगह महिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मण्डल पाठशाला के माध्यम से सम्यक् ज्ञान की अभिवृद्धि करना चाहिये।

५) कोई भी सती किसी कारण से अपने सिंघाडे से निकलना चाहे तो प्रवर्तक-उपप्रवर्तक एवं आचार्यश्री की आज्ञा के बिना नहीं निकल सकती है, और न निकाल ही सकते हैं। दूसरी सतियाँ भी बिना आज्ञा के अपने पास नहीं रख सकेंगी।

६) सतियों के पारस्परिक संघर्ष को गृहस्थों के सामने प्रकट नहीं करना चाहिए यदि अधिक हो तो विशिष्ट संत-सतियों के माध्यम से समझौता कर लें।

७) विशेष कारण के विना महीने में १० या ११ पौरुषी करना आवश्यक रहेगा।

८) प्रति महीने में जघन्य दो एकासने मध्यम २ आयम्बिल या दो उपवास करना चाहिए। बीमारी आदि विशेष कारणों की बात अलग है।

९) अत्यन्त बारीक वस्त्र, नाइलोन, जॉर्जेट, शिल्क (रेशम) आदि के वस्त्र एवं स्वेटर बनियान आदि काम में नहीं लेना ये वस्त्र शृंगारवर्द्धक होने से सतियों को अशोभनीय है। तथा महीन चद्दर ओढकर उपाश्रय से बाहर नहीं आना चाहिए और बडों की आज्ञा विना कोई चीज नहीं लाना चाहिए।

१०) खाने पीने के निमित्त प्लास्टिक के बर्तन जैसे ग्लास, प्याले, तस्तरियाँ, लोटे आदि नये नहीं लेना, धोने के लिए भी रंगीन प्लास्टिक के बर्तन नहीं रखना चाहिए।

११) बिना बहिन भाई के साक्षी के अकेले संत एवं पुरुष के साथ अकेली सतीजी को एकांत में बात-चीत नहीं करनी चाहिये और रात्रि के समय दूसरी सतीजी के साथ पुरुषों को मांगलिक सुनाने के शिवाय और बात-चीत नहीं करना चाहिये।

१२) श्रमणी संघ की सभी सतियों की हर जगह एक ही प्रार्थना होनी चाहिये। वह अभी "सेवो सिद्ध सदा जयकार" की रक्खी है।

१३) चातुर्मास के समय श्रोताओं को स्थायी ज्ञान प्रदानार्थ "नवतत्त्व सार्थ" (पाथर्डी) एवं तत्त्वार्थ सूत्र (पं. सुखलालजी) के विषय का विवेचन करना आवश्यक रहेगा।

१४) चंदनबाला श्रमणी संघीय सतियों को परस्पर में ११ संभोग रखना फरजियात है, १२ वां संभोग मरजियात होगा।

१५) सायंकालीन प्रतिक्रमण में सभी सतियों को अपने बडे गुरुणीजी के पास बैठकर मौन रखकर विधियुक्त सामूहिक रूप से करना चाहिये।

१६) "श्री वर्द्धमान चन्दनबाला श्रमणी संघ" आचार्यदेव, उपाध्याय, प्रवर्तक, उपप्रवर्तक आदि श्रमणवर्ग की आज्ञा को पूर्ण रूप से शिरोधार्य करने की निश्चित भावना प्रकट करता है।

१७) यह 'श्रमणी संघ' पंजाब और सौराष्ट्र में विचरनेवाली साध्वियों से सविनय प्रार्थना करता है कि चन्दनबाला श्रमणी संघ में सम्मिलित होकर संगठन को सुदृढ़ बनाकर जिन–शासन की शोभा बढे इस शुभ कामना से भविष्य में विराट् साध्वी सम्मेलन में सम्मिलित होकर विचारों का आदान-प्रदान करते हुए संयमी जीवन को यशस्वी बनावें।

ये सभी प्रस्ताव श्रमण संघीय साध्वियों ने सर्वानुमति से पास किये हैं।

जैनं जयति शासनम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध समाचार—

नोट कीजिए—

श्री तिलोक जैन विद्यालय और छात्रालय

पाथर्डी—ग्रीष्मावकाश की छुट्टियाँ ता. १४-६-६४ को समाप्त हो जाएँगी और ता. १५-६-६४ से श्री तिलोक जैन विद्यालय और छात्रालय पुनः नई उमंग से समाज-सेवा करने के लिए शुरू हो जाएगा।

सभी को विदित होगा कि विद्यालय और छात्रालय बयालीस सालों से (सन् १९२३ से) छात्रों को आदर्श नागरिक और देश-सेवक बनाने का प्रयत्न कर रहा है और अब इस उद्देश्य का दूसरा पहलू जो स्वावलंबी बनाना है, उसकी पूर्ति के लिए विद्यालय ने गत साल से ही यान्त्रिक शिक्षण देना प्रारम्भ कर दिया है। ता. ५-५-६४ को ही यान्त्रिक शिक्षण के लिए बनाई जानेवाली इमारत का शिलान्यास **महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री वसन्तराव नाईक** के द्वारा सम्पन्न हुवा है। जिसका कार्य जून तक पूर्ण होनेवाला है। विद्यालय में एस्. एस्. सी. तक का शिक्षण दिया जाता है और छात्रालय में धार्मिक शिक्षण के साथ ही छात्रों के निवास–भोजनादि का व्यवस्थित रूप से सुप्रबन्ध किया जाता है। अतः श्री तिलोक जैन विद्यालय और छात्रालय में प्रवेशार्थी छात्रों को सूचना की जाती है कि–वे संस्था की ओर से छपे हुए प्रवेश फार्म और नियमोपनियम मँगवाकर तथा उसे ३१ मई के पूर्व ही भरकर भिजवा दें और छात्रालय में अपना स्थान सुरक्षित करवा लें। प्रवेश फार्म की फीस १–२५ नये पैसे है। छात्रालय में अधिक अङ्कों से उत्तीर्ण और होनहार छात्रों को प्रवेश दिलाने की ओर विशेष सावधानी रक्खी जाएगी। देरी न कीजिए, निम्न पते पर पत्र भेजिए।

To.

सेक्रेटरी—

श्री तिलोक जैन विद्यालय, छात्रालय

पाथर्डी, अहमदनगर (महाराष्ट्र)

श्री महावीर जयन्ती का भव्य और शानदार आयोजन

पाथर्डी–२४-४-६४ श्री तिलोक जैन छात्रालय में श्री महावीर जयन्ती का उत्सव बडे धूम-धाम से मनाया गया। प्रातःकाल ही गाँव में चारों ओर चहल-पहल सुरु हो गई थी। ९॥ बजे छात्रालय में जनता की उपस्थिति प्रशंसनीय थी। मंगलाचरण के पश्चात् श्री एन्. एम्. गुगलिया, सेक्रेटरीजी ने भगवान् महावीर के जन्म का वाचन किया तत्पश्चात् बहनों और भाइयों ने भगवान् के जीवन से सम्बन्धित भजनों का और उपदेशों का गायन किया। श्री चुनीलालजी मोतीलालजी गुगलिया और श्री छाजेड सा. वकील ने भगवान् महावीर के द्वारा 'अपरिग्रहवाद का सुन्दर विश्लेषण कर परिग्रह अर्थात् मूर्च्छा का परित्याग करने की प्रेरणा दी। इसी तरह अनेक वक्ताओं ने महावीर के गुण-गान करते हुए उनके सिद्धान्तों को विश्व में सुख-शांति का साम्राज्य स्थापित करने के लिए अपनाने की अपील की। अन्त में सामूहिक रूप से त्रिशला-नन्दन की स्तुति करते हुए मिठाई वितरण के साथ जयन्ती समारोह सम्पन्न किया गया।

–पं. गुलाबचन्दजी जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहमदनगर में जन्म कल्याण दिन

ता. २४-४-६४ के दिन जैन समाज के तीनों संप्रदाय के तत्त्वावधानमें दीर्घ तपस्वी, हमारे चरम और परम तीर्थंकर भ० महावीर स्वामी का जन्म कल्याण दिन खूब ही उत्साह से मनाया गया।

सर्व प्रथम कापड बजार जैन मंदिर से तीनों संप्रदायका एक जुलूस शहरके मुख्य-मुख्य रास्तेपरसे निकला भ० महावीरका जयनाद करते-करते ठीक ८॥। बजे जैन धर्मस्थानक नवीपेठमें विसर्जन होकर उसका सभामें रूपान्तर हुआ।

प्रवर्तक मुनि श्री विनयऋषिजी म. सा. ने अपने भाषणमें भ० महावीर की विशेषता बताकर सामाजिक क्रांति, धार्मिक क्रांति और आर्थिक क्रांति इन ३ बातोंका अच्छा विवेचन किया। भ० महावीर स्वामी ने किया हुवा मानव जाति का उत्थान वैसे ही विश्व-शांति का भी उपदेश दिया।

बाद में जैन बालिका-मंडल की ओर से सांस्कृतिक कार्यक्रम हुआ, उसमें सुशीला गांधी व गुलाब पोखर्णा ने भजन, सुशीला गुगळे और मन्दाकिनी मुथा ने भाषण तथा कु. शोभना मुथा, अलका मुथा, मन्दाकिनी मुथ्था और सुशीला गुगळे इन्होंने भ० महावीर, इन्द्र और ग्वालेका एक छोटा-सा आकर्षक संवाद किया! • जवाहरलाल मुथा तथा रतनलाल सोनग्राने भी अपनी अलौकिक शैली से भ० महावीर के जीवन पर अपने विचार प्रकट किये!

आधुनिक क्रांतिकारक, ओजस्वी वक्ता महासती 'ज्योतिप्रभाजी' ने अपने क्रांतिकारी विचारधाराओं से भ० महावीर स्वामी के जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला बाद में डॉ. रानाडेजी ने अपने भाषण में भ० महावीरजी के जीवन की शिक्षा हमें युग-युगसे प्रेरणा देते आ रही है ऐसा कहा। अध्यक्ष महोदय माननीय भाऊसाहेब फिरोदियाजी ने उप-संहार करके श्रीयुत कर्नावट वकीलजी ने सभी के आभार माने!

अंतमें भजन, धून तथा मांगलिक होकर भ० महावीरजी के जयघोष समवेत सभा समाप्त हुई!

सभामें श्रीयुत भाऊसाहेब फिरोदिया, डॉ. रानडे डॉ. कुलकर्णी, नवले वकील, भालेराव वकील, गरुड वकील, झुंबरलालजी सारडा, रिजुमल ठाकुरदास कराचीवाला, मोहनलालजी डागा, बोगावत वकील, डॉ. बोरा आदि प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा बहुत बड़ा जनसमुदाय उपस्थित था। आज तक जो कार्यक्रम हुए उनमें यह एक "अपूर्व दिन" था!

भवदीय-**पनालाल पेमराज मुथा**

म. प्र. स्था. जैन युवक संघ का अधिवेशन भोपाल में किये जानेके सम्बन्धमें सुझाव भेजिये।

शाजापुर-मध्य प्रदेश स्थानकवासी जैन युवक संघ का तृतीय अधिवेशन २८,२९ जुलाई सन १९६२ को उज्जैन में सम्पन्न हुआ था जिस में अन्य समाजोपयोगी महत्त्वपूर्ण निर्णयों के साथ ही दो वर्षों के लिये पदाधिकारियों के निर्वाचन सम्पन्न हुए थे। अधिवेशन को सम्पन्न हुए दो वर्ष का समय होनेवाला है। संघ के विधानानुसार अब किसी अनुकूल स्थल पर अधिवेशन आमंत्रित कर नवीन पदाधिकारियों का चुनाव किया जाना आवश्यक है।

म. प्र. में जिन स्थानोंपर किन्हीं भी पूजनीय संत-सतियोंजी के चातुर्मास नहीं हो सके, उन स्थानों पर पर्युषण के दिनों में स्वाध्यायी श्रावकों को भेजकर ऐसे संघों को जिनवाणी का लाभ दिया जाता है जिसके लिये लगभग ५१ महानुभावों के नाम प्राप्त हो चुके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। अब आवश्यक है कि पर्यूषण के दिनों में की जाने-वाली प्रवृत्तियों व कार्यक्रमके सम्बन्धमें इन स्वाध्यायी श्रावकों को मार्गदर्शनन देने हेतु तथा युवकों की जैन धर्म के इतिहास, दर्शन, साहित्य, आचार-पद्धति आदि के सम्बन्ध में जानकारी देने हेतु "एक जैन युवक शिक्षण शिविर" आयोजित किया जावे।

इन दोनों महत्त्वपूर्ण कार्योंके लिये आमंत्रण भेजने हेतु निवेदन किया गया था, तद्नुसार फिलहाल केवल भोपाल से आमंत्रण पत्र प्राप्त हुआ है। भोपाल प्राकृतिक सौंदर्य से युक्त मध्य प्रदेश का विकसित नगर होने के साथ ही मध्य प्रदेश की राजधानी होने से विभिन्न गतिविधियों का केन्द्र है। इसी प्रकार भोपाल जहाँ पूर्व मध्य भारत क्षेत्र के निकट है वहां जबलपूर रायपुर, बालाघाट आदि विदर्भ- छत्तीसगढ क्षेत्र के कार्यकर्ताओं के लिये सुविधाजनक रहेगा।

ऐसी स्थिति में युवकसघ का अधिवेशन और शिबिर भोपाल में ही आगामी १३व १४ जून शनिवार व रविवारको आयोजित किया जाना योग्य प्रतीत होता है। अधिवेशन व शिबिर में सभी युवक कार्यकर्ताओं की उपस्थिति वांछनीय है। स्थान व समय का चयन सभी की अनुकूलता की दृष्टि से अपेक्षित है और समय कम है इसलिये कार्यकारिणी की बैठक बुलाकर स्थल व तिथियों का निश्चय करना सम्भव नहीं है। इसलिये म. प्र. स्था. जैन युवक संघ के सभी पदाधिकारिओं, परामर्शदाताओं, कार्यकारिणी के सदस्यों तथा सभी युवक संघों के पदाधिकारियों व कार्यकर्ताओं से निवेदन है कि वे अधिवेशन व शिबिर स्थल तथा तिथियों के सम्बन्ध में अपने सुझाव व विचार तत्काल भेजने का कष्ट करें जिससे स्थलएवं तिथियों-सम्बन्धी निश्चित घोषणा की जा सके।

मध्यप्रदेश स्थानकवासी जैन युवक संघ स्वाध्याय संघ योजना

शाजापुर- पूजनीय संत सती वृन्द की अल्प संख्या, योग्य विद्वानों का अभाव एवं अन्य परिस्थितियों के कारण वर्तमान में अनेक संघ चातुर्मास काल ही नहीं वरन् पर्युषण-पर्व में जिनवाणी के श्रवण लाभ से वंचित रहते हैं और उनमें धार्मिक ज्ञान का अभाव एवं सामाजिक शैथल्य बढता जा रहा है। इस हेतु अ. भा. सामायिक संघ के प्रेरक, श्रमण संघ के उपाध्याय पंडितरत्न मुनि श्री हस्तीमलजी महा. सा. एवं प्रवर्तक वयोवृद्ध पंडित मुनिश्री पन्नालालजी महा. सा. की निरन्तर सत्प्रेरणा से स्थान-स्थान पर स्वाध्यायी श्रावक भेजने की योजना विगत कई वर्षों से चल रही है। म. प्र. स्था. युवक संघ ने प्रदेश की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए गत वर्ष से इस योजना को क्रियान्वित करने की ओर कदम बढाये हैं जिनकी सफलता के लिये सभी का सक्रिय सहयोग वांछनीय है। इस योजना के लिये अभी तक लगभग ५० श्रावकों से स्वीकृति के अभिवचन प्राप्त हो सके हैं।

आशा है कि प्रदेश के सभी श्रावक और युवक इसके स्वयं सदस्य बनकर तथा अन्य श्रावकों को सदस्य बनाकर सदस्यता में अभिवृद्धि करते हुए अपना महत्त्वपूर्ण सक्रिय योगदान देकर इसे सबल बनायेंगे।

१) **उद्देश्य**- जिनवाणी के लाभ से वंचित संघ सुयोग्य श्रावकों द्वारा पर्युषण एवं अन्य समयों में व्याख्यान का लाभ प्राप्त कर यथोचित धर्म जागृति कर सकें ऐसी व्यवस्था करवाना।

२) **व्यवस्था**-सम्पूर्ण योजना की व्यवस्था म. प्र. स्था. जैन युवक संघ एवं स्वाध्यायी श्रावकों की एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्त समिति द्वारा होगी ।

३) **सदस्यता की पात्रता**– सुयोग्य' चरित्रवान् एवं श्रद्धावान् स्था. जैन श्रावक जो धर्म-प्रचार हेतु सहकार कर सकें, इसके सदस्य बन सकेंगे ।

४) **सदस्यों के कर्तव्य**–

अ) सप्तदुर्व्यसनों से दूर रह कर समाज में आदर्श चरित्रवान् गृहस्थ बनने का प्रयत्न करता रहे ।

ब) वर्ष में कम से कम ५० सामायिक एवं १० धर्म पुस्तकों का स्वाध्याय करें तथा अपने ज्ञानाभ्यास को बढ़ाता रहे ।

स) वर्ष में कम से कम १० दिन । (विशेषकर पर्युषण-पर्व पर) संघ के निर्देशानुसार किसी स्थान पर जाकर धर्म प्रचार करे ।

प्रतिज्ञा पत्र

मैने म. प्र. स्था. जैन युवक संघ द्वारा संचालित स्वाध्याय संघ योजना देखी । मैं इसके उद्देश्य, व्यवस्था और सदस्यता की पात्रता से सम्बन्धित नियमों से पूर्ण सहमत हूँ । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि सदस्यों के लिये जिन कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है, उनका पूर्ण रूप से पालन करते हुये किसी विशेष परिस्थिति को छोडकर अन्य सभी दशाओं में संघ के निर्देशानुसार वर्ष में कम से कम) दिन पर्यूषण पर्व पर) दिन अन्य तिथियों में स्थानीय या अन्य संघों को सेवा देता रहूँगा मुझ से सम्बन्धित जानकारी निम्नानुसार है--नाम सदस्य) पिता का नाम) आयु) शैक्षणिक योग्यता) काव्य शक्ति एवं गायनकला की योग्यता) जैनधर्म सम्बन्धी ज्ञान) अभी तक अध्ययन किये गये आगमों के नाम) नाम) पूर्ण पता)

सागरमल जैन (अध्यक्ष) –विनीत– **मनोहरलाल जैन** (प्रधान मंत्री)

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी, (अहमदनगर) की आगामी परीक्षाएँ—

बोर्ड की परीक्षाओं में सम्मिलित होनेवाले परीक्षार्थियों की सुविधा के लिए जैन सिद्धान्त विशारद, सि. प्रभाकर, सि. शास्त्री और जैन सिद्धान्ताचार्य परीक्षाएँ ११ नवम्बर १९६४ से प्रारम्भ होंगी और सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रवेशिका तथा प्रथमा परीक्षाएँ एक माह बाद होंगी ! निश्चित तिथि की सूचना आगामी अङ्क में प्रकट की जायगी ।

बोर्ड के पाठचक्रम में परिवर्तन किया जा रहा है। विद्वत्परिषद् की द्वितीय बैठक शीघ्र ही होनेवाली है । आगामी चातुर्मास में पाठचक्रम निश्चित होकर परीक्षार्थियों के लिए नूतन पाठ्य पुस्तकें शीघ्र ही समुचित प्रमाण में उपलब्ध हो सकें ऐसी व्यवस्था की जा रही है । यह परिवर्तन १९६५ की परीक्षाओं से लागू होगा ।

जैन तर्क भाषा का सरल हिन्दी अनुवाद बोर्ड के साहित्य-मन्त्री पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल द्वारा तैयार होकर प्रकाशित हो गया है । सिद्धान्त शास्त्री के परीक्षार्थी पाथर्डी से इसे प्राप्त कर सकते हैं । पं. भारिल्लजी द्वारा अनूदित प्रमाण-मीमांसा भी प्रेस में है । पाठ्य पुस्तकों की सुलभता के लिए बोर्ड का प्रकाशन विभाग तत्परता से प्रयत्नशील है ।

बदरीनारायण शुक्ल (परीक्षाधिकारी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—: आ जी व न स द स्य :—

१ के. चु. भटेवडा	राहू (पूना)
२ ता. रां. मा. सुन्दराबाईजी	आष्टा
३ इन्दरबाईजी	,,
४ श्रीमती रा. डागा	भोपाल
५ जी. ते. ललवानी	श्रीरामपुर
६ मे. ध. जैन	मगरदा
७ कि. चौधरी	शुजालपुर
८ गें. इ. जैन ,,	,,
९ कं. दी. जैन ,,	,,
१० सू. न. जैन ,,	,,
११ रा. चौ को ,,	,,
१२ का. ही. जैन ,,	,,
१३ ज. खो. डोशी	इन्दौर
१४ इ. सू. चोपडा	भामाठाण
१५ मे. टाटिया	सारंगपुर
१६ प्रे. जी. वेदमुथा	वर्धा
१७ दे. भि. कांकरिया	राहू
१८ श्री. न. पितलिया	सीहोर
१९ के. घी. बाफणा	नागपुर
२० क. ल. रांका	शुजालपुर
२१ स. व. जैंन	शाजापुर
२२ सु. जी. सिंदरसीवाला	,,
२३ वैं. र. स. मुणोत	वांबोरी
२४ भं. के. जोगड	बोदवड
२५ झुं. ध. मुथा	अहमदनगर
२६ अ. मा. गुगले	पाथर्डी
२७ ना. भ्र. र. भंडारी	पीपला
२८ सौ. गु. भ्र. सि. बोरा	अ.नगर
२९ ब. झुं. कोठारी	,,
३० ला. पा. मा. कोंडाबाईजी	पाथर्डी
३१ सौ. च. मो. लुणिया	जंजीरा
३२ मि. रा. भटेवडा	केडगांव
३३ फ. मु. शिंगी	नेवासा
३४ भा. खु. गांधी	आश्वी
३५ ना. क. छाजेड	चकलाआंबा
३६ उ. बा. देसरडा वकील	चाळीसगांव
३७ भ. झुं. गुगळे	करंजी
३८ चां. भ. मुणोत	वांबोरी
३९ कि. बी. पटवा	पाथर्डी
४० छो. ने गुगळे	लोहसर
४१ ही. भ्र. न. सुरपुरिया	पूना
४२ रा. भ्र. म. कोठारी	सतारा
४३ भी. मा. कर्नावट	सिरसमार्ग
४४ बा. डा. बद्धानी	अमरावती
४५ सु. भ्र. मो. मुथा	देवळाली
४६ प. कि. छाजेड	म्हसे
४७ मू. रि. संकलेचा	मजलेगांव
४८ हां. भ्र. च. शिंगी	अहमदनगर
४९ चं. ध. वैद	चांदा
५० सु. सु. कुचेरिया	पाथर्डी
५१ वि. शा. संकलेचा	अमरावती
५२ न. मु. बोरा	पीपला
५३ चाँ. मू. चंगेडिया	बरोरा
५४ एक गुप्तदानी सद्‌गृहस्थ	अ.नगर
५५ भी. के. ललवानी	मनमाड
५६ ब. मा. गांधी	पिंपलगांव
५७ प्रे. भ्र. ज. बोरा	,,
५८ मो. चु. मुथा	वांबोरी
५९ सौ. रू. सू भ्र. झुंवरलालजी	,,
६० मू. द. चंगेडिया	सोनई
६१ पू. मो. नाहर	घोडेगांव
६२ ने. ब भटेवड़ा	वांसदा
६३ ब. च. सिंगी	देवळाली
६४ श्री. रा. मुथा	,,
६५ झु. पू. बाफना	श्रीरामपुर
६६ ने. गु. मुथा	बेलापुर
६७ चु. पू. तातेड	,,
६८ मो. र. हिरन	,,
६९ के. मां. संचेती	चिंचवड
७० हू. सो. मुनोत	निंब्रारी
७१ गं. मो. कोठारी	पूना
७२ क. के. कांकलिया	पूना
७३ मो. ल. खिवसरा	,,
७४ र. मा. ओस्तवाल	सांगली
७५ छो ब. गुगळे	वांबोरी
७६ इं. गं. कोठारी	,,
७७ ने. झुं. सुराणा	राहुरी
७८ चां. मो. भंडारी	घोडनदी
७९ धू. भि. फुलफगर	घोडनदी
८० चं. शो. गादिया	,,
८१ चां. सु. कोठारी	बेलापुर
८२ रा. पो. गांधी	रस्तापुर
८३ जे. शां. संघवी	उत्राण
८४ भू. रा. कोठारी	केडगांव
८५ चु. भ्र. प्रे. देसरडा	न्हावरा
८६ कां. जा. नाहर	आलेगांव
८७ प. ही. कटारिया	वाल्की
८८ फू. बा. बाफना	राहुरी
८९ मा. गं. चोरडिया	बोरी
९० पु. शो. चोरडिया	,,
९१ रा. ल. भंडारी	सिरसाला
९२ ध. द. संचेती	पूना
९३ ज. चु. सांड	रहाता
९४ हृ. न. गांधी	श्रीरामपुर
९५ झुं. भ्र. ही. भलगट	गुलबर्गा
९६ ब. चं. गुगले	मलाड
९७ र. ही. लूंकड	श्रीरामपुर
९८ कुं. न. गांधी	,,
९९ सु. लुणावत	धामणगांव
१०० शांतिलालजी चौधरी	राजगढ़
१०१ न. शा. भाई	मलकापुर
१०२ ही. ल. मुथा	लक्ष्मेश्वर
१०३ सि. र. भुरा	सिवनी
१०४ चं हि. कुंकुलोल	कोल्हार
१०५ वि. पु. राकेचा	,,
१०६ ना. भ्र. रा. गुगले	,,
१०७ स. म. रांका	,,
१०८ फ. ज. गुगलिया	,,
१०९ मो. झुं. रांका	चिंचोली
११० प. का. रांका	,,
१११ हु. च. समदडिया	अस्तगांव
११२ भा. झुं. गुगले	पाथर्डी
११३ उ. हृ. कातरेला	अमरावती
११४ कां. मा. गांधी	मुंबई
११५ जे. मा. कटारिया	खरवंडी
११६ जे. धों. कटारिया	,,
११७ हृ. त. गांधी	वाम्बोरी
११८ मो. द. डोशी	अ. नगर
११९ जी. मे. बोरा	वाम्बोरी
१२० उ. बा. घाडीवाल	संगमनेर
१२१ मो. ला. मुणोत	भिंगार
१२२ भे. दी. गांधी	लोणावला
१२३ ज. सु. गुजराथी हलवाई	मालेगांव
१२४ मो. ज. ओस्तवाल	वाम्बोरी
१२५ ने. घ. कटारिया	खरवंडी
१२६ खु. मि. मुणोत	करंजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२७ श्री. बं. ने. पारख संगमनेर
१२८ ,, ता. रा. चोरडियाम्हा. पिपलगाव
१२९ ,, पू. को. भंडारी कडा
१३० ,, चु. गु. मुथा घाटसिरस
१३१ ,, गीगीबाई फिरोदिया अ. नगर
१३२ ,, न. धो. कटारिया लोणी
१३३ ,, ह. अ. चोरडिया अकोलनेर
१३४ ,, सौ. रु. झु. कटारिया चांदा
१३५ ,, पु. प. मुथा घाटसिरस
१३६ ,, सु. भ्र. ता. डोशी अ. नगर
१३७ ,, मा. घ. बोथरा खरवंडी
१३८ ,, स. मो. लुणावत जालना
१३९ ,, पु. मा. कटारिया इचलकरंजी
१४० ,, ही. रा. भटेवडा पूना
१४१ ,, ही. क. खाटेड पूना
१४२ सौ. शांताबाई मो. नाहर पूना
१४३ श्री. रा. शो. टाटिया पूना
१४४ ,, फू. तु. मालू खडकी
१४५ ,, मा. रा. बाफना वडगांव
१४६ ,, ध. ही. बाफना वडगांव
१४७ ,, ह. रा. बाफना वडगांव
१४८ श्री. आ. स. चोरडिया खेड
१४९ ,, दौ. ध. चोरडिया पिपळवंडी
१५० ,, रा. ला. चोरडिया बोरी बुद्रुक
१५१ ,, भा. कुं. गांधी संगमनेर
१५२ ,, चु. र. भंडारी अश्वी
१५३ ,, द. रा. गांधी प्रवरासंगम
१५४ ,, ग. न. चोपडा खांबा
१५५ ,, शो. च. भटेवडा राजुरी
१५६ ,, मि. मो. कोठारी अहमदनगर
१५७ ,, फ. आ. फिरोदिया साकूर
१५८ ,, जा. भि. भंडारी मंचर
१५९ ,, फू. रा. कटारिया संगमनेर
१६० ,, शां. प्रे. कटारिया अहमदनगर
१६१ ,, उ. शं. चोपडा साकूर
१६२ ,, च. लू. हिरण साकरवाडी
१६३ ,, बं. फ. बाफना साकूर
१६४ ,, के. बं. कटारिया अ. नगर
१६५ ,, क. बू. फिरोदिया साकूर
१६६ ,, धा. जे. शाह यवतमाल
१६७ ,, ही. जे. चोरडिया पूना
१६८ ,, ने. त्रां. शिंगी घोरपडी
१६९ श्री. रू. मा. नाहर रांजणगांव
१७० ,, शं. भा. दूगड अमलनेर
१७१ ,, कोट व. स्था. संघ मुंबई
१७२ ,, मोहनलालजी कांमती इन्दौर
१७३ ,, भा. छ. तुरखिया इन्दौर
१७४ ,, भं. शा. घाकड इन्दौर
१७५ ,, शि. जो. सर्राफ देवास
१७६ ,, र. भु. बजाज ,,
१७७ ,, इ. सांड बडावदा
१७८ सौ. मां. लसोड प्रतापगढ
१७९ श्री. वि. ल. गेलडा बोदवड
१८० ,, स्वा. नै. भटेवडा चाकण
१८१ ,, व. स्था. श्रा. संघ बदनोर
१८२ ,, कि. मि. भलगट भंडारा
१८३ ,, कि. झु. भलगट ,,
१८४ ,, कि. जं. भलगट ,,
१८५ ,, ह भि. बाफना पांडुरणा
१८६ ,, अ. मो. डांगी भीलवाडा
१८७ ,, भी. क. संचेती नांदूरा
१८८ ,, मो. क. झामड पीपलगांवराजा
१८९ ,, ज. खो. डोशी अमरावती
१९० ,, नेमोनाथ जैन देवास
१९१ ,, का. पू. जैन आगर

To

श्रीमान्

मुकाम हरिद्वार पोस्ट हरिद्वार

जिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्हम्

सुधर्मा

सम्यक् ज्ञान · सम्यक् दर्शन · सम्यक् चारित्र · सम्यक् तप

श्री ति. र. स्था. जैन धा. प. बोर्ड, पाथर्डी की मुखपत्रिका

वर्ष ५) जून १९६४ (अंक ११

इस अंक में

गुरुकुल कांगड़ी

१. सुधर्मा सुवचन सुधा		१
२. भारत का लाल और मानवता का सजग प्रहरी	बदरीनारायण शुक्ल	३
३. हार्दिक अभिनन्दन	" "	४
४. संयोग और वियोग की दृष्टि	उपाध्याय श्री अमरमुनि	५
५. जैनों की प्रमाण मीमांसा पद्धति का विकासक्रम	श्रीमान् पं. सुखलालजी	९
६. मंगल सोचो, मंगल करो (पद्य)	संकलित–कल्याण से	१३
७. भारतवर्ष की अर्वाचीन और प्राचीन भाषाएँ और उनका परस्पर सम्बन्ध	स्व. श्री हरगोविंददास त्रिकमचंद सेठ	१४
८. बुद्ध और महावीर	बन्सीलालजी कोठारी	१९
९. पाथर्डी बोर्ड की आगामी प्रारंभिक परीक्षाएँ	बोर्ड परीक्षाधिकारी पं. शुक्ल	२०
१०. महावीर जयन्ती का अद्भुत आयोजन	कुमार दुधोरिया	२१
११. तरंगवती–प्रशस्ति	बदरीनारायण शुक्ल	२५

...दक–पं. बदरीनारायण शुक्ल–पं. शोभाचंद्र भारिल्ल–प्रबन्ध सम्पादक–पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवर्ण नामावली

सदुपदेशक–परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज

संस्थापक–दानवीर शाह केशवजी जवेरचन्द, जामनगरवाले, जालना

आधारस्तम्भ

१	श्री. चन्द्रभानजी रूपचंदजी डाकलिया,	श्रीरामपुर (नगर)	४	स्व. माणकचंदजी किसनदासजी मुथा	अहमदनगर
२	,, केशरचंदजी कचरदासजी बोरा	आश्वी ,,	५	श्री. रा. ब कुन्दनमलजी लालचन्दजी कोठारी	ब्यावर
३	,, सूरजमलजी कस्तूरचन्दजी गांधी	अहमदनगर			

संरक्षक

१	श्री. तिलोकचंदजी खूबचंदजी गुंदेचा	चांदा (नगर)	७	श्री. मगनीरामजी फकीरचंदजी दुधेडिया	श्रीरामपुर
२	,, फकीरचंदजी उत्तमचंदजी गुगले चिचोंडी शिराळ	,,	८	सौ. धोंडाबाई भ्र. उत्तमचंदजी संचेती	पूना
३	,, माणकचंदजी उत्तमचंदजी गुगले	पाथर्डी ,,	९	श्री, कुन्दनमलजी कस्तूरचंदजी बोरा	,,
४	श्रीमती शक्करबाई रतनचंदजी सुराणा	द्रुग (मध्यप्रदेश)	१०	नवलमलजी सरदारमलजी पुंगलिया	नागपुर
५	श्री. पन्नालालजी गुलराजजी गांधी मावावाले	पूना	११	भिकमदास पोखरणा चै. ट्रस्ट	पूना
६	स्व. श्री.पन्नालालजी गुगले पाथर्डी के स्मारक		१२	श्री. उदयरामजी हरकचन्दजी रैदासणी	वीवी

सहायक सदस्य

१	श्री. उत्तमचंदजी कचरदासजी भटेवडा	राहू (पूना)	२५	श्री. कुंदनमलजी लुंकड की सुपुत्री सायरबाईजी	बेंगलोर
२	,, बंशीलालजी अमोलकचंदजी भटेवडा	,, ,,	२६	,, सिमरतमलजी चुनीलालजी मुथा	वांबोरी
३	,, माणकचंदजी भीवराजजी भटेवडा	,, ,,	२७	" धनराजजी मोतीलालजी कांकरिया	पूना
४	सौ. श्रीकुंवरबाई भ्र. मूलचंदजी भटेवडा	,, ,,	२८	,, खुशालचंद संपतलाल भूरट	घोडनदी
५	श्री. प्रतापमलजी फूलचंदजी बनवट	आष्टा	२९	,, मोतीलालजी मोहनलालजी सिंगी	पूना
६	सौ. उमराववाई भ्र. हस्तमलजी जैन	शाजापुर	३०	,, मिश्रीलालजी हस्तीमलजी दुगड	घोडनदी
७	श्री. केशरीमलजी बापूलालजी जैन	शुजालपुर	३१	,, कचरदासजी प्रकाशमलजी भलगट	अहमदनगर
८	,, रंभाबाई भ्र. गणपतसिंहजी जैन	,,	३२	,, सुखरामजी प्रेमराजजी मुथा	बेलापुर
९	सौ. तेजकुंवरबाई धर्मपत्नी डालचंदजी चौधरी	,,	३३	,, सौ. शांताबाई बाबूलालजी रैदासनी	नशीराबाद
१०	श्री. मोजीलालजी भीमसिंहजी जैन	,,	३४	,, ताराचंदजी भीवराजजी भटेवडा	राहू (पूना)
११	,, बीजराजजी जुगराजजी संचेती	मलकापुर	३५	,, तुलसाबाईजी कोचर	हिंगणघाट
१२	,, तेजमलजी भीवराजजी संचेती	,,	३६	,, जसराज कालाभाई लाठिया	मुर्तिजापुर
१३	श्री. जवरीबाई भ्र. धूलजीभाई	शाजापुर	३७	,, बापूलाल प्रेमचंद संघवी	अकोला
१४	श्री. हिंमतलालजी सा. जैन	शाजापुर	३८	,, शाह नागजी पानाचंद बारवडा	रायपुर
१५	,, कनकमलजी चुन्नीलालजी गांधी	चांदा	३९	,, रूपचंदजी गोकुलचंदजी कोठारी	कोपरगांव
१६	,, नारायणदासजी मोहनलालजी मंडलेचा	येवला	४०	,, चन्दनमल नन्दरामजी गांधी	श्रीरामपुर
१७	,, भागूबाई भ्र. चंदनमलजी गादिया	बेलापुर	४१	,, दलीचन्द गुलाबचन्दजी पारख	नागपुर
१८	,, मगनलाल सुंदरजी शाह	अमरावती	४२	,, उत्तमचन्दजी चुनीलालजी मुथा	वाम्बोरी
१९	,, हेमकुंवरबाई भ्र. कालीदासजी शाह	सातारा	४३	,, कचरदास रूपचंदजी कर्नावट	इचलकरंजी
२०	,, मयाशंकर चत्रभुज शाह	अमरावती	४४	,, हंसराजजी गुलाबचंदजी लुणावत	लोणावला
२१	,, शान्तिलाल पोपटलाल काठेड	अहमदनगर	४५	,, गेंदालालजी मोतीलालजी जैन ट्रस्ट	इन्दौर
२२	श्री. कचरदास मोहनलाल लोढा	अहमदनगर	४६	,, राजमल नन्दलाल मेहता चै. ट्रस्ट	भुसावल
२३	,, गेंदमल राजमल जैन	शुजालपुर	४७	सौ. सुगनबाई चांदमल जैन	देवास
२४	,, लाभचन्दजी गुलाबचन्दजी चोरडिया	हिंगणघाट	४८	श्री का. पू. जैन	आगर

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के लिए
प्रकाशक व मुद्रक पं० बदरीनारायण द्वारकाप्रसाद शुक्ल
मुद्रण व प्रसिद्धिस्थ ल श्री सुधर्मा मुद्रणालय ८३२ जूना कापड बाजार पाथर्डी, जि० (अहमदनगर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की ज्योति जगाने हेतु विविध निवन्ध-प्रवन्ध माला स्वरूप धार्मिक आध्यात्मिक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक **मासिक पत्रिका।**

सुधर्मा

मूल्य
वार्षिक ६-००
१ अंकका ०-५०
卐
प्रत्येक १५ तारीख को प्रकाशित होगी।

सुष्ठु धर्मः समाख्यातो वीरेण परमार्हता।
सर्वत्र तत्प्रचाराय सुधर्माख्या सुपत्रिका॥

वर्ष ५) **१५ जून १९६४** **(अंक ११**

सुधर्मा सुवचन सुधा

卐

मूलः-जहा सूई ससुत्ता, पडिया वि ण विणस्सई।
तहा जीवे ससुत्ते, संसारे न विणस्सई॥६॥

छायाः-यथा सूची ससूत्रा, पतिताऽपि न विनश्यति।
तथा जीवः ससूत्रः संसारे न विनश्यति॥६॥

शब्दार्थः- जैसे ससूत्र-धागासहित सुई गिर जाने पर भी विनष्ट नहीं होती- नहीं गुमती, इसी प्रकार ससूत्र-श्रुतज्ञान-सहित जीव संसार में विनष्ट नहीं होता-कष्ट नहीं पाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. रत्न श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल कृत भाष्य—

भाष्य:— श्रुतज्ञान की प्राप्ति के उपायों का निर्देश करके सूत्रकार ने यहाँ श्रुतज्ञान का प्रभाव प्रदर्शित किया है और इहलोक में भी श्रुतज्ञान की उपयोगिता दिखलाई है।

श्रुतज्ञान का फल परम्परा से मुक्ति प्राप्त करना है किन्तु इस लोक में भी उसकी अत्यन्त उपयोगिता है। सूत्र (सूत-डोरा) से युक्त सुई कभी गिर जाय तो भी वह सदा के लिए गुम नहीं जाती—किन्तु डोरा के संयोग से पुनः प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार जो मनुष्य श्रुतज्ञान से युक्त होता है वह संसार में रहता हुआ भी दुःखों से मुक्तप्राय हो जाता है।

संसार में सब से अधिक दुःख इष्टवियोग और अनिष्टसंयोग से उत्पन्न होते हैं। इन्हीं दो कारणों में प्रायः अन्य कारणों का समावेश हो जाता है। ज्ञानी जन इष्ट-वियोग और अनिष्ट-संयोग की अवस्था में व्याकुल, क्षुब्ध और संतप्त नहीं होते। जिसे अज्ञानी जन दुःख का पर्वत समझकर उसका भार वहन करने में अपने को असमर्थ पाते हैं, ज्ञानी जन उसे वस्तुओं का स्वाभाविक परिणमन समझकर मध्यस्थ भाव का अवलम्बन करते हैं। अज्ञानी जीव इष्ट-वियोग और अनिष्ट संयोग रूप दुःखों की उत्तुंग तरंगों में इधर-उधर बहता हुआ अस्थिर रहता है, ज्ञानी जन उन तरंगों में चट्टान की तरह निश्चल बने रहते हैं। पुत्र-कलत्र आदि इष्ट जनों के वियोग से अज्ञानी जीव आर्त्तध्यान के वशवर्त्ती होकर घोर दुःख का अनुभव करता है परन्तु सिद्धान्तवेत्ता ज्ञानी पुरुष उसे कर्मों की क्रीड़ा समझकर साम्यभाव का आश्रय लेते हैं—वरन् संसार से विरक्त होकर राग के बन्धन को अधिकाधिक काटने का प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार धन, सम्पत्ति, राज्य, वैभव आदि पदार्थों का वियोग होने पर भी वे दुःख का अनुभव नहीं करते हैं। वे विचारते हैं कि संसार के समस्त संयोग विनश्वर हैं, शोक करने से उनका विनाश रुक नहीं सकता। अतएव उनके लिए शोक करने से लाभ ही क्या है? संसार में—

मातापितृ-सहस्त्राणि पुत्रदारशतानि च।
प्रतिजन्मनि वर्त्तन्ते कस्य माता पिताऽपि वा॥

अर्थात् हजारों माता-पिता हो चुके हैं, सैंकड़ों पुत्र और कलत्र बन चुके हैं। यह तो प्रत्येक जन्म में होते रहते हैं। वास्तव में कौन किसकी माता है? कौन किसका पिता है? तथा—

रिद्धी सहावतरला, रोगजराभंगुरं हयसरीरं।
दोण्हं पि गमणसीलाणं, कियच्चिरं होज्ज संबंधो?॥

अर्थात् ऋद्धि स्वभाव से चंचल है। यह गया-बीता शरीर रोग और जरा के कारण नाशशील है। जब धन-सम्पत्ति और शरीर दोनों ही विनश्वर हैं तो दोनों का संबंध कितने काल तक रह सकता है।

इस प्रकार की विचारधारा में अवगाहन करने वाले ज्ञानी को दुःखों का संताप तनिक भी संतप्त नहीं कर पाता। वह विकट से विकट समझे जाने वाले प्रसंगों पर भी शान्त, विरक्त, साम्यभावी और धैर्य सहित बना रहता है। कर्मों के फल की विचित्रता का विचार करके दुःखों को परास्त कर देता है। ज्ञान रूपी महामहिम यंत्र में दुःखों को ढाल कर वह सुख में परिणत कर सकता है। इसलिए शास्त्रकार ने कहा है कि श्रुतज्ञानी पुरुष संसार में रहता हुआ भी दुःख नहीं उठाता। ज्ञानी पुरुष की अनासक्ति ही उसकी रक्षा करने वाले कवच का काम देती है। उसका साम्यभाव ही उसकी ढाल है, जिससे दुःख का क्रूर से क्रूर प्रहार भी उसके सामने वृथा बन जाता है। ज्ञान सुख-प्राप्ति की सर्वश्रेष्ठ कला है। ज्ञान सुख के अक्षय कोष की कुंजी है। ज्ञान मुक्ति का द्वार है। ज्ञान शिव का सोपान है। 'ज्ञानं न किं किं कुरुते नराणाम्' अर्थात् ज्ञान से मनुष्यों का सभी अभीष्ट सिद्ध हो जाता है अतएव हे भव्य जीवों! ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रबल पुरुषार्थ करो। निरन्तर अप्रमत्त भाव से ज्ञान की आराधना करो। ऐसा करने से कल्याण तुम्हारे सन्मुख आजायगा। दुःख पास भी नहीं फटक सकेंगे। ज्ञान की दिव्य ज्योति पाकर तुम अपने असली रूप को देख पाओगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

{ भारत का लाल और मानवता का सजग प्रहरी }

२७ मई सन् ६४ भारतीय इतिहास के लिये ही नहीं, किन्तु समस्त संसार के लिये एक संस्मरणीय पुण्य तिथि रहेगी। मानव मानव पर आधिपत्य रखे और स्वार्थ के लिये परार्थों को कुचलता रहे, इसे महान् अत्याचार माननेवाले **पं. जवाहरलाल नेहरू** आज विश्व में नहीं रहे, इस समाचार से सभी का दिल दहल गया, धरणी भी काँप उठी। पण्डितजी केवल भारत के पारतन्त्र्य को ही विनष्ट करने के लिये प्रयत्नशील नहीं रहे अपितु उनके व्यापक दृष्टिकोण में सारा विश्व ही अपना था, वे किसी भी देश को गुलाम नहीं देख सकते थे, उनके प्रयास का ही यह सुन्दर परिणाम है जो कि बडी-बडी शक्तियों के संरक्षण पाकर भी गुलामी का टिकना दुस्तर होता गया और आज अनेक देश स्वतन्त्रता का उपभोग करने लगे हैं।

पण्डितजी का ध्यान समाज में घर किये हुये संकीर्ण विचारों को बदलकर उनके स्थान पर व्यापक दृष्टिकोण स्थापित करने की ओर आकृष्ट था और यह करते हुये प्रत्येक को सुख-सुविधा प्राप्त कराने के लिए वे प्रयत्नशील थे। यद्यपि पण्डितजी के प्रण अभी बहुत से अवशिष्ट रह गये हैं, तथापि जो काम वे कर गये हैं वे उन्हें महामानव सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। निस्सन्देह ईसा की बीसवीं सदी भारत के लिए अत्यन्त उल्लेखनीय मानी जायगी जिसमें महात्मा, महामना और महामानव जैसी विभूतियाँ इसे उपलब्ध हुई। इन विभूतियों ने विश्व में भारत का नाम फैलाया और इनके सभी उद्देश्य सर्वत्र पवित्र माने गये। भारत अपने पूर्व गौरव की ओर बडी तेजी से बढ़ रहा था किन्तु विधि को यह इसी रूप में होने देना अभीष्ट नहीं था, इसीलिए अचानक ही इस तरह की अचिन्त्य और अनिष्ट घटनाएँ होती गई। अब तक पण्डित नेहरू का आधार रहा, इसलिए सभी को बहुत बडी आशाएँ लगी थीं कि अगले कुछ ही वर्षों में शान्ति और सुख के साधन समुपलब्ध होने लगेंगे। इसी प्रकार हर एक में ऐसा विश्वास रहता था कि कोई भी आपत्ति या विपत्ति का प्रसंग आयेगा तब हमारे बीच मानवताके सजग प्रहरी पं. नेहरूजी होने से उसे किसी किस्म की आँच नहीं आ सकेगी।

पं. जी के विषय में कभी–कभी किसी–किसी को चीढ भी आती थीं कि ये हम सब को किधर ले जा रहे हैं? हमारे रीतिरिवाजों में इतना परिवर्त्तन क्यों हो रहा है? परन्तु पं. जी के व्यक्तित्वका इतना प्रभाव था कि धैर्य के साथ चकित वृत्ति में भी जनता उनकी अपनी बनी रहती थी। इन सब के पीछे उल्लेखनीय कारण थे–पंडित जी की त्यागवृत्ति और परार्थ परायणता।

आज पं. नेहरू हम सबके बीच अपने भौतिक शरीर से नहीं रह गये तथापि उनकी अमोल हित शिक्षाओं–मार्गदर्शनों का इतना बडा आलम्बन प्राप्त है कि जिसके सहारे मानवता की बहुत बडी सेवा की जा सकती है।

अन्तमें अत्यन्त व्यथित अन्तः करण से **सुधर्मा परिवार** अपने स्वर्गीय नेता के प्रति भावपूर्ण **श्रद्धांजलि** समर्पित करता हुआ दिवंगत आत्मा को चिरशांति प्राप्त्यर्थ शासन देवसे सतत प्रार्थना करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—: हार्दिक अभिनन्दन :—

भारत स्वतन्त्र होने से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक देश की प्रमुख पार्टी (काँग्रेस) के नेता अतएव भारतीय शासन के प्रधान मन्त्री के स्थान से स्व. सुश्री नेहरूजी ने जो सेवाएँ समर्पित कीं उनसे जनता इतनी ओतप्रोत हो गई थी कि पं. जी अर्थात् भारतीय शासन और भारतीय शासन अर्थात् पं. नेहरू इस प्रकार की सुदृढ़ भावना जन-जन में निर्माण हो चुकी थी। अब पं. जी के पश्चात् भारत का नेता कौन ? ऐसा प्राश्निक दृष्या सहज किन्तु उत्तर की दृष्टि से अति कठिन प्रश्न प्रत्येक विचारक के दिल में सतत प्रवाहित होने लगा था।

इस प्रश्न के साथ ही दूसरा प्रश्न भी उठता रहा कि क्या पं. जी जैसे दीर्घदर्शी व्यक्ति ने अपने पश्चात् कार्य करने की क्षमता किसी में निर्माण ही नहीं की ?

इन प्रश्नों की गहराई में विचारकों को बहुत गोते नहीं लगाने पडे, शीघ्र ही समाधानकारक उत्तर सामने आ गया। पं. नेहरू के सान्निध्य में बहुत अर्से से काम किये हुये उनके परम विश्वासपात्र **श्री लालबहादुर शास्त्रीजी** पार्टी के सर्वसम्मत नेता निर्वाचित कर लिये गये। श्री शास्त्रीजी के विषय में जनता अपरिचित नहीं है। छोटे कद के पर उच्च विचारों के, स्वभाव से सरल पर उचित प्रशासक, गंभीर विचारक और प्रख्यात मनीषी हैं। शास्त्रीजी काशी की सुप्रसिद्ध संस्था "काशी विद्यापीठ" के स्नातक हैं। जहाँ प्राचीन और अर्वाचीन विचार-प्रवाहों का एकत्र संगम सिखाया जाता है, राजनीति एवं समाजशास्त्र का सच्चा ज्ञान कराया जाता है, उस विशाल अध्ययन की ही यह सुपरिणति है जो माननीय शास्त्रीजी के विचारों में समन्वय और सामंजस्य पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध हो रहे हैं। गृहमन्त्री जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण विभाग को सच्ची निष्ठा और दक्षता के साथ संचालित कर आपने अपनी सद्योग्यता और कर्मण्यता का पूरा परिचय दे दिया है। पिछले कुछ दिनों से स्व. पं. नेहरूजी के आप अभिन्न सहयोगी रह चुके हैं, इससे स्वदेश और परदेश की स्थिति का आपको अच्छा ज्ञान है। पं. जी के पश्चात् आपकी ही नीति का सच्चा समर्थक एवं पदचिह्नों पर चलने की निष्ठा रखनेवाले ऐसे सुयोग्य नेता भारत को उपलब्ध हुये इससे देश और विदेशों में सर्वत्र हर्ष मनाया जा रहा है। अपने देशके प्रशासन की बाणडोर एक अच्छे नेता के हाथमें आनेकी हम सभी को बहुत ही खुशी है। हम इस प्रसंग पर भारत के प्रधानमंत्री पद–प्रतिस्थित सन्माननीय श्री शास्त्रीजी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और आपके नेतृत्व में देश अच्छी तरह फले–फूले ऐसी शुभ कामना रखते हैं।

बदरीनारायण शुक्ल ('सम्पादक')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

☆ संयोग और वियोग की दृष्टि ☆

"चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में बाकी बचा न कोय।"

यह सन्त कबीर की वाणी है। इस एक पद में सारे संसार का रहस्य छुपा हुआ है। यह मनुष्य दो पाटों के बीच पिस रहा है। आज से नहीं, बल्कि अनन्त काल से पिसता चला आ रहा है। धर्म और दर्शन यही कहते हैं कि जब तक प्राणी संसार में रहेगा, तब तक उसे दो पाटों के बीच में पिसते ही रहना होगा। किन्तु एक समाधान है। "जो कीली से अलग रहे, बाल न बांका हो।" अर्थात् जो अपने आपको काबू में रखता है, अपने मन पर और अपने जीवन पर अंकुश रखता है, वह फिर भी बच सकता है। लेकिन हमारे सामने प्रश्न तो यह है कि क्या ऐसी कोई स्थिति आ सकती है, जिसमें पिसाई ही बन्द हो जाय! क्योंकि जब तक चक्की चलती रहेगी, तब तक खैरियत नहीं है।

चक्की के ये दो पाट

ये दो पाट क्या हैं? एक संयोग का पाट है और दूसरा वियोग का पाट है। सारा संसार इन्हीं दो पाटों के बीच में पिस रहा है। संयोग और वियोग को जीवन से सर्वथा मिटा देना बहुत कठिन है। जब तक जीवन है–तब तक संयोग है और वियोग भी है। चार गति, चौरासी लाख जीव-योनियों का रूप संयोग और वियोगमय ही है। आत्मा का शुद्ध रूप कहीं भी नजर नहीं आता। सब जगह संयोग और वियोग का ही रूप दृष्टिगोचर होता है। जहाँ संयोग होता है, वहाँ वियोग अवश्यंभावी है। कोई भी संयोग ऐसा नहीं है जो नित्य और चिरस्थायी हो, लेकिन यह व्याप्ति भी इकहरी है। यानी जिसका सम्बन्ध अलग हो गया है, जो वियुक्त हो गया है, उसका संयोग भी अवश्य ही होगा–ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह हो भी सकता है और नहीं भी। वियोग होने पर हम दुःख महसूस करते हैं, उसका एक मात्र कारण यही है कि हम अपनी अन्तरात्मा को उस कामना में आसक्त कर देते हैं, अपने स्वरूप को भूलकर दूसरे की पकड़ में आ जाते हैं, अपने विवेक पर अंकुश नहीं रख पाते, क्योंकि जब तक विवेक जागृत रहता है–तब तक आसक्ति का आक्रमण नहीं हो सकता है। ऐसा कहा जाता है कि यदि जंगल में शेर मिल जाय तो शेर की आँखों से अपनी आँखे टकटकी के साथ मिला लीजिए, जब तक आँखें मिली रहेंगी, झप-केंगी नहीं, तब तक शेर आक्रमण नहीं करेगा। आँखों के झपकते ही वह आक्रमण कर बैठता है। यदि यह सच है तो यही उदाहरण विकारों के आक्रमण के लिए भी लागू होता है। जब तक आत्मा का विवेक विकारों पर कडी नजर रखता है, तब तक उनका आत्मा पर हमला नहीं हो सकता। किन्तु ज्यों ही विवेक झपकी लेने लगा कि विकारों का हमला होने लग जाता है। इसलिए हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जहाँ संयोग है, वहाँ वियोग तो अवश्य होता है, लेकिन जहाँ वियोग है, वहाँ संयोग का होना अनिवार्य नहीं है। यदि हम जागृत रहें तो वह वियोग संयोग का रूप धर कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुबारा नहीं चिपकेगा। संसार के बन्धन हमको तभी घेरते हैं जब हम अपने स्वरूप में नहीं होते। इस-लिए मन को संतुलित अवस्था में रखने की जरूरत है। संयोग होने पर हर्ष नहीं और वियोग होने पर विषाद नहीं। यदि हमारी ऐसी मनोदशा बन जाय तो फिर संयोग और वियोग रहे या न रहे, चिन्ता की कोई बात नहीं होगी। संयोग होने पर मनुष्य उछलने लगे, अहंकार करने लगे, धन-सत्ता आदि प्राप्त होने पर अपने आपको ही भूल जाय, तब क्या किया जा सकता है? धन या सत्ता अपने आप में जड़ चीजें हैं। वे न तो बुरी हैं, न अच्छी हैं। अच्छा और बुरा तो मनुष्य का अपना विचार होता है। वह किस चीज को किस दृष्टि से देखता है, यही बुराई एवं अच्छाई को समझने की कसोटी है। इस-लिए इन दो पाटों के बीच में यदि सुरक्षित रहना है तो अपने मन को संतुलित करना होगा। यदि किसी चीज का संयोग होने पर अहंकार नहीं आता, आसक्ति नहीं होती, विकार भी नहीं होते तो वह संयोग पतन का कारण नहीं बनेगा। आदमी को धन नहीं मारता है। उसे तो उसका अहंकार ही मारता है। यदि राज्य और धन मनुष्य को पीसने वाले होते तो राम को, कृष्ण को, अशोक को कभी का पीस दिया होता। लेकिन इनको राज्य और धन का अहंकार नहीं था, इसलिए ये बच गए। दूसरी ओर रावण, कंस इत्यादि राजा अल्प ऐश्वर्य में भी पीसे गए। आखिर क्यों? इसीलिए न कि वे उस सत्ता में आसक्त हो गए थे? उनके लिए राज्य जीवन से अधिक मूल्यवान् हो गया था। हर वस्तु का सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी। जो सदुपयोग करना जानता है, वह उस वस्तु से आनन्द उठाता है, जो सदुपयोग करना नहीं जानता उसके लिए वही वस्तु विनाशक और बन्धन का कारण बन जाती है।

बुराई वस्तु में या दृष्टि में?

मनुष्य वस्तु को विकृत भी करता है। जो वस्तु हर्ष प्रदान करने वाली होती है, उसी वस्तु को आदमी उन्मादी बना डालते हैं। हर्ष अच्छा है उन्माद एवं पागलपन नुकसान देता है। नशा रोटी में भी होता है और शराब में भी होता है। रोटी का नशा स्फूर्ति और शक्ति प्रदान करता है, और शराब का नशा उन्माद उत्पन्न करता है। इसलिए हर्ष ग्राह्य है—उन्माद त्याज्य है। संयोग होने पर भी जहाँ तक हर्ष की सीमा रहती है, वहाँ तक वह उचित है, लेकिन जहाँ किसी संयोग से उन्माद पैदा हो जाता है, वहाँ वह आत्मा को पीसने वाला पाट बन जाता है।

इसी तरह वियोग में भी संतुलन की आवश्य-कता है। वियोग अपने आप में बुरा नहीं है। राम को अयोध्या का वियोग सहना पड़ा। उन्होंने चौदह वर्ष तक जंगल के कष्ट सहे। लेकिन वह वियोग उन्हें पीसने वाला सिद्ध नहीं हुआ। वियोग नहीं पीसता, बल्कि वियोग होने पर जो विषाद पैदा होता है, हीनता तथा दीनता के भाव पैदा होते हैं, वे ही पीसते हैं। धैर्य और साहस मानव-जीवन में रीढ़ की हड्डी के समान हैं। यदि यह रीढ़ की हड्डी ही टूट जाय तो फिर जीवन कैसे बचेगा? शरीर की सारी नसें और उपनसें इस रीढ़ की हड्डी के आधार पर ही रक्त संचालन करती हैं। अगर यह केन्द्र ही खत्म हो जाय तो सब का रास्ता अपने आप अव-रुद्ध होगा ही अतः भयंकर से भयंकर वियोग हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भी धैर्य और साहस नहीं टूटना चाहिए।

मैं मानता हूँ कि इष्ट वस्तु के वियोग होने पर धैर्य रख पाना, समभाव पूर्वक उस क्षति का बरदाश्त करना एक बहुत बडी तपस्या है। उपवास में भोजन का वियोग होता है और उससे क्षुधा की वेदना होती है। उस समय मन को शान्त एवं स्थिर रखना ही तपस्या है। केवल खाना छोड देना ही तपस्या नहीं है। खाना तो कभी-कभी कैदी को भी नहीं दिया जाता। क्या इसीलिए उसे तपस्वी कहा जा सकता है? वास्तविक तपस्या तो तभी होती है, जब वियोग के कष्ट को धैर्य और समभाव पूर्वक सहा जाय। मन में किसी प्रकार की अशांति और क्षोभ न उत्पन्न हो, विचारों में व्याकुलता न आए, किसी के प्रति घृणा अथवा द्वेष की वृत्ति पैदा न हो, मन में किसी प्रकार क्लेश भी न हो, तभी तपस्या होती है।

इसी तरह इष्ट वस्तु के संयोग होने पर आसक्ति न पैदा होने देना भी बहुत बडी तपस्या है। संयोग के अवसर पर जो उन्मादी बनता है, उसी को वियोग के समय आत्यंतिक विषाद का सामना करना पड़ता है। जो संयोग के समय अपने पर नियंत्रण रख सकता है, वह वियोग के समय भी धैर्य पूर्वक कठिनाइयों का मुकाबला कर सकता है। जैसे कागजों का एक ढेर रखा है, आप एक-एक कागज उठाते जाइए, वह आसानी से उठता जायगा, किन्तु उन कागजों में गोंद लगा हुआ हो तो बहुत कठिनाई से वे कागज एक-दूसरे से अलग होंगे। ऐसा भी हो सकता है कि उन्हें अलग न किया जा सके या अलग करने के प्रयास में वे फट जायँ या अलग होने पर भी उन पर धब्बे कायम ही रह जायँ। इसी प्रकार संयोग और वियोग के कागजों का ढेर जीवन में रहता है। एक के बाद एक संयोग और वियोग आते रहें, उसमें कोई चिन्ता या परेशानी की बात नहीं होगी। लेकिन यदि आसक्ति रूपी गोंद लगा हुआ होगा, तो परेशानिओं का अन्त नहीं। फिर इस जीवन को संयोग और वियोग के पाटों के बीच में पिसने से बचाना बहुत ही कठिन हो जायगा।

आसक्ति का दूसरा रूप

यह आसक्ति केवल धन, शरीर या सत्ता से ही नहीं बल्कि धर्म, समाज, पंथ, जाति आदि से भी होती है। पुराने रीतिरिवाजों या अन्ध-विश्वासों से भी होती है। अन्ध-विश्वासों की पकड़ ऐसी गहरी होती है कि उसके लिए चाहे सर्वस्व न्यौछावर हो जाय, लेकिन उन्हें छोड़ने का साहस नहीं होता। समझते हैं कि अमुक रूढी गलत है, सज्जनों के बीच बैठकर कहते भी हैं कि अमुक अन्ध-विश्वास-परायण परम्पराएँ अहितकर हैं, मगर ऐसा कहने वाले लोग भी समय आने पर फिसल जाते हैं और आचरण में उन्हीं अन्ध-विश्वासों को प्रश्रय दे बैठते हैं। जड़ मान्यताओं की आसक्ति इतनी भयंकर होती है कि बयान नहीं किया जा सकता। श्री हेमचन्द्राचार्य ने कहा है—

"दृष्टि-रागो हि पापीयान् दुरुत्यजो विदुषामपि।"

अर्थात् काम के प्रति आसक्ति; धन, संपत्ति के प्रति आसक्ति; परिवार और शरीर के प्रति आसक्ति ठुकराई जा सकती है, किन्तु अपने पंथ के प्रति, जाति-कुल के प्रति जो आसक्ति होती है, उसका त्याग करना बहुत मुश्किल है। अच्छे-अच्छे विचारक और विद्वान् भी इस चक्कर में आ जाते हैं। इसलिए आसक्ति से भी छुटकारा पाने की निरंतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोशिश करते रहना चाहिए ।

वियोग से घबराना कायरता का प्रतीक है । जो व्यक्ति वियोग के समय कायर बन जाता है, वह जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता । पैर में जब कांटा घुस जाता है तो उसे निकालने के लिए लोहे की सुई चुभोनी पड़ती है । उसके आसपास खोदना पड़ता है । उस समय खून भी आता है । अत्यन्त कष्ट भी होता है । उस समय यदि कोई कहे कि मुझ से यह कष्ट नहीं सहा जाता, इस कांटे को अन्दर ही रहने दीजिए तो उसे लोग बेवकूफ कहेंगे । वहाँ कांटे का वियोग होता है, उसमें कष्ट मालूम देता है । लेकिन वह कष्ट भविष्य के आराम के लिए है। एक आदमी कहीं जा रहा था कि रास्ते में उसकी जेब कट गई । लेकिन जिसकी जेब कटी थी, उसने कहा कि चलिए, कोई बात नहीं । इसी प्रसंग पर होटेल म चाय पी जाय । तब साथियों ने कहा—इस समय तो परेशानी की बात है कि तुम्हारी जेब कटी और तुम कहते हो कि आनन्द से चाय पीयेंगे? उसने जवाब दिया—अरे भाई, जो जेब कटी, उसमें केवल पाँच रुपये ही थे । दूसरी तरफ को जेब में सौ रुपये थे । अब बताओ पाँच चले गए, उसके लिए दुःख मनाऊँ या सौ रह गए, उसके लिए खुशी मनाऊँ? मुझे तो यही लगता है कि सौ रुपयों के बच जाने का आनन्द मनाना चाहिए । इसलिए कहीं चलकर चाय पीनी ही चाहिए । वियोग के अवसर पर इसी तरह वीरता से काम लेना चाहिए । एक शर्बत का गिलास आया । वह कुछ खाली था । उस समय यदि कोई ऐसा सोचे कि ओह ! गिलास खाली है, इसमें शरबत कम है, मेरा पेट कैसे भरेगा? तो उसे गिलास के खाली होने की परेशानी का ही सामना करना पड़ेगा । पर वह व्यक्ति शरबत पीने का सच्चा आनन्द ले सकेगा, जो इस दृष्टि से सोचेगा कि ओह! गिलास आधे से इतना अधिक भरा हुआ, मेरी प्यास बहुत हद तक मिट जायगी। मुझे शरबत अवश्य पीना चाहिए । देखने की ये दो दृष्टियाँ हैं । एक आदमी खालीपन को महत्त्व देता है, और दूसरा भरेपन को ।

भोग-भूमि और कर्म-भूमि

शास्त्रों में दो प्रकार की अवस्थाओं का वर्णन आता है । एक भोग—भूमि की अवस्था । भोग-भूमि की अवस्था में रहने वाले प्राणियों को वियोग का कष्ट नही उठाना पडता, जब कि कर्म—भूमि में जाने वालों को संयोग और वियोग का निरंतर सामना करना पडता है । कर्म—भूमि में संयोग और वियोग—दोनों होते हैं, इसीलिए वहाँ उत्थान और पतन- दोनों के नजारे देखने को मिलते हैं । कर्म-भूमि में जीने वाले सर्वोच्च देवलोक अनुत्तर विमान तक भी जा सकते हैं । उन्हें उन्नति का चरम शिखर देखने को मिल सकता है, पर भोग—भूमि की आत्माएँ उन्नति के इस चरम—शिखर तक नहीं पहुँच सकतीं । उनका प्रवेश साधारण भूमिका के स्वर्ग तक ही होता है । इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि केवल संयोग—प्रधान जीवन आत्मा को परमोत्कर्ष की तरफ नहीं ले जा सकता ।

एक प्रश्न उठता है कि संसार में यह आत्मा क्यों है ? भूख-प्यास क्यों लगती है ? इस प्रश्न का समाधान संयोग और वियोग में ही मिलता है। आत्मा के साथ शरीर का संयोग है, इसीलिए वह इस संसार में है । शरीर के संयोग के कारण ही,

(पुष्ठ १८ पर देखिये),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनों की प्रमाण-मीमांसा-पद्धति का विकासक्रम

(लेखक-श्रीमान् पं० सुखलालजी)

आज तक तत्त्व-चिन्तकों ने ज्ञान-विचारणा एवं प्रमाण-मीमांसा में जो विकास किया है उसमें जैन-दर्शन का कितना हाथ है? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिये जब जैनसाहित्य को अधिक गहराईसे देखा जाता है, तब हृदय में साश्चर्य आनन्द होने के साथ जैन तत्त्वचिन्तक महर्षियों के प्रति बहुमान हुए बिना नहीं रहता, और उनके तत्त्वचिन्तक मनन-रूप ज्ञानोपासना की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने के लिये मन ललचाता है।

जैन-साहित्य में ज्ञान-निरूपणकी दो पद्धतियाँ नजर पड़ती हैं-पहली **'आगमिक'** और दूसरी **'तार्किक'** आगमिक पद्धति में मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय और केवल इस प्रकार पाँच भेद करके समग्र ज्ञानवृत्ति का वर्णन किया गया है। तार्किक पद्धतिके दो प्रकार वर्णन किये गये हैं-(१) पहला प्रकार प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान और आगम इन चार भेदोंका है।

पहली पद्धति को 'आगमिक' कहने के मुख्य दो कारण हैं:-

(अ) एक तो यह कि, किसी भी जैनेतर दर्शन में प्रयुक्त नहीं हुए ऐसे मति, श्रुत, अवधि आदि ज्ञान-विशेषवाची नामों द्वारा ज्ञान का निरूपण किया गया है; और

(आ) दूसरा यह कि, जैनश्रुत के खास विभाग-रूप कर्मशास्त्र में कर्म-प्रकृतियोंका वर्गीकरण है उसमें ज्ञानावरणीय कर्म के विभाग रूपसे मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्याय ज्ञानावरण केवलज्ञानावरण (न कि प्रत्यक्षावरण, परोक्षावरण, अनुमानावरण, उपमानावरण आदि) ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

दूसरी पद्धति को 'तार्किक' कहने के भी मुख्य दो कारण हैं:-

(क) एक तो यह कि, उसमें प्रयुक्त हुए प्रत्यक्ष, परोक्ष, अनुमान, उपमान आदि शब्द न्याय, बौद्ध आदि जैनेतर दर्शनोंमें भी साधारण हैं; और

(ख) दूसरे यह कि, प्रत्यक्ष, परोक्ष आदि रूपसे समग्र ज्ञान-वृत्ति का पृथक्करण करने में तर्कदृष्टि प्रधान रक्खी गई है।

गणधर श्री सुधर्म-प्रणीत मूल आगमोंसे लेकर उपाध्याय यशोविजयजी की कृतियों तक ज्ञाननिरूपणविषयक समग्र श्वेताम्बर-दिगम्बर वाङ्मय में (मात्र कर्मशास्त्र को छोड़ कर) आगमिक और तार्किक दोनों पद्धतियोंका स्वीकार किया गया है। इन दोनों में आगमिक पद्धति ही प्राचीन मालूम पड़ती है; क्योंकि जैन तत्त्वचिन्तनकी खास विशिष्टता और भिन्न प्रस्थान वाले कर्मशास्त्रमें वही पद्धति स्वीकार की गई है। इस लिये यह भी कहा जा सकता है कि भगवान् महावीरके स्वतंत्र विचारका व्यक्तित्व आगमिक पद्धति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही है। दूसरी तार्किक पद्धति जो कि, यद्यपि अत्यंत प्राचीन कालसे जैन वाङ्मय में प्रविष्ट हुई मालूम होती है, तो भी उसे आगमिक पद्धतिके पीछे ही अनुक्रमसे दार्शनिक संघर्षण तथा तर्कशास्त्र के परिशीलन की वृद्धिके परिणामस्वरूप योग्य स्थान प्राप्त हुआ है, ऐसा भासता है।

मूल अंग-ग्रन्थोंमेंसे तीसरे 'स्थानांग' नामके आगम में तार्किक पद्धतिके दोनों प्रकारों का निर्देश है। 'भगवती' नामक पाँचवें अंगमें चार भेद वाले द्वितीय प्रकारका निर्देश है। मूल अंगोंमें आगमिक और तार्किक दोनों पद्धतियों—समग्र ज्ञानवृत्ति का निरूपण होने पर भी कहीं इन दोनों पद्धतियों का समन्वय कराया गया हो ऐसा दृष्टि-गोचर नहीं होता। श्रीमद्-भद्रबाहु-कृत दशवैकालिकनिर्युक्ति (प्रथमाध्ययन) में न्यायप्रसिद्ध पदार्थ अनुमानका अति विस्तृत और अति स्फुट वर्णन जैनदृष्टिसे किया गया है, उस पर से इतना तो मालूम होता है कि निर्युक्तिकारके पहले ही तार्किक पद्धति ने जैनशास्त्रमें स्थान प्राप्त किया होगा। फिर भी निर्युक्तपर्यंत इन दोनों पद्धतियों का समन्वय हुआ हो ऐसा जानने में नहीं आता।

परंतु कालक्रमसे ज्यों ज्यों दार्शनिक संघर्ष और तर्क का अभ्यास बढ़ता गया त्यों त्यों पहले से ही आगम में प्रचलित इन दोनों पद्धतियों के समन्वय का प्रश्न अधिक स्पष्ट रूपसे उपस्थित होने लगा। आगम में मूल ज्ञान के मति, श्रुत आदि ऐसे पाँच विभाग हैं, उसी प्रकार प्रत्यक्ष, परोक्ष ऐसे दो; और प्रत्यक्ष, अनुमान आदि ऐसे चार भी हैं, उनमें कोई विरोध है कि नहीं? और यदि नहीं तो उसका समन्वय किस प्रकार? यह प्रश्न उठने लगा। इसका उत्तर देने का प्रथम प्रयास वाचक उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र में हुआ जान पडता है। समग्र आगमों को दोहन करके समस्त जैन पदार्थों को, लोकप्रिय दार्शनिक संस्कृत सूत्रशैली में, सबसे पहले गूँथनेवाले जैनाचार्य वाचक उमास्वाति हैं। इससे वे उक्त प्रश्न का समाधान किये बिना नहीं रहे यह स्पष्ट है। तत्त्वार्थ के पहले अध्याय में मुख्यरूप से ज्ञान का निरूपण है। उसमें वाचकश्री उमास्वाति ने आगमिक पद्धति की भूमिकाके ऊपर तार्किक पद्धति को घटित किया है। ज्ञान के मति, श्रुत, आदि पाँच भेद बताकर उन्हें तार्किक पद्धति के प्रथम प्रकार में घटित करते हुए वाचकश्री कहते हैं—पहले दो ज्ञान परोक्ष, और बाकी के तीन प्रत्यक्ष हैं। परोक्ष और प्रत्यक्ष इन दो भेदवाली प्रथम प्रकार की तार्किक पद्धति को आगमिक पद्धति में घटित करनेवाले आगमाभ्यासी वाचकश्री आगमों में उल्लिखित चार भेदवाली दूसरी तार्किक पद्धति को भूल जायँ ऐसा होना असंभव है, इससे ही उन्होंने अपने तत्त्वार्थ भाष्य में **'चतुर्विधमित्येके'** कहकर चार प्रमाणों को भी सूचित किया है। परन्तु जिस तरह पाँच ज्ञानों को परोक्ष और प्रत्यक्ष ऐसे दो प्रमाण-भेदों में सूत्र-द्वारा घटित किया है, उस प्रकार इन पाँच ज्ञानों को प्रत्यक्ष, अनुमान आदि चार प्रमाणों में सूत्र या भाष्य-द्वारा घटित नहीं किया। मात्र कोई चार प्रमाण मानते हैं इतना ही **'चतुर्विधमित्येके'** इस भाष्य-वाक्य-द्वारा सूचित किया है। यह सूचन करते समय वाचकश्री के सामने "दूसरी चार भेद वाली तार्किक पद्धति जो आगम में निर्दिष्ट हुई है वह जैन दर्शन को मान्य है कि नहीं; और मान्य है तो उसमें भी पाँच भेदों को घटित क्यों नहीं किया?" ऐसा जिज्ञासु शिष्यों का अथवा प्रतिवादियों का प्रश्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। इस प्रश्न का निराकरण 'कोई चार प्रकार का प्रमाण मानते हैं' इतना कह देने से नहीं हो जाता। अधिकतर तो इस कथन द्वारा इतना ही फलित होता है कि आगमों में स्थान प्राप्त यह चार प्रमाणों का विभाग कोई दूसरे दर्शनकारों द्वारा मान्य किया हुआ विभाग है; परन्तु वह जैन-दर्शन को अनिष्ट नहीं, इस बात को सूचित करने के लिये वाचकश्री आगे चलकर कहते हैं कि '**नयवादान्तरेण**' अर्थात् चतुर्विध प्रमाण के विभाग को अपेक्षा विशेष से समझना। इसी संक्षिप्त सूचना को वे फिर आगे चल कर नय-सूत्र के भाष्य में स्पष्ट करके कहते हैं कि-शब्द-नय की अपेक्षा से प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन चारों का प्रामाण्य स्वीकार किया जाता है। वाचकश्री के इस पूर्वापर कथन का सार इतना ही निकल सकता है कि प्रथम प्रकार की तार्किक पद्धति ही जैन-दर्शन के अधिक अनुकूल बैठती है और चार भेदवाली तार्किक पद्धति आगम में निर्दिष्ट होने पर भी मूलमें यह दूसरे दर्शन की चीज है; परन्तु जैन-दर्शन को अमुक अपेक्षा से उसका स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं। इसी कारण से उन्होंने प्रथम प्रकार की तार्किक पद्धति में जिस तरह पाँच ज्ञान के विभाग को घटाया है उसी तरह दूसरे प्रकार की तार्किक-पद्धति में उसे भाष्य तक में भी नहीं घटाया।

वाचकश्री उमास्वाति ने प्रत्यक्ष और परोक्ष भेद-वाली तार्किक पद्धति के मुख्य रूप से जैनदर्शन-सम्मत होने की जो छाप मारी उसे ही आचार्य कुन्दकुन्द ने स्वीकृत की। उन्होंने भी प्रवचनसार के प्रथम प्रकरण में तत्त्वार्थसूत्र की तरह पहले दो ज्ञानों को परोक्ष और शेष तीन ज्ञानों को प्रत्यक्ष रूप से वर्णित किया है। आगमिक और तार्किक पद्धतियों के समन्वय का इतना प्रयत्न होने के बाद भी जिज्ञासुओं को शंका के लिए अवकाश तो था ही। इससे फिर प्रश्न होने लगा कि आप (जैनाचार्य) तो मति और श्रुत को परोक्ष कहते हो जब कि जैनेतर दार्शनिक विद्वान् मतिज्ञान रूप से वर्णन किये हुए इन्द्रियजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं, तो इस विषय में सत्य क्या समझना? क्या आपके कथनानुसार मतिज्ञान यह ठीक परोक्ष ही है या दर्शनान्तर विद्वानों के कथनानुसार यह प्रत्यक्ष ही है?" यह प्रश्न एक तरह पर उमास्वाति के समन्वय में से ही उद्भूत होनेवाला है और वह प्रकट रूप से विकट भी मालूम होता है। परन्तु इसका समाधान वाचकश्री उमास्वाति और कुन्दकुन्दाचार्य के बाद होता हुआ दिखलाई देता है।

इस समाधान के दो प्रयत्न आगमों में नजर पड़ते हैं-पहला प्रयत्न अनुयोगद्वार में और दूसरा 'नन्दि-सूत्र में'। दोनों की रीति जुदी-जुदी है। अनुयोगद्वार में प्रत्यक्ष, अनुमान आदि चार प्रमाणों के उल्लेख की भूमिका बाँध कर, उनमें से प्रत्यक्ष के दो भाग किये, एक भाग में मतिज्ञान को प्रत्यक्ष रूप से मान्य रक्खा गया और दूसरे भाग में वा० उमास्वातिद्वारा स्वीकृत अवधि आदि तीन ज्ञानों का प्रत्यक्षपन स्वीकार किया गया। जब कि नन्दिसूत्र का समाधान-प्रयत्न दूसरे ही प्रकार का है। उसमें प्रमाण के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष ये दो भेद लेकर और प्रत्यक्ष भेद के दो भाग करके, पहले भाग में मतिज्ञान को और दूसरे में अवधि आदि तीनों ज्ञानों को अनुयोगद्वार के सदृश प्रत्यक्ष रूप से बतलाया है सो तो ठीक, परन्तु फिर आगे चल कर जहाँ परोक्ष भेद का वर्णन करने का प्रसंग आता है वहाँ नन्दिकार श्रुतज्ञान के साथ मति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान को भी परोक्षरूप से वर्णन करता है, जो वर्णन अनुयोगद्वार में नहीं। अनुयोगद्वार और नन्दिसूत्र के कर्ताओं ने एक जैसी ही रीति से दर्शनान्तर में और लोक में प्रत्यक्षरूप से प्रसिद्ध इंद्रियजन्य (मति) ज्ञान को प्रत्यक्ष के एक भाग रूप से वर्णन करके जैन और लोकके बीच का विरोध तो दूर किया परन्तु उतने मात्र से इस समन्वय का विचार बिलकुल स्पष्ट और असंदिग्ध नहीं हो पाया। एक तरह तो उलटा गोटोला सा हो गया। लोक-मान्यता का संग्रह करते हुए इंद्रियजन्य (मति) ज्ञान को प्रत्यक्ष का एक भाग रूप से नंदि और अनुयोगद्वार में किये हुये समन्वय के अनुसार नंदिकार ने उसे परोक्ष का एक भेदरूप भी वर्णन किया। इससे फिर शङ्का होने लगी कि– "इंन्द्रियजन्य (मति) ज्ञान को आप (जैनाचार्य) प्रत्यक्ष कहते हो और परोक्ष भी कहते हो; तब क्या आप लौकिक सग्रह और आगमिक सग्रह दोनों करनेके लिए एक ही ज्ञान को प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे विरोधी रूप से स्वीकारते हो या संशयशील हो? इसका बिलकुल स्पष्ट रूपसे निराकरण हमें उसके बाद के श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थों में देखना चाहिये।

उपलब्ध साहित्य को देखते हुए, इसका निराकरण करनेवाले श्वेताम्बर आचार्यों में सब से पहले **जिनभद्रगणी** क्षमाश्रमण और दिगम्बर आचार्यों में **भट्टाकलङ्कदेव** मालूम होते हैं। क्षमाश्रमणजी अपने 'विशेषावश्यक-भाष्य' में उक्त प्रश्न का निराकरण करते हुए कहते हैं कि–इन्द्रियजन्य (मति) ज्ञान को जो प्रत्यक्ष कहा जाता है उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष समझना। भट्टाकलङ्कदेव अपने 'लघीयस्त्रय' में अधिक स्पष्टता के साथ कहते हैं, कि प्रत्यक्ष के मुख्य और सांव्यवहारिक ऐसे दो भेद हैं, जिनमें अवधि आदि तीन ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष और इंद्रियजन्य (मति) ज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष समझना। दोनों आचार्यों का कथन प्रस्तुत प्रश्न का अन्तिम निराकरण करता है। दोनों के कथन का स्पष्ट आशय संक्षेपमें इतना ही है कि जैन-दर्शन की तात्विक दृष्टि से अवधि, मनःपर्याय और केवल ये तीन ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से मान्य हैं। मति और श्रुत वस्तुतः परोक्ष ही हैं तो भी मति (इंद्रियजन्य) ज्ञान को जो प्रत्यक्ष कहा जाता है वह तात्त्विक दृष्टि से नहीं किन्तु लोकव्यवहार की स्थूल दृष्टि से। तात्विक दृष्टि से तो यह ज्ञान श्रुतज्ञान की तरह परोक्ष ही है। इन दोनों आचार्यों का यह स्पष्टीकरण इतना ज्यादा असंदिग्ध है कि उनके बाद आज तक लगभग बारहसौ वर्ष के भीतर किसी भी ग्रन्थकार को उसमें कुछ भी वृद्धि या परिवर्तन करने की जरूरत नहीं पडी।

क्षमाश्रमण जिनभद्र के बाद प्रस्तुत विषय संबंध में खास उल्लेख योग्य श्वेताम्बर आचार्य चार हैं– जिनेश्वर सूरि, वादिदेव सूरि आचार्य हेमचन्द्र और उपाध्याय यशोविजयजी। भट्टाकलङ्कदेवके बाद प्रस्तुत विषय में उल्लेखयोग्य दिगम्बराचार्यों में माणिक्यनंदी, विद्यानन्दी, आदि मुख्य हैं। दोनों सम्प्रदायों के इन सभी आचार्यों ने अपनी-अपनी प्रमाण-मीमांसा-विषयक कृतियों में कुछ भी फेर-फार किये बिना एक ही जैसी रीति से **अकलङ्कदेवकी की हुई योजना** और **ज्ञान के वर्गीकरण को** स्वीकार किया है–इन सबों ने प्रत्यक्ष के मुख्य और सांव्यवहारिक ऐसे दो भेद किये हैं। मुख्य में अवधि आदि तीन ज्ञानों को और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांव्यवहारिक में मतिज्ञान को लिया है। परोक्ष के स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये पाँच भेद करके उक्त प्रत्यक्ष के सिवाय और सब प्रकार के ज्ञान को परोक्ष के पाँच भेदों में से किसी न किसी भेद में समाविष्ट कर दिया है।

परन्तु यहाँ एक महान् प्रश्न उत्पन्न होता है, और वह यह कि-आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने, जो कि जैन तार्किकों में प्रधान माने जाते हैं, आगमिक और तार्किक पद्धतियों के परस्पर समन्वय तथा उसके संबंध में उत्पन्न होनेवाले प्रश्नों के प्रति क्या विचार किया है? इसका खुलासा उनकी उपलब्ध कृतियों पर से नहीं मिलता। प्रमाणशास्त्र के खास लेखक इन आचार्य की प्रतिभा, प्रमाणसंबंधी इस खास विषय को स्पर्श न करे ऐसा होना संभव नहीं। इससे कदाचित् ऐसा होना योग्य जान पडता है कि उनकी अनेक नष्ट हुई कृतियों के साथ ही प्रस्तुत विचार से सम्बन्ध रखने वाली कृति भी नाश को प्राप्त हो गई है।

जैन वाङ्मय में आगमिक और तार्किक इन दोनों पद्धतियों के परस्पर समन्वय का प्रश्न किस रीति से उत्पन्न हुआ तथा विकास को प्राप्त हुआ इसका अवलोकन हम संक्षेप में कर गये हैं। इसका सार यह है कि ज्ञान के पाँच प्रकारों को प्रत्यक्ष और परोक्ष इन भेदों में सबसे पहले वाचक उमास्वाति ने 'तत्त्वार्थ' में घटाया है और इसके द्वारा यह दो भेदवाली तार्किक पद्धति जैनदर्शन के अधिक अनुकूल है ऐसी अपनी सम्मति प्रकट की है। वाचकवर्य (उमास्वाति) की इस सम्मति को ही दिवाकरजी ने न्यायावतार में मान्य रक्खा है और उसके द्वारा अपना यह अभिप्राय प्रकट किया है कि उक्त दो भेदवाली तार्किक पद्धति ही जैन-दर्शन के लिए ठीक बैठती है।

(अनेकांत से साभार)

मंगल सोचो, मंगल करो

करो न पर-दोषों का चिन्तन-कथन कभी भी किसी प्रकार।
करो न कुछ तन-मन वाणी से कभी किसी का भी अपकार॥
देखो थोडे-से गुण को भी, उसे बढाओ कर सत्कार।
प्रोत्साहन दो निज-पर की शुभ वृत्ति मात्र को सभी प्रकार॥
मंगल ही सोचो नित मन में, करो सभी मंगल-आचार।
सोचो, करो वही, जिसमें हो दैवी सम्पद् का विस्तार॥
कभी किसी का जी न दुखाओ, दो न किसी को भी दुत्कार।
सब में सदा विराजित ईश्वर, देखो उसे, करो सत्कार॥

(कल्याण से साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष की अर्वाचीन और प्राचीन भाषाएँ और उनका परस्पर सम्बन्ध

स्व. श्री हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द सेठ का संकलित अभिमत

भाषातत्त्व के अनुसार भारतवर्ष की आधुनिक कथ्य भाषाएँ इन पाँच भागों में विभक्त की जा सकती हैं–

१) आर्य (Aryan), २) द्राविड (Dravian), ३) मुण्डा (Munda), ४) मन्–ख्मेर Mon–Khmer) और ५) तिब्बत–चीना (Tibeto–Chinese)

भारत की वर्तमान भाषाओं में मराठी, बँगला, ओडिया, बिहारी, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी, सिन्धी और काश्मीरी भाषा आर्य भाषासे उत्पन्न हुई हैं। पारसी तथा अंग्रेजी, जर्मनी आदि अनेक आधुनिक युरोपीय भाषाओं की उत्पत्ति भी इसी आर्य भाषा से है। भाषा–गत साद्दश्य को देखकर भाषा–तत्त्वज्ञाताओं का यह अनुमान है कि इस समय विच्छिन्न और बहु–दूर–वर्ती भारतीय आर्य–भाषा–भाषी समस्त जातियाँ और उक्त युरोपीय भाषा–भाषी सकल जातियाँ एक ही आर्य–वंश से उत्पन्न हुई हैं।

तेलगु, तामिल और मलयालम प्रभृति भाषाएँ द्राविड भाषा के अन्तर्गत हैं; कोल तथा साँथाली भाषा मुण्डा भाषा के अन्तर्भूत हैं; खासी भाषा मन्ख्मेर भाषाका और भोटानी तथा नागा भाषा तिब्बत– चीना भाषा का निदर्शन है। इन समस्त भाषाओं की उत्पत्ति किसी आर्य भाषा से संबन्ध नहीं रखती, अतएव ये सभी अनार्य भाषाएँ हैं। यद्यपि ये अनार्य भाषाएँ भारत के ही दक्षिण, उत्तर और पूर्व भाग में बोली जाती हैं तथापि अंग्रेजी आदि सुदूरवर्ती भाषाओं के साथ हिन्दी आदि आर्य भाषाओं का जो वंश–गत ऐक्य उपलब्ध होता है, इन अनार्य भाषाओं के साथ वह संबन्ध नहीं देखा जाता है।

ये सब कथ्य भाषाएँ आज कल जिस रूपमें प्रचलित हैं; पूर्वकाल में उसी रूपमें न थीं, क्यों कि कोई भी कथ्य भाषा कभी एक रूपमें नहीं रहती। अन्य वस्तुओं की तरह इसका रूप भी सर्वदा वदलता ही रहता है–देश, काल और व्यक्ति–गत उच्चारण के भेद से भाषा का परिवर्तन अनिवार्य होता है। यद्यपि यह परिवर्तन जो लोग भाषाका व्यवहार करते हैं उनके द्वारा ही होता है तथापि उस समय वह लक्ष्य में नहीं आता। पूर्वकाल की भाषाके संरक्षित आदर्श के साथ तुलना करने पर बादमें ही वह जाना जाता है। प्राचीन काल की जिन भारतीय भाषाओं के आदर्श संरक्षित हैं–जिन भाषाओं ने साहित्य में स्थान पाया है उनके नाम ये हैं–वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पाली, अशोक लिपि तथा उसके बाद की लिपि की भाषा और प्राकृत भाषा–समूह। इनमें प्रथम की दो भाषा कभी जन–साधारण की कथ्य भाषा न थीं, केवल लेख्य–साहित्यिक भाषा–ही थीं। अवशिष्ट भाषा कथ्य और लेख्य उभय रूपमें प्रचलित थीं। इस समय ये समस्त भाषाएँ कथ्य रूपसे व्यवहृत नहीं होतीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी कारण ये मृत भाषा (Dead languages) कहलाती हैं। उक्त वैदिक आदि सब भाषाएँ आर्य भाषा के अन्तर्गत हैं और इन्हीं प्राचीन आर्य भाषाओं में से कई एक क्रमशः रूपान्तरित होकर आधुनिक समस्त आर्य भाषाएँ उत्पन्न हुई हैं।

ये प्राचीन आर्य भाषाएँ कौन से युग में किस रूप में परिवर्तित होकर क्रमशः आधुनिक कथ्य भाषाओं में परिणत हुई, इसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं का परिणति-क्रम वेद-भाषा और लौकिक संस्कृत—सर ज्योर्ज ग्रियर्सन ने अपनी लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया (Linguistic survey of india) नामक पुस्तक में भारतवर्षीय समस्त आर्य भाषाओं के परिणाम का जो क्रम दिखाया है उसके अनुसार वैदिक भाषा उक्त साहित्य-भाषाओं में सर्व-प्राचीन क्रम है। इसका समय अनेक विद्वानों के मत में ख्रिस्ताब्द-पूर्व दो हजार वर्ष (2000 B. C.) और प्रो. मेक्समूलर के मत में ख्रिस्ताब्द-पूर्व बारह सौ वर्ष (1200 B C.) यह वेद-भाषा क्रमशः परिमार्जित होती हुई ब्राह्मण, उपनिषद और यास्क के निरुक्त की भाषा में और बाद में पाणिनि प्रभृति के व्याकरण द्वारा नियंत्रित होकर लौकिक संस्कृत में परिणत हुई है। पाणिनि आदि के पद-प्रभृति के नियमरूप संस्कारों को प्राप्त करने के कारण वह संस्कृत कहलाई। मुख्य रूप से 'संस्कृत' शब्द का प्रयोग इसी भाषा के अर्थ में किया जाता है। यह संस्कृत भाषा वैदिक भाषा से उत्पन्न होने से और उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखने से वेद-भाषा के अर्थ में भी 'संस्कृत' शब्द बाद के समय से प्रयुक्त होने लग गया है। पाणिनि के बाद संस्कृत भाषा का कोई परिवर्तन नही हुआ है। यह परिवर्तन होने में—वेद-भाषा को लौकिक संस्कृति के रूप में परिणत होने में—प्रायः डेढ़ हजार वर्ष लगे हैं। पाणिनि का समय गोल्डस्टुकर के मत में ख्रिस्ताब्द-पूर्व सप्तम शताब्दी और बार्थलिक के मत में ख्रिस्ताब्द-पूर्व चतुर्थ शताब्दी है।

वेद और वैदिक सभ्यता—यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि डॉ. होर्नलि और सर ग्रियर्सन के मन्तव्य के अनुसार आर्य लोगों के दो दल भिन्न २ समय में भारतवर्ष में आये थे। * पहले आर्यों के एक दल ने यहाँ आकर मध्यप्रदेश में अपने उपनिवेश की स्थापना की थी। इसके कई सौ वर्षों के बाद आर्यों के दूसरे दल ने भारत में प्रवेश कर प्रथम दल के आर्यों को मध्यप्रदेश के चारों

---

* आर्य लोगों के आदिम वास स्थान के विषय में आधुनिक विद्वानों में गहरा मतभेद है। कोई स्कान्डीनेविया को, कोई जर्मनी को, कोई पोलान्ड को, कोई हंगेरी को, कोई दक्षिण रशिया को, कोई मध्य एशिया को आर्यों की आदिम निवास-भूमि मानते हैं तो कोई २ पंजाब और काश्मीर को ही इनका प्रथम वस्तीस्थान बतलाते हैं। किन्तु अधिकांश विद्वान् भाषा तत्त्व के द्वारा इस सिद्धान्त पर उपनीत हुवे हैं कि यूरोपीय और पूर्व-देशीय आर्यों में प्रथम विच्छेद हुवा। पीछे पूर्वदेश के आर्य लोग मेसेपोटेमिया और इरान में एक साथ रहे और एक ही देव-देवी की उपासना करते थे। उसके बाद वे भी विच्छिन्न होकर एक दल फारस में गया और अन्य दल ने अफगानिस्थान के बीच होकर भारतवर्ष में प्रवेश और निवास किया। परन्तु जैन और हिन्दू शास्त्रों के अनुसार भारतवर्ष ही चिरकाल से आर्यों का आदिम निवासस्थान है। कोई २ आधुनिक विद्वान् ने पुरातत्त्व की नूतन खोज के आधार पर भारतवर्ष से ही कुछ आर्य लोगों का ईरान आदि देशों में गमन और विस्तार लाभ सिद्ध किया है, जिससे उक्त शास्त्रीय प्राचीन मत का समर्थन होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर भगा कर उनके स्थान को अपने अधिकार में किया और मध्यप्रदेश को ही अपना वास स्थान कायम किया। उक्त विद्वानों को यह मन्तव्य इसलिए करना पडा है कि मध्यप्रदेश के चारों पार्श्वों में स्थित पंजाब, सिंध, गुजरात, राजपुताना, महाराष्ट्र, अयोध्या, बिहार, बंगाल और उडीसा प्रदेशों की आधुनिक आर्य कथ्य भाषाओं में परस्पर जो निकटता देखी जाती है तथा मध्यप्रदेश की आधुनिक हिन्दी भाषा (पाश्चात्य हिन्दी) के साथ उन सब प्रान्तों की भाषाओं में जो भेद पाया जाता है, उस निकटता और भेद का अन्य कोई कारण दिखाना असम्भव है। मध्यप्रदेशवासी इस दूसरे दल के आर्यों का उस समय का जो साहित्य और जो सभ्यता थी उन्हीं के क्रमश: नाम हैं वेद और वैदिक सभ्यता।

प्राकृत भाषाओं का प्रथम स्तर–(खिृस्त-पूर्व २००० से खिृस्तपूर्व ६००) उक्त वेद-भाषा प्राचीन होने पर भी वह वैदिक युग में जन साधारण की कथ्य भाषा न थी, ऋषि-लोगों को साहित्य-भाषा थी। उस समय जन-साधारण में वैदिक भाषा के अनुरूप अनेक प्रादेशिक भाषायें (Dialects) कथ्य रूप से प्रचलित थीं। इन प्रादेशिक भाषाओं में से एक ने परमार्जित होकर वैदिक साहित्य में स्थान पाया है। ऊपर वैदिक युग से पूर्वकाल में आये हुए प्रथम दल के जिन आर्यों के मध्यप्रदेश के चारों तरफ के प्रदेशों में उपनिवेशों का उल्लेख किया गया है उन्होंने वैदिक युग अथवा उसके पूर्वकाल में अपने २ प्रदेशों की कथ्य भाषाओं में दूसरे दल के आर्यों की वेद-रचना की तरह, किसी साहित्य की रचना नहीं की थी। इससे उन प्रादेशिक आर्य-भाषाओं का तत्कालीन साहित्य में कोई निदर्शन न रहने से उनके प्राचीन रूपों का सम्पूर्ण लोप हो गया है। वैदिक काल की और इसके पूर्व की उन समस्त कथ्य भाषाओं को सर ग्रियर्सन ने प्राथमिक प्राकृत (Primary Prakrits) नाम दिया है। यही प्राकृत-भाषा-समूह का प्रथम स्तर (First stage) है। इसका समय खिृस्त-पूर्व २००० से खिृस्त-पूर्व ६०० तक का निर्दिष्ट किया गया है। प्रथम स्तर की ये समस्त प्राकृत भाषायें स्वर और व्यञ्जन (व्यंजन) आदि के उच्चारण में तथा विभक्तिओं के प्रयोग में वैदिक भाषा के अनुरूप थीं। इससे ये भाषायें विभक्ति-बहुल (Synthetic) कही जाती है।

प्राकृत–भाषाओं का द्वितीय स्तर। (खिृस्त-पूर्व ६०० से खिृस्ताब्द ९००) वैदिक युगमें जो प्रादेशिक प्राकृत भाषायें कथ्य रूप से प्रचलित थीं, उनमें परवर्ति-काल में अनेक परिवर्तन हुए, जिनमें ऋॠ आदि स्वरों का, शब्दों के अंतिम व्यंजनों का, संयुक्त व्यंजनों का, तथा विभक्ति और वचन-समूह का लोप या रूपांतर मुख्य हैं। इन परिवर्तनों से ये कथ्य भाषायें प्रचुर परिणाम में रूपान्तरित हुई। इस तरह द्वितीय स्तर (Second stage) की प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति हुई। द्वितीय स्तर की ये भाषायें जैन और बौद्ध धर्म के प्रचार के समय से अर्थात् खिृस्त-पूर्व षष्ठ शताब्दी से लेकर खिृस्तिय नवम या दशम शताब्दी पर्यंत प्रचलित रहीं। भगवान् महावीर और बुद्धदेव के समय ये समस्त प्रादेशिक प्राकृत भाषायें, अपने द्वितीय स्तर के आकार में, भिन्न २ प्रदेश में कथ्य भाषा के तौर पर व्यवहृत होती थीं। उन्होंने अपने सिद्धान्तों का उपदेश इन्हीं कथ्य प्राकृत भाषाओं में से एक में दिया था। इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही नहीं, बल्कि बुद्धदेव ने अपना उपदेश संस्कृत भाषा में न लिखकर कथ्य प्राकृत भाषा में ही लिखने के लिये अपने शिष्यों को आदेश किया था। इस तरह प्राकृत भाषाओं का क्रमशः साहित्य की भाषाओं में परिणत होने का सूत्रपात हुआ, जिसके फल-स्वरुप पश्चिम मगध और सूरसेन देश के मध्यवर्ती प्रदेश में प्रचलित कथ्य भाषा से जैनों के धर्म-पुस्तकों की अर्धमागधी भाषा और पूर्व मगध में प्रचलित लोक-भाषा बौद्ध धर्म-ग्रन्थों की पाली भाषा उत्पन्न हुई। पाली भाषा के उत्पत्ति-स्थान के संमन्ध में पाश्चात्य विद्वानों का जो मत भेद है उसका विचार हम आगे जाकर करेंगे। खिस्ताब्द से २५० वर्ष पहले सम्राट् अशोक ने बुद्धदेव के उपदेशों को भिन्न २ प्रदेशों में वहाँ २ की विभिन्न प्रादेशिक प्राकृत भाषाओं में खुदवाये। इन अशोक शिलालेखो में द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषाओं के असंदिग्ध सर्व-प्राचीन निदर्शन संरक्षित हैं। द्वितीय स्तर के मध्य भाग में-प्राय: खिस्तीय पंचम शताब्दी के पूर्व में भिन्न २ प्रदेशों को अपभ्रंश भाषाओं की उत्पत्ति हुई। इस स्तर की भाषाओं में चतुर्थी विभक्ति का, सब विभक्तियों के द्विवचनों का और आख्यात की अधिकांश विभक्तियों का लोप होनेपर भी विभक्तियों का प्रयोग अधिक मात्रा में विद्यमान था। इससे इस स्तर की भाषायें भी विभक्ति-बहुल कही जाती हैं।

प्राकृत भाषाओं का तृतीय स्तर या आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की उत्पत्ति।

(खिस्ताद्ब ९००) सर ग्रियसेन ने यह सिद्धान्त किया है कि आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषाओं से, खासकर उसके शेष भाग में प्रचलित विविध अपभ्रंश भाषाओं से हुई है और आधुनिक भाषाओं का तृतीय स्तर की प्राकृत (Tertiary-Prakrits) कह कर निर्देश किया है। इन भाषाओं की उत्पत्ति का समय खिस्तीय दशम शताब्दी है। इनका साधारण लक्षण यह है कि इनमें अधिकांश विभक्तियों का लोप हुवा है, एवं भाषाओं की प्रकृति विभक्ति-बहुल न होकर विभक्तियों के बोधक स्वतंत्र शब्दों का व्यवहार हुवा है। इससे ये विश्लेषणशील भाषायँ (Analytical lanquaqes) कही जाती हैं। (क्रमशः) ***

भारत पर वज्राघात—भारत-भाग्यविधाता के रूप में जो बडी शक्तियाँ आधुनिक युग में इस पवित्र भूतल पर अवतरित हुई, उनमें महतो-महीयान् स्व. श्री गाँधीजी और पं. नेहरूजी विश्व विश्रुत महामानव के रूप में गिने गये। महात्मा गांधीजी के पश्चात् पिछले १६ वर्षों में जिनके द्वारा मानवता संरक्षित मानी जा रही थी वे सार्वभौमसिद्धान्तवेत्ता अलौकिक शक्ति-सम्पन्न भारत के कर्णधार **पं. जवाहरलाल नेहरू** २७ मई १९६४ के अपराह्ण समय में इस नश्वर शरीर को छोडकर अमररूप धारण किये, यह भारत पर अक्षरशः सत्य वज्राघात है। इस हृदय-विदारक घटना से न केवल भारत ही, अपितु समस्त विश्व व्याकुल हो उठा है। शासनदेव दिवंगत आत्मा को चिरशांति और भारतीय नेताओं में उनके उद्देश्य-पूर्ति की क्षमता प्रदान करें, यही हार्दिक प्रार्थना है।

'सम्पादक'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ ८ से)

भूख और प्यास की अनुभूति होती है । सर्दी गर्मी, आदि की प्रतीति भी शारीरिक संयोग का ही परिणाम है । जितने भी दुःख हैं, कष्ट हैं, वे सब कर्मों के संयोग एवं वियोग के फलस्वरूप ही प्राप्त होते हैं । ज्यों-ज्यों यह सयोग-वियोग मिटता जायगा, त्यों-त्यों आत्मा बंधन-मुक्त होती जायगी । ज्ञानावरणीय कर्म के संयोग का अन्त होते ही केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्रगट हो जाते हैं । इसी तरह वेदनीय कर्म के समाप्त होते ही आत्मा को अनंत आनन्द प्राप्त हो जाता है । मोह-कर्म का आवरण फटते ही आत्मा परमात्मस्वरूप की ओर बढ जाती है । इस सारे संसार की गति का कारण संयोग तथा वियोग ही है ।

अनासक्ति के दो उदाहरण

अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए और मुगलों के अत्याचारों से बचने के लिए मेवाड़ की हजारों रानियों ने अपने आप को अग्नि के हवाले कर दिया । जैसे पतंग दीप-शिखा को अर्पित होकर भस्म हो जाते हैं वैसे ही वे रानियाँ प्रभु का नाम लेते हुए अग्नि-कुण्ड में जल गईं, यह विचार उनमें कहाँ से आया ? मेरा मानना है कि अनासक्ति की भारतीय परम्परा ने ही उनमें बलिदान का ऐसा भाव जागृत किया । यदि उन्हें शरीर से, संसार से, धन से या राज्य से आसक्ति होती तो क्या वे जल-कर समाप्त होने की हिम्मत कर सकती थीं ? उन्होंने आसक्ति के साथ युद्ध किया । आसक्ति परास्त हो गई, सच तो यह है कि यह आसक्ति आदमी पर तभी तक हावी रहती है, जब तक आदमी उससे डरता है । जब आसक्ति की ओर से मुँह मोड़ लिया जाय और हिम्मत करके बलिदान कर देने तक की तैयारी कर ली जाय तो यह आसक्ति अपने आप मिट जाती है । प्रश्न साहस का ही है ।

सुकरात ने साहस किया । उसने समाज की क्रान्ति का नया पैगाम दिया । उस पैगाम को सुनकर समाज के ठेकेदार बौखला उठे । अदालत ने सुकरात से कहा कि तुम्हें जहर का प्याला पीकर मरना पडेगा । उसने जबाब दिया-इसके लिए मैं तैयार हूँ । हर आदमी को एक बार मरना पडता है । यह शरीर तो एक न एक दिन जायेगा ही, इसलिए कुछ दिन बाद नहीं, कुछ दिन पहले ही सही । लेकिन याद रखो, तुम्हारा जहर सुकरात को नहीं मार सकता । हो सकता है कि यह शरीर मर जाय पर वह तो अमर ही रहेगा । रात को सुकरात अपने शिष्य से कहने लगे कि आत्मा अमर है। उसे कोई नहीं मार सकता । इसलिए मेरा विषपान देखकर तुम घबराना मत । शिष्य ने पूछा कि आपकी मृत्यु के बाद अन्त्येष्टि क्रिया कैसे की जाय ? इस प्रश्न पर उन्होंने कहा कि जो इस शरीर को मारेगा वही अन्त्येष्टि क्रिया भी करेगा । सुकरात को कोई नहीं मार सकता । इसलिए उसकी अन्त्येष्टि क्रिया भी नहीं हो सकती । फिर शरीर की चिंता में क्यों पडते हो ? इस प्रकार सुकरात शरीर के संयोग-वियोग से सर्वथा अनासक्त थे । अगले दिन उन्हें जहर का प्याला पीना था । फिर भी उनके मन में किसी प्रकार की व्याकुलता नहीं थी । शरीर के संयोग और वियोग उन्हें अपने विचारों से विचलित नहीं कर सके । ऐसे धैर्यवान् महापुरुष ही दो पाटों के बीच में पिसने से बच सकते हैं । जो धैर्य के साथ संयोग और वियोग में संतुलन नहीं साध सकेगा, उसे दो पाटों के बीच में पिसने से कोई नहीं बचा सकता ।

उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म. ('अमर भारती से साभार')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बुद्ध और महावीर'

लेखक-श्री बन्सीलालजी भगवानदासजी कोठारी, (अहमदनगर)

बुद्ध और महावीर आर्य-संतों की प्रकृति के दो भिन्न स्वरूप हैं। संसार में सुख-दुःखका सब को जो अनुभव होता है, वह सत्कर्म और दुष्कर्म के परिणाम स्वरूप ही है, ऐसा दीख पडता है। सुख-दुःख के जिन कारणों को ढूंढा नहीं जा सकता, वे भी किसी काल में हुअे कर्मों के ही परिणाम हो सकते हैं। मैं न था और न होऊँगा, ऐसा मुझे नहीं लगता। घडी का लोलक जिस तरह दायें-बायें झूलता रहता है, उसी तरह मैं जन्म और मरण के बीच झूलने वाला जीव हूँ। कर्म की चावी से इस लोलक को गति मिलती है। जब तक चावी भरी हुई है, तब तक मैं इस फेरे से छूट नहीं सकता। इस जन्म मरण के फेरे की स्थिति दुःखकारक है। इसमें कभी कभी सुख का अनुभव होता है, लेकिन वह अत्यंत क्षणिक होता है; इतना ही नहीं, बल्कि वही पुनः धक्का लगने में कारण रूप बनता है और उसका परिणाम दुःख ही है। मुझे अिस दुःख के मार्ग से छूटना ही चाहिये। इस तरह की विचार-धारा से प्रेरणा पाकर कई आर्यपुरुष जन्म मरण के फेरे से छूटने के, मोक्ष प्राप्त करने के विविध प्रयत्न करते हैं। इन विविध प्रयत्नों की खोज से अनेक प्रकार के दर्शन-शास्त्र पैदा हुवे। भगवान् महावीर इसी प्रकार की प्रकृति का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

बुद्ध की प्रकृति इससे भिन्न है। जन्म से पहले की और मृत्यु के बाद की स्थिति की चिंता करने की उन्हें उत्सुकता नहीं है। यदि जन्म दुःख रूप हो तो भी इस जन्म के दुःख तो सहन कर लिए गये। पुनर्जन्म होगा तो इस जन्म के सुकृत और दुष्कृत के अनुसार आवेगा। इसलिए यही जन्म भावी जन्म का कहिये या मोक्षका कहिये, सब का आधार है। इस जन्म को सुधारने पर भावी जन्मों की चिंता करने की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि इस जन्म को सुधारनेवाले का दूसरा जन्म यदि इससे बुरा आवे तो यही कहना होगा कि सत्कर्म का फल दुःख है। यह माना नहीं जा सकता। अतः अिस जीवन के पाँच दुःख ही अनिवार्य रूप से शेष रहते हैं: जरा, व्याधि, मृत्यु, इष्ट-वियोग और अनिष्ट-संयोग। इसके अतिरिक्त तृष्णा के कारण भी सुख-दुःख भोगने में आते हैं। यदि खोज करने जैसा कुछ हो तो इन दुःखों से छूटने का मार्ग हो सकता है। दीर्घ काल तक प्रयत्न करने पर उन्होंने देखा कि पहले पाँच दुःख अनिवार्य हैं। उन्हें सहन करने के लिये मन को बलवान् किये बिना दूसरा कोई मार्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हो सकता; लेकिन दूसरे दुःखों का उनका तृष्णा से पैदा होने के कारण नाश करना संभव है। यदि दूसरा जन्म लेना पडा तो तृष्णा के कारण ही लेना पडेगा। मन के चिंतन को सदा के लिए रोका नहीं जा सकता। सद्-विषय में न लगने पर वह वासनाओं को एकत्र किया करेगा। इसलिए मुज्ञ सद्विषय में लगाये रखने का प्रयत्न करना चाहिये, यही पुरुषार्थ है। इससे सात्त्विक वृत्ति का सुख और शांति प्रत्यक्ष रूप से मिलेगी, मन तृष्णा में नहीं दौडेगा और उससे संसार की सेवा होगी। तृष्णा ही पुनर्जन्म का कारण है। मन के वासनारहित हो जाने पर पुनर्जन्म का डर मानने की कोई जरूरत नहीं रहती। इस जन्म में जो पाँच अनिवार्य दुःख हैं उनके अतिरिक्त छठा कोई दुःख दूसरे जन्म में आनेवाला नहीं है। मन को शुभ प्रवृत्ति और शुभ विचार आदि में लगा देना यह शांति का निश्चित मार्ग है। इसी मार्ग को विशेष विस्तार-पूर्वक समझाकर बुद्ध ने आर्य-अष्टांगिक मार्ग का उपदेश किया।

ब्राह्मण धर्म में दस अवतारों, बौद्धों में चौवीस बुद्धों और जैनों में चौबीस तीर्थंकरों की मान्यता पोषित हुई है। यह मान्यता सर्व प्रथम किसने उत्पन्न की, यह जानना कठिन है। लेकिन अवतारवाद तथा बुद्ध-तीर्थंकरवाद में एक भेद है। बुद्ध या तीर्थंकर के तरीके से ख्यातिप्राप्त करनेवाले पुरुष जन्म से ही पूर्ण ईश्वर या मुक्त होते हैं, यह नहीं माना गया। अनेक-जन्मोसे साधना करते करते आया हुआ जीव अन्त में पूर्णता की चरम सीढी पर पहुँच जाता है। और जिस जन्म में इस सीढीपर पहुँचता है, उस जन्म में वह बुद्धत्व या तीर्थंकरत्व को पाता है। अवतार में साधक अवस्था की मान्यता नहीं है। यह तो पहले से ही ईश्वर या मुक्त है और किसी कार्य को करने के लिए इरादा-पूर्वक जन्म लेता है, ऐसी कल्पना है।

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की आगामी प्रारम्भिक परीक्षाएँ

बोर्ड की उपाधि परीक्षाएँ नवम्बर की ११ तारीख से प्रारंभ होंगी, ऐसा १५ मई के अङ्क में प्रकाशित किया जा चुका है। शेष परीक्षाएँ (सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रवेशिका और प्रथमा) १७ जनवरी सन् १९६५ से प्रारंभ होंगी। परीक्षा-सम्बन्धी सम्पूर्ण पत्रव्यवहार—**परीक्षाधिकारी श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी,** जिला-अहमदनगर (महाराष्ट्र) इस पते पर करना चाहिए।

बदरीनारायण शुक्ल
परीक्षाधिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

☆ महावीर जयन्ती का अद्भुत आयोजन ☆

कलकत्ता महानगरी में महावीर जयंती पर इस बार नये वातावरण की सृष्टि हुई। तीर्थंकर भगवान् की जयंती उनके धार्मिक अनुयायियों तक ही सीमित न रहकर व्यापक रूप से मनायी गयी। अन्य समाजों के व्यक्तियों ने भी समान रुचि एवं उत्साह के साथ सप्ताह व्यापी जयंती कार्यक्रमों में भाग लिया।

जयंती समारोह के लिए वस्तुतः पहले से ही पृष्ठभूमि तैयार हुई थी। मुर्शिदाबाद संघ ने महावीर जयंती को अहिंसा-दिवस के रूप में मनाने के लिये जयंती के पूर्व जो प्रचार किया, उसका असर हुआ।

संघ के सभापति श्री कमलसिंह दूधोरिया की अपील का ही यह परिणाम था कि विख्यात उद्योगपति श्री मोहनलाल लल्लूभाई शाह की अध्यक्षता में महावीर जयंती समारोह समिति का गठन हुआ और नगर के विभिन्न वर्गों के विचारशील व्यक्ति जयंती के उद्देश्य के प्रति आकृष्ट हुए और उन्होंने जयंती के विभिन्न कार्यक्रमों में सहयोग देना प्रारंभ किया।

जयंती के दिन स्वेच्छया कामकाज बंद रखने की मुर्शिदाबाद संघ की अपील पर शेयर बाजार, ईष्ट इण्डिया जूट तथा हेसियन एक्सचेंज, बंगाल जूट डीलर्स एसोसियेशन, काशीपुर जूट बोकर्स एसोसियेशन भारत जूट बेलर्स एसोसियेशन, छाता पट्टी, पगैया पट्टी, केशोराम कटरा, सूता पट्टी, पांचागल्ली, खत्री कटरा, विलासराय कटरा, पंजाबी कटरा, मँगा पट्टी, मनोहरदास कटरा, महावीर कटरा आदि भगवान् महावीर की जन्म तिथि २४ अप्रैल पर पूर्ण तया बद रहे।

जैन कला प्रदर्शनी

जयंती के सप्ताह-व्यापी कार्यक्रम का **प्रारंभ जैन कला** प्रदर्शनी के उद्घाटन से हुआ। **भारत जैन महामण्डल** के तत्त्वावधान में आयोजित इस कला प्रदर्शनी का १६ अप्रैल को स्थानिक एकेडेमी आफ फाईन आर्ट्स में उद्घाटन करते हुए केन्द्रीय विधि एवं डाक-तार मंत्री श्री अशोक सेन ने महावीर जंयती के अवसर पर जैन कला प्रदर्शनी के आयोजन के लिए भारत जैन महामण्डल के कार्यकर्त्ताओं को बधाई देते हुवे अपने भाषण में भगवान् महावीर को जैन धर्म का ही नहीं, अपितु समस्त मानवता और अखिल विश्व का महान् नेता बतलाया।

माननीय श्री सेन ने अपने मर्मस्पर्शी भाषण के अंतर्गत कहा: "जैन धर्म के आदर्श सारे देश में पनपे, जो जैनियों के लिए ही नहीं, किंतु सारे जगत् के लिए धर्म, दर्शन, कला सभ्यता और संस्कृति की बहुमूल्य विरासत छोड़ गये।"

उन्होंने कहा– "भारत का कोई भाग जैन धर्म की विरासत से अछूता नहीं है। जहाँ भी हम जाते हैं, हमें सुंदर जैन मंदिरों, गुफाओं और कलाकृतियों के दर्शन होते हैं। दिलवाग मंदिर, और एलोरा की गुफाएं आदि जैन. धर्म के ऐसे अवशेष हैं, जो सदैव अमर हैं।"

इस सजीव समरोह की अध्यक्षता कर रहे थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननीय श्री. केशव बसु – नगर के भूतपूर्व मेयर और प बंग विधान सभा के वर्तमान अध्यक्ष।

श्री बसु महोदय ने कहा कि "युगों से धर्म के इर्द–गिर्द जिस कला का विकास हुआ है, उसमें समाज हमें विभिन्न कालों में समाज का प्रतिबिंब मिलता है।।"

जैन धर्म के बारे में अपने हृदय के भव्य उद्गार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा: जैन धर्म ने भारतीय संस्कृति और ललित कला के निर्माण में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

भारत जैन महामण्डल की ओर से पूर्वांचल शाखा के अध्यक्ष सुपरिचित समाज सेवी श्री रतनलाल रामपुरिया ने अपने स्वागत भाषण में महावीर जयंती सप्ताह के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि "महावीर की अहिंसा और अपरिग्रह का महत्त्व आज के अणु–परमाणु युग में अत्यधिक बढ़ गया है।"

श्री रामपुरिया ने कहा कि "अणु–परमाणु अस्त्र-शस्त्रों ने मानव जाति के भविष्य को भयातुर बना दिया है और इस संदर्भ में हम स्वर्गीय राष्ट्रपति कैनेडी की इस चेतावनी को भुला नहीं सकते कि हमारे सामने केवल गणित के प्रश्न नहीं हैं, जिनके भविष्य के प्रति हम उदासीन रहें।"

कला के बारे में उन्होंने कहा कि कभी कभी यह कहा जाता है कि आत्मशुद्धि एवं सांसारिक वस्तुओं के त्याग को महत्त्व देने के कारण जैन धर्म कला को प्रोत्साहित नहीं करता। लेकिन यह बात सच नहीं है।

भारत जैन महामण्डल की पूर्वांचल शाखा के संयुक्त मंत्री **कुमार चन्द्रसिंह दुधोरिया** ने अपने भाषण में कहा कि हम महावीर का स्मरण, उनकी पूजा–आराधना इसलिए करते हैं कि उन्होंने अपने आचरण द्वारा हमें आत्म–शुद्धि का मार्ग बतलाया है। उन्हें जिन कहा गया है–आत्मा का विजेता उन्हें कहा गया है, उन्हें अरिहन्त कहा गया है और महा-वीर के नाम से पुकारा गया है। महावीर से दूसरी चीज जो हम ग्रहण करते हैं वह है सम भाव अर्थात् दूसरों के प्रति रागद्वेष रहित व्यवहार।

कुमार दुधोरिया ने कहा कि "महावीर के सम-कालीन युग का अध्ययन करने पर यह बात सामने आती है कि उस समय समाज में भारी विक्षोभ व्याप्त था। महावीर स्वामी ने अपनी **साधना** और तपस्या और **आचरण**द्वारा हिंसक क्रान्ति की संभा-वनाओं से परिपूर्ण उस विक्षोभ को अहिंसा और अपरिग्रह की युगप्रवर्तक क्रान्ति में बदल दिया।"

कुमार दुधोरिया ने कहा कि "आज विश्व पुन संकट के बीच है। धनसम्पत्ति और सत्ता की चाह भयानक रूप से बढ़ गयी है। हम यह विश्वास करने लगे हैं कि आर्थिक कल्याण ही जीवन का चरम लक्ष्य है। भौतिक सुख–समृद्धि के पीछे हम इतने लिप्त हो गये हैं कि जीवन के अन्य सब प्रश्न गौण हो गये हैं। नैतिक जीवन की जडें ही हिल उठी हैं। आधुनिक भौतिक सम्पदा में मानवीय मूल्यों का महत्त्व बहुत कम हो गया है। परमाणु–परीक्षण संधियों के बावजूद भी विनाशकारी अस्त्र–शस्त्रों के साथ परमाणु बमों का संग्रह मानव जाति के लिए भारी संकट का कारण बन गया है। आज नम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समक्ष प्रश्न यह है कि क्या हम युद्धास्त्रों को विनष्ट करें अथवा अपना ही विनाश करें।"

'लेकिन', कुमार दुधोरिया ने कहा–"अस्त्र-शस्त्रों को नष्ट करना ही पर्याप्त नहीं है। हमें अस्त्र-शस्त्रों की जरूरत को ही समाप्त कर देना चाहिये। इसके लिए मानव जाति को एक नया वातावरण तैयार करना होगा और यथार्थवादी समाज का निर्माण करना होगा–ऐसा समाज जिसमें उत्तेजना संघर्ष के प्रमुख कारण शोषण, हिंसा और कटुता का उच्छेद हो। इसके लिए हमें अहिंसा और अपरिग्रह के सिद्धान्तों पर अधारित नयी सामाजिक श्रृंखला का निर्माण करना होगा। हमें विचार करना है कि भगवान् महावीर के उपदेश इसमें किस प्रकार सहायक हो सकते हैं।

कुमार दुधोरिया ने कहा कि–"महावीर के उपदेशों के तीन रत्न–सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र में ५ महाव्रतों का समावेश है। अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह अर्थात् संग्रह और लोभ से निर्लिप्त। धर्म का सार चरित्र अथवा सदाचरण है। महावीर के जीवन और उनके उपदेशों के अनुशीलन का यही निष्कर्ष है कि व्यक्ति का सुधार होने पर ही कोई समाज उन्नत बन सकता है," उन्होंने कहा कि–"अहिंसा और अपरिग्रह आज किसी सम्प्रदायविशेष के धार्मिक विश्वासों तक ही सीमित नहीं रह गया है। मानव जाति शनैः-शनैः इस बात का अनुभव करने लगी है कि अणु-परमाणु के संहार का खतरा इन्हीं महान् आदर्शों को ग्रहण कर हट सकता है।"

अहिंसा और अपरिग्रह को मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति बतलाते हुए कुमार दुधोरिया ने यह कामना की कि 'यह अभिव्यक्ति विश्व-शांति एवं मैत्री की वरदायिनी बने।

इस अवसर पर भारत जैन महामण्डल की ओर से विख्यात चित्रकार श्री इन्द्र दूगड का अभिनंदन भी किया गया।

श्री इन्द्र दूगड अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के चित्रकार हैं जिन्हें चित्रकला अपने पिता स्व० हीराचन्दजी से विरासत में मिली है।

श्री इन्द्र की चित्रकला कांग्रेस अधिवेशनों के पण्डालों को कई बार सुशोभित कर चुकी है। आप उन चित्रकारों में हैं, जिन्होंने प्राचीन शैली को जीवित रखा है।

महामण्डल के सभापति श्री सोहनलाल दूगड ने उन्हें आशीर्वचन के साथ अभिनंदन पत्र भेंट किया।

प. बंगाल के श्रम एवं सूचना मंत्री श्री विजयसिंह नाहर ने धन्यवाद ज्ञापन करते हुए जैन कला एवं संस्कृति की उत्कृष्टता का विवेचन किया और आशा प्रकट की कि भारतीय संस्कृति के इस महत्त्वपूर्ण अंग पर इस प्रदर्शनी से समुचित प्रकाश पडगा।

महिलाओं की सभा

भगवान् महावीर के जन्म-दिवस के एक दिन पूर्व २३ अप्रैल को नगर की महिलाओं ने तीर्थंकर भगवान् को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की। अहिंसा-प्रचार समिति हाल में श्रीमती सुभद्रा हस्कर की अध्यक्षता में आयोजित महिलाओं की विराट सभा में श्रीमती वाणा राय, श्रीमती कुन्था जैन, साध्वी श्री चन्द श्री जी ने भगवान् महावीर के जीवन–दर्शन की विशद चर्चा की। जैन महिला समिति के अध्यक्ष श्रीमती उदयकुमारी दुधोरिया के आह्वान पर यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सभा बुलाई गई थी।

रोगियों में फल मिष्ठान्न वितरण

२४ अप्रैल को भगवान् महावीर की पावन जन्मतिथि पर अद्भुत उत्साह परिलक्षित हुआ। मानवता के महान् संरक्षक की जन्मतिथि के उपलक्ष्य में **जैन सेवा संघ** की ओर से प० बंगाल के श्रम एवं सूचना मंत्री श्री विजयसिंह नाहर की वृद्धा मातुश्री श्रीमती इन्द्रकुमारी नाहर के नेतृत्व में महिला स्वयं सेविकाओं ने स्थानीय अस्पतालों में जाकर रोगियों में फल और मिष्ठान्न का वितरण किया। एवं मुर्शिदाबाद संघ के द्वारा अजिमगंज, जियागंज, लालबाग के अस्पतालों में रोगियों को फल और मिष्ठान्न वितरण किया गया, तथा अजिमगंज में ३-४ हजार गरीबों को चावल बाँटा गया।

सामूहिक भोज

प्रातःकाल बडा बाजार क्षेत्र में एक विराट् जलूस ने परिक्रमा की। मंदिरों में धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न हुए। बद्रीदास टेम्पुल–स्थित महावीर स्वामी के मंदिर में सामूहिक पूजा–आराधना का व्यापक कार्यक्रम आयोजित हुआ। मुर्शिदाबाद संघ के अध्यात्मनिष्ठ उप-सभापति श्री परिचंद बोथरा ने पूजा-आराधना का प्रबंध करने के अतिरिक्त संध्या समय सामूहिक भोज का भी भव्य आयोजन किया।

जैन सूचना केन्द्र

सायंकाल बद्रीदास टेम्पुल स्ट्रीट स्थित श्री शीतलनाथ स्वामी मदिर के अहाते में प० बंग विधान परिषद् के अध्यक्ष डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या द्वारा जैन सूचना केन्द्र का उद्घाटन हुआ।

डा० चाटुर्ज्या ने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में जैन धर्म और संस्कृति की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा कि भारतीय दार्शनिक चिंतन एवं विचारधारा में जैनधर्म का महत्त्वपूर्ण अवदान रहा है। जैनधर्म ने अहिंसा के सिद्धान्तों को मूर्तरूप दिया है।

विक्टोरिया मेमोरियल के प्रबंधक डा० सरस्वती ने इस अवसर पर भाषण करते हुए कहा कि वर्तमान काल में ही नहीं महावीर के काल में भी वंगभूमि के साथ जैनधर्म का निकटतम सम्पर्क रहा।

जर्मन संघीय प्रजातंत्र के कलकत्ता स्थित वाणिज्य–दूतावास अधिकारी डा० सुमन इस अवसर पर प्रधान अतिथि थे।

सार्वजनिक सभा

रात्रि में **श्री जैन सभा** के तत्त्वावधान में अहिंसा प्रचार समिति हाल में श्री रामचन्द्र सिंघी जे० पी० की अध्यक्षता में सावजनिक सभा हुई। सर्वोदय नेता श्री सिद्धराज डड्ढा ने प्रधान वक्ता के रूप में भगवान् महावीर के जीवन दर्शन का विश्लेषण किया। पं० गौरीनाथ शास्त्री ने कहा कि भारत में जब जब धर्म की ग्लानि हुई और दुःख–दारिद्र्य आया, इस भूमि पर एक न एक अवतारी पुरुष अवतरित हुआ। भगवान् महावीर की गणना भी ऐसे ही अवतारी पुरुषों में है। साहू शांति प्रसाद जैन ने कहा कि भारत में ज्ञान की जो सतत धारा बहती जा रही थी, उसमें महावीर ने अपने व्यक्तित्व के माध्यम से एक नयी धारा बहायी। श्री सोहनलाल दुगड़ ने भावपूर्ण शब्दों में अपनी श्रद्धांजली अर्पित की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य पादलिप्त की श्रेष्ठतम कृति—

* तरंगवती *

[हिन्दी रूपान्तरकार—श्री ज्ञान भारिल्ल]

(प्रस्तुत कथानक कितना सुन्दर एवं उपदेशप्रद है, यह ग्रन्थ की भूमिका से सुस्पष्ट हो रहा है, —सम्पादक)

भूमिका—कृति के विषय में—

आत्म—कथात्मक शैली में लिखा गया श्रेष्ठ गद्य-साहित्य बहुत कम देखने में आता है। 'बाणभट्ट की आत्म कथा' जिस उच्चस्तर और शैली की कृति है, उस स्तर का आत्म—कथात्मक गद्य हिन्दी में कितना है इससे हिन्दी का पाठक अपरिचित नहीं होगा।

'तरंगवती' प्राकृत भाषा में सदियों पूर्व लिखी गई ऐसी ही एक कृति है। संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ गद्यलेखक बाणभट्ट का जब जन्म भी नहीं हुआ था तब 'तरंगवती' विद्वानों द्वारा समादृत हो चुकी थी। संस्कृत का ग्रन्थ 'वासवदत्ता' और प्राकृत-ग्रन्थ 'तरंगवती' सैकड़ों वर्षों तक भारतीय सरस्वती-देवी की कर्णकलिकाएं मानी जाती रही हैं।

बाणभट्ट को विधिवत् दिया गया अद्वीतीयता का आसन जिस सारस्वत कवीश्वर धनपाल ने छीन लिया, वह महाकवि धनपाल अपनी 'तिलक मंजरी' में 'तरंगवती' के लिए लिखता है:—

प्रसन्नगंभीरपथा रथांगमिथुनाश्रया।
पुण्या पुनाति गंगेव गां तरंगवती कथा॥

इसी तरह एक श्रेष्ठ, प्राचीन प्राकृत-ग्रंथ 'कुवलयमाला' के लेखक आचार्य दाक्षिण्य चिन्ह सूरि ने आचार्य पादलिप्त और 'तरंगवती' के लिए लिखा है:—

चक्काय जुअल सहिया रम्मत्तण-रायहंस-कयहरिसा।
जस्स कुलप्पव्वयस्स व वियरइ गंगा तरंगमई॥

यह कथा आचार्य ने ईसा की पहली-दूसरी शती में रची थी। मूलकथा विशाल थी। अनेक क्लिष्ट गाथाओं के होने से यह मात्र विद्वानों का विलास बनकर रह गई थी। अस्तु, बाद के विद्वानों ने उसमें से क्लिष्ट गाथाएं छोड़कर इस कृति को जन—साधारण के उपयोग में भी आने योग्य सार—रूप में बचाए रखा। मूलकृति आज प्राप्य नहीं है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ. लॉयमेन की दृष्टि वर्षों पूर्व प्राचीन भारत की इस श्रेष्ठ कथा पर पड़ी और उन्होंने जर्मन भाषा में उसका अनुवाद किया। इस कृति में जो भावपूर्ण भारतीय आदर्श है उसके प्रभाव से यह यूरोप में अत्यन्त प्रचलित और सम्मानित हुई। स्वयं डॉ. लॉयमेन ने अपने अनुवाद की भूमिका में लिखा है:-

'.......... यह कथा प्राचीन भारत का दान है। इसमें वर्णित धार्मिक सिद्धान्त बौद्धकाल में प्रकट हुए। तीसरी-चौथी शती में प्राकृत के स्थान पर पुनः संस्कृत आरूढ़ हो गई थी। अतः यह कथा पहली-दूसरी शती में लिखी होनी चाहिए।

.... यह कथा प्रत्येक साहित्यभक्त और मानसशास्त्री को प्रिय और उपयोगी होनी चाहिए। उन्हें आश्चर्य के साथ यह दिखाई देगा कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त कितनी प्रबलता से भावनामय प्रदेश पर असर करके ठेठ वस्तुस्थिति में आकर ठहरता है। यह कथा पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रतिपादित करने के लिए प्रकृति का काव्य है। आत्मा सिर्फ मनुष्य में ही होती है (ईसाई मत) का खंडन करके यह कथा प्रमाणित करती है कि आत्मा प्रत्येक जीव में है। भारत के इन विचारों का रूपान्तर करके 'ओविड' और उसके समय के ग्रीक-विचारकों ने लिया है। इस कथा में भारत की भावना का, एशिया की भावना का और उससे भी बढ़कर विशाल भावना का समावेश है। इस कथा की विशेषताओं से यह यूरोप में प्रसिद्ध होगी इतना ही नहीं कवि की तेजस्विता और सरलता भी प्रकट होगी।

.... भारत के कथा-साहित्य में से जो कुछ भी हम यूरोप वालों को मिलता है उसका सार इस कथा में मिलेगा। महाकाव्य के नीरस विस्तार और लघुकाव्य के सरस अर्क के बीच की यह सुन्दर कृति है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कथानक की अवतरणिका से ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय का आभास चित्त में स्फुरित हो उठता है— सम्पादक)

बहुत दिन पहले....

पृथ्वी पर स्वर्ग के वरदान की तरह गंगा फैली हुई थी उसके दोनों किनारों पर बिछी रेत सुबह को सुनहरी धूप में राशि-राशि स्वर्ण-खण्डों की तरह चमक रही थी।

पक्षियों के समवेत स्वर चारों दिशाओं में संगीत की एक अभूतपूर्व सृष्टि कर रहे थे। सैंकड़ों तरह के पक्षी वृक्षों की शाखाओं पर इधर से उधर उडकर सुबह के सूरज का स्वागत कर रहे थे और गंगा की लहरों पर ढेर के ढेर जल पक्षी तैर रहे थे। जल की तरंगों पर लहराती हुई हंसों की कतारें ऐसी लग रही थीं जैसे गंगा ने प्रभात की देवी की आराधना के लिए समुद्र के सर्वश्रेष्ठ मोतियों की मालाएँ चुनकर सजा दी हों।

इन सबके बीच चक्रवाकों का जोडा भी था, जो अपनी शोभा में सबसे निराला लग रहा था।

एक दूसरे के स्नेह में आत्म-विभोर ये चक्रवाक और चक्रवाकी अपने चमकते हुए लाल रंग से ऐसे प्रतीत होते थे जैसे इनकी आत्मा का अनुराग इनके रोम-रोम से फूट कर प्रकाशित हो रहा हो।

चक्रवाकों का यह युगल क्षण-मात्र के लिए भी कभी अलग नहीं होता था। चक्रवाक के पीछे चक्रवाकी पवनके पीछे सुरभि की तरह बहती थी और चक्रवाकी के साथ वह चक्रवाक शरीर के साथ छाया की तरह चलता था।

वे दोनों सदा साथ-साथ ही चुगते, साथ-साथ ही तैरते और साथ-साथ ही उड़ते थे। रात्रि हो जाने पर वे किसी कमल-कुंज में साथ-साथ ही सो जाते थे। कमल की एक पाँखुरी की दूरी भी उन अनन्त अनुरागी चक्रवाक-चक्रवाकी के लिए बहुत बडी थी।

सुबह की नर्म-धूप में वे साथ-साथ गंगा की लहरों पर तैर रहे थे। उस समय एक वन-खण्ड से निकल कर विशालकाय हाथी पानी पीने के लिए नदी के प्रवाह की तरफ आया। धारा में घुस कर उसने पानी पिया और फिर जब अपनी अजगर के समान विशाल सूंड में बहुत-सा पानी भर कर आकाश में उछाल दिया तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे निरभ्र आकाश से सहसा वर्षा की अजस्र धारा बरस पड़ी हो।

भयभीत होकर जल के पक्षी इधर-उधर उड़ गये। चक्रवाकों का वह जोडा भी डर के मारे एक साथ उड़ा और नदी के ऊपर आकाश में चक्कर काटने लगा।

शक्ति के मद में मदमाता वह हाथी जब वापस लौटने लगा, तभी उसका पीछा करता हुआ एक भयंकर व्याध धनुष्य-बाण लिये हुए किनारे पर आ पहुँचा। उसने हाथी को देखकर अपने धनुष पर बाण चढाया और लक्ष्य लेकर उसे छोड़ दिया। किन्तु लक्ष्य भ्रष्ट हो गया, और वह बाण हाथी को न लगकर आकाश में थोडा ऊपर उडते हुए चक्रवाक को लगा...

चक्रवाक का एक पंख कट कर हवा से टूट कर गिरते हुए पत्ते की तरह चक्कर खाता हुआ पृथ्वी पर आ गिरा और उसके साथ ही वह चक्रवाक भी गिरकर क्षण भर के लिये तड़पा और चिरशान्त हो गया-जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

लेकिन और होना शेष ही क्या रह गया था? मर्मभेदी पीडा से चीखती हुई चक्रवाकी अपने स्वामी के निश्चेष्ट शरीर पर सिर पटक-पटक कर रह गई।

व्याध कुछ निकट आया और उसने देखा कि लक्ष्य भ्रष्ट हो गया है और बाण हाथी को न लगकर एक चक्रवाक को लगा है, और वह मर गया है।

उसने अपनी अंगारों जैसी धधकती हुई लाल लाल आँखों से यह भी देखा कि प्रीत की मारी उसकी चक्रवाकी अपने स्वामी के शव पर शीष धुन धुन कर रो रही है.... और यह देखकर सदैव अग्नि बरसाने वाली उसकी लाल-लाल आँखों से जैसे लहू की धार फूट निकली...

कुछ देर वह स्तब्ध और अवचेतन होकर खडा रह गया। फिर उसने आस-पास से कुछ सूखी लकडियाँ इकट्ठी कीं और उस चक्रवाक का अग्निसंस्कार करने के लिए चिता तैयार की। काँपते हुए हाथों से उसने चिता में अग्नि जलाई और चक्रवाक के शव को उस पर रख दिया।

सदा कमल के पत्तों पर या अपनी गोद में ही सोने वाले अपने प्रियतम को अंगारों पर सोता हुआ वह चक्रवाकी देख नहीं सकी, और उडकर अपने सहचर की गोद में आ गिरी...

जीवन में और मृत्यु में भी वह स्नेही-युगल साथ-साथ ही रहा।

और यह देख कर उस नर-राक्षस का पत्थर का कलेजा भी काँप-गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःख, ग्लानि और पश्चात्ताप से वह व्याध फूट-फूट कर रो पड़ा।

यह बहुत दिन पहले की बात है

भिक्षां देहि !

●

और बहुत दिन बाद--

पृथ्वी पर कभी देखा न गया हो, ऐसे अद्‌भुत सौन्दर्य से सम्पन्न एक साध्वी जब उस दिन प्रातःकाल नगरसेठ धनपाल के द्वार पर भिक्षार्थ उपस्थित हुई तो उस वैभवशाली नगर-सेठ के सैकड़ों दास-दासियों में एक आश्चर्य और आनन्दमय हलचलसी मच गई। उस साध्वी के मुखमण्डल पर एक ऐसी नैसर्गिक शान्ति छाई हुई थी, जिसके प्रभाव से देखने वालों के हृदय भी सहज ही अमृतमय हो उठते।

धनपाल राजगृह का नगर सेठ था, और राजगृह उस युग में भारत के सर्वश्रेष्ठ और सर्व--शक्तिशाली मगध--साम्राज्य की राजधानी थी। सम्राट् कोणिक की छत्रछाया में मगध उस समय अपनी शक्ति और समृद्धि के चरम शिखरों को छू रहा था। विपुल सैन्य और श्री से सम्पन्न सम्राट् कोणिक अपने समस्त प्रतिद्वन्द्वी नरेशों को परास्त करके सचमुच इस भारत की स्वर्ण-भूमि पर देवराज इन्द्र की भाँति सुशोभित और सम्मानित थे। सूर्य की भाँति अपने कुल को प्रकाशित करते हुए, राग-द्वेष से रहित सम्राट् अब वीतराग भगवान् महावीर के अनुयायी होकर जन्म-मरण से मुक्ति दिलाने वाले जैनधर्म के उपासक थे। अपने समर्थ और शान्तसम्राट् का अनुगमन करती मगध की प्रजा भी अपने सुख की सीमा पर थी।

यह उसी युग की कथा है।

अपने यशस्वी और देवोपम सम्राट् के चरित्र का अक्षरशः अनुसरण करता हुआ धनपाल कुलवान, सदाचारी और प्रजा का प्रिय था। उसके प्रासाद में वैभव और ऐश्वर्य का सागर उफनता था, और उसके द्वार से कोई याचक कभी खाली लौटता नहीं था।

आज तो उसके द्वार पर स्वयं देवी लक्ष्मी ही भिक्षा लेने आई थी। सेवकों में सहसा फैल गई हलचल से सूचित होकर नगर सेठ की पत्नी सोमा दौड़ती हुई द्वार पर आई······

जैसे चन्द्रमा का स्वागत करने सूर्य आ जाय। या जैसे एक चाँद इधर से आये और एक चाँद उधर से आ जाय, या सहसा ऐसा कुछ अभूतपूर्व-सा घटित हो जाय कि बेचारा रचनाकार स्तब्ध, विमूढ होकर रह जाय। सोमा स्वयं अद्‌भुत रूपवती थी। किन्तु भिक्षार्थ आई हुई उस साध्वी के निर्दोष सौन्दर्य और उसके मुख--मण्डल पर छाई हुई शांति और संतोष की छाया को देख कर वह चकित रह गई। उसका मस्तक आदर से स्वयं ही साध्वी के चरणों पर झुक गया। उसने देखा साध्वी के केश कैसे सुन्दर और चिकने हैं। उसका मुख कैसा चाँद-सा है। पानी में से कमल जैसे झाँक रहा हो, ऐसे उसके हाथ भिक्षा लेने के लिए वस्त्रों में से बाहर निकले हुए हैं।

अपने घर-आँगन को पवित्र करती हुई सागर-कन्या लक्ष्मी के समान उस साध्वी को सादर नमस्कार करके सोमा उसके मुख-कमल की ओर कुछ देर ठगी-सी देखती रह गई। मन ही मन वह विचार करने लगी— न तो मैंने कभी स्वप्न में ही ऐसी अनुपम सुन्दरी स्त्री का चित्र देखा, न कभी ऐसा वर्णन ही पढ़ा। ऐसा सुन्दर यह स्त्री--कमल कौन होगा? सुन्दर स्त्रियों का निर्माण करने के जो द्रव्य होंगे, क्या उनमें से सर्वश्रेष्ठ का चयन करके विधाता ने इसे गढ़ा होगा? लग-भग मुण्डित अवस्था के भिक्षुणी -वेश में ही जब यह इतनी सुन्दर लग रही है तो रूप-श्री मण्डित गृहिणी के वेष में तो यह जाने कितनी सुन्दर लगती होगी? इसके एक भी अंग पर कोई श्रृंगार नहीं है, बल्कि इसके अंगों पर धूल ही लगी हुई है, किन्तु फिर भी मेरी दृष्टि इस पर से हटती नहीं —उलटी इसके प्रत्येक अंग पर अटक अटक-सी जाती है। स्वर्ग की कुमारिकाएँ भी जिसकी कामना करें ऐसा इसका रूप है। तो क्या यह कोई अप्सरा या देवकन्या होगी? किन्तु ऐसा कैसे हो सकता है? शिल्पियों द्वारा गढ़ी हुई प्रतिमाओं की आंखों के समान देवलोक की देवांगनाओं की आखों की पलकें तो झपकती नहीं हैं, उसी प्रकार उनके पुष्प-हार कुम्हलाते नहीं, उन्हें धूल भी नहीं लगती। किन्तु इन आर्या के पैरों में तो धूल लगी हुई है और इनके नेत्र भी हिलते हैं। निश्चित है कि यह कोई देवांगना नहीं, मानव लोक की ही कोई नारी है।—पर मैं इस तरह अनिश्चय में क्यों रहूँ? इनसे नम्र--तापूर्वक पूछ ही क्यों न लूँ?

यह विचार करके सोमा ने पहले साध्वी को भिक्षा प्रदान की और फिर उनसे अपना आश्चर्य-प्रश्न किया—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूज्या साध्वीजी ! यदि आपके किसी नियम में बाधा उपस्थित न होती हो तो क्षण भर आप विश्राम करें और कृपया मुझे कोई धर्म कथा कहें।

सेठानी सोमा का विनम्र निवेदन सुनकर अपनी शान्त और मधुर वाणी में साध्वी ने उत्तर दिया :

सारे जगत् का कल्याण करने वाले धर्म के उपदेश में किसी को कोई बाधा नहीं हो सकती। अहिंसा लक्षण धर्म तो कहने और सुनने वाले, दोनों ही को पवित्र करता है। यदि कोई व्यक्ति थोड़ी देर के लिए भी हिंसा से मुक्त हो और धर्म का उपदेश सुनकर अहिंसा व्रत ले तो उपदेशक का उपदेश देना सफल हो जाता है, क्योंकि ऐसा होने पर उपदेशक अन्य को ही नहीं, स्वयं अपने को भी पुनर्जन्म के समुद्र से पार उतार लेता है। इस प्रकार धर्म का उपदेश देना तो हमेशा ही श्रेष्ठ है। मैं जो कुछ भी जानती हूं, तुम्हें बताती हूँ-तुम उसे ध्यान देकर सुनो:

यह सुनकर दासियाँ आनन्द से भर उठीं। उन्होंने सोचा कि अब कुछ देर तक निश्चित होकर ध्यानपूर्वक इस साध्वी के सौन्दर्य को निहारा जा सकेगा। उन्होंने क्षणमात्र में साध्वी के लिए योग्य आसन बिछा दिया और उस पर उसे बैठा दिया और सेठानी-सहित वे सब उनके सामने फर्श पर बैठ गईं।

कानों तथा मन में सुधा का स्वाद भरने वाले स्वर में और संक्षिप्त किन्तु शीघ्र समझ में आ सके, ऐसी भाषा शैली में साध्वी ने उन्हें जगत् के सब जीवों को सुख देने वाले, जन्म, जरा, मरण आदि दुखों का नाश करने वाले जिन-महात्माओं द्वारा कहे गये धर्म का सार समझाया। उसने उन्हें सम्यक् ज्ञान दर्शन, अहिंसा सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और परिग्रह-इन पाँच महाव्रतों, तप और संयम, विनय और क्षमा आदि धर्म के विशिष्ट गुणों वाले तत्त्वोंका रहस्य बताया। इस अमृतमय उपदेश का सुनकर सोमा ने विनय पूर्वक साध्वी से कहा-

धर्म का उपदेश मैंने ध्यान-पूर्वक सुना, किन्तु हे पवित्र आर्या ! मुझे एक बात और बताइये। आपके सुन्दर और पवित्र मुख के दर्शन से मेरी आंखें तो तृप्त हुई हैं, किन्तु आपके जन्म की कथा सुनने के लिए मेरा मन अधीर हो रहा है। भगवान् विष्णु को जैसे कमल प्रिय है, उस प्रकार आप किस पिता को प्रिय थीं ? तथा समस्त जगत् के प्रणाम प्राप्त करने योग्य आप की माता कौन थीं ? आपके पिता के घर में तथा पति के घर में कैसा सुख था ? कौन सा वह दुःख था जिसके फल-स्वरूप आपको यह साध्वी-वेश धारण करना पडा ?—यह सब जानने की मेरी उत्कट आकांक्षा है। कहा जाता है कि नारी का एवं नदी का, उसी प्रकार साधु एवं साध्वी का मूल नहीं पूछना चाहिए। इसके अतिरिक्त मैं यह भी जानती हूँ कि धर्मात्माओं से निकम्मी बात पूछ कर उन्हें कष्ट नहीं देना चाहिए, किन्तु आपके सौन्दर्य से आश्चर्यान्वित होकर ही मैं यह प्रश्न आपसे कर रही हूँ। इस प्रश्न, या इन प्रश्नों को सुनकर साध्वी कुछ देर के लिए मौन रह गई। फिर उसने उत्तर दिया:

इसका उत्तर देना कुछ कठिन है। आत्मा की पवित्रता को लाभ से अधिक हानि पहुँचाने वाले ऐसे प्रश्नों पर हम विचार नहीं करते हैं। अतीत काल में गृह-जीवन के जो आनन्द भोगे हैं, उन्हें हम अपनी स्मृति में भी नहीं ला सकते हैं। फिर भी जगत् के दुःख से जो विराग उत्पन्न हुआ, उसी की ओर दृष्टि करके, धर्म का फल मुझे किस प्रकार प्राप्त हुआ, यह बात मैं तुम्हें संक्षेप में कहूँगी।

इस स्वीकृति से परम प्रसन्न होकर सोमा ने सब दासियों से ध्यानपूर्वक यह कथा सुनने के लिए कहा। बीते हुए दिनों में अपने आश्चर्यजनक सद्भाग्य का विचार या अभिमान न करते हुए, केवल धर्म की ओर दृष्टि रख कर सरस्वती देवी के समान उस साध्वी ने अपनी जीवन कथा आरम्भ की......

(एक दफा पुस्तक हाथमें लेने पर उसे समाप्ति तक छोड़ने की इच्छा नहीं होती—मूल कथावस्तु की रोचकता अनुवाद-शैलीकी विशेषता से और भी बढ़ गई है। सम्पादक)

प्रकाशक अपोलो पब्लिकेशन जयपुर (मू. ४ रु.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—: आजीवन सदस्य :—

१ के. चु. भटेवडा	राहू (पूना)	४३ भी. मा. कर्नावट	सिरसमार्ग	८५ चु. भ्र. प्रे. देसरडा	न्हावरा
२ ता. रां. मा. सुन्दराबाईजी	आष्टा	४४ बा. डा. बद्धानी	अमरावती	८६ कां. जा. नाहर	आलेगांव
३ इन्दरबाईजी	,,	४५ मु. भ्र. मो. मुथा	देवळाली	८७ प. ही. कटारिया	बाल्की
४ श्रीमती रा. डागा	भोपाल	४६ प. कि. छाजेड	म्हसे	८८ फू. बा. बाफना	राहुरी
५ जी. ते. ललवानी	श्रीरामपुर	४७ मू. रि. संकलेचा	मजलेगांव	८९ मा. गं. चोरडिया	बोरी
६ मे. ध. जैन	मगरदा	४८ हां. भ्र. च. शिंगी	अहमदनगर	९० पु. शो चोरडिया	,,
७ कि. चौधरी	शुजालपुर	४९ चं. ध. वैद	चांदा	९१ रा. ल. भंडारी	सिरसाला
८ गें. इ. जैन ,,	,,	५० सु. सु. कुचेरिया	पाथर्डी	९२ ध. द. संचेती	पूना
९ कं. दी. जैन ,,	,,	५१ वि. शा. संकलेचा	अमरावती	९३ ज. चु. सांड	रहाता
१० सू. न. जैन ,,	,,	५२ न. मु. बोरा	पीपला	९४ ह. न. गांधी	श्रीरामपुर
११ रा. चौ को ,,	,,	५३ चाँ. मू. चंगेडिया	बरोरा	९५ झुं. भ्र. ही. भलगट	गुलबर्गा
१२ का. ही. जैन ,,	,,	५४ एक गुप्तदानी सद्‌गृहस्थ	अ.नगर	९६ ब. चं. गुगले	मलाड
१३ ज. खो. डोशी	इन्दौर	५५ भी. के. ललवानी	मनमाड	९७ र. ही. लूंकड	श्रीरामपुर
१४ इ. सू. चोपडा	भामाठाण	५६ ब. मा. गांधी	पिंपलगांव	९८ कुं. न. गांधी	,,
१५ मे. टाटिया	सारंगपुर	५७ प्रे. भ्र. ज. बोरा	,,	९९ मु. लुणावत	धामणगांव
१६ प्रे. जी. वेदमुथा	वर्धा	५८ मो. चु. मुथा	वांबोरी	१०० शांतिलालजी चौधरी	राजगढ़
१७ दे. भि. कांकरिया	राहू	५९ सौ. रू. सू भ्र. झुंबरलालजी	,,	१०१ न. शा. भाई	मलकापुर
१८ श्री. न. पितलिया	सीहोर	६० मू. द. चंगेडिया	सोनई	१०२ ही. ल. मुथा	लक्ष्मेश्वर
१९ के. घी. बाफणा	नागपुर	६१ पू. मो. नाहर	घोडेगांव	१०३ सि. र. भुरा	सिवनी
२० क. ल. रांका	शुजालपुर	६२ ने. ब भटेवड़ा	वांसदा	१०४ चं हि. कुंकुलोल	कोल्हार
२१ स. व. जैन	शाजापुर	६३ ब. च. सिंगी	देवळाली	१०५ वि. पु. राकेचा	,,
२२ सु. जी. सिंदरसीवाला	,,	६४ श्री. रा. मुथा	,,	१०६ ना. भ्र. रा. गुगले	,,
२३ वैं. र. स. मुणोत	वांबोरी	६५ झु. पू. बाफना	श्रीरामपुर	१०७ स. म. रांका	,,
२४ भं. के. जोगड	बोदवड	६६ ने. गु. मुथा	बेलापुर	१०८ फ. ज. गुगलिया	,,
२५ झुं. ध. मुथा	अहमदनगर	६७ चु. पू. तातेड	,,	१०९ मो. झुं. रांका	चिचोली
२६ अ. मा. गुगले	पाथर्डी	६८ मो. र. हिरन	,,	११० प. का. रांका	,,
२७ ना. भ्र. र. भंडारी	पीपला	६९ के. मां. संचेती	चिचवड	१११ हु. च. समदडिया	अस्तगांव
२८ सौ. गु. भ्र. सि. बोरा	अ.नगर	७० ह. सो. मुनोत	निंबारी	११२ भा. झुं. गुगले	पाथर्डी
२९ ब. झुं. कोठारी	,,	७१ गं. मो. कोठारी	पूना	११३ उ. ह. कातरेला	अमरावती
३० ला. पा. मा. कोंडाबाईजी	पाथर्डी	७२ क. के. कांकलिया	पूना	११४ कां. मा. गांधी	मुंबई
३१ सौ. च. मो. लुणिया	जंजीरा	७३ मो. ल. खिवसरा	,,	११५ जे. मा. कटारिया	खरवंडी
३२ मि. रा. भटेवडा	केडगांव	७४ र. मा. ओस्तवाल	सांगली	११६ जे. धों. कटारिया	,,
३३ फ. मु. शिंगी	नेवासा	७५ छो ब. गुगळे	वांबोरी	११७ ह. त. गांधी	वाम्बोरी
३४ भा. खु. गांधी	आश्वी	७६ इं. गं. कोठारी	,,	११८ मो. द. डोशी	अ. नगर
३५ ना. क. छाजेड	चकलाआंबा	७७ नें. झुं. सुराणा	राहुरी	११९ जी. मे. बोरा	वाम्बोरी
३६ उ. बा. देसरडा वकील	चाळीसगांव	७८ चां. मो. भंडारी	घोडनदी	१२० उ. बा. वाडीवाल	संगमनेर
३७ भ. झुं. गुगळे	करंजी	७९ धू. भि. फुलफगर	घोडनदी	१२१ मो. ला. मुणोत	भिंगार
३८ चां. भ. मुणोत	वांबोरी	८० चं. शो. गादिया	,,	१२२ मे. दी. गांधी	लोणावला
३९ कि. बी. पटवा	पाथर्डी	८१ चां. सु. कोठारी	बेलापुर	१२३ ज. सु. गुजराथी हलवाई	मालेगांव
४० छो. ने गुगळे	लोहसर	८२ रा. पो. गांधी	रस्तापुर	१२४ मो. ज. ओस्तवाल	वाम्बोरी
४१ ही. भ्र. न. सुरपुरिया	पूना	८३ जे. शां. संघवी	उत्राण	१२५ ने. ध. कटारिया	खरवंडी
४२ रा. भ्र. म. कोठारी	सतारा	८४ भू. रा. कोठारी	केडगांव	१२६ खु. मि. मुणोत	करंजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२७	श्री. बं. ने. पारख	संगमनेर	१५१	,, भा. कुं. गांधी	संगमनेर	१७५	,, शि. जो. सर्राफ	देवास
१२८	,, ता. रा. चोरडियाम्हा.	पिंपलगांव	१५२	,, चु. र. भंडारी	अश्वी	१७६	,, र. मु. बजाज	,,
१२९	,, पू. को. भंडारी	कडा	१५३	,, द. रा. गांधी	प्रवरासंगम	१७७	,, इ. सांड	बडावदा
१३०	,, चु. गु. मुथा	घाटसिरस	१५४	,, ग. न. चोपडा	खांबा	१७८	सौ. मां. लसोड	प्रतापगढ
१३१	,, गीगीबाई फिरोदिया	अ. नगर	१५५	,, शो. च. भटेवडा	राजुरी	१७९	श्री. वि. ल. गेलडा	बोदवड
१३२	,, न. धो. कटारिया	लोणी	१५६	,, मि. मो. कोठारी	अहमदनगर	१८०	,, स्वा. नै. भटेवडा	चाकण
१३३	,, ह. अ. चोरडिया	अकोलनेर	१५७	,, फ. आ. फिरोदिया	साकूर	१८१	,, व. स्था. श्रा. संघ	बदनोर
१३४	,, सौ. रु. झुं. कटारिया	चांदा	१५८	,, जा. मि. भंडारी	मचर	१८२	,, कि. मि. भलगट	भंडारा
१३५	,, पु. प. मुथा	घाटसिरस	१५९	,, फू. र. कटारिया	संगमनेर	१८३	,, कि. झु. भलगट	,,
१३६	,, सु. भ्र. ता. डोशी	अ. नगर	१६०	,, शां. प्रे. कटारिया	अहमदनगर	१८४	,, कि. जं. भलगट	,,
१३७	,, मा. ध. बोथरा	खरवंडी	१६१	" उ. शं. चोपडा	साकूर	१८५	,, ह. मि. बाफना	पांडुरणा
१३८	,, स. मो. लुणावत	जालना	१६२	" च. लू. हिरण	साकरवाडी	१८६	,, अ. मो. डांगी	भीलवाडा
१३९	,, पु. मा. कटारिया	इचलकरंजी	१६३	" वं. फ. बाफना	साकूर	१८७	,, भी. क. संचेती	नांदूरा
१४०	,, ही. रा. भटेवडा	पूना	१६४	" के. बं. कटारिया	अ. नगर	१८८	,, मो. क. झामड	पीपलगांवराजा
१४१	,, ही. क. खाटेड	पूना	१६५	,, क. बु. फिरोदिया	साकूर	१८९	,, ज. खो. डोशी	इन्दौर
१४२	सौ. शांताबाई मो. नाहर	पूना	१६६	,, धा. जे. शाह	यवतमाल	१९०	,, नेमीनाथ जैन	देवास
१४३	श्री. रा. शो. टाटिया	पूना	१६७	,, ही. जे. चोरडिया	पूना	१९१	,, क. झुं गांधी	अश्वी
१४४	,, फू. तु. मालू	खडकी	१६८	,, ने. चां. शिंगीं	घोरपडी	१९२	,, द. ओं रांका	शैलाना
१४५	,, मा. रा. बाफना	वडगांव	१६९	श्री. रू. मा. नाहर	रांजणगांव	१९३	,, हु. ब. दसोरिया	प्रतापगढ
१४६	,, ध. ही. बाफना	वडगांव	१७०	,, शं. भा. दूगड	अमलनेर	१९४	,, पा. वि. ढाबरिया	अजमेर
१४७	,, ह. रा. बाफना	वडगांव	१७१	,, कोट व. स्था. संघ	मुंबई	१९५	,, रा. पू. बूरड	शिराला
१४८	श्री. आ. स. चोरडिया	खेड	१७२	,, मोहनलालजी कीमती	इन्दौर	१ ८	,, मां. भॅ. बोरदिया	गुलाबपुरा
१४९	,, दौ. ध. चोरडिया	पिंपळवंडी	१७३	,, भा. छ. तुरखिया	इन्दौर	१९९	,, ज. खो.	अमरावती
१५०	,, रा. ला. चो रडिया	बोरी बुद्रुक	१७४	,, भं. शा. घाकड	इन्दौर	२००	,, गुप्तदानी गृहस्थ	

To

श्रीमान्

मुकाम

पोष्ट

जिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ अर्हम्

सम्यक् दर्शन
सम्यक् चारित्र
सम्यक् तप

सुधर्मा

श्री ति. र. स्था. जैन धा. प. बोर्ड, पाथर्डी की मुखपत्रिका

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

वर्ष ५) जुलाई १९६४ (अङ्क १२

इस अंक में

१ सुधर्मा सुवचन सुधा–	....	१
२ सम्पादकीय	पं. बदरीनारायण शुक्ल	३
३ " क्रिया "	श्री बंशीलालजी कोठारी	४
४ आत्म–निर्माण	सौ. चन्द्रकान्ता	५
५ शिक्षामें धर्म निरपेक्षता या धर्म विमुखता	श्री जे. पी. पाण्डेय एम. एस. सी. बी. एड. एल. एल. बी	७
६ भारतकी अर्वाचीन और प्राचीन भाषाएँ	स्व. श्री हरगोविन्ददास त्रिकमचंद सेठ	१२
७ इतिहास	श्री पं. नाथूरामजी प्रेमी	१६
८ श्रद्धेय आचार्य श्रीजी का स्वास्थ्य समाचार	पं. बदरीनारायण शुक्ल	२२
९ श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी का प्रचलित पाठचक्रम	परीक्षाधिकारी ,, ,,	२३

...दक–पं. बदरीनारायण शुक्ल–पं. शोभाचंद्र भारिल्ल–प्रबन्ध सम्पादक–पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवर्ण नामावली

सदुपदेशक–परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज

संस्थापक–दानवीर शाह केशवजी जवेरचन्द, जामनगरवाले, जालना

आधारस्तम्भ

१ श्री. चन्द्रभानजी रूपचंदजी डाकलिया, श्रीरामपुर (नगर)
२ ,, केशरचंदजी कचरदासजी बोरा आश्वी ,,
३ ,, सूरजमलजी कस्तूरचन्दजी गांधी अहमदनगर
४ स्व. माणकचंदजी किसनदासजी मुथा अहमदनगर
५ श्री. रा. ब कुन्दनमलजी लालचन्दजी कोठारी ब्यावर

संरक्षक

१ श्री. तिलोकचंदजी खूबचंदजी गुंदेचा चांदा (नगर)
२ ,, फकीरचंदजी उत्तमचंदजी गुगले चिचोंडी शिराळ ,,
३ ,, माणकचंदजी उत्तमचंदजी गुगले पाथर्डी ,,
४ श्रीमती शक्करबाई रतनचंदजी सुराणा द्रुग (मध्यप्रदेश)
५ श्री. पन्नालालजी गुलराजजी गांधी मावावाले पूना
६ स्व. श्री. पन्नालालजी गुगले पाथर्डी के स्मारक
७ श्री. मगनीरामजी फकीरचंदजी दुधेडिया श्रीरामपुर
८ सौ. धोंडाबाई भ्र. उत्तमचंदजी संचेती पूना
९ श्री, कुन्दनमलजी कस्तूरचंदजी बोरा ,,
१० नवलमलजी सरदारमलजी पुंगलिया नागपुर
११ भिकमदास पोखरणा चै. ट्रस्ट पूना
१२ श्री. उदयरामजी हरकचन्दजी रैदासणी बीबी

सहायक सदस्य

१ श्री. उत्तमचंदजी कचरदासजी भटेवड़ा राहू (पूना)
२ ,, बंशीलालजी अमोलकचंदजी भटेवड़ा ,, ,,
३ ,, माणकचंदजी भीवराजजी भटेवड़ा ,, ,,
४ सौ. श्रीकुंवरबाई भ्र. मूलचंदजी भटेवड़ा ,, ,,
५ श्री. प्रतापमलजी फूलचंदजी बनवट आष्टा
६ सौ. उमरावबाई भ्र. हस्तमलजी जैन शाजापुर
७ श्री. केशरीमलजी बापूलालजी जैन शुजालपुर
८ ,, रंभाबाई भ्र. गणपतसिंहजी जैन ,,
९ सौ. तेजकुंवरबाई धर्मपत्नी डालचंदजी चौधरी ,,
१० श्री. मोजीलालजी भीमसिंहजी जैन ,,
११ ,, बीजराजजी जुगराजजी संचेती मलकापुर
१२ ,, तेजमलजी भीवराजजी संचेती ,,
१३ श्री. जवरीबाई भ्र. धूलजीभाई शाजापुर
१४ श्री. हिंमतलालजी सा. जैन शाजापुर
१५ ,, कनकमलजी चुन्नीलालजी गांधी चाँदा
१६ ,, नारायणदासजी मोहनलालजी मंडलेचा येवला
१७ ,, भागूबाई भ्र. चंदनमलजी गादिया बेलापुर
१८ ,, मगनलाल सुंदरजी शाह अमरावती
१९ ,, हेमकुंवरबाई भ्र. कालीदासजी शाह सातारा
२० ,, मयाशंकर चत्रभुज शाह अमरावती
२१ ,, शान्तिलाल पोपटलाल काठेड अहमदनगर
२२ श्री. कचरदास मोहनलाल लोढा अहमदनगर
२३ ,, गेंदमल राजमल जैन शुजालपुर
२४ ,, लाभचन्दजी गुलाबचन्दजी चोरडिया हिंगणघाट
२५ श्री. कुंदनमलजी लुंकड की सुपुत्री सायरबाईजी बेंगलोर
२६ ,, सिमरतमलजी चुनीलालजी मुथा वांबोरी
२७ ,, धनराजजी मोतीलालजी कांकरिया पूना
२८ ,, खुशालचंद संपतलाल भूरट घोड़नदी
२९ ,, मोतीलालजी मोहनलालजी सिंगी पूना
३० ,, मिश्रीलालजी हस्तीमलजी दुगड घोड़नदी
३१ ,, कचरदासजी प्रकाशमलजी भलगट अहमदनगर
३२ ,, मुखरामजी प्रेमराजजी मुथा बेलापुर
३३ ,, सौ. शांताबाई बाबूलालजी रैदासनी नशीराबाद
३४ ,, ताराचंदजी भीवराजजी भटेवडा राहू (पूना)
३५ ,, तुलसाबाईजी कोचर हिंगणघाट
३६ ,, जसराज कालाभाई लाठिया मुर्तिजापुर
३७ ,, बापूलाल प्रेमचंद संघवी अकोला
३८ ,, शाह नागजी पानाचंद बारवडा रायपुर
३९ ,, रूपचंदजी गोकुलचंदजी कोठारी कोपरगांव
४० ,, चन्दनमल नन्दरामजी गांधी श्रीरामपुर
४१ ,, दलीचन्द गुलाबचन्दजी पारख नागपुर
४२ ,, उत्तमचन्दजी चुनीलालजी मुथा वाम्बोरी
४३ ,, कचरदास रूपचंदजी कर्नावट इचलकरंजी
४४ ,, हंसराजजी गुलाबचंदजी लुणावत लोणावला
४५ ,, गेंदालालजी मोतीलालजी जैन ट्रस्ट इन्दौर
४६ ,, राजमल नन्दलाल मेहता चै. ट्रस्ट भुसावल
४७ सौ. सुगनबाई चांदमल जैन देवास
४८ श्री कालूलाल पूरालाल जैन आगर

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के लिए

प्रकाशक व मुद्रक पं० बदरीनारायण द्वारकाप्रसाद शुक्ल

मुद्रण व प्रसिद्धिस्थल श्री सुधर्मा मुद्रणालय ८३२ जूना कापड बाजार पाथर्डी, जि० (अहमदनगर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की ज्योति जगाने हेतु विविध निवन्ध–प्रवन्ध माला स्वरूप धार्मिक आध्यात्मिक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक **मासिक पत्रिका।**

सुधर्मा

मूल्य
वार्षिक ६–००
१ अंकका ०–५०
卐
प्रत्येक १५ तारीख को प्रकाशित होगी।

सुष्ठु धर्मः समाख्यातो वीरेण परमार्हता ।
सर्वत्र तत्प्रचाराय सुधर्माख्या सुपत्रिका ॥

वर्ष ५) १५ जुलै १९६४ (अंक १२

सुधर्मा–सुवचन–सुधा

卐

मूल–दुल्लहा उ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा ।
मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छंति सोग्गइं ॥११॥

छाया–दुर्लभस्तु मुधादायी, मुधाजीव्यपि दुर्लभः ।
मुधादायी मुधाजीवी, द्वावपि गच्छतः सुगतिम् ॥११॥

शब्दार्थ—निष्काम बुद्धि से देनेवाला और निष्काम बुद्धि से जीनेवाला–दोनों दुर्लभ हैं। निष्काम बुद्धि से देनेवाला और निष्काम बुद्धि से जीनेवाला–दोनों सद्गति में जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. रत्न श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल कृत भाष्य—

भाष्यः—सूत्रकार यहाँ दाता और दानगृहीता की विशेषता प्रदर्शित करते हुए, दोनों को प्राप्त होने वाले फल का निर्देश करते हैं।

सांसारिक विषय भोगों की कामना से अतीत होकर, शुद्ध बुद्धि से-निष्काम भावना से या अनासक्त चित्त से किया जाने वाला कार्य वास्तविक फल प्रदान करता है। इस प्रकार की भावना में विषयों की अभिलाषा को स्थान नहीं मिलता, और इसी कारण उस कार्य की महत्ता बहुत बढ़ जाती है। निष्काम कर्म की बड़ी महिमा है। जो लोग विषय भोग की प्राप्ति के लिए, इस लोक में धन-वैभव, पुत्र, पौत्र, आदि पाने के लिए अथवा परभव में स्वर्ग के सुख पाने की कामना से प्रेरित होकर दान आदि धर्म कृत्य करते हैं, वे वास्तव में धर्मकृत्य नहीं करते वरन् एक प्रकार का सौदा करते हैं, व्यापार करते हैं और वृथा धर्म का आडम्बर करते हैं। जैसे वणिक् अपने पास से कुछ धन लगा कर, अधिक धन पाने के लिए दुकान करता है। उसका धन लगाना धर्म नहीं है, इसी प्रकार अधिक धन-सम्पत्ति या दिव्य ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए थोड़े से धन त्याग करनेवाला व्यक्ति भी एक प्रकार का व्यापार ही करता है। उसका दान, दुकान में पूंजी लगाने के समान है अतएव वह धर्म नहीं कहला सकता। सच्चे दान का स्वरूप यही है कि—

'स्वस्यातिसर्गो दानम्'

अर्थात् किसी वस्तु पर से अपना ममत्व हटा लेना-उसका त्याग कर देना दान है। जहाँ त्याग की हुई वस्तु के द्वारा अधिक प्राप्त करने की अभिलाषा है वहाँ ममता का त्याग नहीं है, बल्कि ममता की वृद्धि है और इस कारण वह दान सच्चा दान नहीं है।

इसका तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिए कि निष्काम बुद्धि से किये जाने वाले त्याग का फल प्राप्त नहीं होता है। बल्कि इसी प्रकार का त्याग वास्तविक और परिपूर्ण फल प्रदान करता है। केवल फल प्राप्ति की आशा अन्तःकरण में उद्भूत नहीं होनी चाहिए। फल की आशा हृदय में चुभे हुए शल्य की भाँति सदा खटकती रहती है। वह विकलता उत्पन्न करती है। उससे अन्तरंग की समाधि स्वाहा हो जाती है। विशेष प्रकार की तृष्णा से अभिभूत होकर प्राणी शांति से वंचित हो जाता है। इसी लिए सूत्रकार कहते हैं कि संसार में दाता तो बहुत हैं पर निष्काम भावनावाला दाता दुर्लभ है।

संसार में सच्चा दाता ही दुर्लभ नहीं है किन्तु सच्चा आदाता-गृहीता भी दुर्लभ है। कितने ऐसे महापुरुष हैं जो दाता का दान, निष्काम भावनापूर्वक जीवननिर्वाह करने के लिए ग्रहण करते हैं? कठोर साधना करते हुए, नाना प्रकार के उपसर्गों और परीषहों की यातना भोगते हुए भी जिनके हृदय में स्वर्ग के सुखों की अभिलाषा का उदय नहीं होता, जो चक्रवर्ती के महान् और विपुल वैभव का विचार भी नहीं करते, उन धन्य पुरुषों की संख्या संसार में अधिक नहीं हो सकती। इसी कारण सूत्रकार ने कहा है कि मुधाजीवी भी दुर्लभ है।

जो संसारिक भोगोपभोगों की कामना से रहित होता है, जो दाता के सामने दीनता प्रकट नहीं करता, दीनता का भाव जिसके हृदय में उत्पन्न नहीं होता, जो बदले में दाता की कोई सेवा-चाकरी नहीं करता, शुद्ध धर्म-भावना से प्रेरित होकर जो जीवन-निर्वाह करता है, वह मुधाजीवी पुरुष कहलाता है। वास्तव में मुधाजीवी और मुधादाता- दोनों ही संसार की शोभा हैं। दोनों ही सद्गति प्राप्त करते हैं। * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय—

बदरीनारायण शुक्ल

कर्त्तव्य परायणता

बुद्धि-विकास के साथ मानव अपने कर्त्तव्य की पहचान और निर्धारण करने की दिशा में प्रगति करता जाता है। जिस माता-पिता ने उसे जन्म दिया है, जिस भूमि में पलकर वह कुछ कर सकने के लिए सक्षम बना है और जिस समाज का वह एक सदस्य है उन सब के प्रति उसका आवश्यक कर्त्तव्य होता है जिसे वह पहले पहचान और यथार्थ निर्धारण करके सही रूपसे अमल में लावे तो उसे सब लोग ईमानदार कहेंगे और उसके परिणामस्वरूप उसे अपने साथ लेकर चलेंगे तथा अपना पूरा-पूरा सहयोग देने को तैयार रहेंगे। इसलिये अपनी ईमानदारी को बनाये रखने की दृष्टि से जैसे अपने कर्त्तव्य को पहचानने और उसका तत्परता से पालन करना आवश्यक है वैसे ही समाज का साथ और सहानुभूति प्राप्त करने के लिये भी वह निहायत जरूरी है। समाज के जितने कामकाज होते हैं उन सब में भाग लेना उसका फर्ज होता है, चाहे वे व्यावहारिक हों या धार्मिक-पारमार्थिक। क्योंकि व्यक्तियों के समूह या समुदाय के सिवा समाज और कोई चीज नहीं है। व्यक्ति-व्यक्ति के किये हुए कार्य ही समाज के कार्य कहलाते हैं।

जिस देश और समाजमें अपने कर्त्तव्यका यथार्थरूपसे पालन करनेवाले व्यक्ति अधिकृतम परिमाण में होते हैं, उस देश और समाजकी स्थिति उतनी ही अधिक सुधरी हुई मानी जाती है और उसके आदर्श की छाप दूसरों पर भी पड़ती है।

व्यक्ति का आदर्श उतना ही महान् माना जाता है जितना उसका हृदय महान् होता है, दृष्टिकोण में विशालता होती है तथा उसके मन्तव्य और सिद्धान्त व्यापक होते हैं। भारत की कई विभूतियाँ विश्वविख्यात और विश्ववंद्य हुई, उसका कारण क्या था? दृष्टिकोण की विशुद्धि, हृदय की असंकीर्णता और मानवता की सच्ची आराधनारूप स्वकर्त्तव्य-परायणता।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि यदि किसी बड़े सामाजिक कार्य में या देशसेवा के महत्तम प्रसंगपर अनेक व्यक्ति मिलकर सहभागिता के रूपमें तत्पर हुए हों तो सफलता की स्थितिमें उनमें से किसी का नाम आगे-पीछे हो जाने या कोई नाम कहींपर छूट जाने पर एक-दूसरे के प्रति सद्भावना में किंचित्मात्र भी अन्तर लाना संकीर्ण वृत्ति का ही द्योतक होगा, या यों कहा जाय कि स्वकृतसमाजसेवा या देशसेवाका मोवदला न पानेकी प्रतिक्रिया व्यक्त करने जैसा होगा। वस्तुतः ऐसे सामुदायिक कार्यको सफल बनानेका समाधान अपने अन्तःकरणमें मानना चाहिए और शुभकृत्योंके शुभ परिणाम कर्मसिद्धान्तके अनुसार उपलब्ध होने ही वाले हैं एसा विश्वास रखना चाहिए। इसी प्रकार व्यावहारिक दृष्टचा यदि कोई अपने पास प्रशंसाके उद्‌गार निकाले या सर्वश्रेयोभागी आप ही हैं, एसा कहे तो उसे अपने दूसरे साथियोंको श्रेयस्कर बताना चाहिए, हम तो उनके साथी रहे हैं, इस प्रकार परप्रशंसाके प्रेरक और समर्थक बनने से अपनी आदर्श कर्त्तव्यपरायणता ही सिद्ध होगी।

शास्त्रकारने "मुहादाया" निःस्पृह भावनासे दान देने वालेका जो गाथामें उल्लेख किया है और "दोवि गच्छंति सुग्गइं" रूपसे जो फलश्रुतिका उपदेश दिया है, वह ऐसे कर्त्तव्यपरायण उत्तम पुरुषोंको लक्षमें लेकर ही है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

“क्रिया”

लेखक—श्री बंशीलाल भगवानदास कोठारी (अ. नगर)

पर्यायका परिवर्तन होना यह क्रिया है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय समय-समय पर बदलती ही रहती है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय ही उसकी क्रिया है। प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय अपनेमें ही होती है, एक द्रव्यकी पर्याय दूसरे द्रव्यमें नहीं होती इसलिये एक द्रव्य की क्रिया भी दूसरे द्रव्यमें नहीं होती।

इस संसारमें जड और चेतन दो प्रकारके द्रव्य हैं। द्रव्य की पर्याय ही क्रिया है, असलिये क्रिया भी जड और चेतन दो प्रकार की है। जड द्रव्यकी क्रिया है, और चेतन द्रव्यकी अवस्था चेतन की क्रिया है। जीवकी क्रिया दो प्रकारकी है-रागादि भावरूप विकारी क्रिया और रागादि भाव रहित सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान-चारित्र रूप अविकारी क्रिया। विकारी बंधका कारण है, इसलिये उसे बन्ध क्रिया भी कहते है, और अविकारी क्रिया मोक्षका कारण है असलिये उसे मोक्ष की क्रिया कहते हैं। इस भाँति कुल तीन प्रकार की क्रियाएँ हुई (१) जड की क्रिया (२) जीवकी विकारी क्रिया (३) जीवकी अविकारी क्रिया।

जड की क्रिया—शरीर जड है, इसलिये उसकी प्रत्येक क्रिया जड की क्रिया है। शरीर का हिलना-डुलना यास्थिर रहना जड की क्रिया है, उसका कर्त्ता जड परमाणु है, आत्मा उसका कर्त्ता नहीं है, जड की क्रिया के साथ बन्ध अथवा मोक्ष का संबंध नहीं है। शरीर की किसी भी क्रियासे आत्मा को बन्ध या मोक्ष, लाभ या हानि, अथवा सुख-दुःख नहीं होता। शरीर की भाँति ही रूपया, पैसा, वस्त्र, आहारादि का संयोग वियोग भी जड की क्रिया है।

विकारी क्रिया—जीव की पर्यायमें जो रागद्वेष-अज्ञानरूप भाव होते हैं वह जीव की विकारी क्रिया है, इस क्रिया को बंध की क्रिया कहते हैं। रागद्वेष—अज्ञानरूप भाव आत्मा की पर्यायमें होते हैं इसलिए आत्मा की पर्यायमें ही वह विकारी क्रिया करने की योग्यता है। उस क्रिया के द्वारा संसार मिलता है, मोक्ष दूर होता है। इस क्रियासे धर्म नहीं होता।

अविकारी क्रिया—अविकारी क्रिया का अर्थ है धर्म की क्रिया अथवा मुक्ति की क्रिया। मुक्ति की क्रियामें पर के साथ कोई संबंध नहीं है, और पर की ओरसे झुकाव से जो भाव होता है, अुसके साथ भी संबंध नहीं है। मुक्ति की क्रियामें परपदार्थ या विकार पर दृष्टि नहीं होती, किन्तु परसे और विकारसे भिन्न अपने संयोगी, अविकारी, त्रिकाल स्वभावपर दृष्टि होती है। विकारी क्रिया भी आत्मा की वर्त्तमान दशा है, और अविकारी क्रिया भी आत्मा की वर्त्तमान दशा है। आत्मा की जो वर्त्तमान दशा स्वभाव के साथ का एकत्त्व छोडकर परलक्षमें और पुण्य पाप में अटक जाती है, वही विकारी क्रिया है, ससार है, मोक्ष की घातक है, सुख को दूर करनेवाली और दुःख को देनेवाली है। तथा आत्मा की जो वर्त्तमान दशा परलक्ष से हटकर स्वलक्ष में अपने त्रैकालिक स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता में टिकी हुई है, वह अविकारी क्रिया है, धर्म है, मोक्ष की उत्पादक है, संसार की घातक है, सुख देनेवाली है।

विकारी क्रिया या अविकारी क्रिया दोनों एक समय मात्र की जीव की अवस्था हैं, किन्तु उन दोनों के लक्षमें अन्तर है। अविकारी क्रिया का लक्ष त्रिकाली शुद्ध स्वस्वभाव है और विकारी क्रिया का लक्ष पर द्रव्य तथा पुण्य-पाप है। जड का कार्य करने की बात, दो में से एक भी जड की क्रियामें नहीं है। क्रिया इन दोनोंसे अलग-स्वतंत्र है, उससे न तो बन्ध होता है, और न मुक्ति।

जड की क्रिया से और विकारी क्रियासे मोक्ष नहीं होता। जड की क्रियाका बाह्य संयोग होने पर भी और पर्यायमें क्षणिक रागद्वेष होंने पर भी मैं इस जड से भिन्न हूं, और मेरे शुद्ध ज्ञानभाव में रागद्वेष नहीं है, ऐसा भेदज्ञान होतो प्रारम्भ की धर्म क्रिया है पश्चात् शुद्ध ज्ञाताभाव में स्थिरता करनेपर रागद्वेष दूर होते जाते हैं। इस प्रकार धर्म की क्रिया के बढ़ने से विकार की क्रिया का नाश होता है। * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्म-निर्माण

लेखिका—सौ. चन्द्रकान्ता

आत्मा में अनंत शक्ति है, अनंत बल है। इस शक्ति के द्वारा मनुष्य जो भी कुछ चाहे वही कर सकता है। और वही होगा जो कुछ वह चाहेगा। आज तक सदा से ऐसा ही होता आया है। क्यों कि यह अनंतज्ञानियों के द्वारा बताया गया सत्य है कि आत्मा स्वयं कर्ता है और स्वयं ही भोक्ता है। ये दुःख-सुख उसके ही कर्म के फल हैं। वही अपना मित्र है और वही अपना शत्रु है। अपने हित तथा अहित का उत्तरदायित्व स्वयं आत्मा पर ही होता है। इस विश्वास से हमें एक विशेष प्रकाश मिलता है। हमें अपना जीवन अपनी आत्मा की आँखों से स्पष्ट दीखने लगता है। अपने से भिन्न किसी शक्ति को कर्ता मानने से मनुष्य निष्क्रिय हो जाता है। क्यों कि करने वाला तो कोई और है ही फिर उसे कुछ करने की क्या आवश्यकता है? वह स्वतंत्र न होकर उस भिन्न कर्ता की कठपुतली बन जाता है। भिन्न कर्तृत्व के विश्वास के कारण ही मनुष्य अपने दोषों को दूसरों के सिर लगाता है। ऐसा करके वह स्वयं को बचाना चाहता है। किंतु यह उसकी भ्रांति है, भूल है। प्रत्येक अपराध अपनी ही भूल का परिणाम होता है। उसका सुधार अपने द्वारा ही संभव है। रोग किसी भी कारण से उत्पन्न हुआ हो औषधि तो रोगी को ही खानी पड़ेगी। तभी रोग मिटेगा। सब के दाता राम का विश्वास तो मनुष्य को आलसी ही बनायेगा। हमें तो सदा संत तुलसी दासजी का यही विश्वास लेकर चलना है। कि:—

काहु न कोउ दुःख सुख करि दाता।
निज कृत करम भोग फल भ्राता॥

आत्मा स्वभावसे ही ऊर्द्ध्वगामी है। अपने ही कर्मों के आकर्षण उसे नीचे की ओर खींचते हैं। वह यदि अपनी वास्तविकता से काम ले तो इस अपनी दिशा को बदल सकता है। किंतु आज ऐसा हो नहीं रहा है। हमारे आत्मा को जो कुछ करना चाहिए वह कर नहीं पाता है। क्या उसकी शक्ति समाप्त हो गयी है?। वास्तव में ऐसा नहीं है। इसे आप इस प्रकार समझ सकते हैं। एक केसरी सिंह है, जिसकी गर्जनामात्र से सारा जंगल हिल उठता है। सैकड़ों हाथियों के प्राण सूख जाते हैं। वही सिंह किसी के धोखे में आकर पिंजरे में बंद हो गया। अब क्या उसकी शक्ति नष्ट हो गयी? शक्ति नष्ट नहीं हुई बल्कि बन्धन में आ गई। बंधन टूटने पर सिंह फिर पहले की तरह ही अपना पराक्रम दिखा सकता है। इसी प्रकार हमारा आत्मा भी कर्मों के बन्धन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया हुआ है। ये कर्म उसके स्वयं के किये हुए हैं। अत: उसे स्वयं ही इनका फल भोगना पड़ रहा है। जो विष खाता है वही तो मरता है। विष कोई खाये, और मरे कोई और, ऐसा कभी नहीं हुआ। जब अपने विगाड की बात आत्मा से हुई है तो सुधार की बात भी वही करेगा। यह तभी संभव हो सकता है जब मनुष्य स्वयं की आत्म-शक्ति पर विश्वास करे और दूसरों के सुधार से पहले अपने सुधार की ओर ध्यान दे।

अपना सुधार करना ही सच्चा आत्म-निर्माण है। इसी के द्वारा कुटुंब, समाज, देश तथा समूचे संसार का निर्माण हो सकेगा। इसी लिए भारतीय दर्शन में आत्म–निर्माण, आत्म-सुधार आदि पर विशेष जोर दिया गया है। व्यक्ति का निर्माण सर्वप्रथम आवश्यक है। इसके बिना सब निर्माण व्यर्थ हैं। इकाई ठीक होने पर गिनती में प्रत्येक बिन्दु का दस गुना मूल्य हो जाता है। इकाई के बिना सब बिन्दुएँ व्यर्थ हैं। उनका कोई महत्त्व नहीं रहता। व्यक्ति स्वयं अपने परिवार समाज तथा राष्ट्र की इकाई है। उसके सुधार में सारे राष्ट्र का सुधार है। उसके निर्माण में सारे राष्ट्र का निर्माण है। यह अपने सुधार का प्रण ही हमें सुखी बना सकता है। इसी का नाम निश्चय नैतिकता है। जब हम अपने द्वारा दूसरों के सुधार की अपेक्षा रखते हैं. दूसरों के हित को सामने रखकर अपना प्रत्येक व्यवहार करते हैं, मन वाणी और काया के सुन्दर प्रयोगों द्वारा सब को अपनी ओर आर्कषित करने का सफल प्रयत्न करते हैं।

इस प्रकार अपने सुख के साथ-साथ दूसरों के सुख का उपाय करना, पर उपकार की भावना को प्रोत्साहन देना अपने आचरण को सभ्य व्यक्तियों के अनुकूल बनाना व्यवहार नैतिकता कहलाती है। निश्चय और व्यवहार यही नैतिकता के दो मुख्य रूप हैं। इसमें निश्चय आत्मा है और व्यवहार उसका शरीर। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर का कोई मूल्य नहीं रहता। ठीक उसी प्रकार निश्चय नैतिकता के बिना व्यवहार नैतिकता का कोई लाभ नहीं। व्यवहार नैतिकता में स्वयं को सवांरने की भावना रहती है और निश्चय नैतिकता में स्वयं को सुधारने की भावना रहती है। यह आत्म–सुधार ही वास्तविक आत्म–निर्माण है। स्वयं सुधरने के बाद ही दूसरों के सुधार की योजना सफल हो सकती है। तीर्थङ्कर भगवान् भी सर्वप्रथम अपना आत्म-निर्माण करते हैं। जब उन्हें स्वयं को केवल ज्ञान प्राप्त हो जाता है तभी दूसरों को उपदेश देते हैं। अपने सुधार की अथवा आत्म-निर्माण की इसी परम्परा को यदि हम निभायें तो देश में आज भी हम में से ही अनेक महावीर गौतम और गांधी तैयार हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा में धर्मनिरपेक्षता या धर्मविमुखता ?

लेखक–प्राध्यापक श्री. जे. पी. पाण्डेय एम्. एस्.-सी, बी. एड. एल. एल्. बी, (विशारद)

[प्रस्तुत लेख समयोचित है, परन्तु इसकी प्रत्येक पंक्ति से सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। —सम्पादक]

'धर्म' और धार्मिक'—ये पुनीत शब्द मानो आज शिक्षालयके शब्दकोश से लुप्त ही हो गये और यदि इन्हें कोई शब्दकोशसे लुप्त हुए न माने तो उसे कम-से-कम इस बातपर अवश्य विश्वास करना होगा कि ये शब्द जहाँ 'कल' शिक्षाव्यवस्थाके इर्द-गिर्द ताने-बाने की तरह लिपटे-चिपटे हुए थे, वहाँ 'आज' उस व्यवस्था में इनका मानो कोई मूल्य ही नहीं रहा। आज की शिक्षा-व्यवस्था तथा शिक्षालयों में व्याप्त वातावरणको देखकर कुछ ऐसा महसूस होने लगा है, जैसे शिक्षासे इनका कोई सरोकार नहीं—मानों शिक्षा एकदम इनसे बाहरकी कोई वस्तु है। भारतका अतीत जो स्वर्णाक्षरों में देदीप्यमान है और जहाँ समय-समयपर कई महान् आत्माओंने जन्म लेकर सम्पूर्ण मानवजीवनको—गर्भाधानसे लगाकर अन्त्येष्टि-तक धर्म और धार्मिक सुकृत्योंसे अत्यन्त जकड़कर कस दिया था, वहाँ आज अधार्मिक प्रवृत्तियों और झूठे दम्भों तथा मिथ्या आचरणोंसे वही मानवजीवन इतना जीर्ण-शीर्ण और जर्जरित हो उठा है कि आज उसकी भीतरी आत्मा नैतिक पतनसे दबी, कराहती हुई उस आस्था और आशा से भरे अतीत के जीवन को पुनः प्राप्त करने के लिये अंदर-ही-अंदर तड़प रही है। अग्निका धर्म जलना है, प्रज्वलित होना है। यदि वह अपने धर्मसे विघटित हो जाय तो फिर उसे अग्नि कौन कहेगा ? मानवजीवन और पशुजीवनमें यदि कोई अन्तर है तो वह धर्माचरणका है; पशु वास्तवमें इसीसे इतना निकृष्ट प्राणी होता है कि उसको 'धर्म' सम्बन्धी कोई ज्ञान नहीं होता।

यह हमारा बड़ा सौभाग्य है कि यह पुण्य-पवित्र भारतीय भूमि जहाँ सस्य-श्यामला एवं उर्वरा रही है, वहाँ यह विविध धर्म तथा मतमतान्तरकी जन्म-भूमि भी रही है। उस पुरातन आर्यकालमें हिंदू-धर्म * यहाँ प्रस्फुटित तथा पल्लवित हुआ; उस समयके समाजशास्त्रियोंने समाजको चार वर्णाश्रमोंमें विभाजित कर प्रत्येक वर्ण-विशेषके कर्तव्योंको परिभाषित किया। उस अगोचर, अनन्त, निराकार, सर्वकालीन और सर्वशक्तिमान् परमात्माके स्वरूप को उपलब्ध-कर अन्त में उसीमें समा जाने के विधि-प्रदत्त अगम्य ईश्वरीय विधानको स्पष्ट किया। बड़े-बड़े ख्याति-प्राप्त ऋषि-मुनियों तथा तपस्वियोंने अपने जप-तप-द्वारा इस भौतिक देह को महान् कष्ट देकर जन-साधारण के सम्मुख मानवजीवन के मूल्यों एवं उसके महत्त्वको बड़े-बड़े ग्रन्थ रचकर शब्दबद्ध किया।

फिर जमाना बदला, मनुष्य धर्मच्युत होने लगे। उनकी दानवीय वृत्ति उभर आयी तब जैनधर्म और बुद्धधर्म—इन नये नामोंके साथ, नये विचारों और नये विश्लेषणों में समेटा-लिपटा वही सनातनधर्म नये ही प्रकारसे परिभाषित होकर प्रस्फुटित हुआ, जिसकी लहर भारत तक ही सीमित नहीं रही, पर दूर—दूर लंका, जापान, चीन और मध्य एशियातक पहुँची।

* पहले कौन धर्म यहाँ प्रस्फुटित हुवा, यह विवाद का विषय है। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे दिन कितने अच्छे, सुवासित एवं सुन्दर रहे होंगे, जब बौद्धधर्म को राजकीय धर्म घोषित कर 'राज्य' जैसी धर्मनिरपेक्ष संस्थाने भी इसके प्रसार और प्रचारमें कोई कसर उठा न रक्खी थी–राज्यका प्रत्येक कार्य धर्मकी खरी कसौटीपर कसा जाता था। यद्यपि शिक्षाव्यवस्था उस समय इतनी मजबूत एवं दृढ़ न थी, फिर भी धार्मिक ग्रन्थोंका पढ़ना और उनपर मनन कर आचरण करना तथा धर्म के मूल तत्त्वोंको जनसाधारणतक पहुँचाना प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्तिका कर्तव्य समझा जाता था।

देश ने फिर करवट ली–अत्यधिक धार्मिक श्रद्धा तथा शिक्षा–प्रसारकी समुचित व्यवस्थाके अभावसे अधार्मिक प्रवृत्तियाँ जहाँ-तहाँ उभड़कर समाज के सामने आने लगीं। परिणामस्वरूप भारतीय समाजमें फूट और आपसी वैमनस्य तथा कटुता बढ़ने लगी। फिर मध्यकालीन युग में मुसलमानों का आगमन हुआ, वे भी अपने साथ अपना मुस्लिमधर्म लेकर आये। यहाँ मुस्लिम शासकों के द्वारा वही मुस्लिम मजहब राजकीय धर्म बना। वैसे अन्य प्राचीन धर्म और धर्म-संस्थापक पूर्णरूप से भारतीय तो थे ही; पर उनके द्वारा संस्थापित नये नामों से सम्बोधित ये नये धर्म लगते थे नये-नये, पर थे वास्तव में उसी पुरातन हिंदूधर्म के रूपान्तर ही–इसीलिए ये धर्म यहाँ पर वहाँ की हिंदू–संस्कृति में घुल–मिल गये; पर यह मुस्लिम धर्म, जिसकी संस्कृति ही अलग थी, यहाँकी परिस्थितिओं तथा धार्मिक भावनाओं में न जम सका। इसी कारण लाख प्रयत्न करने पर भी इसके मानने वालों की जमात अलग ही रही।

फिर धीरे-धीरे क्रिश्चियन धर्मका आगमन हुआ। विदेशी शासकोंका यह धर्म उतना कट्टर और कठोर न था। इसमें उदारताके साथ अन्य लोगोंको तुरंत ही क्रिश्चियन बना देनेका विधान और छूट होने से हिंदू–धर्मकी कठोरता और अत्यधिक स्वच्छताके कारण कई क्षुब्ध हिंदूलोग क्रिश्चियन बनने लगे–और फिर उनको ऊपरसे कई राजकीय प्रलोभन भी मिल जाते थे।

अस्तु, कुछ भी हो, आर्यकालसे लगाकर आजतक भारतीय जनता सामूहिकरूपसे किसी-न-किसी धर्ममें बँधी अवश्य अनुभव करती रही–भले ही भारतीय समाज इन कई धर्मों तथा धार्मिक गुटोंमें अलग–अलग विभाजित क्यों न हो गया था। पर फिर भी उनकी शालाएँ अपने–अपने गुट के अनुसार धार्मिक शिक्षाकी व्यवस्था करती थीं। हिंदुओंके बच्चे पाठशालाओंमें, मुसलमानोंके मकतबोंमें तथा ईसाइओं के मिले-जुले स्कूलोंमें जहाँ एक ओर पढ़ना-लिखना सीखते थे, वहाँ दूसरी ओर धार्मिक ग्रन्थों का पठन-पाठन भी आवश्यक समझा जाता था। उन बालकोंसे न केवल यही अपेक्षित था कि वे अपने धर्म-ग्रन्थों की सूक्तियों को कण्ठस्थ करें, वरन् उनसे यह भी पूर्ण आशा की जाती थी कि उन सूक्तियों का वे अपने दैनिक जीवनमें कितना परिपालन करते हैं? उनके जीवनकी शुद्धता, पवित्रता तथा नैतिकता उनके हर चारित्रिक व्यवहारमें–उनके हर आचरणमें झलकती थी। अनुशासन-सम्बन्धी कोई समस्या ही नहीं थी–समाजमें पूर्ण व्यवस्था थी। लोग अपने-अपने धर्मको जानते थे तथा स्वेच्छा से उसका पालन करते थे। उनके जीवनमें सात्त्विकता थी, मिठास थी, एक दूसरेके दुःख-दर्दको वे जानते थे एवं उसका निराकरण करना सभी अपना कर्तव्य समझते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थियोंको भी उस 'सत्ता' में विश्वास था। 'गोविन्द' के प्रति सच्ची लगन होती थी। अपने गुरुओंमें श्रद्धा और विश्वास था—उनका सम्मान और आदर करना वे अपना पवित्र कर्तव्य समझते थे; यही नहीं, वे गुरुओंको गोविन्दसे भी बढ़कर मानते थे। उनकी हर बातपर विश्वास प्रकट करते थे। यद्यपि शालाएँ प्रायः गुरुओंके घरों तक ही सीमित थीं, तब भी वे अपना मानसिक तथा शारीरिक विकास पूरी तौरपर कर सकते थे। शिष्टता और सभ्यता उनमें कूट-कूटकर भरी होती थी। समाज में कहीं भी उच्छृङ्खलताके तत्त्व वर्तमान न थे। लोगोंमें भगवान्का भय बना रहता था। पाप और पुण्यको वे समझते थे—शरीरको नश्वर मानकर आत्माके अमरत्वमें पूरी आस्था रखकर मृत्यु के बाद स्वर्ग में जा बसने की तीव्र भावना उन लोगों में विद्यमान थी। शालाएँ तथा शालीय पाठचक्रम और पाठचपुस्तकें सभी धार्मिक तथ्यों पर आधारित थे—यही नहीं, राम-कृष्ण, सीता-सावित्री, सत्यवान-सिद्धार्थ आदि अनेक नरश्रेष्ठोंके आदर्श जीवन को उदाहरणार्थ पाठचपुस्तकोंमें प्रदर्शित किया जाता था। विद्यार्थी उन जीवन-कहानियोंसे न केवल प्रेरणा ही पाते थे, पर दूने जोश एवं उत्साहसे सुन्दर जीवन जीनेको सदा उत्साहित भी रहते थे। धर्म उनके मानव-जीवनके प्रत्येक छोटेसे-छोटे व्यापारमें प्रवेश पाता था। घर-पर बालकके जन्म लेनेके अवसरसे लगाकर उसके जीवनपर्यन्त कई धार्मिक संस्कारों से समय-समयपर उसको सुसंस्कृत किया जाता था। बाहर मन्दिरों तथा सत्कथाओंके बखानोंसे ओतप्रोत धार्मिक वातावरणका तीव्र प्रभाव उन सुकोमल बालकोंके मस्तिष्कोंमें अङ्कित हो जाता था—परिणामतः बालक मानवीय गुणों को अपने जीवन में पनपते—प्रस्फुटित होते देखते थे। शिक्षा भी वास्तविक ज्ञानका स्वरूप लेकर अन्त में धार्मिक प्रवृत्तियों को और उभाड़ने में बहुत सहायक होती थी। धर्मविमुखता एक अपराध समझा जाता था और समाज ऐसे व्यक्तिको दण्ड देता था जो समाज में प्रचलित और सम्मानित धार्मिक भावनाओंको कारण-अकारण ही ठेस पहुँचाता था या उन भावनाओंके विपरीत आचरण करता था। विवाह भी मनुष्यका एक पवित्र धार्मिक संस्कार था। इसके भी अनेकों विधान निश्चित किये गये। कई नियम बनाकर इसको भी बड़ा कठोर कर दिया गया, जिससे यह सम्भव न हो कि मनुष्य अपनी पाशविक वासनाओंके वशीभूत होकर उस पवित्र बन्धनको भी विच्छिन्न करने को बात-बात पर तैयार हो जाय। इससे समाजमें सुव्यवस्था थी, स्थिरता थी—एक सुन्दर संगठन था। मानसिक उलझनें न थीं। स्त्री-पुरुष में प्रेम स्वाभाविक रीति से बढ़ता था, जिसको धर्मके नामपर निभाना और अन्त तक निभाना एक दूसरे का पवित्र कर्तव्य समझा जाता था। वह स्त्री हजारगुनी सौभाग्यती और पुण्यात्मा एवं पतिव्रता समझी जातीं थीं, जो अपने जीवनके तीन आश्रम पूरे कर अपने पतिसे पहले स्वर्ग सिधार जाती थी। नैतिकता एवं सदाचार और धर्म-संहितापर आधारित यह समाजव्यवस्था, जो एक मिली-जुली परिवार-प्रणालीको प्रश्रय देती थी, कितनी अच्छी तथा सुदृढ़ थी कि जिसकी आज कल्पना ही की जा सकती है।

आज-आज इस बीसवी सदी में स्थिति बहुत ही विपरीत दृष्टिगोचर हो रही है। आज कुछ अजी-बसे जीवनमूल्य निर्धारित हो रहे हैं और दिनोंदिन इसी भारतीय भूतलपर उच्छृङ्खलता, छल-कपट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा धर्मविमुखताको उत्साह पूर्वक प्रश्रय मिल रहा है। चरित्रपतन की भी कोई सीमा होती है, पर आज उसकी भी कोई सीमा नहीं रह गयी है। क्या बडे और क्या छोटे, कुछ अजीब-सा तथा अटपटा-सा निरा पशुवत् व्यवहार करते भी न तो उस सर्वद्रष्टा से डरते हुए मालूम पड़ते हैं और न अपने आप से ही। हाँ, माना—आज भारत आजाद है। उसमें विशुद्ध गणतन्त्र का प्रयोग सफल हुआ जा रहा है, पर जहाँ राज्य ने अपने-आपको धर्म निरपेक्ष घोषित किया, वहाँ लगा जनता ने अपने-आपको धर्मविमुख हो जानेका बिगुल बजा दिया। जहाँ राज्यने कई राजनीतिक परिस्थितियोंके कारण शिक्षाको धर्मसे अछूती बना रखनेका निर्णय लिया, वहाँ जनताने समझा-धर्म-कर्मकी अब कोई जरूरत ही नहीं; उनकी पशु-प्रवृत्तिको उभड़ने-उभाड़ने का अवसर मिला। इधर राज्यने पाठ्यपुस्तकोंसे रामकृष्णके सच्चरित्र, सीता-सावित्रीका आदर्श जीवन-यापन तथा धार्मिक सूत्रों को निकाल बाहर किया तो उधर समाजने इन्हें अपने पारिवारिक जीवनसे भी पूर्णरूपसे बहिष्कृत करने की ठान ली। विज्ञानप्रदत्त नये-नये गतिसे चलनेवाले यातायातके साधनोंका जाल बिछा तो उनके साथ पश्चिम की भौतिक चमचमाहट तथा भौतिक ऐश्वर्यों और भोग-विलासोंकी अतृप्त वासनाएँ भी आयीं जो सुरा-सुन्दरियोंमें जीवनका अन्तिम ध्येय समझकर उनमें ही अपने आपको खो देनेको प्रवृत्त करने लगीं—यही नहीं, चित्रपटपर नाचने-गानेवाली और अपने अंगों-अवयवोंका प्रदर्शन करनेवाली ये आज की नर्तकियाँ पाशविक प्रवृत्तिको उभाड़नेमें अत्यधिक सहायक हुईं। आजकी कलयुगी सरकार जिसने केवल धन दौलतपर, बडे बडे राजकीय अधिकारी अपने मानव-जीवनको न्यौछावर करते हुए-से लगे-इनसे भरपेट अपनी आमदनी बढ़ाने में इतनी मदान्ध हो चली कि उसे आज यह भी ध्यान नहीं आता कि ये चित्रपट-कंपनियाँ कैसी-कैसी विचित्र भारतीयतासे परे, उछृंखलताओंसे भरी और पाशविकताको पोषित करनेवाली कहानियाँ नित नयी-नयी नये-नये कामपरक नामोंसे निकाल रही हैं? इन कुछ कहानियों के नाम तो इतने भद्दे और अश्लीलतर होते हैं कि पुत्र अपने पितासे, पुत्रियाँ अपनी माँ एवं भाइयोंसे खुलकर कह ही नहीं सकतीं और जहाँ ऐसे नामोंसे चित्र गढे जा रहे हैं, जिनमें नये-नये युवक एवं युवतियाँ जाते ही हैं तो फिर उनमें जाने-अनजाने उछृंखलता तथा अश्लीलताके पनप जानेमें आश्चर्य ही क्या है? शालाओंमें अंग्रेजी प्रेम-कहानियाँ पढ़ना तथा उनके चरित्रोंपर टिप्पणियाँ लिखना और चित्रपटों में वैसे ही उछृंखल, धर्म-कर्मसे दूर अधार्मिक चित्र देखना-यदि इनसे आजकी पौधमें उछृंखलता और अधार्मिकता न पनपेगी तो क्या होकर रहेगा? आज राष्ट्र के सामने नैतिक पतनका प्रश्न बडा जटिल और उलझा-उलझा-सा मुँह फाड़े खडा है। बडा आश्चर्य है, रेलके डिब्बेमें एक सुसभ्य पढे लिखे और अच्छे परिधानों में सजे-सजाये युवकके साथ एक भले घरकी बहन-बेटी अपने-आपको सुरक्षित नहीं समझती, जितना वह गाँव के अनपढ़ किसी व्यक्ति के साथ सुरक्षित समझ सकती है। क्यों? शिक्षासे युवक इतने गिर जाते हैं? इतना उनका नैतिक पतन हो जाता है, वे इतने चरित्रहीन हो जाते हैं। यदि हाँ, तो उस शिक्षा को धिक्कार! उस शिक्षालय को धिक्कार! उस समाजको धिक्कार जो अपने-आपको सभ्य एवं पढ़ा-लिखा घोषित करता है!

आज शिक्षालयों और शिक्षकों में जितनी चरित्र-भ्रष्टता देखी जाती है, उतनी और कहीं नहीं। स्त्री पुरुषों में केवल स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध मान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वालों में कॉलेजी पढे-लिखे लोग यह भूल जाते हैं कि स्त्री जहाँ एक ओर किसी की बहिन है तो किसी की माँ भी। यदि ऐसा ही एक-सा ही सम्बन्ध इस समाज में प्रतिष्ठापित हो जाय तो निश्चय ही यह समाज मनुष्यों का नहीं, पशुओं का बनकर रह जायगा।

बडी कठिनाई है–दर्द तो पेट में है और आँखों का इलाज किया जा रहा है। कुव्यवस्था तो शिक्षा में आ गई है, जहाँ न केवल पाठ्यपुस्तकें ही दोषी हैं, पर वह सम्पूर्ण विधान–वह सम्पूण व्यवस्था ही दूषित है, जिसके कारण यह रोग दिन-दूना रात–चौगुना बढता ही जा रहा है। मनुष्य जीवन और धर्म–मानों अब दो अलग-अलग वस्तु हो गई हैं। शिक्षा को भी धर्म से कोई सरोकार नहीं। सुनते हैं और पढते हैं कि सरकार आज की इस उच्छृङ्खलता तथा अनुशासनहीनता से बहुत ही चिन्तित है। तभी तो कभी वह राष्ट्रस्तर पर अनुशासन की कई नई–नई योजनाएँ प्रारम्भ करती है तो कभी प्रान्तीय सरकारों को आदेश देती है कि एन्. सी. सी. ए. सी. सी. को और सख्त किया जाय। पर मैं सोचता हूँ क्या यह रोग इनसे जाता रहेगा ? एक ओर शिक्षा को धर्मनिरपेक्षता के नाम पर धर्म से अलग रक्खो, दूसरी ओर कामुकता को उभाड़नेवाली अश्लील नामों के चित्र देखने की छूट दो, तीसरी ओर प्रेमपत्र लिखवाने की शालाओं में शिक्षा दो, चौथी ओर नवयुवक और नवयुवतियोंको एक-सी अधार्मिक शिक्षासे शिक्षित करो, पाँचवीं ओर वैसी ही शिक्षा से दीक्षित अध्यापकों के मत्थे उन नवयुवक एवं नवयुवतियों को स्वतन्त्रता से छोड़ दो······तो फिर परिणाम क्या होगा ? चाहे कितनी ही अनुशासन एवं जीवन में व्यवस्था लाने के लिए राष्ट्रीय स्तर की योजनाएँ चला लीजिये और चाहे कितनी ही राज्य सरकारें आदेश निकाल-निकालकर शालाओं को कसती रहें, यह पाशविक और नैतिक दुराचरण का रोग बढ़ता ही जायगा !

जैसा कि इस लेख के प्रारम्भ में बताया गया है कि प्राचीन काल में यद्यपि शिक्षा की इतनी समुचित व्यवस्था न थी, इतने साधन-साज उपलब्ध न थे, तथापि शिक्षा धर्म-प्राण थी। शिक्षा का मूल उद्देश्य उस समय यह समझा जाता था कि मनुष्य शिक्षित होकर इस लोक में शुद्ध आचारवान् बनकर त्याग–वृत्ति धारण करे और अपने परलोक को सुधारे। परलोकको सुधारनेकी जितनी तीव्र इच्छा उस समय के मनुष्यों में थी, उतनी ही आज इस जीवन में जितने भौतिक सुखों की उपलब्धि एवं भोग कर सको, करो-हो गयी है। लोगों के आचरणपर कोई धार्मिक अंकुश नहीं रहा। असत्य भाषण, झूठ-कपट, राग-द्वेषका बर्ताव–एक दूसरेको नीचा दिखानेकी कुत्सित भावना, अंधी होड़, पाप-पुण्यके भेदको न समझना और इन्द्रिय-सुख–सभी मानो इन्हीं में अपने-आपको खोये चले जा रहे हैं; अपने इस अमूल्य मानव-जीवनको माटीके मोलका समझकर पुनः प्राप्त हो, न हो–इस भावनाके वशीभूत होकर जो इस भूभागपर अन्धी दौड़ दिखायी पड़ रही है, वह इस समाजको कहाँ ले जाकर रख देगी ? 'जैसा राजा, वैसी प्रजा' के स्थानपर अब 'जैसे नेता, वैसी जनता' ढलती जा रही है। यदि नेताओंमें 'नैतिकता' होती, धर्म के प्रति कुछ आस्था होती, उनके जीवन में सुरा-सुन्दरियोंका प्रवेश निषिद्ध होता, भौतिक ऐश्वर्यों में उनकी आँखें उलझी-उलझी न रहतीं। कुर्सी प्राप्त करने की उलटी-सीधी, झूठ-कपटकी बात कहनेकी सत्रह आने कोशिश न होती-तो कुछ सम्भव था; उनकी जनता उनके भीतर से निकली अन्तरात्माकी पुकारपर कुछ चिन्तन करती, कुछ मनन करती थोडी सोचती कि उनके बालक–बालिकाओंकी शिक्षा-व्यवस्थामें धार्मिक पुट अवश्य होना चाहिये, जिससे धर्म-निरपेक्षता की ओटमें धर्म-विमुखता न पनप पाती और न ऐसे उच्छृंखल तत्त्व समाजमें दिखाई देते। (अपूर्ण)

(कल्याण से साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष की अर्वाचीन और प्राचीन भाषाएँ और उनका परस्पर सम्बन्ध

स्व. श्री हरगोविन्ददास त्रिकमचंदसेठ का संकलित अभिमत (गताङ्क से आगे)

द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषाओं का इतिहास।

साधारणतः- लोगों की यही धारणा है कि संस्कृत भाषा से ही द्वितीय स्तर की समस्त प्राकृत भाषाएँ और आधुनिक भारतीय भाषाएँ उत्पन्न हुई हैं। कई प्राकृत-वैयाकरणों ने भी अपने प्राकृत-व्याकरणों में इसी मत का समर्थन किया है। परन्तु यह मत कहाँ तक सत्य है, इसका विचार करने के पहले इन भाषाओं के भेदों को जानने की जरूरत है।

प्राकृत का संस्कृत-सापेक्ष विभाग।

प्राकृत वैयाकरणों ने प्राकृत भाषाओं के शब्द, संस्कृत शब्दों के सादृश्य और पार्थक्य के अनुसार, इन तीन भागों में विभक्त किये हैं:- (१) तत्सम, (२) तद्भव और (३) देश्य या देशी।

(१) जो शब्द संस्कृत और प्राकृत में बिल्कुल एक रूप है उनको 'तत्सम' या 'संस्कृतसम' कहते हैं जैसे–अंजलि, आगम, इच्छा, ईहा, उत्तम, ऊढा, एरंड, ओंकार, इत्यादि।

(२) जो शब्द संस्कृत से वर्ण-लोप, वर्णागम अथवा वर्णपरिवर्त्तन के द्वारा उत्पन्न हुए हैं वे 'तद्भव' अथवा 'संस्कृतभव' कहलाते हैं, जैसे–अग्र = अग्ग, आर्य = आरिअ, इष्ट = इट्ठ, ईर्ष्या = ईसा, उद्गम = उग्गम, कृष्ण = कसण इत्यादि।

(३) जिन शब्दों का संस्कृत के साथ कुछ भी सादृश्य नहीं है– कोई भी संबन्ध नहीं है, उनको 'देश्य' या देशी-बोला जाता है; यथा-अगय (दैत्य) आकासिय (पर्याप्त,) इराव, (हस्ती,) ईस (कीलक,) उअचित्त (अपगत) इत्यादि।

प्राकृत भाषाओंका भौगोलिक विभाग

उपर्युक्त विभाग प्राकृत के साथ संस्कृत के सादृश्य, और पार्थक्य के ऊपर निर्भर करता है। इसके सिवा संस्कृत और प्राकृत के प्राचीन ग्रन्थकारों ने प्राकृत भाषाओं का और एक विभाग किया है जो प्राकृत भाषाओं के उत्पत्ति-स्थानों से संबन्ध रखता है। यह भौगोलिक विभाग (Geographical Classification) कहा जा सकता है। भरत-प्रणीत कहे जाते नाट्य शास्त्र में, सात भाषाओं के जो मागधी, अवन्तिजा, प्राच्या, सूरसेनी, अर्धमागधी, वाह्लिका और दाक्षिणात्या ये नाम हैं, चण्ड के प्राकृत-व्याकरण में जो पैशाचिकी और मागधिका ये नाम मिलते हैं दण्डीने काव्यादर्श में जो महाराष्ट्रश्रया, और सेनी, गौडी और लाटी ये नाम दिये हैं, आचार्य हेमचन्द्र आदि ने मागधी, शौरसेनी, पैशाची और चूलिका पैशाचिक कह कर जिन नामों का निर्देश किया है और मार्कण्डेय ने अपने प्राकृत सर्वस्व में प्राकृत चन्द्रिका के कतिपय श्लोकों को उदधृत कर महाराष्ट्री, आवन्ती, शौरसेनी, अर्धमागधी, वाह्लीकी, मागधी प्राच्या और दाक्षिणात्या इन आठ भाषाओं के, छ विभाषाओं में द्राविड़ और ओढ्रज इन दो विभाषाओं के, ग्यारह पिशाच-भाषाओं में कांचीदेशीय, पाण्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांचाल, गौड़, मागध, व्राचड, दाक्षिणात्य, शौरसेन, कैकेय और द्राविण इन दश पिशाच-भाषाओं के और सताईश अपभ्रंशों में व्राचड, लाट, वैदर्भ, बार्बर, आवन्त्य, पांचाल, टाक्क, मालव, कैकय, गौड़, उड़, हैव, पाण्डच, कौन्तल, सिंहल, कालिंग, प्राच्य, कार्णाटक कांच, द्राविड, गौर्जर, अभीर और मध्यदेशीय इन तेईश अपभ्रंशों के जिननामों का उल्लेख किया है वे उस भिन्न-भिन्न देश से ही संबन्ध रखते हैं जहाँ २ वह २ भाषा उत्पन्न हुई है। षड्भाषाचन्द्रिका के कर्त्ताने शूरसेन देश में उत्पन्न भाषा शौरसेनी कही जाती है। मगध देश में उत्पन्न भाषा को मागधी कहते हैं और पिशाच-देशों की भाषा पैशाची और चूलिका पैशाची है, यह लिखते हुए यही बात अधिक स्पष्ट रूप में कही है।

प्राकृत वैयाकरणों के मत से तत्सम आदि शब्दों की प्रकृति।

पूर्व में प्राकृत भाषाओं के शब्दों के जो तीन प्रकार दिखाए हैं उनमें प्रथम प्रकार के तत्सम शब्द संस्कृत से ही सब देशों के प्राकृतों में लिए गये हैं; दूसरे प्रकार के तद्भव शब्द संस्कृत से उत्पन्न होने पर भी काल-क्रम से भिन्न २ देश में भिन्न २ रूप को प्राप्त हुए हैं और तीसरे प्रकार के देश्य शब्द वैदिक अथवा लौकिक संस्कृत से उत्पन्न नहीं हुए हैं, किन्तु भिन्न २ देश में प्रचलित भाषाओं से गृहीत हुए हैं। प्राकृत वैयाकरणों का यही मत है।

देश्य शब्द।

मूल-पहले प्राकृत भाषाओं का जो भौगोलिक विभाग बताया गया है, ये तृतीय प्रकार के देशी शब्द उसी भौगोलिक विभाग से उत्पन्न हुए हैं। वैदिक और लौकिक संस्कृत भाषा पंजाब और मध्य-प्रदेश में प्रचलित वैदिक काल की प्राकृत भाषा से उत्पन्न हुई है। पंजाब और मध्य प्रदेश के बाहर के अन्य प्रदेशों में इस समय आर्य लोगों की जो प्रादेशिक प्राकृत भाषाएँ प्रचलित थीं उन्हीं से ये देशी शब्द गृहीत हुये हैं। यही कारण है कि वैदिक और संस्कृत साहित्य में देशी शब्दों के अनुरूप कोई शब्द (प्रतिशब्द) नहीं पाया जाता है।

प्राचीन काल में भिन्न-भिन्न प्रादेशिक प्राकृत भाषाएँ हयात थीं; इस बात का प्रमाण व्यास के महाभारत, भरत के नाटचशास्त्र और वात्स्यायन के काम सूत्र आदि प्राचीन ग्रन्थों में और जैनों के ज्ञाता-धर्म कथा, विपाकश्रुत, औपपातिकसूत्र तथा राज-प्रश्नीय आदि प्राचीन प्राकृत ग्रन्थों में भी मिलता हैं। इन ग्रन्थों में 'नाना भाषा' 'देश भाषा' या 'देशी भाषा' शब्द का प्रयोग प्रादेशिक प्राकृत के अर्थ में ही किया गया है। चण्ड ने अपने प्राकृत व्याकरण में जहाँ देशी प्रसिद्ध प्राकृत का उल्लेख किया है वहाँ भी देशी शब्द का अर्थ देशी भाषा ही है। ये सब देशी या प्रादेशिक भाषाएँ भिन्न-भिन्न प्रदेशों के निवासी आर्य लोगों की कथ्य भाषाएँ थीं। इन भाषाओं का पंजाब और मध्य प्रदेश की कथ्य भाषा के साथ अनेक अंशों में जैसे सादृश्य था वैसे किसी-किसी अंश में भेद भी था। जिस-जिस अंश में इन भाषाओं का पंजाब और मध्यप्रदेश की प्राकृतिक भाषा के साथ भेद था उसमें से जिन भिन्न भिन्न नामोंने और धातुओं ने प्राकृत-साहित्य में स्थान पाया है वे ही हैं प्राकृत के देशी वा देश्य शब्द।

प्राकृत-वैयाकरणों ने इन समस्त देश्य शब्दों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक नाम और धातुओं को संस्कृत नामों के और धातुओं के स्थान में आदेश-द्वारा सिद्ध करके तद्भव-विभाग में अन्तर्गत किए हैं। यही कारण है कि आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी देशी नाममाला में केवल देशी नामों का ही संग्रह किया है और देशी धातुओं का अपने प्राकृत-व्याकरण में संस्कृत धातुओं के आदेश-रूप में उल्लेख किया है; यद्यपि आचार्य हेमचन्द्र के पूर्ववर्ती कई वैयाकरणों ने इन की गणना देशी धातुओं में ही की है। ये सब नाम और धातु संस्कृत के नाम और धातुओं के आदेश-रूप में निष्पन्न करने पर भी तद्भव नहीं कहे जा सकते, क्योंकि संस्कृत के साथ इनका कुछ भी सादृश्य नहीं है।

कोई-कोई पाश्चात्य भाषा तत्त्वज्ञ का यह मत है कि उक्त देशी शब्द और धातु भिन्न-भिन्न देशों की द्राविड, मुंडा आदि अनार्य भाषाओं से लिए गए हैं। यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि यदि आधुनिक अनार्य भाषाओं में इन देशी-शब्दों और देशी-धातुओं का प्रयोग उपलब्ध हो तो यह अनुमान करना असंगत नहीं है। किन्तु जब तक यह प्रमाणित न हो कि 'ये देशी शब्द और धातु वर्तमान अनार्य भाषाओं में प्रचलित है; तब तक 'ये देशी शब्द और धातु प्रादेशिक आर्य भाषाओं से ही गृहीत हुए हैं' यह कहना ही अधिक संगत प्रतीत होता है। इन अनार्य भाषाओं में दो एक देश्य शब्द और धातु प्रचलित होने पर भी वे अनार्य भाषाओं से ही प्राकृत भाषाओं में लिए गये हैं' यह अनुमान न कर प्राकृत भाषाओं से ही वे देश्य शब्द और धातु अनार्य भाषाओं में गये हैं' यह अनुमान किया जा सकता है। हाँ जहाँ ऐसा अनुमान करना असंभव हो वहाँ हम यह स्वीकार करने के लिए बाध्य होंगे कि 'ये देश्य शब्द और धातु अनार्य भाषाओं से ही प्राकृत में लिए गये हैं'; क्योंकि आर्य और अनार्य ये उभय जातियाँ जब एक स्थान में मिश्रित हो गई हैं तब कोई-कोई अनार्य शब्द और धातु का आर्य भाषाओं में प्रवेश करना असंभव नहीं है।

डो॰ केल्डवेल (Caldwell) प्रभृति के मत में वैदिक और लौकिक संस्कृत में भी अनेक शब्द द्राविडीय भाषाओं से गृहीत हुए हैं। यह बात भी संदिग्ध ही है, क्योंकि द्राविडीय भाषा के जिस साहित्य में ये सब शब्द द्राविडीय भाषा से गृहीत हुए हैं; इस अनुमान की अपेक्षा आर्य लोगों की भाषा से ही अनार्यों की भाषा में ये सब शब्द लिए गए हैं, यह अनुमान ही विशेष ठीक मालूम पड़ता है।

समय—जिन प्रादेशिक देशी-भाषाओं से ये सब देशी शब्द प्राकृत—साहित्य में गृहीत हुए हैं वे पूर्वोक्त प्रथम स्तर की प्राकृत भाषाओं के अन्तर्गत और उनकी सम सामयिक हैं। ख्रिस्त-पूर्व षष्ठ शताब्दी के पहले ये सब देशी भाषाएँ प्रचलित थीं, इससे ये देश्य शब्द अर्वाचीन नहीं किन्तु उतने ही प्राचीन हैं जितने कि वैदिक शब्द।

द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति वैदिक या लौकिक संस्कृत नहीं, किन्तु प्रथम स्तर की प्राकृतों से।

प्राकृत के वैयाकरण-गण प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति में प्रकृति शब्द का अर्थ संस्कृत करते हुए प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति लौकिक संस्कृत से मानते हैं। संस्कृत के कई अलंकार-शास्त्रों के टीकाकारों भी तद्भव और तत्सम शब्दों में स्थित 'तत्' श

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का संबन्ध संस्कृत से लगाकर इसी मत का अनुसरण किया है। कतिपय प्राकृत-व्याकरणों में प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति इस तरह की गई है:–

'प्रकृतिः संस्कृतं, तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्'
(हेमचन्द्र प्रा. व्या.)।

'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं प्राकृतमुच्यते'
(प्राकृत सर्वस्व)।

'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवत्वात् प्राकृतं स्मृतम्'
(प्राकृत चन्द्रिका)।

'प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृती मता'
(षड् भाषा चन्द्रिका)।

'प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः'
(प्राकृत संजीवनी)।

इन व्युत्पत्तिओं का तात्पर्य यह है कि प्राकृत शब्द 'प्रकृति' शब्द से बना है, 'प्राकृति' का अर्थ है संस्कृत भाषा, संस्कृत भाषा से जो उत्पन्न हुई है वह है प्राकृत भाषा।

प्राकृत वैयाकरणों की प्राकृत शब्द की यह व्याख्या अप्रमाणिक और अव्यापक ही नहीं है, भाषातत्त्व ते असंगत भी है। अप्रमाणिक इस लिए कही जा सकती है कि प्रकृति शब्द का मुख्य अर्थ संस्कृत भाषा कभी नहीं होता– संस्कृत के किसी कोष में प्राकृत शब्द का यह अर्थ उपलब्ध नहीं है और गौण या लाक्षणिक अर्थ तब तक नहीं लिया जाता जब तक मुख्य अर्थ में बाधक हो। यहाँ प्राकृत शब्द के मुख्य अर्थ स्वभाव अथवा जन-साधारण लेने में किसी तरह का बाध भी नहीं है। इससे उक्त व्युत्पत्ति के स्थान में 'प्रकृत्या स्वभावेन सिध्दं प्राकृतम्' अथवा 'प्रकृतीनां साधारण जनानाभिदं प्राकृतम' यही व्युत्पत्ति संगत और प्रामाणिक हो सकती है। अव्यापक कहने का कारण यह है कि प्राकृत के पूर्वोक्त तीन प्रकारों में तत्सम और तद्भव शब्दों की ही प्रकृति उन्होंने संस्कृत मानी है, तीसरे प्रकार के देश्य शब्दों की नहीं, अथ च देश्य को भी प्राकृत कहा है। इससे देश्य प्राकृत में वह व्युत्पत्ति लागू नहीं होती। प्राकृत की संस्कृत से उत्पत्ति भाषा-तत्त्व के सिद्धान्त से भी संगति नहीं रखती, क्योंकि वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत ये दोनों ही साहित्य की मार्जित भाषायें हैं। इन दोनों भाषाओं का व्यवहार शिक्षा की अपेक्षा रखता हैं। अशिक्षित, अज्ञ और बालक लोग किसी काल में साहित्य की भाषा का न तो स्वयं व्यवहार कर सकते हैं और न समझ पाते हैं। इसलिए समस्त देशों में सर्वदा ही अशिक्षित लोगों के व्यवहार के लिए एक कथ्य भाषा चालू रहती है जो साहित्य की भाषा से स्वतंत्र-अलग-होती हैं। शिक्षित लोगों को भी अशिक्षित लोगों के साथ बातचीत के प्रसंग में इस कथ्य भाषा का ही व्यवहार करना पड़ता है। वैदिक समय में भी ऐसी कथ्य भाषा प्रचलित थी। और जिस समय लौकिक संस्कृत भाषा प्रचलित हुई उस समय भी साधारण लोगों की स्वतंत्र कथ्य भाषा विद्यमान थी, यह नाटक आदि में संस्कृत भाषा के साथ प्राकृत-भाषी पात्रों के उल्लेख से प्रमाणित होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास

(लेखक-श्रीमान् पं० **नाथूरामजी प्रेमी**)

कुछ समयसे जैन समाज में भी इतिहास की चर्चा होने लगी है। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदाय के विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और वे इस विषय के छोटे-मोटे लेख तथा ग्रन्थ लिखने लगे हैं। पत्रों में अक्सर इस विषय के लेख भी प्रकाशित होते रहते हैं; परन्तु हम देखते हैं कि अधिकांश जैन लेखक इतिहास के असली उद्देश्य को न समझ कर उसे बलपूर्वक धार्मिक या साम्प्रदायिक कक्षा में घसीट ले जाने का प्रयत्न करते हैं जो कि सर्वथा अनुचित है। इतिहास सत्य घटनाओं का प्रकाशक है। किसी मत या सम्प्रदाय के कारण वह सत्य का उल्लङ्घन नहीं कर सकता। इसलिए इतिहास-लेखक का– चाहे वह स्वयं किसी मत या सम्प्रदाय पर विश्वास करने वाला हो–यह कर्तव्य है कि वह जो घटना जिस समय और जिस रूप में घटित हुई हो, उसे उसी समय और उसी रूप में प्रकाशित करे। सत्य का पोषण करना ही उसका सब से बड़ा कर्तव्य है। किसी मत या सम्प्रदाय की अपेक्षा उसे सत्य का सब से अधिक एकनिष्ठ उपासक होना चाहिए। उसे जानना चाहिए कि किसी प्रकार के पक्षपात से किसी घटना को अयथार्थ रूप में प्रकाशित करना इतिहास की हत्या करना है। उसे विश्वास होना चाहिए कि सत्य ही इतिहास का जीव है और सजीव इतिहास ही मनुष्य को सुमार्ग बतला सकता है, जो कि इतिहास पढ़ने का सब से प्रधान लाभ है। वास्तव में देखा जाय तो जिस मत या सम्प्रदाय के मोह में पड़ कर कोई छोटीसी घटना बढ़ाकर प्रकट की जाती है और बड़ी भारी घटना बिलकुल सामान्य बना दी जाती है, उसी मत–सम्प्रदाय की उस से सब से अधिक हानि होती है। क्यों कि एक सत्य घटना से मनुष्य जो शिक्षा ग्रहण कर सकता है, वह शिक्षा उसके अनुयायियों को नही मिलने पाती। जिन कारण-कलापों के मिलने का परिणाम बुरा होना चाहिए, झूठे इतिहास से उनका परिणाम अच्छा विदित होता है और तब उस पर विश्वास करने वाले 'बबूल' बोकर 'आम' खाने की आशा करने लगते हैं। इस के सिवाय इतिहास-लेखक जानता है कि **'कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी,**––समय अनन्त है और पृथ्वी बहुत विस्तृत है, इस लिए मेरे छिपानेपर भी कोई ऐतिहासिक सत्य छिपा न रहेगा–एक न एक दिन वह सब पर प्रकट हुए बिना न रहेगा और तब मेरी गणना सत्य की हत्या करने वालों में की जायगी, इस लिए कभी भूल कर भी वह किसी सत्य घटना को अयथार्थरूप में प्रकाशित करने का प्रयत्न नहीं करता।

कल्पना कीजिए कि आज से पाँच सौ वर्ष पहले एक ऐसा जैनाचार्य हुआ था जो बड़ा विद्वान् था और उस के पाण्डित्य के प्रकाशित करने वाले इस समय भी-कई ग्रन्थ मिलते हैं। अपने हृदय की दुर्ब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लता के वश उसने किसी समय कोई दुष्प्रवृत्ति की थी, परिग्रह धारण कर लिया था, और जैन धर्म के अन्तर्गत जो कई संघ हैं उनमें शत्रुता बढ़ाने की कोशिश की थी। एक अपरिणामदर्शी धर्मात्मा धर्म-मोह के कारण उसकी इन दुष्प्रवृत्तियों को ढकने का प्रयत्न कर सकता है। उसे यह शङ्का हो सकती है कि इस घटना के प्रकाशित होने से जैनधर्म के गौरव की हानि होगी; परन्तु एक ऐतिहासिक लेखक इस घटना को यथातथ्य प्रकट करने में जरा भी कुण्ठित न होगा। क्योंकि वह जानता है कि व्यक्तिविशेष के चरित्र की हीनता और उच्चता से किसी समूचे समाज या सम्प्रदाय के चरित्र की माप नहीं हो सकती और इस घटना के छिपाने से ऐतिहासिक सत्यों से लोगों को जो शिक्षा मिलती है उससे वे वञ्चित हो जायँगे। लोग इससे जान सकते हैं कि विद्वान् होने से ही कोई चारित्रवान् नहीं हो सकता है। ज्ञान दूसरी बात है और चारित्र दूसरी। मानव-चरित की जो दुर्बलता आज-कल के भट्टारकों में पाई जाती है उसका पाँचसौ वर्ष पहले भी अस्तित्व था। संघ-मोह या सम्प्रदाय-मोह ने उस समय के विद्वानों पर भी अपना अधिकार जमा लिया था और इससे उक्त विद्वान् के ग्रन्थों में यदि उस के चरित्र की दुर्बलता का कुछ प्रभाव पड़ा हो, तो उसका सावधानता से विचार करना चाहिए—उन्हें सर्वज्ञवचनों के समान बिना तर्क—वितर्क किये मानने के लिए तैयार न हो जाना चाहिए। इत्यादि अनेक बातें ऐसी हैं जिनसे हम बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। इस के सिवाय जिन प्रमाणों से उक्त विद्वान् के चरित्र की दुर्बलता प्रकट होती है वे यदि आज किसी तरह से छिपा भी दिये जायँ, तो भी यह निश्चय है कि कभी न कभी उनका वास्तविक रूप प्रकाशित हुए बिना न रहेगा।

हाँ, इस बात का खयाल अवश्य रखना चाहिए कि जिन लेखों या प्रमाणों से उक्त दुर्बलता का अंश प्रकट होता है वे अविश्वस्त तो नहीं हैं। अर्थात् वे किसी ऐसे मनुष्य के लिखे हुए तो नहीं हैं, जो स्वयं किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक मोह से अंधा था—अर्थात् दूसरे सम्प्रदाय का गौरव घटाने के लिए तो उसने उक्त प्रयत्न नहीं किया है। परन्तु ऐसे मौकों पर भी इतिहास-लेखक को धैर्य और सत्य का आग्रह न छोड़ देना चाहिए। हृदय में किसी प्रकार का विकार या क्रोधादि न लाकर इस बात की खूब जाँच कर लेनी चाहिए कि वास्तवमें ही उक्त प्रमाण विश्वस्त नहीं हैं। यदि थोड़ी भी शंका रह जाय, तो उस शंका को छिपा न रखना चाहिए—अपने लेख में उसका भी उल्लेख कर देना चाहिए।

जैन धर्म के ग्रंथों में, शिलालेखों में, स्थविराव—लियों में, पट्टावलियों में भारतवर्ष के इतिहास की बहुमूल्य सामग्री छिपी हुई है। भारतवर्ष का जो इतिहास तैयार हो रहा है, उसको सम्पूर्ण और सुस्पष्ट बनाने के लिए जैनियों को चाहिए कि वे अपने साहित्य का अच्छी तरह से अन्वेषण, आलोडन और पर्यवेक्षण करके उसमें से महत्त्वपूर्ण तथ्यों का प्रकटीकरण करें। इससे न केवल जैन साहित्य का ही महत्त्व प्रकट होगा किन्तु भारतवर्ष का इतिहास भी अधूरा न रहेगा। परन्तु इस कार्य में सफलता तब ही प्राप्त हो सकेगी जब कि हम इतिहास को इतिहासकी ही दृष्टिसे देखेंगे। ऐसा न करके यदि हम धार्मिक पक्षपातमें पड़ जावेंगे, अपने इतिहासको यदि हम भारतके इतिहासका ही एक अंश न समझेंगे—केवल अपना ही महत्त्व प्रकट करनेवाला समझेंगे, तो हमारा विश्वास उठ जायगा और जो काम हम करना चाहते हैं वह हमसे यथेष्ट रूपमें न हो सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा कुछ आधुनिक कथासाहित्य ऐसा है जिस में बहुतसे सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुषोंके चरित निबद्ध हैं और जहाँ तक हमने इस विषयमें विचार किया है वे सर्वथा भ्रमशून्य नहीं हैं। इतिहास की दृष्टि से वे लिखे भी नहीं गये, केवल धर्म-प्रभावना को प्रकट करने के खयाल से लिखे गये हैं। उदाहरण के तौर पर कुछ नमूने नीचे देखिये:—

'भक्तामर' स्तोत्रके कर्त्ता **मानतुंग** सूरिके विषय में हमारे यहाँ कई कथायें हैं जो एक दूसरीसे नहीं मिलती हैं। एक भट्टारक सकलचंद्रके शिष्य ब्रह्मचारी 'रायमल्लजी' कृत भक्तामरवृत्ति है, जो संवत् १६६७ को समाप्त हुई है। उसमें धाराधीश भोजकी राजसभा में कालिदास, भारवि, माघ आदि भिन्न समयवर्ती अनेक कवि एकत्र बतलाये गये हैं और लिखा है कि उसी समय मानतुंग ने ४८ सांकलोंको तोड़ कर जैन-धर्मकी प्रभावना की तथा राजा भोजको जैनधर्मका उपासक बना लिया। दूसरी कथा भट्टारक विश्वभूषण-कृत 'भक्तामरचरित' में है जिसका पद्यबद्ध अनुवाद पं. विनोदीलालका किया हुआ मिलता है। इसमें भोज, भर्तृहरि, शुभचंद्र, कालिदास, धनंजय, वररुचि, मानतुंग आदि सबको सम-सामयिक बतलाया है और अन्तमें लिखा है कि न केवल भोजने ही किन्तु कालि-दासने भी जैनधर्म स्वीकार कर लिया। इन दोनों ही कथाओंमें जब यह लिखा है कि राजा भोज के द्वारा ४८ कोठरियोंमें साँकलोंसे बाँधे जाने पर मान-तुंगसूरि ने भक्तामरस्तोत्र की रचना की, तब आचार्य प्रभाचंद ने 'क्रियाकलाप-टीका' के अंतर्गत भक्तामर-स्तोत्रटीका की उत्थानिका में लिखा है—

"मानतुंगनामा सिताम्बरो महाकविः निर्ग्रन्थाचार्यवर्यैरपनीत महाव्याधिः प्रतिपन्ननिर्ग्रन्थ-मार्गो भगवन् किं क्रियतामिति ब्रुवाणो भगवत परमात्मनो गुणगणस्तोत्र विधीयतामित्यादिष्टः भक्तामरेत्यादिः।"

अर्थात् मानतुंग नामक श्वेताम्बर महाकवि थे। एक दिगम्बराचार्य ने उनको महाव्याधि से मुक्त कर दिया, इससे उन्होंने दिगम्बर मार्ग धारण कर लिया और पूछा कि भगवन्, अब मैं क्या करूँ? तब दिग-बराचार्यने आज्ञा दी कि परमात्मा के गुणोंका स्तोत्र बनाओ, इस पर उन्होंने भक्तामरादि स्तोत्रकी रचना की। प्रभाचंद्राचार्यकी इसी टीकाकी एक और प्रति हमने देखी है जिसकी उत्थानिका में **मानतुंगनामा सिताम्बरो महाकविः**' की जगह **मानतुँगनामा बौद्धमहाकविः**' लिखा हुआ है!!

इसी प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदायमें, एक कथा श्वेता-म्बराचार्य श्री प्रभाचंद्रसूरिकृत 'प्रभावकचरित' में दी हुई है, जो विक्रम संवत् १३३४ का बना हुआ है। इसके अनुसार मानतुंग काशीके धनदेव श्रेष्ठी के पुत्र थे। पहले उन्होंने एक दिगम्बर मुनिसे दीक्षाली और उनका नाम 'चारुकीर्त्ति महाकीर्ति' रखखा गया, पीछे एक श्वेताम्बर सम्प्रदाय की अनुयायिनी श्राविका ने उनके कमण्डलु के जल में त्रसजीव बतलाये जिससे उन्हें दिगम्बरचर्या से विरक्ति हो गई और आखिर वे 'जिनसिंह' नामक श्वेताम्बराचार्यके निकट दीक्षित होकर श्वेताम्बर साधु हो गये और उसी अवस्था में उन्होंने भक्तामर की रचना की। दूसरी कथा श्वेताम्बराचार्य 'मेरुतुंग' कृत 'प्रबंध-चितामणि' में लिखी है। यह ग्रंथ विक्रम संवत् १३६१ का बना हुआ है। इसमें लिखा है कि महाकवि वाण और मयूर साले बहनोई थे। मयूर कवि की स्त्री ने अपने गुप्त प्रणय-कलह को सुन लेने के कारण अपने भाई को शाप दिया जिससे बाण को कोढ़ हो गया। इस कोढ़ को उन्होंने 'सूर्यशतक'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावसे अच्छा कर लिया, फिर मयूरने अपनी शक्ति दिखलाने के लिए अपने हाथ पैर काट लिये और 'चण्डिकास्तोत्र' रचकर उसके प्रभाव से फिर ज्योंका त्यों शरीर कर लिया। राजसभा के प्रधान पुरुषों ने यह सब देखकर राजा से कहा कि जैनमत में कोई ऐसा प्रभाव हो, तो जैनों को इस देश में रहने देना चाहिये, नहीं तो निकाल देना चाहिए। तब मानतुंगाचार्य बुलाये गये। आखिर उन्होंने अपने शरीरको ४४ बेडियोंसे जकडवा लिया और मंत्रगर्भ भक्तामरस्तोत्रकी रचना करके एक एक पद्य पढ़ कर प्रत्येक बेडीसे अपनेको मुक्त कर लिया। तीसरी कथा श्वेताम्बराचार्य 'गुणाकर' की 'भक्तामरस्तोत्रवृत्ति' में दी है जो वि. सं. १४२६ की बनी हुई है। यह कथा प्रबंधचितामणिकी अपेक्षा कुछ विस्तृत है, और इसमें 'मयूर' को श्वसुर और 'वाणको' जामाता बतलाया है तथा मयूरने 'सूर्यशतक' की और वाणने 'चण्डिशतक' की रचना करके अपना प्रभाव दिखलाया है। राजाका नाम 'वृद्ध भोज' बतलाया है जिसकी सभामें वाण और मयूर थे।

अच्छी तरह विचार करनेसे इन सब कथाओंका ऐतिहासिक मूल्य कितना है, यह समझमें आये विना नहीं रहता। **भोज, कालिदास, भारवि, वाण, मयूर, माघ, भर्तृहरि, वररुचि** आदि प्रायः सभी का समय निश्चित होचुका है और इसलिए इन सबको कोई इतिहासज्ञ विद्वान् तो सम सामयिक माननेको तैयार न होगा। एक इन्हें श्वेतांबर बतलाता है तो दूसरा दिगंबर और मजा यह कि एक सम्प्रदाय का ही एक विद्वान् कुछ कहता है और दूसरा कुछ।

योगिराट् पण्डिताचार्य ने 'पार्श्वाभ्युदयटीका' में मेघदूतके कर्ता कालिदासके जिनसेनस्वामी द्वारा अपमानित होनेकी कथा लिखी है, परन्तु भगवज्जिनसेन कालिदाससे बहुत पीछे हुए हैं और इसके लिए 'आयहोली' के जैनमन्दिरका कविवर रविकीर्त्ति-कृत शिलालेख बहुत ही पुष्ट प्रमाण है जिसमें कालिदास के उल्लेख वाला वाक्य इस प्रकार दिया है—

येनायोजि नवेऽश्म
स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म्।
स विजयतां रविकीर्तिः
कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः॥

यह शक संवत् ५५६ का लिखा हुआ है, जब कि जिनसेनाचार्य ने जयधवलाटीकाकी समाप्ति शक संवत् ७५९ में की है। इससे स्पष्ट है कि कालिदास जिनसेन स्वामी से लगभग २०० वर्ष पहले खूब प्रसिद्ध हो चुके थे, इसलिए उनको अपमानित करने की कथा कपोल-कल्पित ही कही जा सकती है।

'दर्शनसार' के कर्ता देवसेनसूरि ने **काष्ठासंघ** की उत्पत्ति शक संवत् ७५३ में बतलाई है और जिनसेन के सतीर्थ विनयसेन के शिष्य कुमारसेन को उसका उत्पादक बतलाया है; परन्तु बुलाकीदास ने अपने वचनकोशमें काष्ठासंघके उत्पादक लोहाचार्यको बतला कर काठकी प्रतिमा पूजने आदिके सम्बन्धमें एक कथा ही गढ डाली है।

आराधनाकथाकोशमें लिखा है कि अकलङ्कभट्ट पुरुषोत्तम नामक ब्राह्मणके पुत्र थे; परन्तु भट्टाकलंक के ही बनाये हुए राजवार्तिकमें एक श्लोक है, उससे मालूम होता है कि वे लघु 'हव्व' नामक नृपतिके ज्येष्ठ पुत्र थे। वह श्लोक यह है—

जीयाच्चिरमकलङ्कब्रह्मा लघुहव्वनृपतिवरतनयः।
अनवरतनिखिलविद्वज्जननुतविद्यःप्रशस्तजनहृद्यः

बहुतसी कथायें ऐसी हैं जिनमें दो महापुरुषोंके चरित इस तरह लिखे गये हैं कि उनमें एक दूसरेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकरण करके लिखे जानेका भ्रम होता है । जैसे श्वेताम्बराचार्य सिद्धसेनसूरि की और दिगम्बराचार्य समन्तभद्रस्वामीकी कथा । इनमेंसे एकने प्रभाव से उज्जैनके महाकालेश्वरका लिंग फाड कर उसमें से जिन भगवान्‌की प्रतिमा प्रगट की और दूसरेने काशी या कांची में महादेवका लिंग फाड़कर चन्द्रप्रभकी प्रतिमा प्रगट की । इसी तरह भट्टाकलंकदेवको और श्वेताम्बराचार्य हरिभद्रसूरिकी कथा है । एकमें जो हंस परमहंस हैं दूसरीमें वे ही अकलंक और निकलंक हैं । बौद्धोंका अत्याचार दोनोंमें ही दिखलाया गया है।

अनेक कथायें ऐसी भी हैं जिनमें वैदिक और बौद्धधर्मके प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजाओं और विद्वानोंके विषयमें यह कहा गया है कि वे पीछेसे जैनधर्मानुयायी हो गये थे । दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थोंमें बहुतसी कथायें ऐसी भी हैं जिनम उमास्वाति, सिद्धसेन, मानतुंग, भूपाल, आदि आचार्यो को अपना अपना बतलानेका प्रयत्न किया गया है। अर्थात् इन विद्वानोंको एक कथा श्वेताम्बर सम्प्रदायका बतलाती है और दूसरी दिगम्बर सम्प्रदायका।

हम यह नहीं कहते कि इन कथाओं में कुछ भी तथ्य नहीं है अथवा ये बिलकुल ही मिथ्या हैं; परन्तु जो लोग इतिहासकी खोज करना चाहते हैं और सत्यान्वेषी हैं उनसे यह प्रार्थना अवश्य कर देना चाहते हैं कि वे इन कथाओं पर एकाएक पूर्ण विश्वास न कर बैठें और न इन कथाओंके तथ्योंको होअपना-उद्देश्य मानकर उनको पुष्ट करनेके लिए जमीन आस-मान एक कर डालें । जब कोई इतिहासज्ञ विद्वान् किसी व्यक्तिके समयका पता लगाना चाहता है, तब वह पहलेसे किसी ऊँटपटाँग समयकी कल्पना करके फिर उसके सिद्ध करनेवाले प्रमाण नहीं ढूँढता; किन्तु इस विषयके जितने प्रमाण मिल सकते हैं संग्रह करके फिर उनका तारतम्य मिलाकर समय निश्चित करता है । इसी तरहसे इन कथाओंमें कही हुई बातोंको सिद्ध करनेका निश्चय करके फिर उनकी पुष्टिके लिए अस्त-व्यस्त प्रमाण ढूँढना ठीक नहीं । चाहिए यह कि पहले प्रमाण ढूँढे जावें और फिर उन परसे कथाओंकी सत्यता सिद्ध की जावे । भक्तामर की इस कथा को स्वयंसिद्ध मानकर कि बाण, मयूर, भोज और कालिदास एक समयमें थे—जो महाशय ढूँढ खोज करेंगे, संभव है कि उन्हें दो चार इतिहासानभिज्ञ एतद्देशीय विद्वानों के और चार छह चंचुप्रवेशकारी यूरोपियन विद्वानोंके ऐसे प्रमाण मिलजावें, जिनसे यह समकालीनता सिद्ध हो जावे; और इससे वे आपको कृतकृत्य समझ बैठें; परन्तु इस प्रकारकी सिद्धि करना एक बात है और ऐतिहासिक सत्यकी खोज करना दूसरी बात है। विक्रमकी सातवीं शताब्दीके कान्यकुब्जाधिपति महाराज श्रीहर्षके सभाकवि बाण-मयूर को, महाराज विक्रमादित्यके समयवर्ती महाकवि कालिदासको और ग्यारहवीं शताब्दीके परमारवंशीय महाराज भोज को एक जगह बिठलानेका साहस कोई इतिहास सेवक तो नहीं कर सकता । इसके सिवाय हमें यह भी तो सोचना चाहिए कि हमारे ही जुदाजुदा कथा-ग्रंथोंमें जब एक वाक्यता नहीं है, तब इन कथाओंको केवल इसलिए कि ये हमारी हैं-प्रमाणभूत कैसे मान लिया जाय? पहले इनकी एकवाक्यता कीजिए, अथवा रचयिताओंकी योग्यतापर विचार करके किसी एक को विशेष प्रामाणिक मानिए और फिर दूसरे शिलालेखादि बाह्य प्रमाणों से उसकी पुष्टि कीजिए और तब उनका ऐतिहासिक सत्य के रूप में प्रचार कीजिए।

उक्त कथाओंके समान हमारी पट्टावलियाँ और गुर्वावलियाँ भी भ्रमसे खाली नहीं हैं । जहाँ से आचार्यों पट्टावलियों आदिका प्रारंभ होता है, वहींसे आच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का समय ठीक ठीक नहीं मिलता। मूलसंघके जिन जिन आचार्योंके ग्रंथादि मिलते हैं अथवा शिलालेखादिसे उनका समय निश्चित होता है, पट्टावलीसे उस समयको मिलाइए, तो नहीं मिलता। ऐसी दशामें लेखक लोग कभी तो पट्टावलियोंके सम्वत्को विक्रम संवत् मान लेते हैं और कभी शक संवत् मान लेते हैं और जब इससे भी पूरा नहीं पड़ता, तो विक्रम और शकके जन्म और मृत्युके दो दो जुदा संवत् मान कर अपना काम निकालते हैं। इस भ्रमका कारण यह मालूम होता है कि या तो असली पट्टावलियाँ नष्ट भ्रष्ट हो गई हैं या वे हमारे प्राचीन भण्डारों में कहीं छिपी हुई पड़ी हैं और उनके स्थानमें दो सौ चार सौ वर्ष पहलेके भट्टारकों आदिकी बनाई हुई पट्टावलियाँ तथा गुर्वावलियाँ प्रचलित हो गई हैं और रचयिताओंकी इतिहासानभिज्ञताके कारण उनमें भूलें हो गई हैं। एक बात और है। इन पट्टावलियोंके रचने वालों को यह भ्रम हो गया था कि जिस तरह एक भट्टारकके बाद दूसरा गद्दी पर बैठता है, गद्दी कभी खाली नहीं रहती उसी तरह पूर्वकाल में भी कुन्दकुन्द, समन्तभद्र आदि आचार्यों के बाद उनके शिष्य और उनके बाद उनके शिष्य गद्दी पर बैठे होंगे; परन्तु वास्तवमें ऐसा है नहीं। कुन्दकुन्दादि गद्दीधर नहीं थे। ऐसा भी नहीं मालूम होता कि ये सभी किसी न किसी मुनिसंघके नेता या प्रवर्तक ही थे। इसके विना भी विद्वत्ता, ग्रंथकर्त्तृत्वादि के नाते सूरि या आचार्यकी उपाधि लगाई जा सकती है। ऐसी दशामें इतिहासशोधकोंको चाहिए कि वे प्रयत्न करके इनका संशोधन करें, इनके यथार्थत्व का पता लगावें और जबतक इस विषयमें सफलता न हो, तब तक किसी आचार्यके समयादि का निर्णय करते समय केवल इन्हीं पर अवलम्बित न रहें।

यदि सत्य कहना कोई अपराध न हो, तो हमें कहना पड़ेगा कि हमारा आधुनिक साहित्य-वह साहित्य जिसे कि बहुत करके पिछले पाँच सौ-छह सौ वर्षके भट्टारकोंने या दूसरे विद्वानोंने लिखा है और जिसका बहुभाग कथाओंसे परिपूर्ण है। प्रायः दुर्बल, भ्रमपूर्ण, संकीर्ण और निम्न श्रेणिका है और आश्चर्य की बात यह है कि इस समय इसी का सबसे अधिक प्रचार है। कुछ पुराणग्रंथोंको छोड़कर दूसरे कथा-ग्रंथोंमें नौवीं दशवीं शताब्दीसे पहलेके प्राचीनग्रंथोंके तो कहीं दर्शन भी नहीं होते हैं। ऐसी दशामें इतिहास-शोधकों को चाहिए कि वे इस पिछले कथासाहित्यसे जो प्रमाण संग्रह करें बहुत विचारके साथ उपयोगमें लावें-उनके विषयमें सर्वथा निःशङ्क न हो जावें।

जो लोग जैनधर्मका इतिहास लिखना चाहते हैं, उन्हें सारी दुनियाँका नहीं, तो कमसे कम भारतवर्षके समग्र ऐतिहासिक ग्रन्थोंका अध्ययन अवश्य करना चाहिए। केवल जैनसाहित्यकी खोजसे ही जैनियोंका इतिहास बन जावेगा, ऐसा खयाल करना गलत है। क्योंकि भारतवर्षसे-भारतवर्षके दूसरे धर्मोंसे-और जनसाधारणसे जैनधर्म कभी जुदा नहीं रहा। जिस तरह जैनसाहित्यकी सहायताके बिना समग्र भारतका इतिहास संपूर्ण नहीं होता, उसी तरह भारतके इतिहासकी सहायताके बिना जैनधर्मका इतिहास भी नहीं बन सकता।

इतिहास की भाषा में और साहित्य की भाषामें भेद होता है। जहाँ साहित्यकी भाषा अलङ्कार और आडम्बरपूर्ण होती है, वहाँ इतिहासकी भाषा सीधी-साधी, मर्यादित और तुली हुई होती है। हमारे इतिहासलेखकोंका ध्यान इस ओर बहुत कम है। वे जब किसी जैनाचार्य या जैनराजाका इतिहास लिखते हैं, तब इतिहास लिखना छोड़कर अत्युक्ति और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आडम्बरपूर्ण काव्य लिखने लगते हैं! यह न होना चाहिए। इतिहासका प्रत्येक वाक्य और प्रत्येक शब्द जंचा-तुला मर्यादित होना चाहिए।

इतिहासमें अनुमानसे बहुत काम लेना पड़ता है; परन्तु उस अनुमानकी भी कुछ सीमा होनी चाहिए। हमने बहुतसे लेखोंमें पढा है कि उनके लेखकोंने यदि कहीं पर कोई प्राचीन प्राचीन प्रतिमा पा ली और उसमें कोई सन्-संवत् लिखा न पाया, तो बस उन्होंने उसी समय लिख मारा कि 'यह प्रतिमा अनुमानसे चौथे कालकी मालूम होती है!' भला, यह भी कोई अनुमान है? ऐसे अनुमानोंसे इतिहासलेखकोंको बचना चाहिए।

किसी व्यक्तिका समय, उसकी रचना और उस का पाण्डित्य आदि लिख देना ही इतिहास नहीं है। इतिहासमें इन बातोंका विशेष महत्त्व नहीं। बल्कि उस समयके धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक जगतकी क्या अवस्था थी, लोगोंके विश्वास कैसे थे, कौनसे धर्मकी प्रधानता और प्रचारबहुलता थी उनके रीतिरिवाज, आहार-विहार, वेषभूषा आदि कैसे थे, धार्मिक स्थिति कैसी थी, नगरों और ग्रामोंकी क्या अवस्था थी, विदेशियोंसे कहाँ तक सम्बन्ध था, उस समय जो युद्धादि हुए उनके वास्तविक कारण क्या थे, युद्धादि के कारण प्रजाकी शान्ति कहाँ तक भंग होती थी, संघशक्ति कैसी थी, विद्याचर्चा कितनी थी और वह किस तरह चलती थी। लोगोंमें स्वार्थत्याग, परार्थपरता, देशभक्ति आदिके भाव कैसे थे, इत्यादि इत्यादि बातोंका इतिहासमें विशेषताके साथ विचार होना चाहिए। इतिहासका यही भाग लोगोंके लिए विशेष पथप्रदर्शक होता है, परन्तु हम लोगोंका ध्यान इसी ओर बहुत कम जाता है। (अनेकांत से साभार)

श्रद्धेय आचार्य श्रीजी का स्वास्थ्य-समाचार

यह बात सर्वश्रुत है कि आचार्य श्रीजी श्रमणसंघ को सुसंगठित बनानेके लिये सदैव तत्पर रहे हैं। संघ-सेवा के सामने अपने स्वास्थ्य की परवाह भी उन्होंने उतनी नहीं की जितनी कि अपेक्षित थी। उसका परिणाम यह हुवा कि पिछले २-३ वर्षों से आपका स्वास्थ्य खराब रहने लगा है, यद्यपि सर्वत्र श्रावक-संघ विविध औषधोपचार से उसे सुधारनेका प्रयत्न करता आ रहा है, तथापि स्वस्थता निर्माण के लिये अत्यन्त आवश्यक विश्रान्ति यथेष्ट रूपमें न ले सकने के कारण औषधोपचार का पर्याप्त प्रभाव नहीं पड़ सका है।

सम्मेलन का कार्य पूर्ण करके आपश्री पंजाबको लक्ष में रख कर जयपुर तरफ विहार किये तो जयपुर पहुँचने पर आपका स्वास्थ्य विहारके अनुकूल नहीं प्रतीत होने लगा, जयपुर के संघने विशेष आग्रह किया और चातुर्मास की विनति के साथ औषधोपचार करवाने के लिये जयपुरके उपनगरों तक ही विचरनेकी प्रार्थना की तदनुसार निदान और उपचार की व्यवस्था करनेमें जयपुर संघ अन्तःकरण से तल्लीन है।

पूज्यश्रीजी की लघुशंकामें खराबी आ गई है। जिसे दूर करनेके लिये आपरेशन करना अपरिहार्य है, ऐसी सलाह अनुभवी डाक्टरोंने दी है। संघके आग्रह से पूज्यश्री जी जयपुरके राजकीय चिकित्सालयमें उपस्थित हुए हैं ऐसा समाचार जयपुरसे प्राप्त हुआ है। शस्त्रक्रिया की तिथि १३।७।६४ है। शासनदेव की कृपासे यह कार्य सफल हो और पूज्यश्री जी शीघ्र ही स्वस्थ होकर अपने संकल्पित श्रमणसंघ-सेवा कार्य में तत्पर हों ऐसी शासनदेव से प्रार्थना है।

—बदरीनारायण शुक्ल दि. १२-७-६४

जयपुर का पता निम्न प्रकार है, मंत्री—श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रावक संघ, चौडा रास्ता, जयपुर (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरन्स द्वारा मान्य

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड [पाथर्डी, अ. नगर]

प्रचलित पाठ्य ग्रंथावली

जैन सिद्धान्त प्रवेशिका परीक्षा

खंड	पत्र	पाठ्य ग्रन्थ	पूर्णांक
१	१	जैन पाठावली भाग १ (पाथर्डी)	१००
२	१	सि. प्रवेशिका द्वितीय खण्ड के पाठ्य विषय	१००

जैन सिद्धान्त प्रथमा परीक्षा

खंड	पत्र	पाठ्य ग्रन्थ	पूर्णांक
१	१	जैन पाठावली भाग २ (पाथर्डी)	१००
१	२	जैन पाठावली भाग ३ (पाथर्डी)	१००
२	१	जैन पाठावली भाग ४ (पच्चीस बोल रहित)	१००
२	२	प्रथमा परीक्षा पाठ्य ग्रन्थ भाग २ (पाथर्डी)	१००

जैन सिद्धान्त विशारद परीक्षा

खंड	पत्र	पाठ्य ग्रन्थ	पूर्णांक
१	१	नवतत्त्व सार्थ (पाथर्डी)	५०
		स्था० जैन इतिहास (पाथर्डी)	५०
१	२	जैन तत्त्व दीपिका (पाथर्डी)	४०
		संस्कृत मार्गोपदेशिका (भांडारकर)	४०
		पाँच समिति तीन गुप्ति का स्तोक (पाथर्डी)	१०
		भक्तामर स्तोत्र (मूल) पाथर्डी	१०
२	१	जैन पाठावली भाग ५ (पाथर्डी)	६०
		तत्त्वार्थ सूत्र सार्थ (धी. के. तुरखिया)	४०
२	२	जैन पाठावली भाग ६ (पाथर्डी)	६०
		श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के अध्ययन १, ४, ८, ९, १० निबन्ध (पठित विषय के आधार पर)	१५

जैन सिद्धान्त प्रभाकर परीक्षा

खंड	पत्र	पाठ्य ग्रन्थ	पूर्णांक
१	१	जैनेंद्र प्रक्रिया, या लघु सिद्धान्त कौमुदी अथवा संस्कृत मन्दिरांतः प्रवेशिका	१००
१	२	जैन पाठावली भाग ७ (पाथर्डी)	४०
		श्री दशवैकालिकजी (हिन्दी अनुवाद)	३०
		श्री उत्तराध्ययनजी १२, १३, १४, १७, १८, १९, २०, २१ अध्ययन	३०
२	१	प्रमाण नय तत्त्वालोक (पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल)	६०
		श्री उत्तराध्ययनजी अध्ययन २२, २३, २४, २५, २८, ३३, ३४, ३५	४०
२	२	श्री नन्दी जी सूत्र (पूज्य श्री हस्तीमलजी म०)	५०
		श्री ज्ञाताजी सूत्र शब्दार्थ	५०

जैन सिद्धान्त शास्त्री परीक्षा

खंड	पत्र	पाठ्य ग्रंथ	पूर्णांक
१	१	प्राकृतव्याकरण (श्री हेमचन्द्राचार्य)	१००
२	२	जैन तर्कभाषा (श्री. यशोविजयजी म०)	५०
		तत्त्वार्थ सूत्र (पं. सुखलालजी)	५०
१	३	निर्ग्रंथ प्रवचन सभाष्य (श्री जैन दिवाकरजी म०)	६०
		राज प्रश्नीय सूत्र परदेशी अधिकार (सटीक)	४०
२	१	षड्दर्शन समुच्चय (हरिभद्र सूरि)	४०
		अनुयोग द्वार सूत्र (सटीक)	६०
२	२	आचारांग सूत्र प्रथम श्रुत स्कंध (सटीक)	६०
		औपपातिक सूत्र (सटीक)	४०
२	३	सुरसुन्दरी चरियम् परिच्छेद १–२	४०
		समराइच्च कहा भव १–३	६०
३	१	स्याद्वाद मंजरी (पं. जगदीशचन्द्रजी)	१००
३	२	स्थानांग सूत्र (सटीक)	१००
३	३	जैन तत्त्व प्रकाश (पूज्य श्री अमोलकऋषिजी म०)	४०
		निबन्ध संस्कृत में	३०
		निबन्ध प्राकृत में	३०

"जैन सिद्धान्ताचार्य" परीक्षा

खंड	पत्र	पाठ्य ग्रंथ	पूर्णांक
१	१	प्रज्ञापना सूत्र (सटीक)	१००
१	२	प्रमाण मीमांसा (श्री हेमचन्द्राचार्य)	५०
		सप्तभंगी तरंगिणी (श्री विमलचन्द्र सूरि)	५०
१	३	कुमारपालचरियम् (आचार्य हेमचन्द्र)	१००
२	१	रत्नाकरावतारिका	१००
२	२	सूत्रकृतांग सूत्र (सटीक प्रथम श्रुतस्कंध)	१००
२	३	भगवती सूत्र शतक १–१५	१००
३	१	सन्मति प्रकरण (मूल) (श्री सिद्धसेन दिवाकर)	५०
		बृहद् द्रव्यसंग्रह	५०
३	२	विशेषावश्यक सूत्र सभाष्य	१००
३	३	भारतीय दर्शन (पं. बलदेव प्रसादजी उपाध्याय)	६०
		सृष्टिवाद और ईश्वर (शतावधानीजी म०)	४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—: कन्याओं तथा महिलाओं के लिए :—

जैन सिद्धान्त प्रवेशिका परीक्षा

१ १ कन्यासुबोधिनी भाग १ (पाथर्डी) पृष्ठ १–४८ १००
२ १ कन्यासुबोधिनी भाग १ पृष्ठ ४९ से १०९ १००

जैन सिद्धान्त प्रथमा परीक्षा

१ १ कन्यासुबोधिनी भाग २ (पाथर्डी) १००
१ २ सोलह सतियाँ से ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दनबाला और राजीमतीजी का जीवन चरित्र। २०
आदर्श कन्या (उपाध्याय कवि रत्न मुनि श्री अमरचन्दजी म० कृत) से निम्न १२ निबंध शील-स्वभाव, लज्जा, सरलता, प्रेमभाव, अमृतवाणी, हँसी दिल्लगी, तप, ब्रह्मचर्य, विलासिता, रोगी की सेवा, तीन बात, चार बात। ५०
आवश्यक सूत्र (पाथर्डी) ५ अणुव्रत तक सार्थ ३०
२ १ सोलह सतियाँ से कौसल्या, मृगावती, सुलसा और सुभद्राजी का जीवन चरित्र २०
"आदर्श कन्या" के अवशिष्ट निबंध ५०
आवश्यक सूत्र ६ से १२ व्रत सार्थ ३०
२ २ सोलह सतियाँ से शिवा, कुन्ती, दमयन्ती, पुष्पचूला, प्रभावती, पद्मावती, सीता और द्रौपदी का चरित्र। ४०
पच्चीस बोलके स्तोक से १५–२५ बोल तक ३०
आवश्यक सूत्र अवशिष्ट ३०

जैन सिद्धान्त विशारद परीक्षा

१ १ कन्या सुबोधिनी भाग ३ (पाथर्डी) ६०
नवतत्त्व (पाथर्डी) ४०
१ २ जैनत्त्व की झाँकी (कविजी म०) पृष्ठ १–९२ ६०
पाँच समिति तीन गुप्तिका स्तोक २०
भक्तामर स्तोत्र भावार्थ सहित २०
२ १ जैनत्त्व की झाँकी अवशिष्ट ५०
जैन तत्त्व दीपिका पाथर्डी ५०
२ १ धर्म और धर्मनायक ६०
कर्म प्रकृति का स्तोक १५
श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के १,४,८,९,१० अध्ययन २५

—: सामायिक प्रतिक्रमण परीक्षा के लिए :—

सामायिक प्रथम खण्ड

सामायिक सूत्र मूल संपूर्ण १००

सामायिक द्वितीय खण्ड

सामायिक सूत्र सार्थ संपूर्ण १००

प्रतिक्रमण प्रथम खण्ड

आवश्यक सूत्र मूल संपूर्ण १००

प्रतिक्रमण द्वितीय खण्ड

आवश्यक सूत्र सार्थ संपूर्ण १००

बदरीनारायण शुक्ल
जैन सिद्धान्ताचार्य, सर्वदर्शनशास्त्री
(परीक्षाधिकारी)

नोट— सामायिक, प्रतिक्रमण परीक्षा के लिए उत्तीर्णाङ्क ५० प्रतिशत नियत है। और इन दोनों परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी के लिए न्यूनतम ८० प्रतिशत, द्वितीय श्रेणी के लिए ६५ प्रतिशत अङ्क प्राप्त करना आवश्यकीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—: आजीवन सदस्य :—

१ के. चु. भटेवडा	राहू (पुना)	४३ भी. मा. कर्नावट	सिरसमार्ग	८५ चु. भ्र. प्रे. देसरडा	न्हावरा
२ ता. रां. मा. सुन्दराबाईजी	आष्टा	४४ बा. डा. बब्धानी	अमरावती	८६ कां. जा. नाहर	आलेगांव
३ इन्दरबाईजी	„	४५ सु. भ्र. मो. मुथा	देवळाली	८७ प. ही. कटारिया	वाल्की
४ श्रीमती रा. डागा	भोपाल	४६ प. कि. छाजेड	म्हसे	८८ फू. बा. बाफना	राहुरी
५ जी. ते. ललवानी	श्रीरामपुर	४७ मू. रि. संकलेचा	मजलेगांव	८९ मा. गं. चोरडिया	बोरी
६ मे. ध. जैन	मगरदा	४८ हां. भ्र. च. शिंगी	अहमदनगर	९० पु. शो. चोरडिया	„
७ कि. चौधरी	शुजालपुर	४९ चं. ध. वैद	चांदा	९१ रा. ल. भंडारी	सिरसाला
८ गें. इ. जैन „	„	५० सु. सु. कुचेरिया	पाथर्डी	९२ ध. द. संचेती	पूना
९ कं. दी. जैन „	„	५१ वि. शा. संकलेचा	अमरावती	९३ ज. चु. सांड	रहाता
१० सू. न. जैन „	„	५२ न. मु. बोरा	पीपला	९४ हृ. न. गांधी	श्रीरामपुर
११ रा. चौ को „	„	५३ चाँ. मू. चंगेडिया	बरोरा	९५ झुं. भ्र. ही. भलगट	गुलबर्गा
१२ का. ही. जैन „	„	५४ एक गुप्तदानी सद्‌गृहस्थ	अ.नगर	९६ ब. चं. गुगले	मलाड
१३ ज. खो. डोशी	इन्दौर	५५ भी. के. ललवानी	मनमाड	९७ र. ही. लूंकड	श्रीरामपुर
१४ इ. सू. चोपडा	भामाठाण	५६ ब. मा. गांधी	पिंपलगाव	९८ कुं. न. गांधी	„
१५ मे. टाटिया	सारंगपुर	५७ प्रे. भ्र. ज. बोरा	„	९९ सु. लुणावत	धामणगांव
१६ प्रे. जी. वेदमुथा	वर्धा	५८ मो. चु. मुथा	वांबोरी	१०० शांतिलालजी चौधरी	राजगढ़
१७ दे. भि. कांकरिया	राहू	५९ सौ. रू. सू भ्र. झुंबरलालजी	„	१०१ न. शा. भाई	मलकापुर
१८ श्री. न. पितलिया	सीहोर	६० मू. द. चंगेडिया	सोनई	१०२ ही. ल. मुथा	लक्ष्मेश्वर
१९ के. घी. बाफणा	नागपुर	६१ पू. मो. नाहर	घोडेगांव	१०३ सि. र. भुरा	सिवनी
२० क. ल. रांका	शुजालपुर	६२ नें. ब भटेवडा	वांमदा	१०४ चं हि. कुंकुलोल	कोल्हार
२१ स. व. जैन	शाजापुर	६३ ब. च. सिंगी	देवळाली	१०५ वि. पु. राकेचा	„
२२ सु. जी. सिंदरसीवाला	„	६४ श्री. रा. मुथा	„	१०६ ना. भ्र. रा. गुगले	„
२३ वैं. र. स. मुणोत	वांबोरी	६५ झ. पू. बाफना	श्रीरामपुर	१०७ स. म. रांका	„
२४ भं. के. जोगड	बोदवड	६६ ने. गु. मुथा	बेलापुर	१०८ फ. ज. गुगलिया	„
२५ झुं. ध. मुथा	अहमदनगर	६७ चु. पू. तातेड	„	१०९ मो. झुं. रांका	चिंचोली
२६ अ. मा. गुगले	पाथर्डी	६८ मो. र. हिरन	„	११० प. का. रांका	„
२७ ना. भ्र. र. भंडारी	पीपला	६९ के. मां. संचेती	चिंचवड	१११ हु. च. समदडिया	अस्तगांव
२८ सौ. गु. भ्र. सि. बोरा	अ.नगर	७० हृ. सो. मुनोत	निंबारी	११२ भा. झुं. गुगले	पाथर्डी
२९ ब. झुं. कोठारी	„	७१ गं. मो. कोठारी	पूना	११३ उ. हृ. कातरेला	अमरावती
३० ला. पा. मा. कोंडाबाईजी	पाथर्डी	७२ क. के. कांकलिया	पूना	११४ कां. मा. गांधी	मुंबई
३१ सौ. च मो. लुणिया	जंजीरा	७३ मो. ल. खिवसरा	„	११५ जे. मा. कटारिया	खरवंडी
३२ मि. रा. भटेवडा	केडगांव	७४ र. मा. ओस्तवाल	सांगली	११६ जे. धों. कटारिया	„
३३ फ. मू. शिंगी	नेवासा	७५ छो ब. गुगळे	वांबोरी	११७ हृ. त. गांधी	वाम्बोरी
३४ भा. खु. गांधी	आश्वी	७६ इं. गं. कोठारी	„	११८ मो. द. डोशी	अ. नगर
३५ ना. क. छाजेड	चकलाआंबा	७७ नें. झुं. सुराणा	राहुरी	११९ जी. मे. बोरा	वाम्बोरी
३६ उ. बा. देसरडा वकील	चाळीसगांव	७८ चां. मो. भंडारी	घोडनदी	१२० उ. बा. धाडीवाल	संगमनेर
३७ भ. झुं. गुगळे	करंजी	७९ धू. भि. फुलफगर	घोडनदी	१२१ मो. ला. मुणोत	भिंगार
३८ चां. भ. मुणोत	वांबोरी	८० चं. शो. गादिया	„	१२२ मे. दी. गांधी	लोणावला
३९ कि. बी. पटवा	पाथर्डी	८१ चां. सु. कोठारी	बेलापुर	१२३ ज. सु. गुजराथी हलवाई	मालेगांव
४० छो. ने गुगळे	लोहसर	८२ रा. पों. गांधी	रस्तापुर	१२४ मो. ज. ओस्तवाल	वाम्बोरी
४१ ही. भ्र. न. सुरपुरिया	पूना	८३ जे. शां. संघवी	उंब्राण	१२५ ने. ध. कटारिया	खरवंडी
४२ रा. भ्र. म. कोठारी	सतारा	८४ भू. रा. कोठारी	केडगांव	१२६ खु. मि. मुणोत	करंजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२७	श्री. बं. ने. पारख	संगमनेर
१२८	,, ता. रा. चोरडियाम्हा.	पिंपलगांव
१२९	,, पू. को. भंडारी	कडा
१३०	,, चु. गु. मुथा	घाटसिरस
१३१	,, गीगीबाई फिरोदिया	अ. नगर
१३२	,, न. धो. कटारिया	लोणी
१३३	,, ह. अ. चोरडिया	अकोलनेर
१३४	,, सौ. रु. झुं. कटारिया	चांदा
१३५	,, पु. प. मुथा	घाटसिरस
१३६	,, सु. प्र. ता. डोशी	अ. नगर
१३७	,, मा. ध. बोथरा	खरवंडी
१३८	,, स. मो. लुणावत	जालना
१३९	,, पु. मा. कटारिया	इचलकरंजी
१४०	,, ही. रा. भटेवडा	पूना
१४१	,, ही. क. खाटेड	पूना
१४२	सौ. शांताबाई मो. नाहर	पूना
१४३	श्री. रा. शो. टाटिया	पूना
१४४	,, फू. तु. मालू	खडकी
१४५	,, मा. रा. बाफना	वडगांव
१४६	,, ध. ही. बाफना	वडगांव
१४७	,, ह. रा. बाफना	वडगांव
१४८	श्री. आ. स. चोरडिया	खेड
१४९	,, दौ. ध. चोरडिया	पिंपळवंडी
१५०	,, रा. ला. चो रडिया	बोरीबुद्रुक

१५१	,, भा. कुं. गांधी	संगमनेर
१५२	,, चु. र. भंडारी	अश्वी
१५३	,, द. रा. गांधी	प्रवरासंगम
१५४	,, ग. न. चोपडा	खांबा
१५५	,, शो. च. भटेवडा	राजुरी
१५६	,, मि. मो. कोठारी	अहमदनगर
१५७	,, फ. आ. फिरोदिया	साकूर
१५८	,, जा. मि. भंडारी	मंचर
१५९	,, फू. र. कटारिया	संगमनेर
१६०	,, शां. प्रे. कटारिया	अहमदनगर
१६१	" उ. शं. चोपडा	साकूर
१६२	" च. लू. हिरण	सा।करवाडी
१६३	" बं. फ. बाफना	साकूर
१६४	" के. ब. कटारिया	अ. नगर
१६५	,, क. बु. फिरोदिया	साकूर
१६६	,, धा. जे. शाह	यवतमाल
१६७	,, ही. जे. चोरडिया	पूना
१६८	,, ने. चां. शिंगी	घोरपडी
१६९	श्री. रु. मा. नाहर	रांजणगांव
१७०	,, शं. भा. दूगड	अमलनेर
१७१	,, कोट व. स्था. संघ	मुंबई
१७२	,, मोहनलालजी कीमती	इन्दौर
१७३	,, भा. छ. तुरखिया	इन्दौर
१७४	,, भ. शा. दाकड	इन्दौर

१७५	,, शि. जो. सर्राफ	देवास
१७६	,, र. मु. बजाज	,,
१७७	,, इ. सांड	बडावदा
१७८	सौ. मां. लसोड	प्रतापगढ़
१७९	श्री. वि. ल. गेलडा	बंदवर…
१८०	,, स्वा. नै. भटेवडा	चाकण
१८१	,, व. स्था. श्रा. संघ	बदनोर
१८२	,, कि. मि. भलगट	भंडारा
१८३	,, कि. झु. भलगट	,,
१८४	,, कि. जं. भलगट	,,
१८५	,, ह. मि. बाफना	पांडुरणा
१८६	,, अ. मो. डांगी	भीलवाड़ा
१८७	,, भी. क. संचेती	नांदूरा
१८८	,, मो. क. झामड	पीपलगांवराजा
१८९	,, ज. खो. डोशी	इन्दौर
१९०	,, नेमीनाथ जैन	देवास
१९१	,, क. झुं गांधी	अस्व…
१९२	,, द. ओं रांका	शैलाना
१९३	,, हु. ब. दसोरिया	प्रतापगढ़
१९४	,, पा. वि. ढाबरिया	अजमेर
१९५	,, रा. पू. बूरड	शिराल…
१९६	,, हं. नाहर	अजमेर
१९७	,, ने. शा. हरकावत	अजमेर
१ ८	,, मां. भँ. बोरदिया	गुलाबपुरा
१९९	,, ज. खो.	अमरावती
२००	,, गुप्तदानी सद्गृहस्थ	

To

श्रीमान्

मुकाम

पोस्ट

जिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ अर्हम्

सम्यक् दर्शन सम्यक् चारित्र सम्यक् तप

सुधर्मा

श्री ति. र. स्था. जैन धा. प. बोर्ड, पाथर्डी की मुखपत्रिका

21/8/64

वर्ष ६) १५ आगस्त १९६४ (अङ्क १

गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय

इस अंक में

१ सुधर्मा सुवचन सुधा	....	१
२ लेना कल का नाम नहीं (कविता)	"सुधार त्यागी"	४
३ केशी गौतम संवाद	पं. शोभाचन्दजी भारिल्ल	५
४ केंद्र संचालक तथा परीक्षार्थी ध्यान दें	पं. बदरीनारायण शुक्ल (परीक्षाधिकारी)	७
५ भारतवर्ष की आर्वाचीन और प्राचीन भाषाएँ और उनका परस्पर सम्बन्ध	स्व. श्री हरगोविन्ददास त्रिकमचंदजी सेठ	८
६ आदमी का बडप्पन इस प्रकार नापा जाय !	डॉ. श्री रामचरणजी महेन्द्र M. A. P. H. D. विद्याभूषण, दर्शन केसरी	१०
७ भारतीय संगीत	पं. श्री भानुऋषिजी म. जैन सि. आचार्य	१५
८ क्या लोंकाशाह ने साधुवेष धारण किया था?	श्री अगरचन्दजी नाहटा	१६
९ ईर्यापथ-प्रतिक्रमण	श्री बन्सीलालजी भगवानदासजी कोठारी	२०
१० मलाड बम्बई समाचार	वर्द्धमान स्था. जैन श्रावक संघ मलाड बंबई	२१
११ विविध समाचार	प्रेषक-पं. विद्याभूषण मणि त्रिपाठी	२२

[सम्पा]दक-पं. बदरीनारायण शुक्ल-पं. शोभाचंद्र भारिल्ल-प्रबन्ध सम्पादक-पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवर्ण नामावली

सदुपदेशक–परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज
संस्थापक–दानवीर शाह केशवजी जवेरचन्द, जामनगरवाले, जालना

आधारस्तम्भ

१ श्री. चन्द्रभानजी रूपचंदजी डाकलिया, श्रीरामपुर (नगर)
२ ,, केशरचंदजी कचरदासजी बोरा आश्वी ,,
३ ,, सूरजमलजी कस्तूरचन्दजी गांधी अहमदनगर
४ स्व. माणकचंदजी किसनदासजी मुथा अहमदनगर
५ श्री. रा. ब कुन्दनमलजी लालचन्दजी कोठारी ब्यावर

संरक्षक

१ श्री. तिलोकचंदजी खूबचंदजी गुंदेचा चांदा (नगर)
२ ,, फकीरचंदजी उत्तमचंदजी गुगले चिचोंडी शिराळ ,,
३ ,, माणकचंदजी उत्तमचंदजी गुगले पाथर्डी ,,
४ श्रीमती शक्करबाई रतनचंदजी सुराणा द्रुग (मध्यप्रदेश)
५ श्री पन्नालालजी गुलराजजी गांधी मावावाले पूना
६ स्व. श्री. पन्नालालजी गुगले पाथर्डी के स्मारक
७ श्री. मगनीरामजी फकीरचंदजी दुधेडिया श्रीरामपुर
८ सौ. धोंडाबाई भ्र. उत्तमचंदजी संचेती पूना
९ श्री, कुन्दनमलजी कस्तूरचंदजी बोरा ,,
१० नवलमलजी सरदारमलजी पुंगलिया नागपुर
११ भिकमदास पोखरणा चै. ट्रस्ट पूना
१२ श्री. उदयरामजी हरकचन्दजी रैंदासणी बीबो

सहायक सदस्य

१ श्री. उत्तमचंदजी कचरदासजी भटेवड़ा राहू (पूना)
२ ,, बंशीलालजी अमोलकचंदजी भटेवड़ा ,, ,,
३ ,, माणकचंदजी भीवराजजी भटेवड़ा ,, ,,
४ सौ. श्रीकुंवरबाई भ्र. मूलचंदजी भटेवड़ा ,, ,,
५ श्री. प्रतापमलजी फूलचंदजी बनवट आष्टा
६ सौ. उमरावबाई भ्र. हस्तमलजी जैन शाजापुर
७ श्री. केशरीमलजी बापूलालजी जैन शुजालपुर
८ ,, रभाबाई भ्र. गणपतसिंहजी जैन ,,
९ सौ. तेजकुंवरबाई धर्मपत्नी डालचंदजी चौधरी ,,
१० श्री. मोजीलालजी भीमसिंहजी जैन ,,
११ ,, बीजराजजी जुगराजजी संचेती मलकापुर
१२ ,, तेजमलजी भीवराजजी संचेती ,,
१३ श्री. जवरीबाई भ्र. धूलजीभाई शाजापुर
१४ श्री. हिंमतलालजी सा. जैन शाजापुर
१५ ,, कनकमलजी चुन्नीलालजी गांधी चांदा
१६ ,, नारायणदासजी मोहनलालजी मंडलेचा येवला
१७ ,, भागूबाई भ्र. चंदनमलजी गादिया बेलापुर
१८ ,, मगनलाल सुंदरजी शाह अमरावती
१९ ,, हेमकुंवरबाई भ्र. कालीदासजी शाह सातारा
२० ,, मयाशंकर चत्रभुज शाह अमरावती
२१ ,, शान्तिलाल पोपटलाल काठेड अहमदनगर
२२ श्री. कचरदास मोहनलाल लोढा अहमदनगर
२३ ,, गेंदमल राजमल जैन शुजालपुर
२४ ,, लाभचन्दजी गुलाबचन्दजी चोरडिया हिंगणघाट
२५ श्री. कुंदनमलजी लुंकड की सुपुत्री सायरबाईजी बेंगलोर
२६ ,, सिमरतमलजी चुनीलालजी मुथा वांबोरी
२७ " धनराजजी मोतीलालजी कांकरिया पूना
२८ ,, खुशालचंद संपतलाल भूरट घोड़नदी
२९ ,, मोतीलालजी मोहनलालजी सिंगी पूना
३० ,, मिश्रीलालजी हस्तीमलजी दुगड घोड़नदी
३१ ,, कचरदासजी प्रकाशमलजी भलगट अहमदनगर
३२ ,, सुखरामजी प्रेमराजजी मुथा बेलापुर
३३ ,, सौ. शांताबाई बाबूलालजी रैंदासनी नशीराबाद
३४ ,, ताराचंदजी भीवराजजी भटेवडा राहू (पूना)
३५ ,, तुलसाबाईजी कोचर हिंगणघाट
३६ ,, जसराज कालाभाई लाठिया मुर्तिजापुर
३७ ,, बापूलाल प्रेमचंद संघवी अकोला
३८ ,, शाह नागजी पानाचंद बारवडा रायपुर
३९ ,, रूपचंदजी गोकुलचंदजी कोठारी कोपरगाव
४० ,, चन्दनमल नन्दरामजी गांधी श्रीरामपुर
४१ ,, दलीचन्द गुलाबचन्दजी पारख नागपुर
४२ ,, उत्तमचन्दजी चुनीलालजी मुथा वाम्बोरी
४३ ,, कचरदास रूपचंदजी कर्नावट इचलकरंजी
४४ ,, हंसराजजी गुलाबचंदजी लुणावत लोणावला
४५ ,, गेंदालालजी मोतीलालजी जैन ट्रस्ट इन्दौर
४६ ,, राजमल नन्दलाल मेहता चै. ट्रस्ट भुसावल
४७ सौ. सुगनबाई चांदमल जैन देवास
४८ श्री कालूलाल पूरालाल जैन आगर

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के लिए
प्रकाशक व मुद्रक पं० बदरीनारायण द्वारकाप्रसाद शुक्ल
मुद्रण व प्रसिद्धिस्थल श्री सुधर्मा मुद्रणालय ८३२ जूना कापड बाजार पाथर्डी, जि० (अहमदनगर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की ज्योति जगाने हेतु विविध निबन्ध–प्रवन्ध माला स्वरूप धार्मिक आध्यात्मिक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक
मासिक पत्रिका।

सुधर्मा

मूल्य
वार्षिक ६–००
१ अंकका ०–५०
卐
प्रत्येक १५ तारीख को प्रकाशित होगी।

वर्ष ६) १५ आगस्त १९६४ (अंक १

सुधर्मा–सुवचन–सुधा

जहा महा तलागस्स सन्निरुद्धे जलागमे।
उस्सिचणाए तवणाए कमेणं सोसणा भवे ॥१॥
एवं तु संजयस्सावि पावकम्मनिरासवे।
भवकोडिसंचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ ॥२॥

शब्दार्थ—जैसे नवीन जल के आगमन का मार्ग रोक देने पर और पहले के जल को उलीच देने से और सूर्य का ताप लगने पर विशाल तालाब का भी शोषण हो जाता है ॥१॥

इसी प्रकार पाप कर्मों का आस्रव रुक जाने पर संयममय जीवन व्यतीत करनेवाले के करोडों भवों के पूर्वोपार्जित कर्म तप द्वारा खिर जाते हैं ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. रत्न श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल कृत भाष्य—

भाष्य—गाथा का भाव स्पष्ट है। आगे कहे जाने वाले विषय को सुगम बनाने के लिए यहाँ दृष्टान्त का प्रयोग किया है।

तालाब चाहे कितना ही विशाल क्यों न हो पर वह भी सुखाया जा सकता है। उसे सुखाने के लिए दो उपाय हैं—प्रथम तो यह कि उसमें जिन स्रोतों से-मार्गों से पानी आता हो उन्हें बन्द करके नवीन पानी का आना रोक दिया जाय। दूसरे, पहले के विद्यमान जल को उलीच डाला जाय अथवा सूर्य के तीव्र ताप से वह सूख जाय। ऐसा करने से बडे से बडा तालाब भी सूख जाता है।

इसी प्रकार जब जीव नवीन कर्मों के आगमन के द्वार—आस्रव को बन्द कर देता है तो नवीन कर्मों का आना रुक जाता है। इस उपाय के पश्चात् क्या करना चाहिए, यह अगली गाथा में स्पष्ट किया गया है। ॥१॥

पूर्व गाथा में दृष्टान्त का कथन करके यहाँ उसका दार्ष्टान्तिक बताया गया है।

जीव तालाब के समान है। जल कर्म के समान है। जल के आगमन का मार्ग आस्रव के समान है। जल के आगमन की रुकावट संयम के समान है। उलीचना, सूर्य का ताप, तप के समान है। तालाब के जल का सूख जाना कर्मों के क्षय के समान है।

तात्पर्य यह है कि जैसे नवीन जल का आगमन रुक जाने पर और पूर्व संचित जल के सूर्य की गर्मी द्वारा सूख जाने पर तालाब जल-हीन हो जाता है, इसी प्रकार नवीन कर्मों के आगमनरूप आस्रव का निरोध कर देने पर और तप के द्वारा पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा कर देने पर जीव कर्मों से सर्वथा रहित हो जाता है।

यहाँ दो उपायों के बतानेसे यह स्पष्ट है कि इनमें से एक उपाय का अवलम्बन करने पर कर्मों का सर्वथा नाश होना संभव नहीं है।

जिस तालाब में नवीन-नवीन जल आता रहता हो उसमें से पुराने जल को उलीचने पर भी तालाब खाली नहीं हो सकता। और कल्पना कीजिए, नवीन-जल का आगमन रोक दिया गया, पर पुराना जल न सूखा, तब भी तालाब सर्वथा निर्जल न होगा। इसी प्रकार जब तक आस्रव का प्रवाह चालू रहता है तब तक आत्मा सर्वथा निष्कर्म नहीं हो सकता और जब तक पूर्व संचित कर्मों को तप के द्वारा भस्म न किया जाए तब तक भी कर्म हीन अवस्था उत्पन्न नहीं हो सकती। अतएव कर्मों का सर्वथा क्षय करने के लिए संवर और निर्जरा दोनों ही अपेक्षित हैं। इन दोनों का परम प्रकर्ष होने पर मोक्ष निष्कर्म दशा की प्राप्ति होती है।

तप निर्जरा का साधन है। जैसे ईंधन, अग्नि के द्वारा भस्म कर दिया जाता है, उसी प्रकार कर्म का ध्वंस करने के लिए तप अग्नि के समान है। करोडों भवों में संचित कर्म तपस्या के द्वारा नष्ट हो जाते हैं। यही कारण है कि श्रमणोत्तम भगवान् महावीर ने तप का स्वयं आदर किया और उसकी महिमा प्रकट की है। शास्त्र में कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धुणिया कुलियं व लेववं, किसए देहमणसणाइहिं। अविहिंसामेव पव्वए,अणुधम्मो मुणिणा पवेइओ।।

सउणी जह पंसुगुंडिया,बिहुणिय धंसपई सियं रयं। एवं दविओवहाणवं,कम्मं खवइ तवस्सि माहणे ।।

सूयगडांग, अ० २ उ० १, गा० १४-१५

अर्थात्–जैसे लेपवाली दीवाल, लेप हटाकर कृश बना दी जाती है इसी प्रकार अनशन आदि तप के द्वारा शरीर को कृश कर डालना चाहिए और अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिए। ज्ञात मुनि ने ऐसा उपदेश दिया है। जैसे पक्षिणी अपने शरीर में लगी हुई धूल, शरीर को हिलाकर झाड़ देती है, इसी तरह अनशन आदि तप करनेवाला पुरुष कर्मों को क्षय कर देता है।

यहाँ पर तप की महत्ता बतलाने के साथ हिंसा आदि रूप आस्रव के त्याग करने का भी विधान किया गया है।

शङ्का–यदि तपस्या से कर्मों का क्षय होता है तो अज्ञान पूर्वक तप करनेवाले बाल-तपस्वियों के कर्मों का भी क्षय होना चाहिए। क्या तप के द्वारा वे भी निष्कर्म अवस्था प्राप्त करते हैं ?

समाधान–अज्ञानपूर्वक किया जानेवाला तप कर्म-क्षय का कारण नहीं होता। ऐसा तप संसार-वृद्धि का ही कारण होता है। कहा भी है—

जे य बुद्धा महाभागा, वीरा सम्मत्तदंसिणो। सुद्धं तेसिं परक्कंतं, अफलं होइ सव्वसो ।।

अर्थात्–जो सम्यग्ज्ञानी, महाभाग, वीर एवं सम्यग्दृष्टि हैं उन्हीं का तप आदि अनुष्ठान शुद्ध है और उसी से मोक्ष की प्राप्ति होती है। उन महापुरुषों का तप सांसारिक फल के लिए नहीं होता।

इतना ही नहीं, शास्त्रकार तपस्या के शुद्धि के विषय में और भी कहते हैं—

तेसिं पि तवो ण सुद्धो, निक्खंता महाकुला । जन्नं वन्नं वियाणंति, न सिलोगं पवेज्जए ।।

अर्थात्–जो लोग बड़े कुल में उत्पन्न होकर अपने तप की प्रशंसा करते हैं अथवा तप के फल-स्वरूप मान-बड़ाई की अभिलाषा करते हैं उनका भी तप अशुद्ध है। साधु को अपना तप गुप्त रखना चाहिए और अपने तप की आप प्रशंशा नहीं करनी चाहिए।

तात्पर्य यह है कि तप का प्रयोजन कर्मों की निर्जरा करना है। अतएव निर्जरा के प्रयोजन से ही जो तप किया जाता है, वही उत्तम होता है। पूजा-प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि और कीर्ति की कामना से किया हुआ तप अशुद्ध है और उससे आत्मशुद्धि नहीं होती। अतः लोकेषणा का परित्याग करके यथा शक्ति शुद्ध भाव से तप करना मुमुक्ष जीव का कर्त्तव्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेना कल का नाम नहीं !

जब काम आज का नहीं हुवा,
फिर "कल-कल, "कल-कल" करना क्या ?

जब समय अभी है पड़ा हुवा,
फिर कल के बल पर अडना क्या ?

जो आज नहीं, कल कर लेंगे,
यह बात हुई क्या सोचो तो ?

तुम हार गए, झक मार गए,
क्या बात हुई, यह सोचो तो ?

जो आज छोड़ मैदान चला,
कल कौन नई सर कर लेगा ?

फिर काम बढेगा जो कल का,
एक दिन में कैसे कर लेगा ?

मत छोडो काम कभी कल पर,
कल किसने देखा, आएगा ?

जो आया भी तो क्या जाने,
वह काम नया क्या लायेगा ?

यों काम देख कर डर जाना,
हरगिज मर्दों का काम नहीं ?

जो काम आज का आज करो,
तुम लेना कल का नाम नहीं ।

"सुधार त्यागी"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केशी–गौतम संवाद

पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, ब्यावर

महामना केशी और महात्मा गौतम का संवाद जैन शासन के इतिहास की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। जिसके चित्त में समभाव है और जो सत्य का गवेषक, उसके मन की अनेक गुत्थियाँ इस संवादसे सुलझ सकती हैं।

केशी स्वामी भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के आनुयायी आचार्य थे और गौतम स्वामी भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य। दोनों परम्पराओं की कतिपय बाह्य प्रवृत्तियों में भिन्नता थी। इस कारण सामान्य साधकों के चित्त में भाँति-भाँति संशय और तर्क-वितर्क उठते थे। इस परिस्थिति से दोनों परम्पराओं के नायक परिचित थे।

एक बार श्रावस्ती नगरी में दोनों महापुरुषों का मिलन हो गया। दोनों की आत्मा में सरलता, भद्रता और निरभिमान वृत्ति थी। उनके हृदय में साम्प्रदायिकता का विष व्याप्त नहीं था, जिन शासन में अलग-अलग दो सम्प्रदाय रहे, यह किसी को अभीष्ट नहीं था। वे जैन संघ को एक और अखण्ड रूप में देखना चाहते थे। सच्चा धार्मिक और शासनप्रेमी अपने अहङ्कार का पोषण करने के लिए संघ में अनेकता को सहन नहीं कर सकता। वह संघ की एकता के लिए अपने आग्रह और अपनी परम्परा का भी मोह छोड़ देता है।

मोक्ष की प्राप्ति अन्तःकरण की निर्मलता कषाय त्याग, वैराग्य, संयम और तप से होती है। बाह्य क्रिडा-काण्ड उसका सहायक मात्र है। वेष मुक्ति का कारण नहीं है।

यही इस संवाद का प्रधान आशय है। इसका विस्तृत वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के २३ वें अध्ययन में है। गौतमस्वामी, केशीस्वामी के पास जाते हैं। केशीस्वामी उनका यथोचित आदर करते हैं। बैठने को आसन प्रदान करते हैं। इस स्नेहमय और पारस्परिक आदर से परिपूर्ण अपूर्व मिलन को देखने के लिए हजारों की भीड़ इकट्ठी होती है। केशीस्वामी प्रश्न करते हैं, गौतमस्वामी उत्तर देते हैं।

केशी– महाभाग ! मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।

गौतम– भगवन् ! जो इच्छा हो पूछिए।

केशी– भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर का ध्येय एक है–मोक्ष। फिर एक ने चार और दूसरे ने पाँच महाव्रतों की प्ररुपण क्यों की है ?

गौतम– भ० आदिनाथ के शिष्य-साधु ऋजु और जड़ थे–उनका हृदय सरल था किन्तु समझ कम थी। भ० महावीर के साधु वक्र और जड़ हैं–उनके हृदय में सरलता नहीं और ठीक समझदारी भी नहीं है। मध्य के बाईस तीर्थङ्करों के साधु ऋजु और प्राज्ञ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे-सरल और बुद्धिमान् थे। इस कारण आदि और अन्त के तीर्थङ्करों में पाँच महाव्रतों की और मध्य के तीर्थङ्करों ने चार महाव्रतों की प्ररुपण की है।

केशी–बहुत अच्छा, गौतम ! आपकी बुद्धि धन्य है। मेरा संशय दूर हो गया। और भी बतलाइए– प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर ने अचेलक धर्म और मध्यवर्ती तीर्थङ्करों ने सचेल धर्म की प्ररूपण क्यों की है ?

गौतम– साधुओं की ऋजुता और वक्रता के कारण ही यह भेद प्ररुपण है। मध्य के तीर्थङ्करों के साधु इतने सरल और बुद्धिमान थे कि सचेल होते हुए भी वे वस्त्र के बन्धन से मुक्त रहते थे। वेष का प्रयोजन संयम की रक्षा और लोकप्रतीति है। तीर्थ-ङ्करों ने जैसा समय देखा वैसे ही नियम बना दिए। असली लिंग तो सम्यग्ज्ञान दर्शन और चारित्र है। बाह्य वेष तो व्यवहार मात्र है।

केशी–अनेक शत्रुओं के मध्य में स्थित रहकर आप किस प्रकार विजयी होते हैं ?

गौतम– जिसने एक को–मन को–जीत लिया वह पाँच–इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेता है और पाँच को जीतनेवाला दसों (पाँच इन्द्रिय, चार कषाय और मन) को जीत लेता है। और इन दस को जीतना समस्त शत्रुओं को जीतना है।

केशी–संसार में बहुत–से प्राणी बन्धनों से जकडे दिखाई देते हैं, किन्तु महामुनि ! आप बन्धनहीन और लघुभूत होकर विचर रहे हैं। इसका क्या कारण है ?

गौतम–राग, द्वेष, मोह और अनुराग आदि तीव्र एवं भयंकर बन्धन हैं। इन बन्धनों को तोडकर मैं भगवान् की आज्ञा के अनुसार विचरता हूँ।

केशी–अन्तर में जो लता उगती है और जिसमें विषमय फल लगते हैं, उसे आपने किस प्रकार उखाड़ फेंका है ?

गौतम–भगवान् ! वह लता तृष्णा ही है–बडी भयानक और भयानक फल उत्पन्न करनेवाली! उसे उखाड़ फेंक कर अब मैं निर्द्वन्द होकर विचरण करता हूँ।

केशी–गौतम! संसार में एक भयानक आग प्रज्व-लित हो रही है जिसके कारण प्राणी संतप्त हो रहे हैं। आप उसे बुझाने में किस प्रकार समर्थ हो सके ?

गौतम–वह आग चार कषाय ही हैं। श्रुत, शील और तपरूपी जल से मैंने उसका शमन किया है। अतएव वह मुझे संताप नहीं पहुँचाती।

केशी–यह अति साहसी और दुर्दम अश्व इधर-उधर दौड़–धूप करता ही रहता है। आप उस पर आरूढ़ हैं फिर भी वह आप का हरण नहीं कर पाता? इसका क्या कारण हैं?

गौतम–यह मन ही साहसिक, पुष्ट और भयानक अश्व है। मैं श्रुत की लगाम लगाकर इसे इधर-उधर दौड़ने से रोके रखता हूँ। धर्म शिक्षा से यह मन–अश्व वशीभूत हो जाता है।

केशी–जगत् में अनेक कुपथ हैं, जिनपर चलकर लोग अपना विनाश कर रहे हैं। गौतम ! यह कुपथ आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। इसका कारण ?

गौतम–कौन कुपथ पर चल रहे हैं और कौन सुपथ पर चल रहे हैं, यह तथ्य मैंने विदित कर लिया है, अतएव कुपथ मेरा अनिष्ट नहीं कर पाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं जानता हूँ कि जिन भाषित ही मार्ग सन्मार्ग है और कुप्रभावचनिकों का मार्ग उन्मार्ग है।

केशी—मुने! जल के महा प्रवाह में बहते जीवों के लिए आप किसे द्वीप समझते हैं, जो उनकी रक्षा कर सके ?

गौतम—महात्मन्! जरा-मरण रूपी वारि-वेग में बहते प्राणियों के लिए धर्म ही वह द्वीप है जो उन्हें शरणदाता है, त्राण है और उनकी रक्षा कर सकता है।

केशी--एक महा सागर है जिसमें भीषण तरंगे उठती-उठती रहती हैं। आप छोटी सी नौका पर आरूढ़ होकर कैसे उसे पार करेंगे ?

गौतम—जो नौका छिद्रहीन होती है वह पारगामिनी होती है, सछिद्र नौका बीच में ही डूब जाती है। यह शरीर नौका, आत्मा नाविक और संसार महासागर है। महर्षिजन इसे पार करते हैं।

केशी—मुनिवर! घोर अन्धकार फैला हुवा है। लोगों को कुछ सूझ नहीं पडता। सूर्य का उदय कब होगा ?

गौतम—जन्म-मरण का अन्त करनेवाले सर्वज्ञ वीतराग तीर्थङ्कर वर्द्धमान रूप सूर्य का उदय हो चुका है उन्हीं के ज्ञानालोक से अन्धकार का अन्त आएगा।

केशी—मुने! शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीडित प्राणियों के लिए क्षेत्र, शिव एवं अनाबाध स्थान आप किसे मानते हैं ?

गौतम—एक ऐसा ध्रुव स्थान है जो लोक के अग्रभाग पर है और जहाँ पहुँचना सरल नहीं है, वहाँ जरा नहीं, मृत्यु नहीं, व्याधि नहीं, तथा वेदना भी नहीं है। वहाँ पहुँच जाने पर जीव सब प्रकार के दुःखों से विमुक्त हो जाता है।

केशी—हे सर्व संशयों से अतीत ? समस्त श्रुतों के महासागर ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

(गौतमस्वामी के समाधानों से सन्तुष्ट होकर चार ज्ञान के धारक महामुनि केशीस्वामी पाँच महाव्रतादिवाली भ० महावीर की परम्परा में सम्मिलित हो गए।)

केन्द्र संचालक तथा परीक्षार्थी ध्यान दें........

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की आगामी नवम्बर मास में सम्पन्न होनेवाली परीक्षाओं के लिए आवेदन पत्र ३१ अगस्त तक अवश्य मँगालें और एक केन्द्र के सभी परीक्षार्थियों के आवेदन पत्र एक साथ ही रजिष्टरी से भेजें। परीक्षार्थियों के आवेदन पत्र २१ सितम्बर तक बोर्ड कार्यालय में अवश्य आ जाने चाहिए, जिससे आवश्यक जाँच के बाद स्वीकृति पत्र १० अक्टूबर तक कार्यालय से भेजे जा सकें। नियत अवधि के पश्चात् आवेदन पत्र आने पर क्रमाङ्क लगाने में असुविधा होगी, और परीक्षासम्बन्धी कार्यक्रम में व्यत्यय आने की सम्भावना उपस्थित होगी। केंद्रों के कार्य समय पर होते रहने से बोर्डकार्यालय के कार्यकर्ताओं को अपने कार्य-सम्पादन में सुविधा रहेगी और इस प्रकार समय-परिपालन के परिणाम परीक्षाविधि को प्रगतिशील बनाने में सहायक सिद्ध होंगे।

बदरीनारायण शुक्ल
'परीक्षाधिकारी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत वर्ष की आर्वाचीन और प्राचीन भाषाएँ और उनका परस्पर सम्बन्ध

स्वर्गीय श्री हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द सेठ का अभिमत संकलित

(गताङ्क से आगे)

पाणिनि ने संस्कृत भाषा को जो लौकिक भाषा कहा है और पतञ्जलि ने इसको जो शिष्ट-भाषा का नाम दिया है, उसका मतलब यह नहीं है कि उस समय प्राकृत भाषा थी ही नहीं, परन्तु उसका अर्थ यह है कि उस समय के शिक्षित लोगों के आपस के वार्तालाप में, बर्तमान काल के पण्डित लोगों में संस्कृत की तरह और भिन्न देशीय लोगों के साथ के व्यवहारमें (Lingua Franca) के माफिक संस्कृत भाषा व्यवहृत होती थी। किन्तु बालक, स्त्रियां और अशिक्षित लोग अपनी मातृ-भाषा में बातचीत करते थे जो संस्कृत भिन्न साधारण कथ्य भाषा थी। साधारण कथ्य भाषा किसी देश में किसी काल में साहित्य की भाषा से गृहीत नहीं होती, बल्कि साहित्य-भाषा ही जन-साधारण की कथ्य भाषा से उत्पन्न होती है। इसलिए, 'संस्कृत से प्राकृत भाषा की उत्पत्ति हुई है' इसकी अपेक्षा क्या तो वैदिक संस्कृत और क्या लौकिक संस्कृत, दोनों ही उस-उस समय की प्राकृत भाषाओं से उत्पन्न हुई हैं' यही सिद्धान्त विशेष युक्ति-संगत है। आज-कल के भाषा-तत्त्वज्ञों में इसी सिद्धान्तका अधिक आदर देखा जाता है। यह सिद्धान्त पाश्चात्य विद्वानों का कोई नूतन आविष्कार नहीं है, भारतवर्ष के ही प्राचीन भाषा-तत्त्वज्ञों में भी यह मत प्रचलित था यह निम्नोद्धृत कतिपय प्राचीन ग्रन्थों के अवतरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है। रुद्रट-कृत काव्यालङ्कार के एक श्लोक की व्याख्या में ख्रिस्त की ग्यारहवीं शताब्दी के जैन विद्वान् नमि साधु ने लिखा है कि–

"प्राकृतेति। सकल जगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वचन-व्यापारः प्रकृतिः, तत्र भवं सैव वा प्राकृतम्।

'आरिसवयणे सिद्धं देवाणं अद्धमागहा वाणी' इत्यादि-वचनाद् वा प्राक् पूर्वं कृतं प्राक्कृतं बाल-महिलादि-सुबोधं सकलभाषानिबन्धनभूतं वचमुच्यते। मेघनिर्मुक्तजलमिवैकस्वरूपं तदेव च देशविशेषात् संस्कारकरणाच्च समासादित विशेषं सत् संस्कृताद्युत्तरविभेदानाप्नोति। अतएव शास्त्रकृता प्राकृत मादौ निर्दिष्टं तदनु संस्कृतादीनि पाणिन्यादिव्याकरणोदितशब्दलक्षणेन संस्करणात् संस्कृतमुच्यते।

इस व्याख्या का तात्पर्य यह है कि– 'प्रकृति शब्द का अर्थ है लोगों का व्याकरण आदि के संस्कारों रहित स्वाभाविक वचन-व्यापार, उससे उत्पन्न अथवा वहीं है प्राकृत। अथवा, 'प्राक्-कृत' पर से प्राकृत शब्द बना है, 'प्राक्-कृत' का अर्थ है 'पहले किया गया'। बारह अंग-ग्रन्थों में ग्यारह अंग-ग्रन्थ पहले किए गये हैं और इन ग्यारह अंग-ग्रन्थों की भाषा आर्ष-वचन में–सूत्र में–अर्धमागधी कही गई है जो बालक, महिला आदि को सुबोध–सहज–गम्य है और जो सकल भाषाओं का मूल है। यह अर्धमागधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा ही प्राकृत है। यही प्राकृत, मेघ-मुक्त जल की तरह, पहले एकरूप वाला होने पर भी, देश-भेद से और संस्कार करने से भिन्नता को प्राप्त करता हुआ संस्कृत आदि अवान्तर विभेदों में परिणत हुआ है अर्थात् अर्धमागधी प्राकृत से संस्कृत और अन्यान्य प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति हुई है। इसी कारण से मूल ग्रन्थकार (रुद्रट) ने प्राकृत का पहले और संस्कृत आदि का बाद में निर्देश किया है। पाणिन्यादि व्याकरणों में बताए हुए नियमों के अनुसार संस्कार पाने के कारण संस्कृत कहलाती है।'

"अकृत्त्रिमस्वादुपदैर्जनं जनं जिनेन्द्र साक्षादिव पासि भाषितैः" (द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका १, १८)।

"अकृत्रिमस्वादुपदांजैनींवाचमुपास्महे।"

(हेमचन्द्रकाव्यानुशासन, पृष्ठ १)।

उक्त पद्यों में क्रमशः महाकवि सिद्धसेन दिवाकर और आचार्य हेमचन्द्र जैसे समर्थ विद्वानों का जिन-देव की वाणी को 'अकृत्रिम' और संस्कृत भाषा को 'कृत्रिम' कहने का भी रहस्य यही है कि प्राकृत जन-साधारण की मातृभाषा होने के कारण अकृत्रिम स्वाभाविक है और संस्कृत भाषा व्याकरण के संस्कारूप बनावटीपन से पूर्ण होने के हेतु कृत्रिम है।

केवल जैन विद्वानों में ही यह मत प्रचलित न था, ख्रिस्त की आठवीं शताब्दी के जैनेतर महाकवि वाक्पतिराज ने भी अपने 'गउडवहो' नामक महा-काव्य में इसी मत को इन स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है—

सयलाओ इमं वाया विसंति एत्तो य णेंति वायाओ।
एंति समुद्दं चिय णेंति सायराओ च्चिय जलाइं॥९३॥

अर्थात् इसी प्राकृत भाषा में सब भाषाएँ प्रवेश करती हैं और इस प्राकृत भाषा से ही सब भाषाएँ निर्गत हुई हैं; जल (आ कर) समुद्र में ही प्रवेश करता है और समुद्र से ही (बाष्प रूप से) बाहर होता है। वाक्पति के इस पद्य का मर्म यही है कि प्राकृत भाषा की उत्पत्ति अन्य किसी भाषा से नहीं हुई है, बल्कि संस्कृत आदि सब भाषाएँ प्राकृत से ही उत्पन्न हुई हैं।

ख्रिस्त की नवम शताब्दी के जैनेतर कवि राज-शेखर ने भी अपनी बाल रामायण में नीचे का श्लोक लिखकर यही मत प्रकट किया है:—

"यद् योनिः किल संस्कृतस्य सुदृशां जिह्वासु यन्मोदते,
यत्र श्रोत्रपथावतारिणि कटुर्भाषाक्षराणां रसः।
गद्यं चूर्णं पदं पदं रतिपतेस्तत् प्राकृतं यद्वच-स्तांल्लाटाँल्ललितांगि पश्यनुदती दृष्टेर्निमेषव्रतम्॥" (४८, ४९)।

जैन और जैनेतर विद्वानों के उक्त वचनों से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल के भारतीय भाषा-तत्त्वज्ञों में भी यह मत प्रबल रूप से प्रचलित था कि प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से नहीं है।

प्राकृत भाषा लौकिक संस्कृत से उत्पन्न नहीं हुई है इसका और भी एक प्रबल प्रमाण है। वह यह कि प्राकृत के अनेक शब्द और प्रत्ययों का लौकिक संस्कृत की अपेक्षा वैदिक भाषा के साथ अधिक मेल देखने में आता है। प्राकृत भाषा साक्षाद्रूप से लौकिक संस्कृत से उत्पन्न होने पर यह कभी संभव-पर नहीं हो सकता। वैदिक साहित्य में भी प्राकृत के अनुरूप अनेक शब्द और प्रत्ययों के प्रयोग विद्य-मान हैं। इससे यह अनुमान करना किसी तरह असंगत नहीं है कि वैदिक संस्कृत और प्राकृत ये दोनों ही एक प्राचीन प्राकृत भाषा से उत्पन्न हुई है और यही इस सादृश्य का कारण है। वैदिक भाषा और प्राकृत सादृश्य के कतिपय उदाहरण हम नीचे उद्धृत करते हैं, ताकि उक्त कथन की सत्यता में कोई संदेह नहीं हो सकता। (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:o: आदमी का बडप्पन इस प्रकार नापा जाय ? :o:

(लेखक—डॉक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्. ए; पी. एच्. डी. विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)

मनुष्य के मूल्याङ्कन की सच्ची कसौटी

सेठ लक्ष्मीचन्दको अपने धनका बडा अभिमान है। उनसे बातचीत होने लगी तो बोले, 'आदमी वह बड़ा, जिसके पास ढेर-के-ढेर रुपये हों, तिजोरियाँ आभूषणोंसे भरी हों, खूब जमीन-जायदाद हों, बडी फर्मों में शेयर हों, व्यापार धड़ाधड़ रुपया बरसाता हो।'

मैं सोचता रहा कि शायद सेठ लक्ष्मीचन्दका दृष्टिकोण ही ठीक हो, पर उस दिन मिल गये बाँके पहलवान। हमने पूछा, 'कहिये, आदमीका बड़प्पन किस प्रकार नापा जाय ?'

वे तपाकसे बोले, 'कितना आसान सवाल है। अरे भाई, जिसके शरीर में ताकत है, वही बड़ा है। मनुष्यकी सबसे बडी इच्छा है कि वह शक्तिशाली बने। माँ अपने बेटेको मजबूत चाहती है, पत्नी पतिको उसकी ताकतसे बड़ा मानती है। बलवान् बनो। लो उस्तादका गंडा बाँधो। अकल, जाति, बिरादरी, गुण-कर्म कुछ भी कामके नहीं हैं। बड़ा बनना है तो बस मजबूत बनो, मुहल्ले-मुहल्ले में स्कूल-कालेजों की जगह अखाडे चलाओ। लाठी, बल्लम, लेजिम, डंबल, मुग्दर, लोहे के गोले उठाना, लाठी चलाना, घुमाना फेंकना और मारना सीखो।'

पहलवानके दृष्टिकोणपर हम बहुत विचार कर ही रहे थे कि सिनेमा के गीत गुनगुनाते, बनाव-शृंगार किये अभिनेता मुकुल मिल गये। मुकुलजी का सिनेमाके जगत् में बडी लोकप्रियता है। उससे भी हमने अपना सवाल दुहराया।

अभिनेता बोले, 'सुन्दर बनो, अरे यार, बड़ा बनना है, दुनिया में कुछ नाम कमाना है तो खूबसूरत बनो। मुझे देखो, रोज आइने के सामने घंटों बैठ साज-सँवारकर फैशन बना पूरे बनाव-शृंगार से पर्देपर आता हूँ, सदा सिनेमा के रंगीन मस्ताने गीत गाता हूँ फिर मुझमें सुन्दरता क्यों न आयेगी ? सुन्दरता ही आदमी के बड़प्पन की कसौटी हो सकती है।'

मेरा मन तो भानमती का पिटारा बन गया। एक कहता है, आदमी अपने रुपये से बड़ा बनता है, दूसरा शक्ति को महानता की निशानी मानता है, तो तीसरा सौन्दर्य-यौवन और बाह्य आकर्षण को मनुष्य के मूल्याङ्कनकी कसौटी मानता है।

आखिर बड़ा कौन है ? हम किसे महान् मानें और किस दिशा में बढें ? वह क्या आदर्श हो सकते हैं जिनके अराधना से समाज और मानवता की उत्तरोत्तर उन्नति और विकास हो सकता है ?

मनुष्यका सही मूल्यांकन—एक बडी समस्या

आदिकालसे हमारे विचारक मनुष्यके बड़प्पनकी

(प्रस्तुत लेख समयोचित है, परन्तु इसकी प्रत्येक पंक्ति से सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। —सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कसौटी तलाश करते रहे हैं। कोई धन, कोई बल, कोई सौन्दर्यको मनुष्यकी श्रेष्ठताकी निशानी मानते रहे हैं।

भारतीय चिन्तकों, विचारकों और तत्त्ववेत्ताओंने इस प्रश्नपर बहुत बारीकीसे सोचा है। लघुता और 'महानताके प्रश्नपर बहुत कुछ कहा है। महाभारत भागवत, पुराण, गीता, उपनिषद्, वेद इत्यादि ग्रन्थोंमें स्थान-स्थानपर ऐसे बहुमूल्य वाक्य भरे पड़े हैं, जिनमें मनुष्यकी श्रेष्ठताकी कसौटी स्पष्ट की गयी है।

इन सब ग्रन्थोंका निचोड़ यह है कि मनुष्यकी सूरत-शक्ल, रुपया--पैसा, अधिकार-प्रभाव इत्यादि कोई भी बड़प्पनकी निशानी नहीं है। रुपया तो सांसारिक दृष्टिसे चतुर व्यक्तियों, व्यापारियों, पूंजीपतियों, कालाबाजार करने तथा रिश्वत लेनेवालों, चोर-डाकुओं, वेश्याओंके पास भी बहुत होता है। जमीन-जायदाद, मकान-मोटर, भरी हुई तिजोरियाँ हुंडी, प्रापर्टी संसारमें असंख्य मनुष्योंके पास अनाप-शनाप भरे पड़े हैं। सट्टा-फाटका, व्याज, कालाबाजार और रिश्वतसे आजका कंगाल भी कलका साहूकार बन जाता है। इसलिए धन कभी भी बड़प्पनकी कसौटी नहीं रहा है।

रूप-यौवन-सौन्दर्य कितने दिन रुकते हैं? किसके रुके हैं? इतिहासके पृष्ठोंमें एक-से-एक सुन्दर स्त्री-पुरुषोंका उल्लेख मिलता है पर मौतके एक साधारणसे झटकेने उनका सौन्दर्य नष्ट कर दिया। बुढापा वह बला है, जो खूबसूरतसे खूबसूरत इन्सानको कुरूपतामें बदल देता है।

और शारीरिक शक्ति? मनुष्यकी ताकत हमेशा घटती-बढती रहती है। भीम तथा रुस्तम-जैसे बलशाली महान् पुरुष भी न रहे! तो हमारी क्या गिनती है! पहलवानलोग चार-चार सेर दूध, पाव-पावभर घी-मक्खन हजम कर जाते हैं, कसरत करनेवाले चार-चार घंटे डंड-बैठक, मुग्दर, सूर्यनमस्कार, कुश्ती लड़ते रहते हैं। शक्ति-कामना एक मृगतृष्णा ही है। शारीरिक दृष्टिसे मोटे-तगड़े आदमियोंको कौन बड़ा कह सकता है? इसी प्रकार उच्च कुल, पुराने प्रसिद्ध परिवार, पहुँच, अधिकार, शिफारिश, मिलीभगत इत्यादि सब तुच्छ तरीकोंसे कोई बड़ा नहीं हो सकता। कलक्टरका लड़का कलक्टर या चपरासीका लड़का चपरासी होना जरूरी नहीं है। इसी प्रकार किसी उच्च या धनी वंश में उत्पन्न होनेवाले सभी व्यक्ति अपने पूर्वजों के समान ही अच्छे और श्रेष्ठ हों, यह कोई आवश्यक नहीं है।

लघुता और महानता को यों नापा जाय

हिंदू-धर्म और भारतीय संस्कृति जिस तत्त्व को सर्वाधिक महत्ता देती रही है, वह शील, गुण, योग्यता, आचार-विचार और लोकोपकारका धन है। हमारे यहाँ ऐसे अनेक विचारक, कवि, विद्वान्, समाजसेवी, तत्त्वज्ञानी हुए हैं, जिनके पास एक पैसा भी नहीं था या जिनके जेब ही नहीं थी, फिर भी वे बड़े भारी धनवान् थे। ज्ञानकी समृद्धि सदा उनके पास थी।

ये गुणी व्यक्ति इतने बड़े धनवान् हैं कि उनकी समता समाजके बड़े-बड़े पूंजीपति, आलीशान इमारतोंमें निवास करनेवाले कदापि नहीं कर सकते। जिनके बड़ी-बड़ी गगनचुम्बी इमारतें, जमीनें-जायदादें, वाह्य टीपटाप, विपुल ऐश्वर्य, हाथी, मोटर इत्यादि कुछ भी नहीं थे, पर वे आज भी इतने महान् हैं कि उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।

धनवान् वास्तवमें कौन है?

लार्ड कालिंगवुडका उत्तर सुन लीजिए, 'दूसरोंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोना-चाँदीके टुकडोंपर मरने दो; मैं तो बिना पैसेके अमीर हूँ; क्योंकि मैं जो थोडा-सा धन कमाता हूँ; नेकी और ईमानदारीसे कमाता हूँ।'

और लीजिए सिसरो क्या कह रहे हैं, 'मेरे पास थोडेसे ईमानदारीके साथ कमाये हुए पैसे हैं; परन्तु ये मुझे करोडपतियोंसे भी अधिक आनन्द देते हैं।।

जिसका हृदय उदार है, जन-जनके कल्याणके लिये जो सदैव तैयार है, जिसका मन पवित्र है, जिसके पास योग्यता और अच्छे गुण-कर्म हैं, यथार्थमें वही धनवान् है, वही महान् है । पूजनीय है, वन्दनीय है ।

महर्षि दधीचि, महामुनि वशिष्ठ, महाकवि वेदव्यास, वाल्मीकि, महाकवि चैतन्यमहाप्रभु, तुलसीदासजी, भक्तप्रवर सूरदास, गुरु रामदास, महान् विचारक कबीर इत्यादि विद्वान् बिना पैसेके अमीर थे ।

रुपये-पैसे जैसे सांसारिक वैभवोंवाली क्षणिक अमीरीकी शान गाँठनेवाले असंख्य आदमी इस दुनियामें उपजे और समा गये हैं, किन्तु उपर्युक्त संत विचारक और कवि अपने अमर ग्रन्थोंके माध्यमसे आज भी जीवित हैं । ये बिना पैसेके बडे अमीर थे ।

ये विद्वान् बताया करते थे कि मनुष्यका सब आवश्यक भोजन मुख द्वारा ही अंदर नहीं जाता और न जीवन को समुन्नत श्रेष्ठ और अमर बनानेवाली सब वस्तुएँ पैसे से खरीदी जा सकती हैं ।

ईश्वर ने हमारी जीवनरूपी पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर अमूल्य रहस्यों को अङ्कित कर रखा है । यदि हम शील, गुण और कर्मों की श्रेष्ठता को पहचान लें, तो जीवन को प्रकाशपूर्ण बना सकते हैं ।

तुलसीदासजी को कभी आलीशान महल न मिला था । सूरदासजी शायद आयुपर्यन्त कुटिया में निवास करते रहे होंगें, महात्मा कबीर कच्चे मकान में कपडा बुनते रहे, गुरु नानकदेवजी सदा सादगी का जीवन बिताते रहे और अपने अमूल्य विचार फैलाते रहे, स्वामी दयानन्दजी को कभी जीवन का विलास न मिला । ये महान् आत्माएँ झोंपडियों में रहकर संसार में अपने गुण, सत्कर्म और सद्विचार का प्रकाश फैलाते रहे । एक विशाल हृदय और उच्च आत्मावाला विद्वान् झोंपडी में रहकर भी अपनी विद्या और बुद्धि से रत्नों की जगमगाहट पैदा करेगा ।

जो व्यक्ति लोकजीवनके सुधार, समाज-सेवा और परोपकारमें प्रवृत्त है, वह अपने गुण-कर्मकी उच्चता के कारण इस लोकमें भी धनी है तथा परलोकमें भी अमीर है, भले ही उसके पास सोना-चाँदीका अभाव हो । यदि आप विनयशील, प्रेमी, निःस्वार्थ और पवित्र हैं तो विश्वास कीजिए आप अनन्त धनके स्वामी हैं ।

जिसके पास पैसा नहीं है, वह गरीब कहा जाता है, परन्तु जिसके पास केवल पैसामात्र है, अच्छे गुण, शुभकर्म, सद्बुद्धि, ऊँची योग्यता, दृढ चरित्र और सदाचार नहीं है, वह उससे भी अधिक कंगाल है ।

क्या आप सद्बुद्धि और सदगुणों को धन नहीं मानते ?

अष्टावक्र आठ जगहसे टेढे थे और धनहीन थे, पर जब महाराज जनककी सभामें जाकर उन्होंने अपनी विद्वता और उच्च गुणोंका परिचय दिया, तो गुणोंसे प्रभावित होकर राजा उनका शिष्य हो गया ।

गुरु द्रोणाचार्य जब धृतराष्ट्रके शाही दरबारमें पहुँचे, तो उनके शरीर पर ठीक तरहके वस्त्रतक न थे । कोई कह नहीं सकता था कि यह व्यक्ति इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणी हो सकता है; लेकिन जब राजाको उनकी विद्या-बुद्धि और कुशलताका पता चला, तो उन्हें राजकुमारोंको राजगुरुका सम्मानपूर्ण पद मिला था।

महात्मा डायोनीज़के आध्यात्मिक वैभवसे दिग्विजयी सिकन्दर बड़ा प्रभावित हुआ। उसने मन-ही-मन अनुभव किया कि सैनिक सफलता क्षणिक है। उसने बड्प्पन प्राप्त करनेके लिये जो रक्तपात, हिंसा, दमन और बर्बरता की है, वह व्यर्थ रही है। बड़प्पन कहीं है, तो वह महात्मा डायोनीजके ही पास है। वह एक दिन उनके पास गया और हाथ जोड़कर आत्म-समर्पण करते हुए बोला—

'महात्मन् ! मैं आपको बडें श्रद्धाभाव से देखता हूँ। श्रद्धाप्रसूनके रूपमें आपको कोई भेंट प्रस्तुत करना चाहता हूं। कृपया बतलाइए, गुरुदक्षिणाके रूपमें कौन-सी चीज हाजिर करूँ;'

डायोनीज कुछ देर सोचते रहे। अपनेको महान् समझनेंवाला सिकन्दर उनके सामने ऐसे खडा था, जैसे सिंहके सामने बकरी।

महात्मा बोले, 'सिकन्दर ! हिंसा, हत्या, कत्ल, रक्तपात, आतङ्क आदि पाशविक तरीकोंसे कोई बडा नहीं होता। महानता मनुष्यकी विद्वत्ता, शील, गुण और अच्छे कर्मोंसे ही नापी जाती है। तूने अपना सारा जीवन पाप ही इकट्ठा किया है। अच्छा, मेरी धूप मत रोक और एक ओर खड़ा हो जा। वह प्राकृतिक चीज मुझसे मत छोन, जो तू मुझे अपने वैभवसे नहीं दे सकता।'

सिकन्दर उत्तर सुनकर स्तब्ध रह गया। उसने एक आह भरते हुए कहा, 'हाय, मैंने आतङ्कद्वारा बड़प्पन प्राप्त करनेमें ही जीवन समाप्त कर दिया। यदि मैं सिकन्दर न होता, तो डायोनीज ही होना पसंद करता।'

गुरु गोविन्दसिंह, वीर हकीकतराय, छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप आदि वीर अपने उच्च गुणों तथा पवित्र कर्मोंके कारण ही बडे माने जाते हैं। उन्होंने क्षुद्र सांसारिक आदर्शोंके लिये कभी भी यह जीवन नष्ट नहीं किया था।

माननीयगोखलेसे एक बार एक सम्पन्न व्यक्तिने पूछा, 'आप इतने बडे राजनीतिज्ञ होते हुए भी गरीब का जीवन क्यों व्यतीत करते हैं;'

उन्होंने उत्तर दिया, 'मेरे लिये गुण-कर्मोंकी उच्चता ही मनुष्यके बड़प्पनकी कसौटी है। पैसा जोड़नेके लिये जीवन-जैसी महत्त्वपूर्ण वस्तुका अधिक भाग नष्ट करनेमें मुझे कोई बुद्धिमत्ता मालूम नही होती।'

फ्रेंकलिनसे एक बार उनका एक मित्र यह पूछने गया 'मैं अपना धन कहाँ रक्खूँ ;'

उन्होंने उत्तर दिया, 'तुम अपनी थैलियोंको अपने सिरके अंदर उलट लो। (अर्थात् अपनी ज्ञानवृद्धि कर लो) तो उस धनको कोई नहीं चुरा सकेगा।'

कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः।
त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः।
स्वधर्मान् नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः।
हिंसानृतप्रिया लुब्धः सर्वकर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः॥
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः।
धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते॥
इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात् त्वज्ञानतां गताः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शान्तिपर्व, मोक्षधर्म ० १८८ । ११-१५)

अर्थात् मनुष्यों ! याद रक्खो, वर्णों में कोई शारीरिक विभिन्नता नहीं । सब आदमियोंके शरीर एक-से हैं । (स्वेद, मूत्र, श्लेष्मा, पित्त और रक्त सबके शरीरमें प्रवाहित हो रहे हैं ।)

समस्त जगत्को ब्रह्माने पहले ब्राह्मणमय ही सृष्ट किया था । सब ही अच्छे थे । सबमें पवित्र गुणकर्म थे ।

लेकिन बादमें सभी लोग कर्मानुसार नाना वर्णोंको प्राप्त हुए । पहले सब ही ब्रह्मण थे । फिर जो ब्राह्मण काम-भोगप्रिय, तीक्ष्णस्वभाव, क्रोधी, साहस प्रिय थे और स्वधर्मका त्याग करके राजसिक लोहित वर्ण के आदमी हो गये, उन्हें क्षत्रिय कहा गया ।

गोरक्षण-वृत्ति ग्रहण करके जो कृषिजीवी हुए वे स्वधर्मत्यागी पीले रंगवाले वैश्य हुए ।

जो ब्राह्मण हिंसाप्रिय, अनृतप्रिय, लोभी और सर्व कर्मोपजीवी हो गये, वे सफाईका काम करनेवाले काले रंगके व्यक्ति शूद्र कहलाये ।

इस प्रकार गुण, कर्म और स्वभावकी विभिन्नता के कारण पृथक्-पृथक् ब्राह्मणलोग ही वर्णान्तरको प्राप्त हुए । अतः उनके लिये शुभ क्रिया और धर्म नित्य विहित है, निषिद्ध नहीं ।

इन चारों वर्णोंको ज्ञानमें समान अधिकार है । ब्रह्माका यही पूर्वविधान है । लोभके कारण ही लोग अज्ञानको प्राप्त होते हैं ।

अच्छे गुण, शुभ कर्म और मधुर स्वभावसे मनुष्य ऊँचा उठाता है और बड़ा बनता है । कहा गया है—

एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा ।
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतांव्रजेत ॥

अर्थात् 'याद रखिये, सदाचार और सत्कर्मसे शुद्र भी ब्राह्मणका गौरव प्राप्त करता है और वैश्य क्षत्रिय होता है ।'

एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः ।
शूद्रोऽप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः ॥

अर्थात् 'सत्कर्मके फलसे आगमसम्पन्न शूद्र सुसंस्कृत होकर द्विजत्व प्राप्त करता है ।'

जहाँ एक ओर अच्छे गुण-कर्मसे नीची जातिवाले व्यक्ति ऊँचे उठ सकते हैं, यहाँ गंदे कार्यों और दूषित चरित्रसे उच्च वर्ण के आदमी भी नीचे गिरते हैं । देखिये—

ब्राह्मणो वाप्यसदवृत्तः सर्वसंकरभोजनः ॥
ब्राह्मण्यं स समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः ॥

अर्थात् 'ब्राम्हण भी असत्-चरित्र और सर्वसंकर भोजन करनेसे जातिच्युत होकर शूद्र हो जाता है ।'

इसलिए शुभकर्म करना ही सबसे बडा धर्म है । अच्छे गुणोंको विकसित करना ही सबसे अच्छी नीति है । कर्मके द्वारा ही भाग्य बदला जा सकता है । भाग्यवान् होनेपर भी अच्छे गुण, कर्म और स्वभाव से ऊँचा उठा जा सकता है ।

कबीर कहते हैं—

कबीर सब जग निर्धना धनवंता नहिं कोय ।
धनवंता सो जानिये जाके राम-नाम धन होय ॥

अतः उत्तम गुण, श्रेष्ठ कर्म, सदाचार तथा सेवा-परायणता और भगवद्भजन—ये ही असली बड़प्पन के लक्षण हैं । (कल्याण से साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संगीत

(ले. स्व० गुरुदेव कवि श्री हरिऋषिजी महराज साहब के शिष्यः-
पं. श्री भानुऋषिजी महराज "जै. सि. आचार्य,,)

भारतवर्ष ही संगीत विद्याका जन्म दाता है। वह विद्या इस देशमें अनादि काल से चली आ रही है। प्राचीन समय में जब भारत वर्ष की उज्वल और प्रभाव शाली सभ्यता का अनुकरण–दूसरे देश कर रहे थे। यहाँ पर संगीत विद्या सिखने के लिए अनेक विदेशीय मनुष्य आते थे। जिन देश में भारतीय संगीत का प्रभाव नहीं पड़ा है। उनमें इस समय तक भी इस कला का पूर्ण विकास नहीं हुआ है। माना कि योरुप के देशों में संगीत का बड़ा प्रचार है और उसके सम्बन्ध में प्रचुर धन का व्यय भी होता है पर क्या कोई निष्पक्ष भाव से कह सकता है कि वहाँ का संगीत वैसा ही उच्च कोटि का है जैसा कि भारतीय संगीत। भारतीय संगीत इस समय अवनति दशा में होनेपर भी संसार में एक अनूठी और अद्वितीय चीज है।

भारत में संगीत विद्याका प्रचार कबसे है यह कोई नहीं कह सकता। जिस प्राचीन समय का पता ऐतिहासिज्ञोंने लगाया है उसमें भी इसका एक उच्च विकसित रूप में होना पाया जाता है।

यह बात सभी को माननी पडेगी कि भारतीय गान सब से प्राचीन है और इस पर किसी अन्य देशके गाने का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है। यह भारतीयों का स्वतंत्र चमत्कारी अविष्कार है। भारतीय संगीत का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना ही नहीं है बल्कि मनुष्य के निकृष्ट भावों को दूर कर आत्मा–नुभव कराना भी है।

साहित्यों में इस विद्या को श्रेष्ठ माना गया है। कितने ही ऐसे महर्षि, आचार्य, और महात्मा हुये हैं जिन्होंने केवल दिव्य संगीत को ही मुक्ति-प्राप्ति का मुख्य साधन समझा है और उन्होंने उसी के द्वारा आत्मानुभव किया है। वस्तुतः भारत में संगीत का आविष्कार इन्हीं उच्च उद्देश्यों में से हुआ था। इसके विषय जितना लिखा जाय अपर्याप्त है।

भारत में ऐसी बहुत प्रसिद्ध बातें हैं जिनसे ज्ञान होता है कि पूर्वकाल के संगीताचार्यों को इस के द्वारा ऐसी-ऐसीं शक्तियाँ प्राप्त हो गयी थीं कि वे अपने गाने के प्रभाव से बादलों से वर्षा करा सकते थे। उन्मत्त हाथिओं को वश में कर सकते थे। हिरणों के झुण्डों को दौड़ने से रोककर अपने सामने खडे कर सकते थे। राग-रागिनियों के प्रभाव के सम्बन्ध में ऐसी बहुत कुछ बातें प्रचलित हैं जो इस समय अविश्वासनीय हैं क्योंकि भारतीय संगीत की दशा इस समय कुछ गिरी हुयी है।

उस भारतीय संगीत दशा की, भारतीय विज्ञान का एवं सम्यग्ज्ञान का प्रचार ही इसी उद्देश्य को लेकर 'सुधर्मा, नामक मासिक पत्रिका छठ्टे वर्ष में पदार्पण कर रही है। यह मासिक पत्रिका की दिनों-दिन उन्नति ही यही शुभ कामना है। ***

जैन धर्म स्थानक
मलाड, बम्बई नं. ६४ (महाराष्ट्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या लोंकाशाह ने साधुवेष धारण किया था ?

लेखक—श्री अगरचन्दजी नाहटा

लोंकाशाह की मूर्ति पूजा के विरोध करने के कारण प्रसिद्धि तो बहुत हुई पर उसके जीवनी-संबन्धी तथ्य बहुत ही अस्त-व्यस्त है। अतः उसके निवासस्थान जाति, गोत्र, जन्म-समय आदि सभी बातों में इतना अधिक मतभेद पाया जाता है कि किसी की बात को निश्चयपूर्वक कहना बहुत ही कठिन है। लोंकाशाह ने स्वयं कोई रचना नहीं की। उनके नाम से जो बोल या हुंडी मिलती है वे भी मेरे ख्याल से उनके अनुयायियों ने उनकी मान्यताओं को लेकर उनके नाम से लिख दीं हैं। आश्चर्य है कि उसके अनुयायी लखमसी, भाण आदि ने भी लोंकाशाह के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा। सबसे पहले और सबसे अधिक लोंकाशाह और उनकी विचारधारा के संबंध में जो कुछ लिखा मिलता है वह उनके विरोधियों द्वारा खण्डनात्मक रचनाओं में ही। उन लोगों ने तो लोंकाशाह के पूर्व जन्म की कथा भी लिख डाली है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस सम्बन्ध में सबसे ज्यादा खोज एवं अध्ययन मैंने ही किया है, करीब ३०-३२ वर्षों में जो भी सामग्री मुझे प्राप्त हो सकी उसे मैंने नोट में नकल कर रखी है और समय-समय पर करीब १ दर्जन लेख मैंने लोंकाशाह और लोंकागच्छ के सम्बन्ध में प्रकाशित भी कर दिये हैं। अब से १८ वर्ष पहले जिनवाणी वर्ष ३ अङ्क ९ में लोंकाशाह कौन एवं कहाँ के थे, शीर्षक मेरा लेख प्रकाशित हुआ था। इसके बाद लोंकामतानुयायी कितने आगम मानते थे नामक लेख जैनध्वज वर्ष ९ अङ्क ४ में प्रकाशित हुआ इसी तरह लोंकाशाह और दिगम्बर साहित्य, जैन सिद्धान्त भास्कर भाग ४ किरण एक में तथा लोंकामत प्रचारक लखमसी रचित ग्रन्थ जिनवाणी वर्ष ४ अङ्क ११ में छपा था। लोंकागच्छ की पट्टावली के सम्बन्ध में तथा लोंकागच्छ की उत्तरार्द्ध गच्छ शाखा और विजयगच्छ की पट्टावली भी मैं छपवा चुका हूँ। बहुत से ऐतिहासिक, रास, गीत आदि भी मेरे संग्रह में है। श्री विजय राजेन्द्र सूरि स्मारक ग्रन्थ में मेरे भतीजे भंवरलाल नाहटा का एक लेख लोंकाशाह और उनके अनुयायी शीर्षक छपा था। यथा स्मरण श्री दलसुख भाई को भी मैंने अपनी सामग्री एक बार देखने भेजी थी खैर ! अभी श्री दलसुख मालवणियां का एक लेख "लोंकाशाह और उनकी विचारधारा" गुरुदेव श्री रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ में छपा है। मालूम होता है कि मालवणियांजी ने हमारे पूर्व प्रकाशित लेखों का कुछ भी उपयोग नहीं किया और प्रवचन-परीक्षा तथा ५८ बोल, ३४ बोल, आदि के आधार से जो कुछ उन्हें ठीक लगा लिख दिया। पर वास्तव में उनके कई मन्तव्य ठीक नहीं हैं। प्रस्तुत लेख में मैं उनके केवल एक ही मन्तव्य पर सप्रमाण विचार करूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोंकाशाह ने गृहत्याग कर साधु वेश लिया था या नहीं ? इस विषय में स्थानकवासी सम्प्रदाय में दो मतभेद प्रचलित हैं। प्राचीन प्रमाणों को देखने पर यह निश्चित है कि लोंकाशाह साधु नहीं हुये थे। उनके अनुयायिओं में भाणा ने ही सबसे पहले स्वयं दीक्षा ग्रहण की थी। श्री मालवणियां ने लोंकाशाह ने गृहत्याग कर साधु-वेश धारण किया था इसका समर्थन किया है। उन्होंने लिखा है–'यह भी सत्य है कि लोंकाशाह ने गृहत्याग किया था और वे भिक्षाजीवी भी बने थे।' लोंकाशाह के वेष के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि 'उनके समकालीन घेलाऋषि ने उनसे उनकी मान्यता के विषय में एक प्रश्न पूछा था कि जैसा चोल पट्टक पहनते हैं वैसा किस सूत्र में लिखा है ?'

इस प्रश्न पर से ऐसा प्रतीत होता है कि लोंकाशाह तत्कालीन परम्परा के श्वे. साधु-वर्ग में प्रचलित रीति के अनुसार चोलपट्टक नहीं पहनते थे। सम्भव है उनका चोलपट्टक पहनने का ढंग आज के स्थानकवासी साधु जैसा होगा। लोंकाशाह के वेष में, विषय में एक अन्य पोथी में वर्णन इस प्रकार मिलता है–

"नवि ओघौ नवि मुपत्ती नवि कम्बल नवि दंड।" इस पद से मालूम होता है कि लोंकाशाह ने स्वयं एक चोलपट्टक और दूसरी ओढने की चादर ये दो वस्त्र रखे होंगे। वे पात्र रखते थे और भिक्षाचर्या करते थे।" घेलाऋषि कब हुये और उन्होंने किससे प्रश्न पूछा और वह प्रश्नोत्तर कहाँ प्राप्त है। यह तो मुझे मालूम नहीं पर अन्य प्रमाणों से यह भली भाँति सिद्ध है कि प्रश्नोत्तर आदि लोंकाशाह स्वयं से नहीं, उनके अनुयायियों से ही किये गये थे। अतः प्रश्नोत्तर ग्रन्थों के आधार से यह तो कहा जा सकता है कि लोंकाशाह के अनुयायियों की क्या मान्यता व पद्धति थी। पर लोंकाशाह ने साधुवेष लिया यह समकालीन प्रमाण से असिद्ध है। प्रश्नोत्तरवाली रचनायें प्रायः पीछे की हैं।

लोंकाशाह ही नहीं पर लोंकामत के प्रधान प्रचारक लखमसी ने भी साधुवेष धारण नहीं किया था। इसीलिये इन दोनों का नाम लोंकागच्छ की गुजराती, नागौरी आदि किसी शाखा की पट्टावली में भी पट्टधर के रूप में नहीं लिखा। गुजराती लोंकागच्छ जिसका सीधा सम्बन्ध लोंकाशाह से है उसकी कई पट्टावलियाँ मैंने देखी है उनमें लोंका विशेषण मुँहता या महता ही दिया है, मुनि या ऋषि नहीं। और संवत् १५३१ में (मतान्तर से ३४ में) ऋषि भाणा ने स्वयं ने सर्वप्रथम दीक्षा ली। जैन रत्न पुस्तकालय, जोधपुर के संग्रह में लोंका पट्टावली की एक पत्र की प्रति है। उसमें लिखा है–

"प्रथम संवत १५२५ वर्षे कालूपुर मध्ये साह लंको आणंद सूत जाति ना वीसा श्रीमाली सिनमाल ना वासी ऊनै कालूपुर ना सा. लक्ष्मसी दया धर्म प्रगट हुओ। संवत् १५३१ बर्षे ऋषि श्री भाणाजी सीरोही ना देश मध्ये अहरवाडा ना वासी जाति पोरवाड अहमदाबाद मध्ये स्वयमेव दिख्या लीधी। ?

बडौदा सेन्ट्रल लायब्रेरी की प्रति नं. २०८३ में ज्ञानजी ऋषि तक की ६१ नामों की पट्टावली के बाद लोंकागच्छ की उत्पत्ति लिखी है पर ६३ वाँ नम्बर लोंका को नहीं भाणाऋषि को ही दिया है और प्रथम स्वयमेव उसी ने ग्रहण की, लिखा है–

ते ज्ञानजी ऋषि ६१ जात सूराणा।
अथ लुंके गच्छ री उत्पत्त कहे छै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवत् पनर सैं अठयावीसा वर्षे श्री अहल्ल-पुर पाटण मध्ये मुंहता लक्का सुवुददीये श्री सूत्र सिद्धांत लिखतां थकां सूत्रार्थ बिचारी नै मन में विचार तौ साधु श्रावक वार व्रत धरीनै पूजवी प्रतिमा न कही प्रासाद नो अधिकार नहीं अनै वीजा पती आचार्य नो घणा इक तौ पौसाल प्रतिमा धारी थया। सुध दया धर्म री प्ररुपणा करने गच्छ काढ्यौ। अन्य दर्सनियै लक्का मती नाम कहि नै बोलाव्या। तिहां थकी लुंका गच्छरी स्थापणा थइ। शुभ बेलाइ शुभ दिने शुभ पक्षे शुभ वारे शुभ नक्षरे शुभ योगे आव्ये थकैं लूंका गच्छ री स्थापना थइ।

प्रथम भाणाऋषिजी ए श्री अहम्मदाबाद मध्ये संवत् १५३१ वर्ष जात पोरवाड अरहट-वाडा ना वासी स्वयमेव दीक्षा लीधी। मोटे वैरागै संसार असार जाणी नै? एक लाख रुपैया मूकी नै दीक्षा लीधी।"

महोपाध्याय विनयसागरजी के संग्रह में श्री महा-वीरात साधु समुदाय पटावली नामक एक पद्य बद्ध रचनावली है। उसमें भी ज्ञानजी (नं ६१) के बाद घुनाऋषि (६२) का ही नाम है।

नागोरी लुंका गच्छ कीं पट्टावली में पूर्व परम्परा के नाम भिन्न हैं। क्योंकि उनका सम्बन्ध धर्मगुरु गच्छ से रहा है। इस पट्टावली में ५७ नं पर शीव-चन्द सूरि ५८ देवचन्द माणकचन्द और उसके बाद ५९ में हीरागर और ६० में रूपचन्द। लोंकाशाह दीक्षित नहीं हुये इसीलिये पट्टावलियों में उनका उल्लेख जरूर है पर पट्ट-परम्परा में नाम नहीं दिया।

सबसे महत्त्वपूर्ण उल्लेख तो लोंकागच्छीय तेज-सिंह रचित गुरु गुण माला का है जिसमें भाणजी को लुंकागच्छ का आदि यति बतलाया है। "इगत्रीसे भाणजी ए संजम लेई, लुंकागच्छ आदि जति थाई"

स्थानकवासी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध कवि विनयचन्द कुमुद ने भी अपनी रचित पट्टावली में सरवोजी, भानु, नूणजी, जगमाल आदि ४५ व्यक्तियों ने स्वयं दीक्षा लेने का उल्लेख किया है। यदि लोंकाशाह साधु हो गये होते तो उनके अनुयायियों को उनसे ही दीक्षा लेना उचित व आवश्यक होता; स्वयं दीक्षा लेनें की आवश्यकता नहीं होती। हीरागर, रूपचन्द, ने स्वयं दीक्षा ली पर उनकी दीक्षा के समय लोंकाशाह विद्यमान नहीं थे। मेरे अवलोकन जितनी प्राचीन पट्टावलियाँ आदि आई हैं उनमें से एक में भी लोंकाशाह ने साधु वेष ग्रहण कर लिया था, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता और न किसी ने उनके नाम के साथ मुनि-ऋषि व साधु शब्द ही कर प्रयोग किया। अपितु शब्द में उनके नाम के साथ मुंहता या शाह शब्द का ही प्रयोग किया गया है। प्रवचन परीक्षा में भी स्पष्ट उल्लेख है कि लोंका अनुयायियों में प्रथम वेषधर कौन हुआ? उत्तर है कि-भाणा! और यह भी लिखा है कि २५ वर्ष तक बिना किसी के साधुवेष के धारण किये लोंका मत बढता रहा।

"श्री विक्रम संवतसरात अष्टाधिक पंच दश शत संवतसरैमंते १५०८ पापोपदेशः प्रतिमा पूजादि निषेद रूप स्तस्थापयुपदेशस्यापि मूल कारणं लुंपक लेखकः॥ एवं पंच विशति वर्षाणि यावल्लिगिभि विर्रहितमपि लुंपाक मतं वृद्धि प्राप्तं॥ अथ त्रय स्त्रिशदधिकैः पंच दश शत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५३३ वर्षे: ।। क्वचित् संवत् १५३१ वर्षे वेष धराः लुंपकोपदेशे रूचिषु जातेषु लिंगिनः प्रादुरासन्निति। तत्र वेषधरे स्वपि प्रथमो वेषधर किं नाम्नी कथं कीदृग वेषं चपरिहित वानित्याह ।। शिवपुरी समीप वर्त्यरघट्टपाटक वास्तव्य प्राग-वाट ज्ञातीयो भाणक इति लोकोक्त्या भाणका ख्करेहि स्वयं मेव वेषं ग्रहीत्वा लुंपक मते सूर्खोपि प्रथमो वेष धरोड भूत वेषोपिचनान्य तीर्थ कोनापि जैन तीर्थकः ... ...।।"

संवत् १६७५ में गुणविनयोपाध्याय ने लुंपक मत तमो दिनकर चौपाई में भी लिखा है–

पनरह सय तेतीस वरष गया जितइ सोरोही
पुरि उठियउ ए।
अरहट वाडा वासि भाणउ वाणियउ पोरवाड़
अपूठीयउ ए ।।१४।।
प्रथम वेषधर तेहनवि गुरु सिरि धर्मउ व्रत
उच्चार न को कीयउ ए।
नवि ओघडन नवि दंड मुंड हुई इणइ चंड
पाखंड इम (म) दी दीयउ ए ।।१५।।

उपरोक्त परिमाणों से यह भली-भाँति सिद्ध हो जाता है कि लोंकाशाह स्वयं दीक्षित नहीं हुए थे और इनके मत के अनुयायियों में सर्वप्रथम दीक्षा भाणादि ने ही ग्रहण की थी। श्री मालवाणियांजी की अन्य भूल-भ्रान्तियों के सम्बन्ध में भी यहाँ संक्षेप में उल्लेख कर देना आवश्यक होगा। उन्होंने लिखा है कि–"लोंकाशाह का पहला विरोध केवल साधु-संस्था के प्रति था।" पर समकालीन प्रमाणों से तो यही सिद्ध होता है कि उनके मत का प्रचार व प्रारम्भ इसी बात को लेकर हुआ था कि शास्त्रों में धर्म दया में बतलाया है और मूर्ति-पूजा व तीर्थ-यात्रादि में प्रत्यक्ष हिंसा होती है इसलिये उन्हें नहीं करना चाहिये। लोंकामत के खण्डन में सबसे पहली रचना लावण्य समय की सिद्धान्त चौपाई संवत् १५४३ की है। उसमें लिखा है कि–"दान, पोसा, प्रतिक्रमण को नहीं मानते और जिन प्रतिमा, जिन पूजा और अष्टापद आदि तीर्थों व मन्दिरों को नहीं मानते।"

21/8/64

"सम्यक्त्व समयोद्धार" में हीरकलश की कुमति विध्वंशक चौपाई के आधार पर संवत् १७०९ में बजरंग पट्टधर हुए लिखा गया है पर हीरकलश की 'कुमति विध्वंशक चौपाई' की रचना स. १६१७ में में हुई थी इसलिए उसमें संवत् १७०९ की घटना का उल्लेख हो ही नहीं सकता।

अच्छा होता श्री दलसुखभाई लोंकाशाह के नाम से प्राप्त ५८ और ३३ बोल की हुंडी को प्रकाशित कर देते। तेरापंथी सम्प्रदाय में लोंका की हुंडी प्रच-लित और प्रसिद्ध है। इन सबके आधार से लोंका-मत की विचारधारा को विरोधी ग्रन्थों के उल्लेखों को सामने रखते हुए अधिक स्पष्ट किया जाना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईर्यापथ – प्रतिक्रमण

लेखक–श्री बन्सीलालजी भगवागदासजी कोठारी, (अहमदनगर)

भूलों को सुधारने की कला का सारा दारोमदार है–भूल का भान हो जाना। भूल का भान ही न हो तो सुधारने का प्रयत्न भी कैसे हो सकता है। इसलिए भूल का भान होना पहले जरूरी है।

जब न करने योग्य कार्य हो जाय, अथवा करने योग्य कार्य भी न किया जा सके–तब 'भूल हुई' ऐसा समझना चाहिए। सत्-प्रवृत्ति और असत्-निवृत्ति ये दोनों बातें भूल रहित गिनी जाती हैं। इसके विपरीत सत्-निवृत्ति और असत्-प्रवृत्ति भूलवाली स्थिति को बतलाती है। जिसका अर्थ है सत्-प्रवृत्ति और असत्-निवृत्ति ही वास्तव में भूल को सुधारने का असली रास्ता है।

जैन शास्त्रकारों ने सत्-प्रवृत्ति रूप से और असत्-निवृत्ति रूप से छह क्रियाओं का विधान किया है–

(१) सामायिक–समभाव लाना, समता रखना, राग-द्वेष नहीं करना।

(२) चतुर्विंशतिस्तव–धर्म-तीर्थ को प्रवर्तन करनेवाले चौवीस तीर्थङ्करों तथा उनके कार्यों का गुण-गान करना। उनके प्रति पूरा-पूरा पूज्य भाव रखना। मिथ्यादृष्टि नहीं होना।

(३) वन्दन–गुरु को वन्दन करना, गुरु का बहुमान करना। उनके समागम से आत्मा को जागृत रखना।

(४) प्रतिक्रमण–अतिचार से दूषित आत्मा को शुद्ध करके गुणों का विकास करना, अतिचारों का पुनः सेवन नहीं करना।

(५) कायोत्सर्ग–आत्मचिंतन में लीन होना। हलन-चलन, वाणी व्यवहारादि क्रियाओं को न करना, तथा चित्तवृत्ति के व्यापार को यथा सम्भव कम करना।

(६) प्रत्याख्यान–पाप स्थानकों को छोडने के लिए व्रत-नियमों को धारण करना। स्वच्छंद प्रवृत्ति नहीं करना। 'असत्' से सत् की ओर जाने के लिये, अथवा अन्धकार से प्रकाश में जाने के लिए उपरोक्त क्रियाएँ परम 'आवश्यक' हैं। इसीलिए उन्हें 'आवश्यक' के नाम से कहा जाता है।

उक्त छहों आवश्यक एक सरीखे सात्त्विक हैं, और एक सरीखे ही उपयोगी भी हैं। पाँच महाव्रतों को स्वीकार करके शुद्ध, संयमी जीवन बीताना यह तो विस्तृत स्वरूप है, जीवन में यथा संभव अहिंसा का आचरण करना यह संक्षिप्त स्वरूप है। विशुद्ध जीवन बिताने के लिए यह छोटी से छोटी शर्त है, जिसका सावधानी के साथ पालन करना किसी भी मुमुक्षु का परम कर्त्तव्य है। इसी बात को ध्यान में रखकर ईर्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथ-प्रतिक्रमण की योजना की गई है। जिसका तात्पर्य है-रास्ते में चलने से होनेवाली जीव विराधना का मैं अन्तःकरण की भावनापूर्वक प्रतिक्रमण करता हूँ। जैसे कि-

(१) जाने व आने में मुझ से त्रसजीव, बीज, वनस्पति, कच्चापानी, मिट्टी आदि का मर्दन हुवा हो।

(२) जाने व आने में मुझसे एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय जीवों की विराधना हुई हो।

(३) जाने व आने में मुझ से किसी जीव को ठोकर लगी हो, धूलि से दबाया गया हो, कष्ट पहुँचाया हो, डराया हो, प्राणों से रहित कर दिया हो-इस प्रकार किसी तरह की भी विराधना हुई हो, तो मेरा वह सब दुष्कृत्य मिथ्या हो।

"मिच्छामि दुक्कडं" यह प्रतिक्रमण की भावना का बीज है। जब तक हृदय में असत् कार्यों के प्रति अफसोस नहीं होता, तब तक उनसे छुटकारा पाना सम्भव नहीं। ज्यों हीं यह विचार आया कि-अमुक काम अच्छा नहीं, और वह आत्म-कल्याण की भावना के विरुद्ध है, बस फिर उसमें गाढ़ आसक्ति हो ही नहीं सकती।

जो रस रहस्य को समझकर उपरोक्त सूत्र का मनन करेगा, उसका आत्मा निर्मल होकर, अन्त में परम ज्ञान को प्राप्त कर लेगा।

मलाड बम्बई समाचार

हमारे यहाँ आचार्य प्रवर श्री आनन्दऋषिजी म. सा. के आज्ञानुयायी श्रमण संघीय श्री सेवाभावी श्री ब्रह्मऋषिजी म. सा. जैन सि. आचार्य पं. वक्ता श्री भानुऋषिजी म. सा. ठा. ३ सुख-शांतिपूर्वक विराजमान हैं।

म. सा. का चातुर्मास प्रवेश ता. १८-७-६४ को हो गया है। एन्. एल्. हाईस्कूल में स्वागतार्थ श्री संघ गया था। बडे ही धूम-धाम के साथ प्रवेश हुवा। म. सा. के विराजने से धर्मध्यान का ठाट लग रहा है। प्रातः काल व्याख्यान में नन्दीसूत्र एवं रत्नवती चरित्र फरमाते हैं। सुबह-शाम प्रार्थना होती है।

आपका-

वर्द्धमान स्था. जैन श्रावक संघ

मलाड बम्बई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयपुर में भव्य जैन श्रमण दीक्षा समारोह सम्पन्न

श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर बालब्रह्मचारी महामहिम पं. रत्न परमश्रद्धेय आचार्य सम्राट् पूज्यश्री १००८ श्री आनंदऋषिजी म. के सान्निध्य में श्री गादोला (प्रतापगढ़) निवासी श्री सूरजमलजी सोनी तथा बोटाद (मुंबई) निवासी श्री वाडीलालजी शाह की दीक्षा आषाढ़ शुक्ला १ शुक्रवार तदनुसार दिनाङ्क १०-७-६४ को प्रातः ७॥ बजे के उपरान्त सम्पन्न हुई। इस शुभ प्रसंग पर वयोवृद्ध पं. रत्न प्रवर्तक मुनिश्री शुक्लचंदजी म. आदि ठाणे १६ तथा सेवाभावी महासतिजी श्री सज्जनकुंवरजी म; पंडिता महासतिजी श्री सुमतिकुंवरजी म; पंडिता सतिजी श्री केशरकुंवरजी म. आदि ठाणे ९ उपस्थित थे। इस अवसर पर जयपुरनिवासी श्रीमान् सिरेमलजी नवलखा परिवार ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। दीक्षा पाठ सुनाने के पश्चात् पं. श्री अमृतकुमारजी का दीक्षा के ऊपर मार्मिक भाषण हुआ। तथा स्थानीय श्रावक संघ के अध्यक्ष श्री शांतिलालजी भाई ने आगरा, जोधपुर आदि अनेक स्थानों से आये हुए संदेशों को सुनाया। तत्पश्चात् आचार्यश्रीजी ने सारगर्भित प्रवचन में कहा कि इस क्षेत्र का नाम जयपुर है। मन पर विजय प्राप्त करने के लिए दोनों दीक्षार्थी आपके क्षेत्र में उद्यत हैं। ये दीक्षार्थी कुछ देर पहले वैराग्यावस्था में थे, अब आप लोग दो साधु के रूप में देख रहे हैं, यह सब कीमत आचरण की है। जैसे २ धार्मिक आचरण को अपनायेंगे वैसे २ आतमा उत्कर्ष-पथ पर आरूढ़ होता चला जायगा। दुनियाँदारी से निवृत्त बने तब महात्मा बने। महात्मा अपने तप, संयममार्ग में सुदृढ़ रहे तब परमात्मा बन सकता है। परन्तु वह कब ? सब कुछ करणी के आधार पद है। शुद्ध आचरण को अपनायेंगे तभी आत्मा से महात्मा और महात्मा से परमात्मा बन सकेंगे।

कपास का उदाहरण देते हुए आचार्यश्रीजी ने फरमाया कि कपास से ही धागा बनता है, परन्तु धागे को जैसे २ महीन बंनायेंगे वैसे २ उसकी कीमत बढती चली जायगी। एक व्यापारी के दुकान पर पीपर सेर के भाव से बिकती है, वही पीपर वैद्यराज के यहाँ जाने पर अष्टप्रहर तक घर्षण करने पर वह अष्टप्रहरी पीपर कहलाती है। और वह तोले के भाव से बिकती है, और चौसठ प्रहर तक घर्षण होने पर वह चौसठप्रहरी पीपर कहलाती है, वह सोने के भाव से बिकती है, और उसका मूल्य खूब बढ़ जाता है।

लोहा सेर के भाव से मिलता है, परन्तु वहीं लोहा जब घडी के पूर्जे के रूप में आता है, तो उसकी कीमत सैकडों रुपयों की हो जाती है।

इसी प्रकार चारित्र की कीमत है। आत्मा सब का एक-सा है, परन्तु तप और संयम की रगड़ से आत्मा परमात्मा बन सकती है।

* * *

ज्ञातव्य समाचार

आचार्य सम्राट् पूज्यश्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी म. का स्वास्थ्य बराबर नहीं रहने के कारण तथा औषधोपचार एवं पथ्य-पालन की तरफ विशेष ध्यान देने पर भी स्वास्थ्य प्रतिदिन क्षीण होता चला जा रहा था, तथापि जयपुर से टोंक की तरफ महावीर जयन्ति के बाद विहार करने की भावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी और जयपुर स्थित लालभवन से विहार कर भी दिया था, परन्तु आचार्यश्रीजी की तबियत अस्वस्थ रहने के कारण और डाक्टरों की सम्मति नहीं मिलने से जयपुर के उपनगर-आदर्शनगर, बापूनगर आदि स्थानों पर रूक जाना पडा। आदर्शनगर में पंजाबी भाइयों ने व्याख्यान-वाणी तथा सत्संग का अच्छा लाभ लिया था। तत्पश्चात् यहाँ के आगेवान श्रावक श्री स्वरूपचन्दजी चोरडिया की प्रेरणा से सवाई मानसिंह अस्पताल के सुप्रसिद्ध सर्जन डाक्टर डी. सी. शर्मा ने आचार्यश्रीजी के तबियत की बारीकी से जाँच की और कहा कि ऑपरेशन के शिवाय तबियत सुधरनेवाली नहीं है। ऐसा जबाब मिलने पर स्थानीय प्रमुख श्रावकों की सम्मति से दिनांक १३-७-६४ को करीब १० और ११ बजे के बीच में डाक्टर डी. सी. शर्मा ने नाभी के नीचे पेट का छोटा ऑपरेशन किया। तबियत क्रमशः सुधार पर है। बडा ऑपरेशन करने लायक तबियत होने की परिस्थिति में दूसरा ऑपरेशन करने के वास्ते डाक्टर सा. का कहना है, सो ज्ञात रहे।

वयोवृद्ध प्रवर्तकपद विभूषित पं. रत्न श्री शुक्लचन्दजी म. का सहयोग आचार्यश्रीजी को अच्छा रहा। उनकी भी तबियत अस्वस्थ रहने से डाक्टर सा. की मनायी थी। अतः उपनगरों में प्रवर्तक मुनिश्रीजी आचार्यश्रीजी के साथ ही में रहे।

टोंकवालों की विनती सुखेसमाधे आचार्यश्रीजी ने स्वीकृत की थी, परन्तु स्वास्थ्य ठीक नहीं रहने से जब जाना नहीं हुआ तब पं. मुनिश्री सुमनमुनिजी म. और श्री चन्दमुनिजी म. ठाणे २ ने टोंक जाने का परिश्रम टोंक श्री संघ की आग्रहभरी विनति होने से आचार्यश्रीजी और प्रवर्तक मुनिश्रीजी की आज्ञा से टोंक की तरफ विहार किया। टोंक की जैन-अजैन जनता ने धर्म-व्याख्यान सेवा भक्ति का लाभ लिया। टोंक से वापस दो ठाणों का जयपुर पधारने पर खंडेलावाले श्रावकों की विशेष हार्दिक प्रार्थना पर पं मुनिश्री महेन्द्रमुनिजी म. तथा पं. मुनिश्री सुमनमुनिजी म. ने उधर विहार किया। वहाँ भी जनता को व्याख्यान-वाणी का लाभ देकर सुखेसमाधे जयपुर ठाणे २ से पधार गये हैं। * * *

आचार्यश्रीजी का बडा ऑपरेशन सफल

श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर बालब्रह्मचारी महामहिम पं. रत्न परम श्रद्धेय आचार्य सम्राट् पूज्य श्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी म. सा. के स्वास्थ्य के बारे में जैन प्रकाश, तरुण जैन, जिनवाणी आदि पत्रिकाओं में समाचार भेजे गये थे वे सभी पढने में आये ही होंगे। आचा-र्यश्रीजी का बडा ऑपरेशन दिनांक २७-७-६४ को होनेवाला था, परन्तु कमजोरी एवं ज्वरांश रहने के कारण उपरोक्त समय पर नहीं हो सका। ज्वरांश हटने के बाद यहाँ के सुप्रसिद्ध सर्जन डाक्टर श्री जी. सी. शर्मा ने ५-८-६४ बुधवार के रोज बडा ऑपरेशन करने की तिथि निश्चित की। इस प्रसंग पर श्रमण संघ भूषण कविरत्न उपाध्यायजी श्री अमरचन्दजी म. शारीरिक अस्वस्थता होने पर भी पधार गये और आदर्शनगर से प्रवर्तकपद विभूषित पं. रत्न श्री शुक्लचन्दजी म. भी पधारे। तथा विदुषी महासतीजी श्री सुमतिकुंवरजी म; पंडिता श्री केशरकुंवरजी म. आदि सतियाँ उपस्थित थीं। ऑपरेशन के पूर्व कविश्रीजी म; प्रवर्तकजी म; महासतीजी आदि यथावसर आगम स्तोत्र एवं आलोचना आदि का पाठ आचार्यश्रीजी के सान्निध्य में करते रहे और स्वयं आचार्य सम्राट् भी शान्त-मुद्रा में तल्लीनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ उपयोगपूर्वक पाठ श्रवण करते रहे। यह दृश्य बडा ही भव्य एवं प्रभावोत्पादक था। ठीक ११ बजकर १० मिनट पर आचार्यश्रीजी श्रीमान् सिंह हास्पिटल के ऑपरेशन हाल में जाने के लिए प्रस्थित हुए, इस प्रसंग पर महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, पंजाबप्रदेश तथा राजस्थान, गुजरात, आदि प्रान्तों से दर्शनार्थ आये हुए श्रावक-वृन्द उपस्थित थे। स्थानीय श्री संघ के अध्यक्ष, मन्त्री तथा स्वरूपचन्दजी चोरडिया, खेलशकरभाई आदि अग्रगण्य सदस्य तथा श्रावक-श्राविका वृन्द उपस्थित था। आचार्यश्रीजी ने सभी को माँगलिक सुनाया। तत्पश्चात् कविरत्न उपाध्यायश्रीजी ने प्रसंग स्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा कि–आगम में उत्सर्ग और अपवाद का विधान है। श्रमण-वृन्द को भगवान् द्वारा प्ररूपित सिद्धान्त पथ पर उत्सर्ग स्थिति में चलना बतलाया गया है, परन्तु शारीरिक आदि विशेष स्थिति में कदाचित अपवाद सेवन में नियम के अन्दर कोई दोष आ जाय तो उसका प्रायश्चित्त श्रमणवर्ग को लेना परमावश्यक है।

आचार्यश्रीजी ने उत्सर्ग का विधिवत् परिपालन किया है, फिर भी जान-अनजान में दोष आये हैं या भविष्य में आयेंगे उसका प्रायश्चित्त यथावसर आचार्यश्रीजी लेंगे ही। कविश्रीजी के हृदयस्पर्शी वर्णन शैली ने वह स्थिति उत्पन्न कर दिया जिससे सबका हृदय पीघल गया और प्रायः सबके आँखों से अश्रुधारा बह चली।

उपाध्यायश्रीजी ने कहा कि–आचार्यश्रीजी का शरीर व्यक्तिगत नहीं है। यह शरीर समाज का है। संघ का है। आप से अभी बहुत-सी आशाएँ हैं। आचार्यश्रीजी शल्य चिकित्सार्थ कुछ समय के लिए यहाँ से विदाई ले रहे हैं। सूर्य बादल की आड में कुछ समय के लिए जा रहे हैं। किन्तु कुछ ही समय के पश्चात् पुनः बादल की आड से प्रकाशमान सूर्य का दर्शन होंगे और सर्वत्र प्रसन्नता की निर्मल आशा छिटक जायगी।

अपवाद स्थिति में शारीरिक उपचार करना जयपुर श्री संघ ने अपना परम कर्त्तव्य समझा और अपने कर्त्तव्य का विधिवत् परिपालन किया। यह संतोष का विषय है।

आचार्यश्रीजी ठीक ११॥ बजे ऑपरेशन हाल में पहुँचे और १२॥ बजे के आस-पास ही ऑपरेशन हाल से बाहर आ गये। सभी के मुख पर प्रसन्नता तो थी ही स्वयं डाक्टर-वृन्द के मुख पर भी प्रसन्नता की आभा छिटक रही थी। ८ बजे रात्रि के समय डाक्टर श्री जी. सी. शर्मा आचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य की जानकारी हेतु पधारे थे। गर्मी अधिक पडने से तथा ऑपरेशन होने से रात्रि में आचार्यश्रीजी को घबराहट थी। डाक्टर ने विजली के पंखे तथा अन्य उपचार सेवन का संकेत किया परन्तु उपरोक्त सभी प्रयोग मुनिवृन्द के लिए अकल्पनीय है, ऐसा आचार्यश्रीजी ने उनको कहा। डाक्टर सा. फिर संतोष मुद्रा में वापस अपने निवासस्थान पर चले गये। आचार्यश्रीजी का स्वास्थ्य शीघ्र ही पूर्ण रूपसे सुधर जाय और पूर्ववत् श्रमण संघ के कार्य में संलग्न होवें। ऐसी शासनदेव से हार्दिक प्रार्थना है। अखबार में अन्य समाचार आचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य के विषय में यथावसर देते रहेंगे।

प्रेषक–पं. विद्याभूषण मणि त्रिपाठी

लालभवन चौडा रास्ता, जयपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—: आ जी व न स द स्य :—

१ के. चु. भटेवडा	राहू (पूना)
२ ता. रां. मा. सुन्दराबाईजी	आष्टा
३ इन्दरबाईजी	,,
४ श्रीमती रा. डागा	भोपाल
५ जी. ते. ललवानी	श्रीरामपुर
६ मे. ध. जैन	मगरदा
७ कि. चौधरी	शुजालपुर
८ गें. इ. जैन ,,	,,
९ कं. दी. जैन ,,	,,
१० सू. न. जैन ,,	,,
११ रा. चौ को ,,	,,
१२ का. ही. जैन ,,	,,
१३ ज. खो. डोशी	इन्दौर
१४ इ. सू. चोपडा	भामाठाण
१५ मे. टाटिया	सारंगपुर
१६ प्रे. जी. वेदमुथा	वर्धा
१७ दे. भि. कांकरिया	राहू
१८ श्री. न. पितलिया	सीहोर
१९ के. घी. बाफणा	नागपुर
२० क. ल. रांका	शुजालपुर
२१ स. व. जैन	शाजापुर
२२ सु. जी. सिंदरसीवाला	,,
२३ वैं. र. स. मुणोत	वांबोरी
२४ भं. के. जोगड	बोदवड
२५ झुं. ध. मुथा	अहमदनगर
२६ अ. मा. गुगले	पाथर्डी
२७ ना. भ्र. र. भंडारी	पीपला
२८ सौ. गु. भ्र. सि. बोरा	अ.नगर
२९ ब. झुं. कोठारी	,,
३० ला. पा. मा. कोंडाबाईजी	पाथर्डी
३१ सौ. च मो. लुणिया	जंजीरा
३२ मि. रा. भटेवडा	केडगांव
३३ फ. मु. शिंगी	नेवासा
३४ भा. खु. गांधी	आश्वी
३५ ना. क. छाजेड	चकलाआंबा
३६ उ. बा. देसरडा वकील	चाळीसगांव
३७ भ. झुं. गुगळे	करंजी
३८ चां. भ. मुणोत	वांबोरी
३९ कि. बी. पटवा	पाथर्डी
४० छो. ने गुगळे	लोहसर
४१ ही. भ्र. न. सुरपुरिया	पूना
४२ रा. भ्र. म. कोठारी	सतारा
४३ भी. मा. कर्नावट	सिरसमार्ग
४४ बा. डा. बद्धानी	अमरावती
४५ सु. भ्र. मो. मुथा	देवळाली
४६ प. कि. छाजेड	म्हसे
४७ मू. रि. संकलेचा	मजलेगांव
४८ हां. भ्र. च. शिंगी	अहमदनगर
४९ चं. ध. वैद	चांदा
५० सु. सु. कुचेरिया	पाथर्डी
५१ वि. शा. संकलेचा	अमरावती
५२ न. मु. बोरा	पीपला
५३ चां. मू. चंगेडिया	बरोरा
५४ एक गुप्तदानी सद्गृहस्थ	अ.नगर
५५ भी. के. ललवानी	मनमाड
५६ ब. मा. गांधी	पिंपलगांव
५७ प्रे. भ्र. ज. बोरा	,,
५८ मो. चु. मुथा	वांबोरी
५९ सौ. रू. सू भ्र. झुंबरलालजी	,,
६० मू. द. चंगेडिया	सोनई
६१ पू. मो. नाहर	घोडेगांव
६२ ने. ब. भटेवडा	वांसदा
६३ ब. च. सिंगी	देवळाली
६४ श्री. रा. मुथा	,,
६५ झु. पू. बाफना	श्रीरामपुर
६६ ने. गु. मुथा	बेलापुर
६७ चु. पू. तातेड	,,
६८ मो. र. हिरन	,,
६९ के. मां. संचेती	चिंचवड
७० ह. सो. मुनोत	निंबारी
७१ गं. मो. कोठारी	पूना
७२ क. के. कांकलिया	पूना
७३ मो. ल. खिंवसरा	,,
७४ र. मा. ओस्तवाल	सांगली
७५ छो ब. गुगळे	वांबोरी
७६ इं. गं. कोठारी	,,
७७ ने. झुं. सुराणा	राहुरी
७८ चां. मो. भंडारी	घोडनदी
७९ घू. भि. फुलफगर	घोडनदी
८० चं. शो. गादिया	,,
८१ चां. सु. कोठारी	बेलापुर
८२ रा. पो. गांधी	रस्तापुर
८३ जे. शां. संघवी	उत्राण
८४ भू. रा. कोठारी	केडगांव
८५ चु. भ्र. प्रे. देसरडा	न्हावरा
८६ कां. जा. नाहर	आलेगांव
८७ प. ही. कटारिया	बाल्की
८८ फू. बा. बाफना	राहुरी
८९ मा. गं. चोरडिया	बोरी
९० पु. शो. चोरडिया	,,
९१ रा. ल. भंडारी	सिरसाला
९२ ध. द. संचेती	पूना
९३ ज. चु. सांड	रहाता
९४ हु. न. गांधी	श्रीरामपुर
९५ झुं. भ्र. ही. भलगट	गुलबर्गा
९६ ब. चं. गुगले	मलाड
९७ र. ही. लूंकड	श्रीरामपुर
९८ कुं. न. गांधी	,,
९९ सु. लुणावत	धामणगांव
१०० शांतिलालजी चौधरी	राजगढ
१०१ न. शा. माई	मलकापूर
१०२ ही. ल. मुथा	लक्ष्मेश्वर
१०३ सि. र. भुरा	सिवनी
१०४ चं हि. कुंकुलोल	कोल्हार
१०५ वि. पु. राकेचा	,,
१०६ ना. भ्र. रा. गुगले	,,
१०७ स. म. रांका	,,
१०८ फ. ज. गुगलिया	,,
१०९ मो. झुं. रांका	चिंचोली
११० प. का. रांका	,,
१११ हु. च. समदडिया	अस्तगांव
११२ भा. झुं. गुगले	पाथर्डी
११३ उ. हं. कातरेला	अमरावती
११४ कां. मा. गांधी	मुंबई
११५ जे. मा. कटारिया	खरवंडी
११६ जे. धों. कटारिया	,,
११७ ह. त. गांधी	वाम्बोरी
११८ मो. द. डोशी	अ. नगर
११९ जी. मे. बोरा	वाम्बोरी
१२० उ. बा. धाडीवाल	संगमनेर
१२१ मो. ला. मुणोत	भिंगार
१२२ भे. दी. गांधी	लोणावला
१२३ ज. सु. गुजराथी हलवाई	मालेगांव
१२४ मो. ज. ओस्तवाल	वाम्बोरी
१२५ नें. ध. कटारिया	खरवंडी
१२६ खु. मि. मुणोत	करंजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२७	श्री. बं. ने. पारख	संगमनेर
१२८	,, ता. रा. चोरडिया म्हा.	पिपलगांव
१२९	,, पू. को. भंडारी	कडा
१३०	,, चु. गु. मुथा	घाटसिरस
१३१	,, गीगीबाई फिरोदिया	अ. नगर
१३२	,, न. धो. कटारिया	लोणी
१३३	,, ह. अ. चोरडिया	अकोलनेर
१३४	,, सौ. रु. झुं. कटारिया	चांदा
१३५	,, पु. प. मुथा	घाटसिरस
१३६	,, सु. भ्र. ता. डोशी	अ. नगर
१३७	,, मा. ध. बोथरा	खरवंडी
१३८	,, स. मो. लुणावत	जालना
१३९	,, षु. मा. कटारिया	इचलकरंजी
१४०	,, ही. रा. भटेवडा	पूना
१४१	,, ही. क. खाटेड	पूना
१४२	सौ. शांताबाई मो. नाहर	पूना
१४३	श्री. रा. शो. टाटिया	पूना
१४४	,, फू. तु. मालू	खडकी
१४५	,, मा. रा. बाफना	वडगांव
१४६	,, ध. ही. बाफना	वडगांव
१४७	,, ह. रा. बाफना	वडगांव
१४८	श्री. आ. स. चोरडिया	खेड
१४९	,, दौ. ध. चोरडिया	पिपळवंडी
१५०	,, रा. ला. चोरडिया	बोरी बुद्रुक
१५१	,, भा. कुं. गांधी	संगमनेर
१५२	,, चु. र. भंडारी	अश्वी
१५३	,, द. रा. गांधी	प्रवरासंगम
१५४	,, ग. न. चोपडा	खांबा
१५५	,, शो. च. भटेवडा	राजुरी
१५६	,, मि. मो. कोठारी	अहमदनगर
१५७	,, फ. आ. फिरोदिया	साकूर
१५८	,, जा. मि. भंडारी	मंचर
१५९	,, फू. र. कटारिया	संगमनेर
१६०	,, शां प्रे. कटारिया	अहमदनगर
१६१	" उ. शं. चोपडा	साकूर
१६२	" चं. लू. हिरण	साकरवाडी
१६३	" बं. फ. बाफना	साकूर
१६४	" के. बं. कटारिया	अ. नगर
१६५	,, क. बु. फिरोदिया	साकूर
१६६	,, धा. जे. शाह	यवतमाल
१६७	,, ही. जे. चोरडिया	पूना
१६८	,, ने. चां. शिंगीं	घोरपडी
१६९	श्री. रू. मा. नाहर	रांजणगांव
१७०	,, शं. भा. दूगड	अमलनेर
१७१	,, कोट व. स्था. संघ	मुंबई
१७२	,, मोहनलालजी कीमती	इन्दौर
१७३	,, भा. छ. तुरखिया	इन्दौर
१७४	,, भं. शा. वाकड	इन्दौर
१७५	,, शि. जो. सर्राफ	देवास
१७६	,, र. मु. बजाज	,,
१७७	,, इ. सांड	बडावदा
१७८	सौ. मां. लसोड	प्रतापगढ़
१७९	श्री. वि. ल. गेलडा	बोदवड
१८०	,, स्वा. नै. भटेवडा	चाकण
१८१	,, व. स्था. श्रा. संघ	बदनोर
१८२	,, कि. मि. भलगट	भंडारा
१८३	,, कि. झु. भलगट	,,
१८४	,, कि. जं. भलगट	,,
१८५	,, ह मि. बाफना	पांडुरणा
१८६	,, अ. मो. डांगी	भीलवाड़ा
१८७	,, भी. क. संचेती	नांदूरा
१८८	,, मो. क. झामड़	पीपलगांवराजा
१८९	,, ज. खो. डोशी	इन्दौर
१९०	,, नेमीनाथ जैन	देवास
१९१	,, क. झुं गांधी	अश्वी
१९२	,, द. ओं राँका	शैलाना
१९३	,, हु. ब. दसोरिया	प्रतापगढ़
१९४	,, पा. वि. ढाबरिया	अजमेर
१९५	,, रा. पू. बूरड	शिराला
१९६	,, हं. नाहर	अजमेर
१९७	,, ने. शा हरकावत	अजमेर
१ ८	,, मां. भं. बोरदिया	गुलाबपुरा
१९९	,, ज. खो.	अमरावती
२००	,, गुप्तदानी सद्गृहस्थ	

To

श्रीमान्

मुकाम

पोस्ट

जिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ अर्हम्

सम्यक् ज्ञान सम्यक् दर्शन सम्यक् चारित्र सम्यक् तप

सुधर्मा

श्री ति. र. स्था. जैन धा. प. बोर्ड, पाथर्डी की मुखपत्रिका

23-9.64

वर्ष ६) १५ सितम्बर १९६४ (अङ्क २

★ इस अंक में ★

१ सुधर्मा सुवचन सुधा	....	१
२ एकत्व (कविता)	"सुधार त्यागी"	४
३ कर्म और पुरुषार्थ	पं शोभाचन्द्रजी भारिल्ल	५
४ आह्वान सुधर्मा का (कविता)	श्री सौभाग्य मुनिजी म० "कुमुद"	७
५ मानवता और दानवता	उपाध्याय कविवर्य श्री अमरमुनिजी म०	८
६ हमारा सांस्कृतिक जीवन	पं. मुनिश्री भानुऋषिजी म०, जैन सि. आचार्य	१३
७ इच्छा और आनंद	श्री ज्ञान भारिल्ल M. A.	१५
८ भारतीय संस्कृति में भक्ति साधना	प्रवचनकार–पं. प्रवर श्रद्धेय पुष्कर मुनिजी म० सम्पादक–पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल	१८
९ कार्यकारिणी सभा तथा ट्रस्टमण्डल की बैठक का आमंत्रण पत्र	श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक–परीक्षा बोर्ड पाथर्डी	२१
१० श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रमण संघीय संत–सती वर्ग की चातुर्मास की तालिका	प्र. विद्याभूषण मणि त्रिपाठी	२२

क.–पं. बदरीनारायण शुक्ल–पं. शोभाचंद्र भारिल्ल–प्रबन्ध सम्पादक–पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवर्ण नामावली

सदुपदेशक–परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज
संस्थापक–दानवीर शाह केशवजी जवेरचन्द, जामनगरवाले, जालना

आधारस्तम्भ

१ श्री. चन्द्रभानजी रूपचंदजी डाकलिया, श्रीरामपुर (नगर)
२ „ केशरचंदजी कचरदासजी बोरा आश्वी „
३ „ सूरजमलजी कस्तूरचन्दजी गांधी अहमदनगर
४ स्व. माणकचंदजी किसनदासजी मुथा अहमदनगर
५ श्री. रा. ब कुन्दनमलजी लालचन्दजी कोठारी ब्यावर

संरक्षक

१ श्री. तिलोकचंदजी खूबचंदजी गुंदेचा चांदा (नगर)
२ „ फकीरचंदजी उत्तमचंदजी गुगले चिचोंडी शिराळ „
३ „ माणकचंदजी उत्तमचंदजी गुगले पाथर्डी „
४ श्रीमती शक्करबाई रतनचंदजी सुराणा द्रुग (मध्यप्रदेश)
५ श्री. पन्नालालजी गुलराजजी गांधी मावावाले पूना
६ स्व. श्री.पन्नालालजी गुगले पाथर्डी के स्मारक
७ श्री. मगनीरामजी फकीरचंदजी दुधेडिया श्रीरामपुर
८ सौ. धोंडाबाई भ्र. उत्तमचंदजी संचेती पूना
९ श्री, कुन्दनमलजी कस्तूरचंदजी बोरा „
१० नवलमलजी सरदारमलजी पुंगलिया नागपुर
११ भिकमदास पोखरणा चै. ट्रस्ट पूना
१२ श्री. उदयरामजी हरकचन्दजी रैदासणी बीवी

सहायक सदस्य

१ श्री. उत्तमचंदजी कचरदासजी भटेवड़ा राहू (पूना)
२ „ बंशीलालजी अमोलकचंदजी भटेवड़ा „ „
३ „ माणकचंदजी भीवराजजी भटेवड़ा „ „
४ सौ. श्रीकुंवरबाई भ्र. मूलचंदजी भटेवड़ा „ „
५ श्री. प्रतापमलजी फूलचंदजी बनवट आष्टा
६ सौ. उमरावबाई भ्र. हस्तमलजी जैन शाजापुर
७ श्री. केशरीमलजी बापूलालजी जैन शुजालपुर
८ „ रंभाबाई भ्र. गणपतसिहजी जैन „
९ सौ. तेजकुंवरबाई धर्मपत्नी डालचंदजी चौधरी „
१० श्री. मोजीलालजी भीमसिंहजी जैन „
११ „ बीजराजजी जुगराजजी संचेती मलकापुर
१२ „ तेजमलजी भीवराजजी संचेती „
१३ श्री. जवरीबाई भ्र. धूलजीभाई शाजापुर
१४ श्री. हिंमतलालजी सा. जैन शाजापुर
१५ „ कनकमलजी चुन्नीलालजी गांधी चांदा
१६ „ नारायणदासजी मोहनलालजी मंडलेचा येवला
१७ „ मागूबाई भ्र. चंदनमलजी गादिया बेलापुर
१८ „ मगनलाल सुंदरजी शाह अमरावती
१९ „ हेमकुंवरबाई भ्र. कालीदासजी शाह सातारा
२० „ मयाशंकर चत्रभुज शाह अमरावती
२१ „ शान्तिलाल पोपटलाल काठेड अहमदनगर
२२ श्री. कचरदास मोहनलाल लोढा अहमदनगर
२३ „ गेंदमल राजमल जैन शुजालपुर
२४ „ लाभचन्दजी गुलाबचन्दजी चोरडिया हिंगणघाट
२५ श्री. कुंदनमलजी लुंकड की सुपुत्री सायरबाईजी बेंगलोर
२६ „ सिमरतमलजी चुनीलालजी मुथा वांबोरी
२७ „ धनराजजी मोतीलालजी कांकरिया पूना
२८ „ खुशालचंद संपतलाल भूरट घोड़नदी
२९ „ मोतीलालजी मोहनलालजी सिंगी पूना
३० „ मिश्रीलालजी हस्तीमलजी दुगड घोड़नदी
३१ „ कचरदासजी प्रकाशमलजी भलगट अहमदनगर
३२ „ सुखरामजी प्रेमराजजी मुथा बेलापुर
३३ „ सौ. शांताबाई बाबूलालजी रैदासनी नशीराबाद
३४ „ ताराचंदजी भीवराजजी भटेवडा राहू (पूना)
३५ „ तुलसाबाईजी कोचर हिंगणघाट
३६ „ जसराज कालाभाई लाठिया मुर्तिजापुर
३७ „ बापूलाल प्रेमचंद संघवी अकोला
३८ „ शाह नागजी पानाचंद बारवडा रायपुर
३९ „ रूपचंदजी गोकुलचंदजी कोठारी कोपरगांव
४० „ चन्दनमल नन्दरामजी गांधी श्रीरामपुर
४१ „ दलीचन्द गुलाबचन्दजी पारख नागपुर
४२ „ उत्तमचन्दजी चुनीलालजी मुथा वाम्बोरी
४३ „ कचरदास रूपचंदजी कर्नावट इचलकरंजी
४४ „ हंसराजजी गुलाबचंदजी लुणावत लोणावला
४५ „ गेंदालालजी मोतीलालजी जैन ट्रस्ट इन्दौर
४६ „ राजमल नन्दलाल मेहता चै. ट्रस्ट भुसावल
४७ सौ. सुगनबाई चांदमल जैन देवास
४८ श्री कालूलाल पूरालाल जैन आगरा
४९ श्री हरिश्चन्द्रजी पुनमचन्दजी बडेर, जयपुर

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के लिए
प्रकाशक व मुद्रक पं० बदरीनारायण द्वारकाप्रसाद शुक्ल
मुद्रण व प्रसिद्धिस्थल श्री सुधर्मा मुद्रणालय ८३२ जुना कापड बाजार पाथर्डी, जि० (अहमदनगर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की ज्योति जगाने हेतु विविध निबन्ध-प्रबन्ध माला स्वरूप धार्मिक आध्यात्मिक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक **मासिक पत्रिका।**

सुधर्मा

मूल्य
वार्षिक ६-००
१ अंकका ०-५०

卐

प्रत्येक १५ तारीख को प्रकाशित होगी।

वर्ष ६) १५ सितम्बर १९६४ (अंक २

सुधर्मा-सुवचन-सुधा

मूल—लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निंदा पसंसासु, समो माणावमाणओ ॥१३॥

छाया—लाभालाभयोः सुखे-दुःखे, जीविते मरणे तथा।
समो निन्दा प्रशंसासु, समो मानापमानयोः ॥१३॥

शब्दार्थ—लाभ और अलाभ में, सुख और दुःख में, जीवन और मरण में, निन्दा और प्रशंसा में, मान और अपमान में, समभावी होना ही सम्यग्ज्ञानी का लक्षण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. रत्न श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल कृत भाष्य—

भाष्य— ज्ञान का स्वरूप, ज्ञान का माहात्म्य और ज्ञान सम्बन्धी अन्य बातों का विवरण बताने के पश्चात् ज्ञान की उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त होने पर ज्ञानी की क्या स्थिति होती है. उसका यहाँ उल्लेख किया गया है। इस उल्लेख से यह भी प्रतीत होता है कि जिसकी मानसिक स्थिति इन लक्षणों से युक्त हो जाती है वही सच्चा उत्कृष्ट ज्ञानी है।

जिसे सम्यग्ज्ञान प्राप्त हो गया है वह लाभ होने पर हर्ष का अनुभव नहीं करता और अलाभ होने पर विषाद नहीं करता। लाभ होना लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम पर निर्भर है। जिसके लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम हो गया है उसे लाभ होता है और जिसे लाभान्तराय का उदय है उसे लाभ नहीं होता। इन दोनों अवस्थाओं में ज्ञानी समताभाव का अवलंबन लेता है। भोजन आदि के लिए प्रयत्न करने पर भी यदि भोजन प्राप्त न हो तो विषाद करने से क्या लाभ है? विषाद से भोजन की प्राप्ति नहीं हो जाती। प्रत्युत आर्त्तध्यान एवं कलुषित भावना का उदय होने से पाप का बंध होता है। ऐसा जानकर ज्ञानी-जन विषाद नहीं करते। इसके विपरीत वे उस अलाभ को भी तप का लाभ समझते हैं। अर्थात् भोजन की प्राप्ति न होने से आज अनायास ही अनशन तप करने का अवसर मिल गया है, ऐसा समझकर वे उद्विग्न नहीं होते। इसी प्रकार कभी किसी उत्तम समझे जाने वाले पदार्थ का यदि लाभ हो जाता है तो ज्ञानी पुरुष प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि उनके अन्तःकरण में उत्तम-अनुत्तम पदार्थों के प्रति राग-द्वेष नहीं होता अर्थात् वे स्वादिष्ट भोजन से राग और रूखे-सूखे, नीरस भोजन के प्रति द्वेष नहीं करते। जिसे जिस पदार्थ से राग नहीं है उसे उस पदार्थ की प्राप्ति हो जाय तो वह प्रसन्नता का अनुभव नहीं करता है। इस प्रकार सच्चा ज्ञानी भोजन, वस्त्र, शिष्य आदि की प्राप्ति और अप्राप्ति में साम्य भाव धारण करते हैं।

सुख-दुःख में भी ज्ञानी मध्यस्थभाव धारण करते हैं। उनकी दृष्टि इतनी अन्तर्मुख हो जाती है कि वे शरीर में रहते हुए भी शरीर से परे हो जाते हैं। उन्हें आत्मा अनात्मा का भेद ज्ञात हो जाता है। अतएव शारीरिक कष्ट को वे आत्मा का कष्ट अनुभव नहीं करते और शारीरिक सुख को आत्मा का सुख नहीं समझते। वे आत्मा के स्वरूप में सदा विचरते रहते हैं।

दुःखे-सुखे वैरिणिबन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृता शेषममत्वबुद्धेः, समं मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ ॥

अर्थात्—हे प्रभो! दुःख में, सुख में, वैरी और बन्धु वर्ग में, संयोग और वियोग में, भवन में और वन में सब प्रकार की ममता–बुद्धित्याग कर मेरा मन निरन्तर सम बना रहे।

इस प्रकार की आन्तरिक अभ्यर्थना का परिपाक हो जाने से अथवा इस भावना के मूर्तिमान् हो जाने के कारण उन्हें सुखःदुख में हर्ष-विषाद नहीं होता। ज्ञानीजन सोचते हैं कि आत्मा अनन्त सुख का भांडार है, सुख आत्मा का स्वाभाविक धर्म है, उसमें दुःख का प्रवेश कैसे हो सकता है? अगर कोई अज्ञानी पुरुष ताडना करता है, शस्त्र का प्रहार करता है अथवा अन्य किसी उपाय से दुःख को उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है तो करता रहे, ऐसा करके वह अपना ही अहित करेगा। मेरा क्या बिगडेगा? मेरा आत्मा उसकी पहुँच से बाहर है। वह सिर्फ शरीर का ही बन्ध-बन्धन आदि कर सकता है, पर मैं शरीर नहीं हूँ। मैं शरीर से निराला आत्मा हूँ अमूर्तिक हूँ। जैसे कोई अमूर्तिक आकाश में शस्त्र-प्रहार करता है तो आकाश को क्या हानि है। इसी प्रकार मुझे यह हानि नहीं पहुँचा सकता। इसके सिवाय ज्ञानी पुरुष यह विचार करते हैं कि अमुक व्यक्ति मुझे दुःख दे रहा है, ऐसा समझना ही मिथ्या है असल में दुःख देनेवाला असाता वेदनीय कर्म है। यदि मैंने असाता वेदनीय कर्म का बंध किया है तो उसका फल मुझे भोगना ही पडेगा। बिना भोगे वह छूट नहीं सकता। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष का मुझ पर बडा उपकार है कि इसने निमित्त बनकर बंधे हुए कर्म को भोगने का अवसर दिया है। अब मैं इस कर्म से मुक्त हो जाऊँगा। पहले लिया हुवा ऋण मुझ पर चढा था सो इस पुरुष के निमित्त से आज चुका गया। मेरा भार कम हो गया।

सुख का अवसर प्राप्त होने पर ज्ञानी पुरुष विचारता है कि यदि कोई अपना अनमोल खजाना गवांकर उसके बदले एक कौडी पावे तो उसे हर्ष मनाने का क्या कारण है? मैंने आत्मिक सुख का अक्षय कोष लुटाकर यदि इन्द्रियजन्य किंचित सुख पाया भी, तो यह कौन सी प्रसन्नता की बात है? इत्यादि विचार करके वह सुख में फूलता नहीं है। दोनों अवस्थाओं में वह सम रहता है।

जीवन और मरण में भी सम्यग्ज्ञानी पुरुष समता भाव का ही सेवन करता है। ज्ञानी की विचारणा इस प्रकार होती है-आत्मा अजर-अमर अविनश्वर है। जो वस्तु उत्पन्न होती है उसका नाश होता है। आत्मा की कभी उत्पत्ति नहीं होती, न कभी उसका विनाश होता हैं। द्रव्य प्राणों की संयोग अवस्था जीवन कहलाती है और वियोग अवस्था मरण कहलाती है। इस प्रकार बाह्य वस्तु के संयोग और वियोग में अर्थात जीवन और मरण में हर्ष-विषाद करने की क्या आवश्यकता है? पर पदार्थों का संयोग विनश्वर है ही। जब उन्हें कोई अज्ञान वश अपना मानता है तब उनके वियोग में विषाद का अनुभव होता है। परन्तु वास्तव में वे अपने नहीं है, अतएव उन्हें अपना समझना दुःख का कारण है। मरण में दुःख मानने का क्या कारण है? जैसे कोई पुराने वस्त्र का परित्याग कर नूतन वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार पुरातन तन का त्याग कर नूतन तन को धारण करना मृत्यु का प्रयोजन है। इस जन्म में आचरण किए हुए धर्म कृत्यों का फल मृत्यु की कृपा से प्राप्त होता है, अतएव मृत्यु का मित्र की भाँति स्वागत करना चाहिए। ऐसा विचार कर ज्ञानी पुरुष मृत्यु के प्रसंग पर दुःखी नहीं होते है। इसी प्रकार जीवन से वे प्रसन्नता अनुभव नहीं करते। यह जीवन, शरीर आदि पोद्गलिक पदार्थों पर आश्रित है। जो वस्तु पर पदार्थ पर अवलंबित है दूसरे के सहयोग से प्राप्त हो और जिसके भंग हो जाने की पल-पल पर संभावना बनी रहती हो, उसे पाकर प्रसन्नता क्यों होनी चाहिए?

निंदा और प्रशंसा में भी ज्ञानी की चित्तवृत्ति सम रहती है। निन्दक व्यक्ति जब ज्ञानी की निन्दा करता है, तब ज्ञानी विचारने लगता है-यह व्यक्ति मेरे अवगुणों को प्रकट कर रहा है, सो इसकी मुझ पर बडी कृपा है। मुझ में अनगिनते दोष हैं और उनका मुझें ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो पाता। यह पुरुष उन दोषों को प्रकाशित कर रहा हैं। यह दोषान्वेषण में मेरी सहायता कर रहा है। मुझे इसका आभारी होना चाहिए। निन्दक जिन दुर्गुणों का मुझमें आरोप कर रहा है, वह दुर्गुण यदि मुझमें है तो यह सत्य भाषण करके उसे दूर करने की प्रेरणा करता है, कदाचित् वह दुर्गुण उसमें नहीं होता तो वह सोचता है-यह बेचारा निन्दक अपने आन्तरिक संताप से संतप्त होकर शान्ति प्राप्त करने के लिए मेरी निन्दा करता है। यह इतना अज्ञानी है कि शान्ति-लाभ के लिए परिणाम में अशान्ति जनक कार्य करता है। अतएव यह क्रोध का पात्र नहीं है, किन्तु दया का पात्र हैं। निन्दा करके यह कर्मों का बन्ध कर रहा है तो मैं क्रोध करके कर्मों का बन्ध क्यों करूँ? फिर मुझमें ओर उसमें भेद ही क्या रह जायगा?

अपनी प्रशंसा स्तुति या कीर्त्ति सुनकर ज्ञानी प्रसन्न नहीं होता। वह सोचता है-यह प्रशंसा मेरी नहीं है, ये भगवान् तीर्थङ्कर द्वारा प्ररूपित चारित्र की है, क्यों कि उसका अनुसरण करने से ही प्रशंसा होती है। यदि मैं सम्यक् चारित्र का पालन न करता तो मेरी प्रशंसा न होती, अतएव इस प्रशंसा का श्रेय चारित्र को ही है। अथवा प्रशंसक जब किसी गुण-विशेष की प्रशंसा करता है तब ज्ञानी उस गुण संबंधी अपनी अपूर्णता का विचार करता है और उस अपूर्णता को दूर करने के लिए संकल्प करता है। इस प्रकार वह प्रशंसा सुनकर प्रसन्न नहीं होता।

ज्ञानी सन्मान और अपमान में भी समता भाव का ही सेवन करता है। वन्दना, नमस्कार करके संयमोपयोगी आहार आदि देकर सन्मान करने वाले पर वह राग नहीं करता और गाली देने वाले पर द्वेष नहीं करता। इन सब प्रसंगों पर वह अपने उपार्जित कर्मों को ही कारण समझकर समता का सहारा लेता है।

समता-भाव का चमत्कार अपूर्व है। जन्म के वैरी जन्तु भी समता भावी के संसर्ग में आकर अपना वैर त्यागकर मित्र बन जाते हैं। समता भावी महात्मा सदा साम्यसरोवर में निमग्न रहकर, अद्भुत सुख-सुधा का पान करके, सुखोपभोग करता रहता है। साम्यभाव के प्रभाव से कर्मों का विध्वंस होकर आत्मा अकलंक बन जाता है।

साम्यभावी ज्ञानी पुरुष संसार में इष्ट या अनिष्ट समझे जाने वाले पदार्थों में मोहित नहीं होता। श्रोता और निन्दक पर राग-द्वेष नहीं करता। प्रत्येक प्रसंग पर अरक्त-द्विष्ट रहता है। ● ● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

☆ एकत्व ☆

जन्मे जितने जीव हैं, जग में करो विचार।
लाए कितने साथ में, पहिले का परिवार ?
राज-पाट सुख सम्पदा, बाजि वृषभ गजराज।
मणि माणिक मोती महल, प्रेमी स्वजन समाज,
आया है क्या साथ में, जायेगा क्या साथ ?
जीव अकेला जायेगा, बन्धु पसारे हाथ।
घिरे रहो परिवार से, पर भूलो न विवेक।
रहा कभी में एक था, अन्त एक का एक।
पापों का फल एकले, भोगा कितनी बार।
कौन सहायक था हुवा, कर ले जरा विचार।
थोड़ी-थोड़ी बांट दे, प्रबल रोग की पीड़ !
आज-पास में जो खडी, सगे जनों की भीड !
यह अभिन्न काया नहीं, साथ जायगी भ्रात !
तो वैभव परिवार की, रही दूर ही बात।
कर जिनके हित पाप तूं, चला नरक के द्वार।
देख भोगते स्वर्गसुख, वे ही अपरम्पार।
दुनियां के बाजार में, चलकर आया एक।
मिले बहुत पर अन्त में, रहे न हाय अनेक।
तेरे अनुगामी स्वजन, गये कौन-सी बाट।
तूँ रोता ही रह गया, पकड़े-पकड़े खाट।
दुर्लभ मानव-तन मिला, कर एकत्व विचार।
कैसे होगा अन्यथा, तेरा आत्मोद्धार।
सत्य सनातन सारमय, सुख कारण एकत्व।
वही मुक्ति-पथ अभय है, यही शुद्ध है तत्त्व।

'सुधार त्यागी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76287

कर्म और पुरुषार्थ

लेखक—पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

एक भिखारी ने वीरसेवक के द्वार पर आवाज लगाई—'है कोई माई का लाल, करेगा साधु का सवाल पूरा।'

भिखारी की आवाज सुनकर वीरसेवक बाल-सुलभ उत्सुकता से द्वार की ओर गया तो उसने देखा—मलिन वेष में एक नवयुवक खड़ा है। शरीर पर पूरे वस्त्र नहीं हैं। उसने वीरसेवक की ओर आ-शापूर्ण नेत्रों से देख कर कहा—'बाबू! चुटकी भर आटा मिल जाय तो चोला प्रसन्न हो जाय। बहुत भूखा हूँ।'

वीरसेवक—तुम तो हट्टे-कट्टे मालूम होते हो। फिर क्यों ठोकरें खाते फिरते हो? कुछ काम करो।

भिखारी—बाबू! काम क्या करूँ? कुछ जानता नहीं, अक्षर से भेंट नहीं। माता-पिता रहे नहीं। दीन बा-लक हूँ। चुटकी भर आटा मिल जाय।

वीरसेवक—मैं तुमसे छोटा हूँ और चौथी कक्षामें पढता हूँ। तू ने बिलकु नहीं पढा। एक दिन गुरुजी कहते थे।

बड़ा पशू सोई अहै, विद्या नहीं जेहि पास।

भिखारी—परम दीन जन सम सदा, रहे परायी आस॥

वीरसेवक ने विस्मित होकर पूछा—तू कहता है-मेरे लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। फिर यह दोहा तुझे कैसे याद है?

भिखारी—बाबू, बचपन में बहुत यत्न किया, गुरू की सेवा की, पर मेरे भाग्य में विद्या नहीं थी, न आई, न आई। मैं पढ नहीं पाया। गुरुजी जब सम-झाते तो यही दोहा कहते थे। इसी से मुझे याद रह गया है।

वीरसेवक—तू ने परिश्रम किया, तेरे गुरु ने भी परिश्रम किया, फिर भी तू पढ नहीं सका, यह कदापि नहीं हो सकता। आखिर मैं भी तो पढता हूँ। झूठ बोलकर अपना मतलब गांठना चाहता है। चल हट यहाँ से।

वीरसेवक की माता ने उसे भिखारी का तिरस्कार करते देखकर भिखारी को सान्त्वना और कुछ अन्न देकर विदा किया। फिर वह वीरसेवकको समझाने लगी—'बेटा घर आये अतिथि का कभी अनादर नहीं करना चाहिये। एक दुखी जीव आशा लेकर तुम्हारे द्वार पर आये और तुम उसे निराशा के अंधकूप में उसे ढकेल दो तो उसे उतना ही दुख होता है जितना किसी की छाती में छूरा भोंक देने से होता है। सभ्य जनों का कर्त्तव्य यह नहीं है। हाँ, तुम यह कैसे कह सकते हो कि वह झूठ बोलता है.?

वीरसेवक—वह कहता था कि मेरे गुरुने बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिश्रम किया, मैंने बहुत माथा-पच्ची की, पर पढ न सका। यह कैसे सच हो सकता है? मैंने पढा है कि जो परिश्रम करता है, सफलता उसकी दासी हो जाती है। परिश्रमी के लिये कोई कार्य असाध्य नही होता। माँ, उसने परिश्रम किया होता तो अवश्य पढ़ जाता।

माता-बेटा! तू ने जो पढ़ा है, वह सत्य है परन्तु उसका रहस्य तुझे ज्ञात नहीं हुआ। बात यह है कि छोटे से छोटे और बडे से बडे कार्य के संपादन के लिये परिश्रम की आवश्यकता होती है, किन्तु केवल परिश्रम से ही सफलता नही मिलती। आटे से रोटी बनती है, आटे के अभाव में रोटी नहीं बन सकती। परन्तु क्या कोरे आटे से ही रोटी बन जाती है? उसके लिये दूसरी चीजों की भी आवश्यकता होती है। इसी प्रकार सफलता परिश्रम करने से मिलती है परन्तु किसी दूसरी शक्ति की भी जरुरत होती है। वह शक्ति 'कर्म' है जिसे लोग 'भाग्य' भी कहते हैं। जब कर्म परिश्रम के अनुकूल होता है तभी हमें सफलता मिलती है। देखो, ज्ञानपाल और अमिलाभ दोनों साथ साथ पढते थे। ज्ञानपाल परीक्षा के समय अस्वस्थ हो गया। यह कर्म का माहात्म्य है, अन्यथा वह भी उत्तीर्ण हो जाता। उसने क्या कम श्रम किया था?

माता ने आगे कहा-संभव है भिखारी ने विद्याध्ययन में श्रम किया हो, पर कर्म की प्रतिकूलता से उसे असफल होना पड़ा हो। विद्या प्राप्त करने में भी कर्म के क्षय-उपशम की आवश्यकता होती है। जैन शास्त्रों में कर्म के आठ भेद बतलाये गये हैं, उनमें एक ज्ञानावरण कर्म भी है। वह ज्ञान को रोकता है। ज्यों-ज्यों उसका क्षय-उपसम होता है, त्यों-त्यों ज्ञान की वृद्धि होती है। इसी कारण कोई छात्र थोडे परिश्रम से ही अधिक विद्या सम्पादन कर लेते हैं, कोई-कोई अधिक परिश्रम करगे पर भी अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर पाते। धनोपार्जन में भी कर्म का नियम लागू होता है। कितने लोग धनार्जन के लिये रात-दिन नही गिनते। फिर भी दरिद्रता उनका पीछा नहीं छोडती।

वीरसेवक-अच्छा माँ, जब केवल परिश्रम करने से भी सफलता नहीं मिलती तो परिश्रम करना व्यर्थ है।

माता-नहीं बेटा, यह बात नहीं है। जैसे गाडी का पहिया घूमता रहता है, वैसे ही कर्म भी प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। यदि तुम सदा परिश्रम करते रहोगे तो कर्म की अनुकूल अवस्था आते ही कार्य सिद्ध हो जायेगा। यदि तुम भाग्य के भरोसे निठल्ले बैठे ही रहोगे तो कदापि सफलता मिलनेवाली नहीं है। संभव है किसी समय कर्म की अवस्था कार्यसिद्धि के अनुकूल हो पर तुम्हारे निष्क्रिय बैठे रहने से वह यों ही निकल जाये! तुम यह नहीं जान सकते कि कर्म की अनुकूल अवस्था कब होगी? इसलिए कार्य सिद्ध होने तक बराबर उद्योग करते रहना चाहिये। जो एक बार की असफलता से हताश न होकर प्रयत्न करता रहता है, सभ्यता उसकी चेरी हो जाती है।

वीर-हाँ माँ, समझ गया कि सफलता प्रयत्न के बिना नहीं मिल सकती, मगर साथ में कर्म भी अनुकूल होना चाहिए। दोनों के संयोग से ही कार्य की सिद्धि होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आह्वान !!
सुधर्मा का.......

रचयिता–श्री सौभाग्यमुनिजी म० "कुमुद"

क्रम प्रकृति का ठेठ से ही आ रहा ऐसा कि,
जहाँ कुछ श्रेष्ठताएँ हैं वहीं कुछ हीनताएँ भी बढे !
जब छल-छलाकर जल बढा आता नदी में वेग से,
तब उस सलिल के साथ में मलीनताएँ भी बढे ।

卐 卐 卐

है भाग्य भारत का कि यहाँ जिन-संस्कृति आई,
'थमी' 'फैली' 'फली' 'फूली' सदा, जनगण दुल्हारी बन,
अहिंसा का मधुर स्वर घोष जिसके साथ में आया,
यह अनेकांत भी आया, उसी का सह विहारी बन ।

卐 卐 卐

उस संस्कृति की स्वच्छता 'औ' भव्यता दबती–
बिखरती नष्ट होती जा रही है आज भारत वर्ष में,
छा रही उस पर दुरित पाखण्ड की विषवल्लरी,
सब लग रही है शक्ति अब उस ही के अत्युत्कर्ष में

卐 卐 卐

ओ सुधर्मा पत्रिका ! आओ बढो ! आगे बढो !
पाखण्ड खण्डित कर बढो, सद्धर्म मण्डित कर बढो !,
जो मिल गया है मैल इस जिन संस्कृति के सलिल में
तुम वह मिटाती शुद्धता लाती, प्रशंसित बन बढो !
उस शक्ति का व्यय रोक दो जो हो रहा उन्मार्ग में,
आलोचनाओं में या प्रत्यालोचनाओं में,
यही कर्त्तव्य तुम्हारा कि तुम संकेत दे दो मार्ग का,
उसको कि जो भ्रमित व कुंठित हुआ विडम्बनाओं में ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवता और दानवता

लेखक—उपाध्याय कविवर्य श्री अमरमुनिजी म.

एक ओर मानव है, दूसरी ओर दानव। इन दोनों में क्या अन्तर है ? 'म' के स्थान पर 'द' कर दीजिए, इतना ही तो अन्तर है। इस एक अक्षर ने दोनों में कितना अन्तर कर दिया ! वह अन्तर क्या है ? क्या दोनों में शरीर का अन्तर है ? एक काला और दूसरा गोरा, या एक बदसूरत और दूसरा खूबसूरत है ? क्या इतना-सा अन्तर ही बडा अन्तर है ? यह तो मिट्टी का खेल है। यदि दोनों का वास्तविक अन्तर समझना हो तो वृत्तियों की ओर ध्यान देना होगा। जहाँ गहरा अन्धकार छाया हो, जहाँ केवल इस शरीर की ही पूजा होती हो, जहाँ संसार की वासनाओं में काम, क्रोध, मद, लोभ की अन्धेरी गलियों में मन ठोकरें खा रहा हो, समझना चाहिए कि वहाँ मानवता का नही, दानवता का साम्राज्य है। जहाँ ज्ञान का आलोक फैला हो, जहाँ सत्य, अहिंसा का नाद गूंज रहा हो, जहाँ जीवन में प्रेम एवं सद्भावनाओं का झरना बह रहा हो वहाँ समझना चाहिए कि मानवता का साम्राज्य है। यही दोनों का मौलिक अन्तर है। यह खाई दोनों को अलग-अलग कर देती है। जहाँ हिंसा है वहाँ दानवता है, जहाँ प्रेम है वहाँ मानवता है।

यदि आदमी केवल अपने ही बारे में सोचता रहे, तो वह हिंसा की ओर बढ़ रहा है—ऐसा मानना चाहिए। यहाँ किसी दानव जाति या मानव जाति की व्याख्या करना मुझे अभीष्ट नहीं है। इस समय जाति का प्रश्न नहीं, आत्मा की वृत्तियों का प्रश्न है। और यह प्रश्न है कि किसी एक जाति को दानव क्यों कहा गया तथा दूसरी को मानव क्यों कहा गया? जब इस तरह व्यापक दृष्टि से सोचेंगे, तब यह समझ में आएगा कि वृत्तियों के आधार पर ही यह विभाजन किया गया है। जहाँ स्वार्थ-परायणता है, जहाँ दूसरे के प्रति सहानुभूति का भाव नहीं है, वहाँ दानवता का ही निवास हो सकता है। क्योंकि सहानुभूति अहिंसा का पहला सूत्र है और अहिंसा मानवता का प्रतीक है। सहानुभूति से ही करुणा उत्पन्न होती है। करुणा से ही स्नेह छलकता है। स्नेह में सेवा की भावनाएँ अंगडाई लेती हैं। फिर सह-जीवन और विश्वास पैदा होता है—और ये सब मानवता के सद्गुण बनकर संसार का संचालन करते हैं।

हिंसा और अहिंसा—

जहाँ आत्मा की भावनाओं का विस्तार रुक जाता है, सद्भावनाओं का बहाव अवरुद्ध हो जाता है या विचार सिमट कर संकुचित हो जाते हैं, वहाँ हिंसा का प्रवेश होता है। एक शब्द में कहें तो संकीर्णता ही हिंसा है। जहाँ आत्मा का विस्तार समस्त विश्व के प्राणियों के लिए बढता है, जहाँ भावनाएँ विश्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्धुत्व की कामना के लिए अग्रसर होती है, एक शब्द में कहें तो व्यापकता ही अहिंसा है। मनुष्य क्षुद्र न बने। केवल अपनी ही चिन्ता न करे। अपनी ही पीडाओं या अपनी ही प्रसन्नता में सीमित न रहे। यह बहुत ही आवश्यक तत्त्व है। उसे अपने आपको विश्व के साथ विलीन कर देना चाहिए। फिर 'मैं' समाप्त हो जायगा और 'हम' का विकास होगा। जहाँ 'मैं' है, वहां संकुचितता है, वैयक्तिकता है, जहां 'हम' है, वहां व्यापकता है, सामाजिकता है। अपना विस्तार करते-करते सचमुच में जिस दिन हम विश्व-व्यापक हो जायेंगे, उस दिन भगवद् स्वरूप बन जायेंगे। आखिर भगवान् की सबसे बडी विशेषता क्या है? यही तो कि वह विश्व-व्यापक है। सारे संसार के साथ उसकी समान सहानुभूति है। वह किसी से प्यार और किसी से द्वेष नहीं करता। हमें भी उसी लक्ष्य तक पहुंचने का प्रयत्न करना चाहिये। दुनियां में जो प्रभावहीन हैं, बलहीन हैं, उनको कुचल कर स्वयं सक्षम बनना, बलवान् बनना ही दानवता का लक्षण है। लेकिन मानवीय सभ्यता कहती है कि जो व्यक्ति दुर्बल है, स्वयं अपने जीवन की यात्रा तय नहीं कर सकता, जो प्रभावहीन है, धनहीन है, उसकी सहायता करनी चाहिए। उसे सक्षम बनाने की कोशिश करनी चाहिए। दुर्बल को साथ लेकर चलना चाहिए। मानवीय सभ्यता कहती है कि तुम संसार में दीपक की भाँति रहो। दीपक स्वयं जलते हुए मार्ग को आलोकित रखता है। यदि वह केवल स्वयं ही को प्रकाशित कर रह जाय तो वह दीपक ही क्या? दीपक तो वह है जो स्वयं प्रकाशित हो और पथिकों के पथ को प्रकाशित रखे। उसी तरह तुम भी स्वयं प्रकाशित बनो और अन्धकार में भटकनेवाले दूसरे लोगों को मंजिल की ओर अग्रसर होने में सहायता करो। इतना ही नहीं, एक दीपक से दूसरा दीपक जलाया जाता है। इसलिए तुम्हारे पास जो प्रकाश उपलब्ध है—ज्ञान का जो आलोक है, उससे दूसरे लोगों को भी प्रकाशित करो; अर्थात् उनको भी ज्ञान दो, ताकि फिर वे असहाय और अक्षम न रहें। एक दीपक से हजारों दीपक जल सकते हैं। उसी तरह एक ज्ञानी से समाज के हजारों अज्ञानियों का भी उद्धार हो सकता है। यदि ऐसा न हो तो यह संसार चल ही नहीं सकता। एक दीपक जले और समाप्त होने के समय दूसरे को अपना स्थान न दे तो चारों ओर अन्धकार छा जायगा। इसलिए वह दूसरों को भी प्रकाशित करता ही है। अन्यथा हजारों वर्षों से चला आ रहा यह ज्ञान-विज्ञान अन्धकार के गर्भ में डूब जाता। इसलिए अक्षम को सक्षम बनाना ही, अन्धे को आँखे देना ही, अज्ञानी को ज्ञान देना ही—मानवता की भूमिका है। यह वृत्ति तभी पनपेगी, जब मनुष्य अपने ही समान अन्य व्यक्तियों को भी समझेंगें। जो अपने ही समान दूसरों के अस्तित्व को स्वीकार करेगा और जैसे स्वयं की आत्मा में कोई दुःख आने पर तत्काल अनुभव करता है, वैसे ही दूसरों के दुःख को भी अनुभव करेगा। वही मानवता की इस पवित्र भूमि पर चरण रख सकेगा। जैसे मुझे सुख प्रिय है, वैसे ही विश्व के सभी प्राणी सुखी होना चाहते हैं। जैसे मुझे जीवन प्रिय है, वैसे ही विश्व के समस्त प्राणी जीना चाहते हैं। उन मनुष्यों में और मुझमें कोई अन्तर नहीं है। सब की आत्मा एक ही जैसी है। सब को प्रेम चाहिए, सुख चाहिए। इस प्रकार जो दूसरों के सुखों को छीनने की कोशिश नहीं करता, विश्व के साथ एकात्म भाव रखता है, वही अहिंसा की साधना और धर्म की आराधना में सफल हो सकता है। बडी-बडी मालाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गले में डाल लेने से या लम्बा तिलक लगाकर राम-राम कहने से धर्म नहीं होता। कबीर ने कहा कि यदि पत्थर की पूजा से ही धर्म होता हो तो मैं पहाड़ की पूजा करूँ, यदि माला के मनकों में ही धर्म हो तो बड लक्कड की ही माला बना लूँ। ये सब बाह्य क्रियाकांड उतना महत्व नहीं रखते, जितना कि अन्तर की भावनाओं का महत्व है। यदि कोई अन्धकार को भगाने के लिए उसे डंडों से मारने की चेष्टा करे तो वह बेवकूफी ही समझी जायगी। क्या उससे अन्धकार भागेगा? अन्धकार को भगाना है तो उसके सामने प्रकाश को खडा कर दीजिए। अन्धकार अपने आप दूर हो जायगा।

आत्म-स्वरूप समान है

अन्धकार क्या है? क्या कोई वह ऐसी चीज है जो कहीं से आती है और चली जाती है? क्या प्रकाश उससे भिन्न कोई दूसरी चीज है, जो अन्धकार का स्थान ग्रहण कर लेती है? वास्तव में दोनों एक ही पुद्गल परमाणु के दो पर्याय हैं। पुद्गल स्वरूप की जो मूल शक्ति है, वह अन्धकार और प्रकाश में अलग-अलग नहीं है। जब प्रकाश आता है. तब अन्धकार नष्ट नहीं होता, बल्कि वह प्रकाश के रूप में बदल जाता है। अन्धकार के पुद्गल अपनी पर्याय बदल लेते हैं। इसी तरह जो असद् वृत्तियाँ हैं, वे ही सद्वृत्तियों के रूप में बदल सकती हैं, यदि हम सद्वृत्तियों का प्रकाश असद् वृत्तियों के अन्धकार के सामने खड़ा करें। राम और रावण की आत्मा में कोई अन्तर नहीं था। कृष्ण और कंस की आत्मा में भी कोई अन्तर नहीं था। केवल एक आत्मा प्रकाश में थी और दूसरी अन्धकार में। यदि रावण भी अपनी असद्वृत्तियों को रोक कर सद्वृत्तियों का प्रकाश आविर्भूत कर लेता तो सारी समस्याएँ स्वयं हल हो जातीं। आत्मा में कोई अन्तर नहीं है। जो बीज वृक्ष के रूप में खडा है, वही बीज वृक्ष की हर शाखा में, हर पत्ते में, हर फूल में और हर फल में रहता है। किन्तु जब एक शाखा सड़ जाती है, एक फल सड़ जाता है, इसका क्या कारण है? क्या उसके लिए कोई दूसरा बीज बोया गया था? नहीं। फिर भी ऐसा होता है। इसलिए कि हवा-पानी या अन्य प्राकृतिक चीजों का उस पर कुछ अलग से असर हुआ। इसी तरह मानव की वृत्तियों का भी होता है आत्मा एक जैसी ही है। अलग-अलग अवस्थाएँ केवल पर्यायों के बदलने के कारण या वृत्तियों के अन्तर के कारण होती हैं। आत्मा के मूल गुण कभी नष्ट नहीं होते। इस सृष्टि का कोई भी पदार्थ कभी भी सर्वथा नष्ट नहीं होता। यदि वस्तु का मूल स्वरूप ही नष्ट हो जाय तो सारा पदार्थविज्ञान ही नष्ट हो जायगा। गीता में कहा है:-

"नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः।"

सत् का कभी नाश नहीं होता और असत् का आविर्भाव नहीं होता।

सत्य अनन्त है, अमर है, और अजन्मा है। तीनों चीजें साथ ही स्वीकार करनी पडेंगी। जब तक सत्य को अमर स्वीकार नहीं करते तब तक उसे अजन्मा भी नहीं कहा जा सकता। और जो सत्य अजन्मा नहीं वह वास्तविक सत्य नहीं। क्योंकि सत्य चिन्तन वस्तु है। वह किसी टकसाल में घडी नही गई। जब वह कभी पैदा नही हुआ तो कभी मरेगा भी नहीं। इस लिए उसके जितने भी नाना रूप, अलग-अलग आचार्यों के मुख से प्रगट हुए हैं, वे सब सत्य हैं। एक ही अनन्त सत्य के अंश हैं। जो सत्य अनन्त दिशाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में फैला हुआ है, उसी को अमुक, अमुक ऋषि ने प्रगट किया है। जो बात गीता ने कही, वही जैनाचार्यों ने भी कही।

"नैवासतो जन्म सतो न नाशो,
दीपस्तमः पुद्गल भावतोऽस्ति।"

असत् का कभी जन्म नहीं होता और जो सत् है उसका कभी नाश नहीं होता। इसलिए प्रकाश के आने पर अन्धकार भी नष्ट नहीं हुआ। हाँ, उसकी पर्याय बदल गई। इसी तरह आत्मा में और परमात्मा में भी कोई अन्तर नहीं है। आत्मा और परमात्मा के अद्वैत का विचार भारतीय चिन्तन का प्रधान अंग है। जो आत्मा है, वही परमात्मा है। 'जे अप्पा सो परमप्पा"। जब अद्वैत का विचार आता है, तब उसमें विश्व की समस्त आत्माएँ समा जाती हैं। दुनियाँ भर के प्राणियों की आत्मा 'मैं' ही हूँ, जब इतनी व्यापकता मन में आती है, तब संकीर्णता के छोटे-छोटे दायरे अपने आप टूट जाते हैं। फिर तो अपना सुख-दुःख सारे विश्व के सुख-दुःख के साथ घुलमिल जाता है। इसी को धर्म कहते हैं, इसी को अहिंसा कहते हैं और इसी को मानवता कहते हैं। नाम कुछ भी दीजिये, भावना एक ही रहेगी।

इस दुनियाँ में उनको भी जीने का अधिकार है, जो दुर्बल हैं। यह बात उपरोक्त सिद्धान्त के विवेचन से सहज स्पष्ट हो जाती है। जो दीन-हीन हैं, उनको दीन-हीन समझकर सहयोग देते रहना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उन्हें दीन-हीन अवस्था से मुक्त करने का प्रयास करना होगा। दीन-हीन मनुष्यों की तरफ कुछ जूठे टुकडे फेंककर कर्तव्य-पालन की इति नहीं समझ लेनी चाहिए। कोई नदी में डूब रहा है तो उसे बचाना ही नहीं, नदी से पार लगा देना भी आवश्यक है। इसी तरह जो अज्ञान में डूब रहा है, उसे बचाना तो चाहिए ही, लेकिन उसके अज्ञान को भी दूर करना चाहिए।

दानवता का रूप

दानवता बर्बरता का नाम है। स्वयं अच्छी तरह जीना और दूसरे के शोषण पर अपने महल खडे करना, अपने स्वार्थ के लिए दूसरे के प्राणों का अपहरण कर लेना—दानवता है। इसीलिए भारत में मानवता के विकास की ओर बढ़ने की दिशा में मांसाहार निषेध किया गया। मांसाहार क्रूरता का द्योतक है। अपने लिए दूसरों के प्राणों पर हाथ साफ करना सौम्यता और कोमलता नहीं हो सकती। जो व्यक्ति विश्व के समस्त प्राणियों में अपनी ही आत्मा के दर्शन करता है। वह मांसाहार की ओर नहीं जा सकता। क्योंकि पशु बिचारा बोल नहीं सकता, इसलिए उस पर क्रूर प्रहार करना सहानुभूति के दायरे से कोसों दूर की बात है। इसी तरह अपने परिवार की और धन की रक्षा के लिए देवी-देवताओं के सामने पशुओं की बलि देना भी मानवता से परे की चीज है। मेरा बच्चा अच्छा हो जाय तो मैं बकरे की बलि चढाऊँगा। इस कथन में कितना भयंकर स्वार्थ है? मैंने सुना कि एक गाँव में सैंकडो घर जलकर साफ हो गये। पता लगाने पर मालूम हुआ कि किसी ने बताया था कि छप्पर में आग लगाने से बच्चा हो जायगा, इसलिए छप्पर में आग लगाई गई थी। समय पर आग को नियंत्रित नहीं किया जा सका; फलतः सारा गाँव स्वाहा हो गया। अब सोचने की बात है? कितने कि यह वृत्ति मानवता से कितने दूर की चीज है? बडे-बडे परिवार नष्ट हो गये। क्या परिवार-वृद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना ही सुख का लक्षण है ? फिर मनुष्य क्यों लोभ में फँस जाता है, यह समझ में नहीं आता ?

बादशाह फकीर के पास पहुँचा और कहने लगा कि तुम खुदा से मेरे लिए दुआ माँगो। फकीर ने फौरन घुटने टेके और दोनों हाथ सामने करके खुदा से दुआ माँगने लगा कि हे खुदा ! इस बादशाह को जल्दी-से-जल्दी मौत आता फरमा। बादशाह बहुत नाराज होकर बोला कि दुआ माँगने के स्थान पर तुम तो मौत माँग रहे हो ! फकीर ने कहा–तेरे लिए यही सबसे बडी दुआ है। तुम जल्दी मरोगे तो ज्यादा पाप नहीं बटोरोगे। और प्रजा भी सुख से जियेगी। फकीर की बात कटु जरूर थी, लेकिन सत्य से परे नहीं। बहुत से लोग ऐसे हैं जो अपने शरीर के लिए, अपने धन-ऐश्वर्य के लिए सब कुछ करने को तत्पर रहते हैं। उसी का परिणाम देवी-देवताओं के सामने बलि चढाने जैसी प्रथा है। आज भी भारत में अत्यन्त दुखदायी अन्धविश्वास चल रहे हैं, और उन्हें लोग समाज से चिपकाए रखने में गर्व महसूस करते हैं। जब तक इन गलत रीति-रिवाजों में समाज पडा रहेगा, जब तक व्यक्तिवादी दृष्टिकोण रहेगा। जब तक रूढिवाद का नशा समाज पर छाया रहेगा, तब तक मनुष्यता का विकास नहीं हो सकता।

मानवता का रूप

मानवता का मूलमंत्र है–'जीओ और जीने दो।' कुछ लोग इस सिद्धान्त को बहुत अधिक महत्व देते हैं, किन्तु यह तो प्रारंभिक चीज है। इस सिद्धान्त का अर्थ तो इतना ही निकलता है कि खुद भी जीओ और ऐसे जीओ कि दूसरे भी जिन्दा रह सकें–यानी दूसरों को सताओ मत, कुचलो मत। लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। इतने मात्र से भारतीय संस्कृति के भव्य मंदिर पर स्वर्ण कलश नहीं चढ़ सकता। इस बारे में उन लोगों के लिए कोई बात नहीं कही गई है जो जिन्दा भी मृत के समान हैं। जो पीडित हैं, दुःखी हैं, कष्ट में हैं उनकी सेवा के लिए इस बारे में कोई बात नहीं है। तो उनको जिलाने के लिए प्रयत्न करने की बात भी हमें सोचनी चाहिए। दूसरों के कष्टों में शामिल होना, जहाँ तक संभव हो, उसमें हाथ बँटाना मानवता के नाते आदमी का कर्तव्य हो जाता है। किसी का दु.ख देखकर तटस्थ खडे रह जाना–मानवता की दृष्टि से उचित नहीं है। इसलिए दूसरों को जिलाना चाहिए। इतना ही नहीं, बल्कि दूसरों के जीने के लिए ही स्वयं को जीना चाहिए। अपने हितों को, अपने जीवन को, अपने स्वार्थ को खतरे में डालकर भी आवश्यकता पडे तो समाज और राष्ट्र के काम आना चाहिए। अपने जीवन की आहुति देकर भी दूसरे के जीवन की सेवा करनी चाहिए।

एक राजकुमार था। उसका कुछ दिन पहले ही विवाह हुआ था। यौवन के प्रवेश-द्वार पर वह खडा था। संसार के भोग और उनकी पूर्ति के साधन उसके सामने प्रस्तुत थे। एक दिन वह वन-विहार के लिए निकला। किसी पर्वतीय प्रदेश में से गुजरते हुए उसे एक नारी का करूण क्रन्दन सुनाई दिया। वह राजकुमार आवाज के सहारे उस स्त्री के पास पहुँचा और कहने लगा–माँ, तुम रोती क्यों हो ? क्या कष्ट है तुम्हें ? मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ ? नारी ने कहा–बेटा गरुडदेव के सामने प्रति दिन एक नागपुत्र की बलि दी जाती है। आज के दिन मेरे पुत्र की बारी है। मेरा यह इकलौता पुत्र है। यही मेरी आँखों का तारा और बुढापे का सहारा है। यह सुनते ही जीमूतवाहन नाम का वह राजकुमार द्रवित हो गया। वह कहने लगा कि माँ, तुम निश्चिंत रहो। तुम्हारे पुत्र की प्राण-रक्षा का उत्तरदायित्व मुझ पर है। उसके स्थान पर मैं चला जाऊँगा। बुढिया बहुत इन्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करतीं रही, लेकिन वह वध-शालामें पहुँच गया।

"आर्तकंठ गतः प्राणं त्यक्तं स्वजनबंधुभिः।

आर्त रोदन से ग्रसित प्राणी मेरे सामने है ओर यदि में उसकी रक्षा नहीं कर सकता तो मेरे शरीर का और मेरे जीवन का फायदा ही क्या है ? इसलिए मुझे अपना बलिदान करना चाहिए। यह विचार उसके मन में घूम रहा था और वह वध-शाला में गरुडदेव के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। मृत्यु की गोद में जाते हुए जीमूतवाहन उसी आनन्द की अनुभूति कर रहा था जिस आनंद की अनुभूति माँ की गोद मे जाने से होती है। थोडी ही देर में गरुडदेव पहुँचे। देखते ही बोले-तुम कौन हो ? तुम तो नाग जाति के नहीं हो ? मुझे तुम्हारा बलिदान नहीं चाहिए। राजकुमार ने कहा–देव ! तुमको इससे क्या कि में कौन हूँ ? तुम्हें तो किसी का बलिदान ही चाहिए न ? में स्वेच्छा से आया हूँ, और अपने आपको समर्पित कर रहा हूँ। तुम अपना काम करो। इस तरह स्वयं की आहुति देते हुए राजकुमार ने अन्तिम प्रार्थना की:–

'हे मेरे प्रभु, उस नाग कुमार के लिए में अपने प्राणों की आहुति दे रहा हूँ। इसमें से यदि कोई पुण्य-प्राप्त हो सकता हो तो उसके बदले में मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए, राज्य-सिंहासन नहीं चाहिए, धन-ऐश्वर्य नहीं चाहिए, मेरी केवल एक ही कामना है कि जन्म-जन्मांतर तक मैं दूसरों के कल्याण के लिए काम आता जाऊँ। अपना बलिदान देता जाऊँ। इसके अतिरिक्त मुझे किसी भी चीज की आकांक्षा नहीं है।"

इसे कहते हैं–सच्ची मानवता, जो दूसरों के लिए जीना सिखाती है। मानवता और दानवता में यही अन्तर है। लेकिन यह अन्तर बहुत बडा अन्तर है। एक इसी अन्तर से सारे संसार की रचना बदल जाती है। इसलिए हमें अपने जीवन में मानवता के विकास का अवसर मिले–यही कोशिश करनी चाहिए।

('श्री अमर भारती' से साभार)

हमारा सांस्कृतिक जीवन

लें.—पं. मुनिश्री भानुऋषिजी म. 'जैन सि. आचार्य'

एक 'सूटेड बूटेड' आदमी को देखकर हम कहते हैं सभ्य, सुसंस्कृत, क्यों ? कारण स्पष्ट है कि उसके पास समाज की सभ्यता और संस्कृति की सतहपर खडे होने के लिए साधन है। एक फटे हाल भिखमंगे को देखकर कहते हैं–असभ्य, गंवार। क्या उसका सांस्कृतिक जीवन गिरा हुआ है ? कभी नहीं ? मगर जब कि उसके पास भी अपनी आर्थिक उन्नति के कुछ साधन होते। एक रईस बिना खोले ही किसी दैनिक अखबार को फाडकर फेंक देता है। क्या ऐसे आदमी का सांस्कृतिक जीवन ऊँचा समझा जाएगा ? जिसे समाज और देश में क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निकाण्ड हो रहा है, इसकी जरा भी परवाह नहीं, किन्तु ऐसे व्यक्तियों को सभ्य समाज का सभापति होते किसने नहीं देखा ? क्या इस रहस्य को भी समझाने की जरूरत है।

एक व्यापारी सट्टे में पाँचसौ रूपया माहवार कमाता है और विश्व-विद्यालय का एक स्नातक पचास—दोनों में अधिक सभ्य कौन है ? आध्यात्मिक जगत् में स्नातक और इस भौतिक जगत् में व्यापारी। समाज और देश के लिए किसका जीवन अधिक उपयोगी है ? बातों में स्नातक का और व्यवहार में व्यापारी का। जिसका जीवन समाज और सरकार को धोखा देकर मुनाफा फायदा बटोरने में बीता है। वह सभ्य और जिसने अपना जीवन तप और साधना की वेदीपर चढा दिया वह हमारे लिये उपहास की सामग्री असभ्य ! यदि सट्टा और खावटी बंद हो जाय तो इन आज के सभ्य लोगों का फल क्या होगा ?

प्रायः देखा जाता है कि धनवानों के बच्चे पढने में कमजोर रहते हैं, क्यों ? वे जानते हैं कि परीक्षा के समय हम चढावा चढा देंगे। मास्टरों को पैसे से क्या नहीं खरीदा जा सकता ? सभ्यता और संस्कृति भी अपवाद नहीं। उन्हें मालूम है कि पढे-लिखे लोगों को हम नौकर रखकर काम चला लेंगे। फिर माथा-पच्ची क्यों करें ?

देश के सांस्कृतिक विकास के लिए सर्व-साधारण की आर्थिक अवस्था का ठीक होना अत्यावश्यक है, क्योंकि सभ्यता तथा संस्कृति और आर्थिक उन्नति में अन्योन्याश्रित संबंध है। यही कारण है कि एक अंग्रेज की दृष्टि में एक हिन्दुस्तानी असंस्कृत है और हमारी दृष्टि से एक भील। जिस तरह दो राष्ट्रों के कला और साहित्य, दर्शन, और विज्ञान, धर्म और नैतिकता में भिन्नता रह सकती है, उसी तरह दो आदमियों के दैनिक जीवन में भी। रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, वेष-भाषा और आचार-विचार को देखकर ही तो निश्चित करते हैं कि अमुक आदमी अधिक सभ्य और सुसंस्कृत है। इसका स्पष्ट कारण अपनी-अपनी आर्थिक सुविधा है। एक अपना मानसिक विकास कर सकता है, दूसरा नहीं। यदि मानव इतिहास के प्रत्येक कौमकी संस्कृति उस काल के विशिष्ट आर्थिक जीवन का प्रतिबिंब है तो हमारे देश के वर्तमान सांस्कृतिक जीवन की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। जहाँ ४०–५० करोड में अनुमानतः चार लाख सुखी हों किसी अपेक्षा से।

एक भिखमंगे को देखकर इच्छा हुई तो हम कुछ दे देते हैं नहीं तो पास में पैसा होने पर भी इन्कार कर देते हैं। कभी इच्छा होती है कि ये भिखमंगे समाज के कोढ हैं, इन्हें गोली क्यों नहीं मार दी जाय ? राष्ट्र का धन व्यर्थ बरबाद करते हैं। किन्तु यह स्थिति क्या हमारे सभ्य और सुसंस्कृत कहलानेवाले लोगों के पापों का फल नहीं है ? समाज और सरकार पर क्या इसका कुछ भी उत्तरदायित्व नहीं ? उन्हें भीख देना हमने धर्म समझ लिया। किन्तु इससे समस्या तो हल नहीं हुई। उनका जीवन सिर्फ हमारी इच्छाओं पर निर्भर रहे, क्या यही हमारी सभ्यता और संस्कृति सिखाती है ? आज हमारे सामने कई प्रश्न हैं—पूंजीवाद, साम्यवाद, सांस्कृतिकवाद आदि-आदि। मानव जाति के इतिहास की युग-संधि पर हम खडे हैं। इतिहास हमसे इस प्रश्न का आज स्पष्ट उत्तर चाहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा और आनन्द

लेखक—श्री ज्ञान भारिल्ल M. A.

अपने अधिक से अधिक विस्तृत अर्थ में 'इच्छा' शब्द का प्रयोग किसी भी प्रकार के संतोष प्राप्त करने की अभिलाषा, चाहे वह शारीरिक, भावनामय, बौद्धिक या आध्यात्मिक हो—किसी भी ऐसी वस्तु के लिए अभिलाषा जो क्षणिक आनन्द अथवा सनातन सुख दे सकती हो, के लिए किया जा सकता है। किन्तु व्यावहारिक उपयोग में यह शब्द प्रायः इन्द्रिय-तृप्ति के लिए वासनामय भावना के अर्थ में ही लिया गया है। हम यहाँ उसका यही अर्थ लेकर कुछ विचार करेंगे।

इस सीमित अर्थ में भी इच्छा मनुष्य-स्तर से नीचे नहीं होती। पशु भूख वाले होते हैं। अपनी प्राकृतिक स्थिति में वे प्रकृति की बुद्धि द्वारा प्रेरित होते हैं, अर्थात् वे अपनी सहज प्रवृत्ति द्वारा, अपनी और अपनी जाति की सुरक्षा के लिए भूख मिटाकर निर्वाह करते हैं। वे विना इच्छा द्वारा प्रेरित मात्र प्रकृति की आवश्यकता की पूर्ति के लिए भोजन और साथी की ओर प्राकृतिक रूप से आकर्षित होते हैं।

इच्छा केवल मस्तिष्क और आत्म-चेतना युक्त मनुष्य में ही उत्पन्न होती है। क्यों कि इच्छा 'चेतना-युक्त भूख' है। सहज प्रवृत्ति द्वारा बुद्धिपूर्वक चालित होने के स्थान पर मनुष्य मस्तिष्क के बुद्धिहीन उपयोग द्वारा, और इच्छा से खिचकर, भटक जाता है। औसत वर्तमान मानवता के विकास के युग में मस्तिष्क पृथक, स्वार्थी तरीकों में प्रयुक्त होता है और अधिक तर पदार्थ तक सीमित रहता है, और इस तरह पदार्थ से बँधे हुए और पदार्थ से बन्ध मस्तिष्क से उत्पन्न इच्छा स्वार्थमय और भौतिक सन्तोष ढूँढती है। और मनुष्य केवल क्षणिक इच्छाओं को सन्तुष्ट ही नहीं करता, लेकिन उन्हें बढ़ाता और प्रेरित करता है। ऐसा वह मस्तिष्क की दो बड़ी शक्तियों—स्मृति तथा पूर्वज्ञान—का गलत उपयोग करता है।

इसलिए यह है कि इच्छा कभी तृप्त न होनेवाली और हमेशा अधूरी है, तथा केवल प्राकृतिक प्रेरणाएँ सदैव 'और-और' की माँग करती हैं, जैसे-जैसे व्यक्ति उन्हें ढील देता जाता है। ऐसी स्थिति में इच्छा का कोई भी प्राप्त उद्देश्य हमेशा रहने वाली तुष्टि नहीं दे सकता, वह केवल क्षणिक तुष्टि ही दे सकता है जो केवल इच्छा को और भी पोषित करती है और उसे ऐसी स्वरति में डाल देता है जो धीरे-धीरे अधिक से अधिक जहरीली होती जाती है।

प्रायः इच्छा अन्त तक रहती है, क्यों कि आवश्यकताए अनन्त हैं और तुष्टि क्षणिक। और इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त सन्तुष्ट वासना प्राय: प्रसन्नता के स्थान पर अप्रसन्नता की ओर ही ले जाती है, जिससे कि हम जब तक इच्छाओं के वश में रहते हैं, हमें कभी सदा रहने वाली प्रसन्नता अथवा शान्ति नहीं मिलती, अत: जैसा कि अत्यन्त आधुनिक व्यक्ति कहते हैं, इच्छा को अन्तिम अधिकारी बनाना आन्तरिक जीवन में सर्व नाश को आमंत्रित करना है, जब कि इच्छाओं को कम करना अपनी शक्तिओं को बढ़ाना है।

निस्सन्देह विकास के क्रम में इच्छा के निम्न स्वरूप अपना उचित स्थान रखते हैं। जब तक मानवता आरम्भिक विकास की स्थिति में थी, इच्छा उतनी ही उपयोगी थी, जितनी बच्चे के दाँत उगने के समय 'टीथिंग रिंग' होती है। लेकिन जब दाँत उग आते हैं तब बालकों को रिंग की आवश्यकता नहीं रहती–चाहे वह उसे एक खिलौने के रूप में रखना चाहे। इसी तरह मानवता को उच्च चेतना के उदय के बाद इच्छा–तत्त्व की आवश्यकता नहीं रहती। यदि वह अपनी प्रत्येक इच्छा से एक सुख उत्पन्न करने वाले खिलौने की तरह चिपटा रहे तो वह एक अलग बात है।

वर्तमान समय में इच्छा अब भी उन पिछड़े लोगों के लिए एक प्रेरक–शक्ति हो सकती है जो इन्द्रिय तृप्ति की सम्भावना के बगैर कुछ करेंगे ही नहीं। लेकिन अभिप्राय यह नहीं है कि यह अब भी सब के लिए एक आवश्यक तत्त्व है या यह उन लोगों के साथ हमेशा रहनी चाहिए जिन्हें अभी इस से मदद मिल रही है।

जल्दी या देर से, किसी को भी यह समझ में आने लगता है कि परिवर्त्तित होने वाली वस्तुओं के लिए होने वाली इच्छा कोई भी स्थायी सन्तोष नहीं दे सकती ; और यह भी कि जब तक हमारी इच्छाएँ सृष्टि के नियम से संघर्षशील हैं, हमें दु:ख उठाना पड़ेगा। उन्हें यह भी समझ में आये बगैर नहीं रह सकता कि इच्छाएँ दु:ख के साथ हैं, बल्कि इच्छा स्वयं ही दु:ख है, लालसा के समान कोई भी दु:ख नहीं है, ऐन्द्रियता के समान कोई धोखा नहीं है।

और ऐसा होने पर हमें स्वार्थी ऐन्द्रिक कामनाओं के अत्याचार से अलग हटकर अधिक ठहरनेवाली वस्तुओं के प्रति एक आन्तरिक अभिलाषा का अनुभव होता है। प्रकृति की संयोजना और नियमों के लिए सजग सहयोग की एक निस्वार्थ भावना उत्पन्न होती है जो कि कर्म के लिए इच्छा से भी अधिक प्रभावशाली कर्त्तव्य-शक्ति हमें देती है।

जैसे-जैसे हमारे निस्वार्थ प्रयत्न बढ़ते जाते हैं, हमारे भीतर उच्च मानवीय अस्तित्व और उसे प्राप्त करने की अभिलाषा का एक सहज ज्ञान उत्पन्न होता है। यह अभिलाषा प्रत्येक के भीतर गहराई में होती है, लेकिन इच्छा के समान नहीं जो कि गलत संचालित, किन्तु बुद्धि से सम्बद्ध, मस्तिष्क से पोषण पाती है। यह हमारा एक आवश्यक हिस्सा है; फिर भी बहुत लोग इसे नहीं जानते हैं, क्योंकि हमारी पाशविक इच्छाओं ने हमसे हमारा सही जीवन छिपा लिया है। यह मनुष्य का दुर्भाग्य है कि वह स्वयं बंधित है, अपनी ही इच्छाओं से घिरकर खोया हुआ। अतएव, यह विचार कि मनुष्य को सांसारिक इच्छाओं के बन्धन से स्वयं को मुक्त करना चाहिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारीरिक सुखों पर दृष्टिपात करते हुए विचारशील मस्तिष्क का ही निर्णय है। अस्थायी इच्छाओं के प्रति तमाम आतुरता को निकाल फेंकना—यही मुक्ति है, और यही स्वतन्त्र व्यक्ति की साधना है।

प्रत्येक काल के महान् विचारकों, रहस्यवादियों और आध्यात्मिक नेताओं की यह स्पष्ट मान्यता रही है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में, जो विकास में आगे बढना चाहता है, और वास्तविक सुख को प्राप्त करना चाहता है, एक समय ऐसा आता है जब इच्छाओं का अन्त हो जाना चाहिए............पाशविक लालसाओं को मर जाना चाहिए।

हमारी बाह्य इच्छाएँ जितनी बाधा हमें अपनी आन्तरिक शक्तियों के विकास और उपयोग में देती हैं उतनी और कोई नहीं देता। हमारी वे मूल्यवान् शक्तियाँ इच्छा की थोडी-सी भी गति से बाधित हो जाती हैं। अतः तमाम इच्छा समाप्त हो जानी चाहिए। किन्तु उन्हें जबरदस्ती, कष्ट देकर समाप्त नहीं किया जाना चाहिए। उन्हें धीरे-धीरे शुभ और स्थायी सुख की ओर परिवर्तित किया जाना चाहिये, और इस प्रकार वे निम्न इच्छाएँ स्वयं ही सीमित हो जाँयगी, धुल जाँयगी और अदृश्य हो जाँयगी। कष्ट का भोग तब अपना स्थान हमेशा रहनेवाले 'आनन्द' को दे देगा; इच्छा से मुक्ति कीमती से कीमती खजाने में से कीमती से कीमती वस्तु को पा लेना है। इसमें तनिक भी सन्देह के लिए अवकाश नहीं है कि उस व्यक्ति को दैवी प्रभाव तथा 'चिदानंद' प्राप्त होगा जो अपनी आत्मा को तमाम शारीरिक इच्छाओं से मुक्त कर लेगा।

आज मानवता अत्यन्त अशान्त हो गई है। आज जो चाहा जा रहा है वह वस्तुतः आनन्द या प्रसन्नता या सुख नहीं; बल्कि एक प्रकार की ऐन्द्रिक उत्तेजना और उसकी सन्तुष्टि ही है जो कि शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य को नष्ट करती है। प्रत्येक व्यक्ति जो 'इच्छा' और शरीर का दास है, अपने शरीर तथा मस्तिष्क दोनों की दृष्टि से बुरी स्थिति में है। ऐसा तथाकथित आनन्द व्यक्ति की शक्ति को सोख लेता हैं। ऐसे आनन्द के पीछे उसका विपरीत भी आता है—दुःख; जब कि सच्चे आनन्द अथवा सुख का यह गुण है कि वह अपने विपरीत में कभी नहीं बदलता, क्योंकि वह सुख, वह सच्चा आनन्द स्वयं-सम्पूर्ण होता है।

मनुष्य जब एक बार ऐसे आन्तरिक स्रोत से निस्तृत सुख का रसास्वादन कर लेगा तब निम्न 'इच्छा' को अलग हटाकर 'उच्चतम आनन्द' तक पहुँच सकेगा।

मंगलमय सांवत्सरिक पर्व दिवस पर प्राणिमात्र की मंगल कामना के साथ सुधर्मा-परिवार ने सब जीवों से क्षमा याचना की है। आप क्षमाशील हैं। क्षमाप्रदान करें।

"संपादक"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवचनकार—
पं. प्रवर श्रद्धेय पुष्करमुनिजी महाराज

भारतीय संस्कृति में–भक्ति--साधना

सम्पादक—
पं शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

भारतवर्ष की विभिन्न धर्म परम्पराओं में भक्ति को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। ईसाई: मुस्लिम तथा अन्यान्य सम्प्रदायों में भी भक्ति की सुन्दर और मधुर व्याख्या की गई है।

भक्ति के अनेक साधन हैं, अनेक स्तर हैं और अनेक प्रकार के भेद हैं। शैव, शाक्त और वैष्णव सम्प्रदाय तो भक्तिमार्ग को ही उत्कृष्ट मार्ग मान कर चलते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि भक्ति का साधन अन्य साधनोंकी अपेक्षा सरल है। अतएव प्राथमिक भूमिका के साधकों के लिये यह सर्वोत्कृष्ट साधन है। यही कारण है कि अन्यान्य साधनों की अपेक्षा भक्ति साधन अपनाने वालों की ही संख्या विपुल है। उसी का प्रचार सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

वैदिक परम्परा में भक्ति की विवेचना और मीमांसा में प्रचुर ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। उन ग्रन्थों में भक्ति के इतने अधिक रूप प्रकार-प्रदर्शित किये गये हैं कि उनका यहाँ सामान्य उल्लेख करना भी संभव नहीं है। सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति तो प्रसिद्ध ही है, जिसमें परमात्मा के साकार और निराकार स्वरूप की उपासना की जाती है। जिसमें परमात्मा के साकार और निराकार स्वरूप की उपासना की जाती है, उनके भी नाना भेद-प्रभेद हैं। भागवत में नवधा भक्ति का निरूपण इस प्रकार मिलता है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णुः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं, सख्यमात्मनिवेदनम्।

(१) भगवान् के अलौकिक चरित्र को श्रवण करना (२) नाम कीर्तन करना (३) स्मरण करना (४) चरण कमलों का सेवन करना (५) बाह्य सामग्री या मन द्वारा कल्पित सामग्री से भगवत्पूजन करना (६) वन्दन-प्रणमन करना (७) अपने को दास मानकर सेवा करना (८) मित्र भाव से सेवा करना (९) अहंकार को त्यागकर अपने सर्वस्व को तथा अपने आपको भगवान् के समर्पण कर देना।

वहाँ पाँच रसों के आधार पर पाँच प्रकार की भक्ति का वर्णन भी मिलता है। पाँच रस इस प्रकार हैं- शान्त रस, प्रीतिरस, प्रेयोरस (सख्यरस), वात्सल्य-रस और मधुररस (शृंगार रस) एक विद्वान् कहते हैं (भक्ति) रस की सर्वोच्च परिणति मधुर रस में होती है। यह अलंकार-शास्त्र के शृंगाररस का अतीन्द्रिय दिव्यस्वरूप है। यह सभी के अनुभव की बात है कि लौकिक इन्द्रिय सुख की प्रगाढता और विस्तार की परमावधि दाम्पत्य प्रेम में ही हुआ करती है। इसी प्रकार शृंगार अथवा मधुररस विकास की चरमावस्था है। चरमावस्था इसे इसलिए कहा जाता है कि इसमें सब प्रकार की मर्यादा और सङ्कोच दूर हो जाते हैं और निरन्तर भगवान् की सेवा अबाध रूपसें होती है और इस प्रकार सुख का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समास्वादन अत्यन्त प्रगाढ़ होता है।

इसका आशय यह है कि परमात्मा को पति मानकर और अपने आपको पत्नी समझकर भक्त जो भक्ति करता है, वही सर्वोत्कृष्ट भक्ति है। इस प्रकार की 'कृष्ण भक्ति' राधाने की थी और जो सर्वोत्तम भक्ति करना चाहता है उसे अपने को राधा-भगवान् की पत्नी मानकर ही भक्ति करना चाहिए।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की विवेचनाएँ वास्तवमें भक्ति की विकृतियाँ हैं और भूतकाल में इन कल्पनाओं की बदौलत घोर से घोर अनर्थ, दुराचार और व्यभिचार तक हुए हैं। धर्म भी हो और हृदय की उच्छृंखल वासना का पोषण भी हो जाय तो कौन ऐसा न करना चाहेगा?

परमात्मा की भक्ति का उद्देश्य काम-क्रोध आदि दुर्वासनाओं का उन्मूलन करके वीतरागभाव प्राप्त करना है, मगर दाम्पत्य भाव से की जानेवाली भक्ति इस उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर सकती। यही नहीं, वह प्रकारान्तर से कामुकता की वृद्धिमें सहायता करती है। भक्ति विषयक ये कल्पनाएँ साहित्यिक रूप में कितनी ही सात्त्विक क्यों न हों, व्यवहार में सात्त्विक नहीं रह सकती। इतिहास साक्षी है कि वे सात्त्विक रही भी नहीं हैं। इस प्रकार की विकृत भक्ति ने सहस्त्रों जनों को धर्म-विरोधी बनाया है।

जैन परम्परा में भी भक्तिमार्ग को समुचित स्थान उपलब्ध है। और इस विषय पर प्रचुर साहित्य का निर्माण भी हुआ है। मगर जैनधर्म का मूल और मुख्य उद्देश्य परिपूर्ण वीतराग-भाव की प्राप्ति है, अतएव उसके अनुरूप ही वहाँ भक्ति का विधान किया गया है।

जिन्होंने राग-द्वेष, काम-क्रोध, आदि समस्त आत्मिक विकारों पर विजय प्राप्त कर ली है, जो सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता प्राप्त करके अव्याबाध अनन्त सुख के भागी बन चुके हैं, ऐसे अरिहन्त भगवान् के प्रति, चतुर्विध तीर्थ के नायक एवं आचार का पालन करने-कराने वाले धर्माचार्यों के प्रति, बहुश्रुतों आगम के प्रति 'विशुद्ध भावपूर्ण अनुराग' होना भक्ति है।

'विशुद्ध भावपूर्ण अनुराग' का तात्पर्य यह है कि वीतराग भगवान् के प्रति हृदय में ऐसी गहरी, व्यापक एवं जागृत प्रीति उत्पन्न होनी चाहिये कि वह अनन्यनिष्ठा बन जाए-जगत् के पदार्थों और सुखों पर अनुराग न रह जाए। कहावत प्रसिद्ध है "एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं"। मानव का मन म्यान है और उसमें परमात्म-प्रीति जब प्रगाढ रूप में जागृत होती है तो अन्य पदार्थों के अनुराग को कोई अवकाश नहीं रहता। भक्त उस स्थिति में अपने आपको भगवत्समर्पित अनुभव करने लगता है और शनैः-शनैः उसकी अनुभूति तन्मयता का रूप धारण कर लेती है। उसमें भागवत् गुण प्रकट होने लगते हैं और अन्ततः भक्त ही भगवान् बन जाता है।

जैन परम्परा में अनादि सिद्ध एक ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं की जाती। ईश्वर तत्त्व पर एक व्यक्ति का शाश्वत एकाधिपत्य (Monoboly) नहीं है। प्रत्येक साधक औपाधिक भावों से मुक्ति प्राप्त कर और शुद्ध आत्म-स्वरूप को प्रकट करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरत्व की विभूति का अधिकारी बन सकता है। अतएव भक्ति का उद्देश्य अन्ततः स्वयं ईश्वर बनना है। ईश्वर का दास या सखा बन के रहने में भक्ति की चरम कृतार्थता नहीं है। इस प्रकार भक्ति ईश्वरत्व प्राप्ति का साधन है, साध्य नहीं। भक्ति को साध्य और साधन उभय रूप मानना भ्रांति है।

भक्ति के विषय में एक प्रश्न पर विचार करके हम इस प्रकरण को समाप्त करेंगे। प्रश्न यह है कि ईश्वर में यदि रोष और तोष की वृत्तियाँ विद्यमान हों और उनसे प्रेरित होकर वह अनुग्रह निग्रह करता हो—आशीर्वाद और अभिशाप देता हो, तब तो उसकी भक्ति करने से कुछ लाभ हो सकता है। यदि उसमें वह वृत्तियाँ नहीं हैं, वह वीतराग है तो उसकी भक्ति निरर्थक क्यों नहीं है ?

बहुत लोगों के चित्त में यह प्रश्न उठता है किन्तु उसका मूल भक्ति विषयक शुद्ध ज्ञान का अभाव है। भक्ति का मूल्य समर्पण में है, ग्रहण में नहीं। ऐहिक या पारलौकिक सुखसाधन प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाने वाली भक्ति वस्तुतः भक्ति ही नहीं है। भक्ति का उद्देश्य विषय तृष्णा एवं कामना को नष्ट करके वीतरागता प्राप्त करना है, न कि कामनाओं की पूर्ति करना। जो लौकिक कामना की पूर्ति के लिए परमात्मा की भक्ति, स्तुति या प्रार्थना करता है, वह कृषक से भी अधिक भाग्यहीन है जो भूसे के उद्देश्य से कृषि करता है।

परमात्मा के गुणों में अनन्य अनुराग उत्पन्न होने पर विषय-जनित सुख और सुख के साधनभूत पदार्थों की निर्गुणता. अन्तःकरण में बद्धमूल हो जाती है। अनासक्ति की वृद्धि होती है और पापाचार का परित्याग हो जाता है। ऐसी अवस्था में अपूर्व समभाव जागृत होता है और निराकुलता के निरूपम आनन्द की उपलब्धि होने लगती है। यह आनन्द इतना तीव्र और वास्तविक होता है कि विषयजन्य वैकारिक सुख इसकी तुलनामें नगण्य होता है। शनैःशनैः भक्त आत्मशुद्धि के महामार्ग पर अग्रसर होता जाता है और परिपूर्ण आत्मानंद का भाजन बनता है। यही भक्ति का सबसे बडा और महामूल्य पुरस्कार है। इस प्रकार वीतराग देव हमें जो देते नहीं, उसे हम, वीतराग की भक्ति करके स्वयं प्राप्त कर लेते हैं।

ऐहिक लाभ की प्राप्ति के लिए परमात्मा में सरागित्व की कल्पना करना अनात्मज्ञता का परिचायक है। पिछले समय की जैन स्तुतियों या प्रार्थनाओं में यदि ऐहिक याचना की प्रवृत्ति कहीं-कहीं दृष्टि-गोचर होती है तो उसे पडौसियों का ही प्रभाव समझना चाहिए।

भक्ति, स्तुति, स्तवन, प्रार्थना, भजन आदि एक ही अभिप्राय के सूचक हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में चतुर्विंशतिस्तव चौबीस तीर्थङ्करोंकी स्तुति का फल सम्यग्दर्शन की विशुद्धि बतलाया गया है, इहलोक या परलोक सम्बन्धी वैभव नहीं। अत एव सच्चा मुमुक्षु पुरुष वीतराग की प्राप्ति के लिए ही वीतराग की स्तुति या भक्ति करता है। यही भक्ति का महान् फल है। लौकिक वैभव उसके लिए महत्वपूर्ण नहीं होता, फिर भी शुभभावना-जनित पुण्य के परिपाक से वह अनायास ही प्राप्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्री वर्द्धमान प्रभवे नमः ॥

श्री अ० भा० श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स द्वारा सम्मानित एवं समाज पुरस्कृत—

१) श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, २) श्री वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण-प्रचारक सभा, ३) श्री रत्न जैन पुस्तकालय, ४) श्री जैन धर्म प्रचारक संस्था, नागपुर कार्यालय पाथर्डी, ५) श्री अमोल जैन सिद्धान्त शाला, पाथर्डी-अहमदनगर-घोडनदी, ।

कार्यकारिणी सभा तथा ट्रस्टमण्डल की बैठक का—

卐 आमंत्रण पत्र 卐

सुश्रावक धर्माराधक सद्विद्याप्रचारक धर्मबन्धु श्रीमान्...
....की सेवा में सादर सप्रेम जयजिनेन्द्र !

परम हर्ष का विषय है कि २६-२७ वर्षों से जिस ज्ञान-तरु का सिंचन संरक्षण और संवर्द्धन समाज के धार्मिक महानुभावों के सत्सहयोग और संचालकों के दीर्घायास-प्रयास से सम्पादित हो रहा है उस समाजविख्यात श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी और उसके सहयोगी संस्थाओं की कार्यकारिणी सभा तथा ट्रस्ट मण्डल की बैठक (मीटिंग) दि. **२६-२७ सितम्बर १९६४ शनिवार-रविवार** को अपराह्न २ बजे से लालभवन, **जयपुर** (राजस्थान) में करने का आयोजन किया गया है।

पाथर्डी परीक्षा बोर्ड अखिल भारतीय संस्था के रूप में आज जैन-जगत् को अपनी सेवाएँ समर्पित कर रहा है—मद्रास से कश्मीर तथा बम्बई से कलकत्ता तक इसके केन्द्र संस्थापित होकर धार्मिक शिक्षण प्रचार कार्य में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर रहे हैं—कार्यविस्तार के साथ कायविस्तार भी वर्द्धमान स्थिति में है, यह पूर्ण समाधान का विषय है। हिन्दी विभाग को इस परीक्षा बोर्ड की सेवाएँ समुपलब्ध हो सकने का समुचित प्रबन्ध पहले ही किया चुका है । गत वर्ष १७ अगस्त को परीक्षा बोर्ड की शाखा बम्बई में संस्थापित की गई है, इसके द्वारा गुजराती विभाग की भी सेवाएँ प्रारम्भ कर दी गई हैं।

वर्त्तमान कार्यकारिणो और ट्रस्ट मण्डल के समक्ष परीक्षा बोर्ड पाथर्डी तथा अन्य सहयोगी संस्थाओं की पूर्व कार्यवाही, (६४ जून तक सभी संस्था के आडिट हिसाब के साथ) प्रस्तुत होगी । आगामी वर्ष के लिए बजट एवं प्रस्तावित योजनाओं पर परामर्श होंगें जिस में आपकी उपस्थिति अपेक्षित है ।

इस शुभावसर पर तत्र विराजित श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर 'बालब्रह्मचारी' महामहिम पण्डित रत्न परम श्रद्धेय आचार्य सम्राट् पूज्य श्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी म० तथा कविवर्य पं. रत्न उपाध्याय मुनि श्री अमरचंदजी म. सा., पं. मुनिश्री पद्मचंदजी भंडारीजी म., आदर्श नगर विराजित प्रवर्त्तक पदविभूषित पं. मुनिश्री शुक्लचंदजी म. सा. आदि सन्त-वृन्द तथा पं. महासतीजी श्री केशरकँवरजी म., विदुषी पं. महासतीजी श्री सुमतिकँवरजी म. आदि सती-वृन्द के पुनीत दर्शन एवं प्रवचनका भी अलभ्य लाभ प्राप्त होगा, अतः अवश्य पधारें। अपने पधारने की सूचना निम्न पते पर देवें।

मंत्री—**श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रावक संघ, लाल भवन, चौड़ा रस्ता, जयपुर सीटी (राजस्थान)**

—भवदीय—

दि. ११-९-६४

रतनचन्द भिकमदास बाँठिया
(अध्यक्ष)

चन्द्रभान रूपचन्द डाकलिया
(उपाध्यक्ष)

हीरालाल किसनदास गांधी
(व्यवस्थापक)

पन्नालाल प्रेमराज मुथा
(अध्यक्ष सि. शाला)

चुन्नीलाल मोतीलाल गुगले
(कोषाध्यक्ष)

उत्तमचन्द रामचन्द बोगावत
(महामंत्री)

पं. बदरीनारायण शक्ल
(परीक्षाधिकारी)

पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल
(साहित्य-मंत्री)

पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी
(बोर्ड-मंत्री)

सुगनचन्द सुखराज कुचेरिया (अर्थ-मंत्री)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघीय संत-सती वर्ग की-

❀ चातुर्मास की तालिका ❀

विक्रम सं. २०२१

१) जयपुर-श्री व. स्था. जैन श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर बालब्रह्मचारी महामहिम पं. रत्न परमश्रद्धेय- आचार्यसम्राट् पूज्य श्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी म., कविवर्य पं. रत्न उपाध्यायजी श्री १००८ श्री अमरचन्दजी म., पं. मुनि श्री पद्मचन्दजी भंडारीजी म, आदर्शनगर विराजित प्रवर्तकपद विभूषित पं. रत्न श्री शुक्लचन्दजी म. आदि ठाणे १८

२) भोपालगढ-पं. रत्न उपाध्यायजी श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म. आदि ठाणे ७

३) आगरा-स्थविरालंकृत, प्रवर्त्तकपद विभूषित पं. रत्न श्री १००८ श्री पृथ्वीचन्दजी म. आदि ठाणे ३

४) विजयनगर-स्थविरालंकृत, प्रवर्त्तकपद विभूषित पं. रत्न श्री १००८ श्री पन्नालालजी म. आदि ठाणे ४

५) बून्दी-प्रवर्त्तक पं. रत्न श्री १००८ श्री सूर्यमुनिजी म. आदि ठाणे ४

६) मेडता सीटी-प्रवर्त्तक पं. रत्न श्री १००८ श्री लक्ष्मीचन्दजी म. आदि ठाणे ३

७) जोधपुर-प्रवर्त्तक पं. रत्न श्री १००८ श्री हीरालालजी म. आदि ठाणे ६

८) रतलाम-तपस्वी श्री भेरूलालजी म., प्रवर्त्तक पं. रत्न श्री १००८ श्री मगनलालजी म. आदि ठाणे ९

९) ब्यावर-प्रवर्त्तक पं. रत्न श्री १००८ श्री अम्बालालजी म. आदि ठाणे ४

१०) अहमदनगर-आत्मार्थी पं. मुनिश्री मोहनऋषिजी म., प्रवर्त्तक पं. रत्न श्री १००८ श्री विनयऋषिजी म. आदि ठाणे २

११) कोटडा-मरूधर केशरी पं. रत्न स्वामीजी श्री मिश्रीमलजी म. तथा उपप्रवर्त्तक श्री रूपचन्द्रजी म. आदि ठाणे ४

१२) पीपाड सीटी-पं. रत्न उपप्रवर्त्तक श्री पुष्कर मुनिजी म. आदि ठाणे ५

१३) रायपुर-पं. रत्न उपप्रवर्त्तक श्री व्रजलालजी म. आदि ठाणे ३

१४) अजमेर-उपप्रवर्त्तक पं. मुनि श्री मोहनलालजी म. आदि ठाणे ३

१५) जम्मू-श्री नेकचन्दजी म, उपप्रवर्त्तक पं. मुनि श्री जगदीशचन्द्रजी म. आदि ठाणे ५

१६) फिलौर-उपप्रवर्त्तक पं. मुनि श्री हेमचन्द्रजी म. आदि ठाणे ३

१७) पटियाला-उपप्रवर्त्तक प. मुनि श्री पूर्णचन्द्रजी म. आदि ठाणे ३

१८) मोगा-उपप्रवर्त्तक पं. मुनि श्री रघुबरदयालजी म. आदि ठाणे ७

१९) बरनाला-स्थविरमुनि श्री पन्नालालजी म., उपप्रवर्त्तक श्री चन्दनमुनिजी म. आदि ठाणे २

२०) नई दिल्ली-उपप्रवर्त्तक पं. रत्न श्री सुशीलमुनिजी म. आदि ठाणे २

२१) पूना—स्थविर मुनिश्री सूरजमलजी म, पं. रत्न मुनिश्री श्रीमलजी म. आदि ठाणे ८

२२) इन्दौर-पं रत्न श्री सौभाग्यमलजी म., पं मुनि श्री प्रतापमलजी म. आदि ठाणे ५

२३) सोजत सीटी-पं रत्न श्री कन्हैयालालजी म. आदि ठाणे २

२४) कुचेरा-वयोवृद्ध पं. रत्न स्वामीजी श्री रावतमलजी म. आदि ठाणे २

२५) टांटोटी-पं. मुनि श्री सोहनलालजी म. आदि ठाणे २

२६) भिणाय-विद्याभिलाषी मुनि श्री वल्लभचन्द्रजी म. आदि ठाणे २

२७) हरमाडा-मुनि श्री मिश्रीलालजी म. आदि ठाणे २

२८) देहली-पं. मुनि श्री प्रेमचन्दजी म. आदि ठाणे ३

२९) सफीदामंडी-पं. मुनि श्री हेमचन्द्रजी म. आदि ठाणे २

३०) अमृतसर-पं. मुनि श्री सुरेशचन्दजी म. आदि ठाणे ३

३१) जोधपुर-पं. मुनि श्री लाभचन्द्रजी म. एवं चौथमलजी म: आदि ठाणे २

३२) उज्जैन-पं. मुनि श्री शान्तिलालजी म. आदि ठाणे ३

३३) मदनगंज-प. मुनिश्री कस्तूरचन्दजी म. आदि ठाणे ४

३४) सवाईमाधोपुर-बडे श्री नाथूलालजी म. आदि ठाणे ३

३५) बडीसादडी-श्री भेरूलालजी म. आदि ठाणे ३

३६) ब्यावर-पं. मुनि श्री मोहनलालजी म. आदि ठाणे १

३७) बंबई (कांदावाडी)-पं. मुनि श्री केवलमुनिजी म. आदि ठाणे ५

३८) उदयपुर-सेवाभावी श्री इन्दमलजी म., प. मुनि श्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोकमुनिजी म. आदि ठाणे ३

३९) रायचुर-मुनि पं श्री मंगलचन्दजी म आदि ठाणे २

४०) बडू मुनि श्री हस्तीमलजी म. आदि ठाणे २

४१) रामपुरा-तपस्वी श्री प्रेमचन्दजी म. आदि ठाणे २

४२) महरौली-श्री प्रदीपमुनिजी म. आदि ठाणे २

४३) टोंक-मुनि श्री रामनिबासजी म. आदि ठाणे ३

४४) अहमदाबाद-पं. मुनि श्री विनयचन्दजीम. ठाणे ३

४५) ऊधमपुर-पं. श्री विमलमुनिजी म. आदि ठाणे ४

४६) शाहकोट-पं. श्री हरकचन्दजी म. आदि ठाणे २

४७) जेजो-पं श्री प्रकाशचन्दजी ज. आदि ठाणे २

४८) अम्बाला-श्री कपूरचन्दजी म., पं. मुनि श्री ज्ञानमुनिजी म आदि ठाणे ७

४९) कैथल-पं. श्री सुरेन्द्रमुनिजी म. आदि ठाणे २

५०) नाभा-पं. श्री नेमचन्द्रजी म. आदि ठाणे ४

५१) रतिया-पं. श्री ताराचन्दजी म. आदि ठाणे २

५२) धुरी-पं. श्री रामकुमारजी म. आदि ठाणे २

५३) रायकोट-पं. श्री छोटेलालजी म. आदि ठाणे २

५४) खेवाई-पं. श्री छज्जूमुनिजी म. आदि ठाणे २

५५) मेरठ-पं. मुनि श्री खूबचन्दजी म. आदि ठाणे ५

५६) बडोत-पं. श्री कस्तूरचन्दजी म. आदि ठाणे ३

५७) दिल्ली (सदर) -स्थविर मुनि श्री भागमलजी म. आदि ठाणे ६

५८) अलवर-श्री प्रेमचन्दजी म., पं. मुनि श्री फूलचन्दजी म. आदि ठाणे ४

५९) बंबई (कांदीवली) -पं. मुनि श्री राजेंद्र मुनिजी म. आदि ठाणे २

६०) टोहाना-पं. मुनि श्री टेकचन्दजी म. आदि ठाणे ३

६१) दोवर-पं. मुनि श्री रामकलाजी म. आदि ठाणे २

६२) जालंधर-पं. रत्न श्री प्रेमचन्दजी म. आदि ठाणे ६

६३) बखतगढ-पं. श्री लागरमुनिजी म. आदि ठाणे २

६४) निम्बोहडा— पं. श्री सुमेरमुनिजी म. ठा. २

६५) पाचोरा —पं. मुनि श्री कल्याणऋषिजी म. ठा. २

६६) धुलिया—स्थविर मुनिश्री माणकऋषिजी म. ठा. ३

६७) कवर्धा—श्री जसवन्तऋषिजी म. ठाणे २

६८) मलाड—स्थविर मुनिश्री ब्रह्मऋषिजी म. ठा. ३

६९) कोपरगांव—श्री जीवराजजी म., श्री जसवन्तऋषिजी म. ठाणे २

७०) वाघली—तपस्वी श्री पं. श्री मिश्रीलालजी म. ठाणे ३

७१) मद्रास—स्थविर स्वाध्यायप्रेमी श्री चांदमलजी म., पं. मुनिश्री लालचन्दजी म. ठाणे ५

० पूज्य महासतियाँजी के चातुर्मास की सूची— ०

१) विजयनगर-बालब्रह्मचारी विदुषी पं महासतीजी श्री. उमराव कुंवरजी म. आदि ठाणे ३

२) अजमेर-स्थविरा महासती श्री धन्यकुंवरजी म. ठाणे ३

३) मसूदा-स्थविरा महासतीजी श्री चायकुंवरजी म. ठा. ३

४) ब्यावर-महासतीजी श्री शोभाग कुंवरजी म. ठा. ५

५) जोधपुर-पं. महासतीजी श्री कुसमवतीजी म. ठा. ६

६) गोविन्दगढ-श्री केसरकुंवरजी म. आदि ठाणे ३

७) कुशालपुरा-महासतीजी श्री कानकंवरजी म. ठा. ३

८) सोजत रोड-महासतीजी श्री नन्दकुवरजी म. ठाणे ३

९) पीपाड-महासतीजी श्री सोहनकुवरजी म. आदि ठाणे ७

१०) भीम-महासतीजी श्री अभयकुंवरजी म. आदि ठाणे ३

११) सादडी-महासतीजी श्री पानकुवरजी म. आदि ठाणे ३

१२) कुचेरा-महासतीजी श्री वगतावरकुवरजी म. श्री जेठाजी म. आदि ठाणे ७

१३) सारण-महासतीजी श्री सज्जनकुंवरजी म. आ. ठा. ४

१४) विलाडा-महासतीजी श्री तेजकुंवरजी म. आ. ठा. ३

१५) कुडकी-महासतीजी श्री गुणवन्तीजी म. आ. ठा. ३

१६) गोगुंदा-महासतीजी श्री शम्भूकवरजी म. आ. ठा. ५

१७) नाटेशमा-महासतीजी श्री सज्जनकुवरजी म. ठा. ५

१८) उदयपुर-महासतीजी श्री रूपकुवरजी म. आ. ठा. ३

१९) शिवाना-महासतीजी श्री हरककंवरजी म. आ. ठा. ४

२०) रायपुर-महासतीजी श्री उमरावकुंवरजी म. ठा. ४

२१) बुसी-महासतीजी श्री सज्जनकुवरजी म. आ. ठा. ४

२२) शाहपुरा-महासतीजी श्री जयवन्तकंवरजी म. ठा. ३

२३) खण्डप-महासतीजी श्री लक्ष्मीजी म. ठा. ३

२४) देवगढ-महासतीजी श्री सीताजी म. ठा. ३

२५) देलवाडा-महासतीजी श्री शीलकुंवरजी म. ठा. ५

२६) जवाजा—महासतीजी श्री पानकुंवरजी म. ठा. २

२७) मोकलसर—महासतीजी श्री रामकुंवरजी म. ठा. ३

२८) जोधपुर—महासतीजी श्री गोगाजी म. ठा. ६

२९) अजमेर—महासतीजी श्री केवलकंवरजी म. विदुषी श्री सुन्दर कुंवरजी म. ठा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३०) भीलवाडा—महासतीजी श्री बदनकुंवरजी म. श्री लाडकुंवरजी म. एवं श्री मैनाजी म. ठा. ७
३१) पुष्कर–महासतीजी श्री हरकचन्दजी म. ठा. ४
३२) जोधपुर–महासतीजी श्री सुवाजी म. ठा. ४
३३) राशमी–महासतीजी श्री सौभागकुवरजी म. ठा. ४
३४) सनवाड—महासतीजी श्री धन्नाजी म. ठा. ५
३५) केकडी—महासतीजी श्री जसकुंवरजी म. ठा. १०
३६) भादसोडा—महासतीजी प्रेमकुंवरजी म. ठा. ३
३७) ब्यावर–महासतीजी श्री सोहनकुवरजी म. ठा. ५
३८) ब्यावर—महासतीजी श्री शान्तिकुंवरजी म. ठा. ४
३९) नलखेडा—महासतीजी श्री बालकुंवरजी म.ठा. ५
४०) मंदसौर—महासतीजी श्री दाखाजी, म. ठा. २
४१) जावरा—महासतीजी केशरकुंवरजी म. ठा. ३
४२) डूंगला—महासतीजी श्री सलेकुंवरजी म. ठा. ५
४३) बडीसादडी—महासतीजी श्री चुनकुंवरजी म. ठा. ६
४४) मदनगंज–महासतीजी श्री सुंदरकुंवरजी म. ठा. ४
४५) ब्यावर—महासतीजी श्री प्रेमकुंवरजी म. ठा. ४
४६) जोधपुर—महासतीजी श्री हगामकुंवरजी म. ठा. ५
४७) धनोप—महासतीजी श्री नानूजी म. ठा. ३
४८) भोपाल—महासतीजी श्री मानकुंवरजी म., ठा. ५
४९) रतलाम—महासतीजी श्री राजकुंवरजी म. ठा. २
५०) संभालकामंडी–महासतीजी श्री प्रियावतीजी म. ठा. ३
५१) दिल्ली (सदर) महासतीजी श्री पन्नादेवीजी म. ठा. ११
५२) फरीदकोट—महासतीजी श्री लज्जावतीजी म. ठा. ६
५३) राहतकमंडी—महासतीजी श्री वल्लभवतीजी म. ठा. ३
५४) नवाशहर—महासतीजी श्री कैलाशवतीजी म. ठा. ५
५५) जालंधर–महासतीजी श्री रत्नदेवीजी म. आ. ठा. ५
५६) लुधियाना–महासतीजी श्री सौभाग्यवतीजी म. ठा. ७
५७) रोहतकशहर–महासतीजी श्री जगदीशमतिजी म.ठा. ५
५८) पटियाला–महासतीजी श्री राजकुमारीजी म. ठा. ३
५९) अंबालाशहर–महासतीजी श्री सत्यवतीजी म. ठा. ३
६०) दिल्ली (सब्जीमंडी)—महासतीजी श्री मोहनदेवी जी म. ठा. ६
६१) दिल्ली (चांदनीचौक)–महासतीजी श्री पन्नादेवीजी म. ठा. ५
६२) हांसी–महासतीजी श्री प्रज्ञावतीजी म. ठा. ३
६३) होशियारपुर—महासतीजी श्री सत्यवतीजी श्री आज्ञावतीजी म. ठा. ४
६४) जयपुर—महासतीजी श्री केशरकुंवरजी म. आ. ठा. ५
६५) कलानौर—महासतीजी श्री हांसादेवीजी म. ठा. ३
६६) इन्दौर (पीपलीबाजार)—महासतीजी पं. श्री राजकुंवरजी म. ठा. ८
६७) इन्दौर (मोरसलीगली)—महासतीजी श्री वल्लभकुंवरजी म. श्री केशरकुंवरजी म. आ. ठा. १०
६८) खाचरोद–महासतीजी पं. श्री सूरजकुंवरजी म. ठा. ५
६९) मनावर—महासतीजी श्री सोहनकुंवरजी म. ठा. ३
७०) धार—महासतीजी पं. श्री चांदकुंवरजी म. ठा. ५
७१) सरवाड—महासतीजी श्री सौभागकुंवरजी म. ठा. ४
७२) आगरा—महासतीजी पं. श्री सज्जनकुंवरजीम. ठा. ८
७३) रतलाम–महासतीजी श्री गुलाबकुंवरजी म. ठा. ७
७४) बंबई (चिचपोकली)—महासतीजी श्री गुलाबकुंवरजी म. ठा. ५
७५) शाजापुर—बालब्रह्मचारिणी पं. महासतीजी श्री रतनकुवरजी म. आ. ठा. ९
७६) अहमदनगर—महासतीजी श्री विनयकुंवरजी म. पंडिता श्री उज्वलकुवरजी म., श्री चांदकुंवरजी म. श्री शान्तिकुंवरजी म. ठा. २४
७७) मंदसौर—महासतीजी श्री सिरेकुंवरजी म. आ. ठा. ४
७८) जयपुर—महासतीजी श्री सज्जनकुंवरजी म., पंडिता श्री सुमतिकुंवरजी म. आ. ठा. ४
७९) अंधेरी—महासतीजी श्री रंभाजी म. ठा. ५
८०) घाटकोपर–महासतीजी पं. श्री अमृतकुंवरजी म.ठा. ५
८१) चोपडा—महासतीजी श्री रामकुवरजी म. ठा. ३
८२) इन्दौर—महासतीजी श्री मगनकुंवरजी म. ठा. ३
८३) चिचवड--महासतीजी पं. श्री सज्जनकुंवरजी म.ठा. ३
८४) बेंगलोर--पं. महासतीजी श्री आनन्दकुंवरजी म. ठा. ४
८५) बेंगलोर--पं. महासतीजी श्री सायरकुंवरजी म. ठा. ५
८६) नंदूरबार--महासतीजी श्री अजितकुंवरजी म. ठा. ३
८७) अमरावती–महासतीजी श्री बदामकुंवरजी म. ठा. ४
८८) निम्बाहेडा—महासतीजी श्री ●●●

श्रद्धेय आचार्यश्री के स्वास्थ्य में सुधार—

सुधर्मा के पाठकों को यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि परम श्रद्धेय आचार्यश्री का स्वास्थ्य सुधार पर है। ता. ३–९–६४ के रोज हॉस्पिटल से सुखे-समाधे विहार करके "लालभवन" में पधार गये हैं। शीघ्र स्वस्थ हों यही हार्दिक शुभ कामना!

"सम्पादक"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

-: आजीवन सदस्य :-

१ के. चु. भटेवडा	राहू (पूना)
२ ता. रां. मा. सुन्दराबाईजी	आष्टा
३ इन्दरबाईजी	,,
४ श्रीमती रा. डागा	भोपाल
५ जी. ते. ललवानी	श्रीरामपुर
६ मे. ध. जैन	मगरदा
७ कि. चौधरी	शुजालपुर
८ गें. इ. जैन ,,	,,
९ कं. दी. जैन ,,	,,
१० सू. न. जैन ,,	,,
११ रा. ची को ,,	,,
१२ का. ही. जैन ,,	,,
१३ ज. खो. डोशी	इन्दौर
१४ इ. सू. चोपडा	भामाठाण
१५ मे. टाटिया	सारंगपुर
१६ प्रे. जी. वेदमुथा	वर्धा
१७ दे. भि. कांकरिया	राहू
१८ श्री. न. पितलिया	सीहोर
१९ के. घी. बाफणा	नागपुर
२० क. ल. रांका	शुजालपुर
२१ स. व. जैंन	शाजापुर
२२ सु. जी. सिदरसीवाला	,,
२३ वैं. र. स. मुणोत	वांबोरी
२४ भं. के. जोगड	बोदवड
२५ झुं. ध. मुथा	अहमदनगर
२६ अ. मा. गुगले	पाथर्डी
२७ ना. भ्र. र. भंडारी	पीपला
२८ सौ. गु. भ्र. सि. बोरा	अ.नगर
२९ ब. झुं. कोठारी	,,
३० ला. पा. मा. कोंडाबाईजी	पाथर्डी
३१ सौ. च. मो. लुणिया	जंजीरा
३२ मि. रा. भटेवडा	केडगांव
३३ फ. मु. शिंगी	नेवासा
३४ भा. खु. गांधी	आश्वी
३५ ना. क. छाजेड	चकलाआंबा
३६ उ. बा. देसरडा वकील	चाळीसगांव
३७ भ. झुं. गुगळे	करंजी
३८ चां. भ. मुणोत	वांबोरी
३९ कि. बी. पटवा	पाथर्डी
४० छो. ने गुगळे	लोहसर
४१ ही. भ्र. न. सुरपुरिया	पूना
४२ रा. भ्र. म. कोठारी	सतारा
४३ भी. मा. कर्नावट	सिरसमार्ग
४४ वा. डा. बद्धानी	अमरावती
४५ सु. भ्र. मो. मुथा	देवळाली
४६ प. कि. छाजेड	म्हसे
४७ मू. रि. संकलेचा	मजलेगांव
४८ हां. भ्र. च. शिंगी	अहमदनगर
४९ चं. ध. वैद	चांदा
५० सु. सु. कुचेरिया	पाथर्डी
५१ वि. शा. संकलेचा	अमरावती
५२ न. मु. बोरा	पीपला
५३ चाँ. मू. चंगेडिया	बरोरा
५४ एक गुप्तदानी सद्गृहस्थ	अ.नगर
५५ भी. के. ललवानी	मनमाड
५६ ब. मा. गांधी	पिंपलगांव
५७ प्रे. भ्र. ज. बोरा	,,
५८ मो. चु. मुथा	वांबोरी
५९ सौ. रू. सू भ्र. झुंबरलालजी	,,
६० मू. द. चंगेडिया	सोनई
६१ पू. मो. नाहर	घोडेगांव
६२ ने. ब. भटेवड़ा	वांसदा
६३ ब. च. सिंगी	देवळाली
६४ श्री. रा. मुथा	,,
६५ झु. पू. बाफना	श्रीरामपुर
६६ ने. गु. मुथा	बेलापुर
६७ चु. पू. तातेड	,,
६८ मो. र. हिरन	,,
६९ के. मां. संचेती	चिंचवड
७० ह. सो. मुनोत	निंबारी
७१ गं. मो. कोठारी	पूना
७२ क. के. कांकलिया	पूना
७३ मो. ल. खिंवसरा	,,
७४ र. मा. ओस्तवाल	सांगली
७५ छो ब. गुगळे	वांबोरी
७६ इं. गं. कोठारी	,,
७७ नें. झुं. सुराणा	राहुरी
७८ चां. मो. भंडारी	घोडनदी
७९ धू. भि. फुलफगर	घोडनदी
८० चं. शो. गादिया	,,
८१ चां. सु. कोठारी	बेलापुर
८२ रा. पो. गांधी	रस्तापुर
८३ जे. शां. संघवी	उत्राण
८४ भू. रा. कोठारी	केडगांव
८५ चु. भ्र. प्रे. देसरडा	न्हावरा
८६ कां. जा. नाहर	आलेगांव
८७ प. ही. कटारिया	वाल्की
८८ फू. बा. बाफना	राहुरी
८९ मा. गं. चोरडिया	बोरी
९० पु. शो. चोरडिया	,,
९१ रा. ल. भंडारी	सिरसाला
९२ ध. द. संचेती	पूना
९३ ज. चु. सांड	रहाता
९४ ह. न. गांधी	श्रीरामपुर
९५ झुं. भ्र. ही. भलगट	गुलबर्गा
९६ ब. चं. गुगले	मलाड
९७ र. ही. लूंकड	श्रीरामपुर
९८ कुं. न. गांधी	,,
९९ सु. लुणावत	धामणगांव
१०० शांतिलालजी चौवरी	राजगढ़
१०१ न. शा. माई	मलकापुर
१०२ ही. ल. मुथा	लक्ष्मेश्वर
१०३ सि. र. भुरा	सिवनी
१०४ चं हि. कुंकुलोल	कोल्हार
१०५ वि. पु. राकेचा	,,
१०६ ना. भ्र. रा. गुगले	,,
१०७ स. म. रांका	,,
१०८ फ. ज. गुगलिया	,,
१०९ मो. झुं. रांका	चिंचोली
११० प. का. रांका	,,
१११ हु. च. समदडिया	अस्तगांव
११२ भा. झुं. गुगले	पाथर्डी
११३ उ. ह. कातरेला	अमरावती
११४ कां. मा. गांधी	मुंबई
११५ जे. मा. कटारिया	खरवंडी
११६ जे. धों. कटारिया	,,
११७ ह. त. गांधी	वाम्बोरी
११८ मो. द. डोशी	अ. नगर
११९ जी. मे. बोरा	वाम्बोरी
१२० उ. बा. धाडीवाल	संगमनेर
१२१ मो. ला. मुणोत	भिंगार
१२२ भे. दी. गांधी	लोणावला
१२३ ज. सु. गुजराथी हलवाई	मालेगांव
१२४ मो. ज. ओस्तवाल	वाम्बोरी
१२५ ने. ध. कटारिया	खरवंडी
१२६ खु. मि. मुणोत	करंजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२७	श्री. बं. ने. पारख	संगमनेर
१२८	,, ता. रा. चोरडियाम्हा.	पिंपळगांव
१२९	,, पू. को. भंडारी	कडा
१३०	,, चु. गु. मुथा	घाटसिरस
१३१	,, गीगीबाई फिरोदिया	अ. नगर
१३२	,, न. धो. कटारिया	लोणी
१३३	,, ह. अ. चोरडिया	अकोलनेर
१३४	,, सौ. रु. झु. कटारिया	चांदा
१३५	,, पु. प. मुथा	घाटसिरस
१३६	,, सु. भ्र. ता. डोशी	अ. नगर
१३७	,, मा. ध. बोथरा	खरवंडी
१३८	,, स. मो. लुणावत	जालना
१३९	,, पु. मा. कटारिया	इचलकरंजी
१४०	,, ही. रा. भटेवडा	पूना
१४१	,, ही. क. खाटेड	पूना
१४२	सौ. शांताबाई मो. नाहर	पूना
१४३	श्री. रा. शो. टाटिया	पूना
१४४	,, फू. तु. मालू	खडकी
१४५	,, मा. रा. बाफना	वडगांव
१४६	,, ध. ही. बाफना	वडगांव
१४७	,, ह. रा. बाफना	वडगांव
१४८	श्री. आ. स. चोरडिया	खेड
१४९	,, दौ. ध. चोरडिया	पिंपळवंडी
१५०	,, रा. ला. चोरडिया	बोरी बुद्रुक
१५१	,, भा. कुं. गांधी	संगमनेर
१५२	,, चु. र. भंडारी	अश्वी
१५३	,, द. रा. गांधी	प्रवरासंगम
१५४	,, ग. न. चोपडा	खांबा
१५५	,, शो. च. भटेवडा	राजुरी
१५६	,, मि. मो. कोठारी	अहमदनगर
१५७	,, फ. आ. फिरोदिया	साकूर
१५८	,, जा. मि. भंडारी	मंचर
१५९	,, फू. र. कटारिया	संगमनेर
१६०	,, शां. प्रे. कटारिया	अहमदनगर
१६१	,, उ. श. चोपडा	साकूर
१६२	,, च. लू. हिरण	साकरवाडी
१६३	,, व. फ. बाफना	साकूर
१६४	,, के. बं. कटारिया	अ. नगर
१६५	,, क. बु. फिरोदिया	साकूर
१६६	,, धा. जे. शाह	यवतमाल
१६७	,, ही. जे. चोरडिया	पूना
१६८	,, ने. ज्ञां. शिंगी	घोरपडी
१६९	श्री. रू. मा. नाहर	राजणगांव
१७०	,, शं. भा. दूगड	अमलनेर
१७१	,, कोट व. स्था. संघ	मुंबई
१७२	, मोहनलालजी कांमती	इन्दौर
१७३	,, भा. छ. तुरखिया	इन्दौर
१७४	,, भं. शा. धाकड	इन्दौर
१७५	,, शि. जो. सर्राफ	देवास
१७६	,, र. मु. बजाज	,,
१७७	,, इ. सांड	बडावदा
१७८	सौ. मां. लसोड	प्रतापगढ
१७९	श्री. वि. ल. गेलडा	बोदवड
१८०	,, स्वा. नै. भटेवडा	चाकण
१८१	,, व. स्था. श्रा. संघ	बदनोर
१८२	,, कि. मि. भलगट	भंडारा
१८३	,, कि. झु. भलगट	,,
१८४	,, कि. जं. भलगट	,,
१८५	,, ह. मि. बाफना	पांडुरणा
१८६	,, अ. मो. डांगी	भीलवाडा
१८७	,, भी. क. संचेती	नांदूरा
१८८	,, मो. क. झामड	पीपलगावराजा
१८९	,, ज. खो. डोशी	इन्दौर
१९०	,, नेमीनाथ जैन	देवास
१९१	,, क. झुं गांधी	अश्वी
१९२	,, द. ओं रांका	सैलाना
१९३	,, हु. ब. दसोरिया	प्रतापगढ
१९४	,, पा. वि. ढाबरिया	अजमेर
१९५	,, रा. पू. बूरड	शिराला
१९६	,, हं. नाहर	अजमेर
१९७	,, ने. शा. हरकावत	अजमेर
१९८	,, मां. भॅ. बोरदिया	गुलाबपुरा
१९९	,, ज. खो. डोशी	अमरावती
२००	,, गुप्तदानी सद्गृहस्थ	
२०१	,, वैजनाथजी जैन	जयपुर
२०२	,, क. र लोढा	दिल्ली
२०३	,, मदनलालजी मणोत	कोटा
२०४	,, मा. मो. विनायक्या	मोहाडी
२०५	,, सं. सु. भांडावत	जोधपुर

To

श्रीमान्

मुकाम

पोस्ट

जिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी 76263

सुधर्मा

सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः ॐ अर्हम्

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी की मुख पत्रिका

वर्ष ६) १५ नवम्बर १९६४ 20.11.64. (अंक ४

★ इस अंक में ★

१	सुधर्मा सुवचन सुधा	पं. श्री. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल	१
२	तपस्वी मुनि श्री वेलजी ऋषिजी म.	श्री सोहनलालजी सुराणा बी. ए. साहित्य रत्न	४
३	जीवनदृष्टि के तत्त्व	सं. श्री देवेन्द्र मुनिजी महाराज	५
४	ओ एटमबम के निर्माता	श्री डॉ. नरेन्द्रकुमारजी भानावत M.A.P.H.D	०१
५	नागोरी लोंकागच्छके कतिपय आचार्य संबंधी ज्ञातव्य	श्री अगरचन्दजी नाहटा	१२
६	स्वतंत्र भारत और चरित्र निर्माण	श्री डॉ. नरेन्द्रकुमारजी भानावत M.A.P.H.D	१४
७	श्री आचार्य गुरुदेव-स्तुति	श्री पं. मुनिश्री भानुऋषिजी म०	१६
८	नारी समाज के विकास की रूपरेखा	श्री चन्द्रावतीजी म०	१८
९	दीप जले दिवाली आई	श्री सरदारमलजी जैन B.Com.	२०
१०	पतन से उत्थान की ओर	श्री पारसमलजी "प्रसून" M.A.	२०
११	आज की नारी और उसकी समस्याएँ	श्री शांताकुमारीजी भानावत	२२
१२	परीक्षा विभाग	श्री परीक्षाधिकारी, श्री ति. र. स्था. जैन धा. प. बोर्ड पाथर्डी	२४

सम्पादक

पं. बदरीनारायण शुक्ल, जैन सिद्धान्ताचार्य, सर्वदर्शनशास्त्री, ❋ पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, ❋ डॉ. नरेन्द्रकुमार भानावत, एम्. ए. पी. एच. डी. 'साहित्यरत्न'

卐 प्रबन्ध सम्पादक—पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी 卐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवर्ण नामावली

सदुपदेशक-परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज

संस्थापक-दानवीर शाह केशवजी जवेरचन्द, जामनगरवाले, जालना

आधारस्तम्भ

१ श्री. चन्द्रभानजी रूपचंदजी डाकलिया, श्रीरामपुर (नगर)
२ ,, केशरचंदजो कचरदासजी बोरा आश्वी ,,
३ ,, सूरजमलजी कस्तूरचन्दजी गांधी , अहमदनगर
४ स्व. माणकचंदजी किसनदासजी मुथा अहमदनगर
५ श्री. रा. ब कुन्दनमलजी लालचन्दजी कोठारी ब्यावर

संरक्षक

१ श्री. तिलोकचंदजी खूबचंदजी गुंदेचा चांदा (नगर)
२ ,, फकीरचंदजी उत्तमचंदजी गुगले चिचोंडी शिराळ ,,
३ ,, माणकचंदजी उत्तमचंदजी गुगले पाथर्डी ,,
४ श्रीमती शक्करबाई रतनचंदजी सुराणा द्रुग (मध्यप्रदेश)
५ श्री. पन्नालालजी गुलराजजी गांधी मावावाले पूना
६ स्व. श्री. पन्नालालजी गुगले पाथर्डी के स्मारक
७ श्री. मगनीरामजी फकीरचंदजी दुधेडिया श्रीरामपुर
८ सौ. धोंडाबाई भ्र. उत्तमचंदजी संचेती पूना
९ श्री, कुन्दनमलजी कस्तूरचंदजी बोरा ,,
१० नवलमलजी सरदारमलजी पुंगलिया नागपुर
११ भिकमदास पोखरणा चै. ट्रस्ट पूना
१२ श्री. उदयरामजी हरकचन्दजी रैदासणी बीवी
१३ ,, पुखराजजी ओस्तवाल बडनेरा

सहायक सदस्य

१ श्री. उत्तमचदजी कचरदासजी भटेवड़ा राहू (पूना)
२ ,, बंशीलालजी अमोलकचंदजी भटेवड़ा ,, ,,
३ ,, माणकचंदजी भीवराजजी भटेवड़ा ,, ,,
४ सौ. श्रीकुंवरबाई भ्र. मूलचदजी भटेवड़ा ,, ,,
५ श्री. प्रतापमलजी फूलचंदजी बनवट आष्टा
६ सौ. उमरावबाई भ्र. हस्तमलजी जैन शाजापुर
७ श्री. केशरीमलजी बापूलालजी जैन शुजालपुर
८ ,, रंभाबाई भ्र. गणपतसिहजी जैन ,,
९ सौ. तेजकुंवरबाई धर्मपत्नी डालचदजी चोधरी ,,
१० श्री. मोजीलालजी भीमसिहजी जैन ,,
११ ,, बीजराजजी जुगराजजी संचेती मलकापुर
१२ ,, तेजमलजी भीवराजजी संचेती ,,
१३ श्री. जवरीबाई भ्र. धूलजीभाई शाजापुर
१४ श्री. हिंमतलालजी सा. जैन शाजापुर
१५ ,, कनकमलजी चुन्नीलालजी गांधी चाँदा
१६ ,, नारायणदासजी मोहनलालजी मंडलेचा येवला
१७ ,, भागूबाई भ्र. चंदनमलजी गादिया बेलापुर
१८ ,, मगनलाल सुंदरजी शाह अमरावती
१९ ,, हेमकुंवरबाई भ्र. कालीदासजी शाह सातारा
२० ,, मयाशंकर चत्रभुज शाह अमरावती
२१ ,, शान्तिलाल पोपटलाल काठेड अहमदनगर
२२ श्री. कचरदास मोहनलाल लोढा अहमदनगर
२३ ,, गेंदमल राजमल जैन शुजालपुर
२४ ,, लाभचन्दजी गुलाबचन्दजी चोरडिया हिंगणघाट
२५ श्री. कुंदनमलजी लुंकड की सुपुत्री सायरबाईजी बेंगलोर
२६ ,, सिमरतमलजी चुनीलालजी मुथा वांबोरी
२७ ,, धनराजजी मोतीलालजी कांकरिया पूना
२८ ,, खुशालचंद संपतलाल भूरट घोड़नदी
२९ ,, मोतीलालजी मोहनलालजी सिंगी पूना
३० ,, मिश्रीलालजी हस्तीमलजी दुगड घोड़नदी
३१ ,, कचरदासजी प्रकाशमलजी भलगट अहमदनगर
३२ ,, सुखरामजी प्रेमराजजी मुथा बेलापुर
३३ ,, सौ. शांताबाई बाबूलालजी रैदासनी नशीराबाद
३४ ,, ताराचंदजी भीवराजजी भटेवडा राहू (पूना)
३५ ,, तुलसाबाईजी कोचर हिंगणघाट
३६ ,, जसराज कालाभाई लाठिया मुर्तिजापुर
३७ ,, बापूलाल प्रेमचंद संघवी अकोला
३८ ,, शाह नागजी पानाचंद बारवडा रायपुर
३९ ,, रूपचंदजी गोकुलचंदजी कोठारी कोपरगांव
४० ,, चन्दनमल नन्दरामजी गांधी श्रीरामपुर
४१ ,, दलीचन्द गुलाबचन्दजी पारख नागपुर
४२ ,, उत्तमचन्दजी चुनीलालजी मुथा वाम्बोरी
४३ ,, कचरदास रूपचंदजी कर्नावट इचलकरंजी
४४ ,, हंसराजजी गुलाबचंदजी लुणावत लोणावला
४५ ,, गेंदालालजी मोतीलालजी जैन ट्रस्ट इन्दौर
४६ ,, राजमल नन्दलाल मेहता चै. ट्रस्ट भुसावल
४७ सौ. सुगनबाई चांदमल जैन देवास
४८ श्री कालूलाल पूरालाल जैन आगर
४९ श्री हरिश्चन्द्रजी पुनमचन्दजी बडेर, जयपुर

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के लिए

प्रकाशक व मुद्रक पं० बदरीनारायण द्वारकाप्रसाद शुक्ल

मुद्रण व प्रसिद्धिस्थल श्री सुधर्मा मुद्रणालय ८३२ जूना कापड बाजार पाथर्डी, जि० (अहमदनगर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की ज्योति जगाने हेतु विविध निबन्ध–प्रबन्ध माला स्वरूप धार्मिक आध्यात्मिक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक **मासिक पत्रिका।**

सुधर्मा

मूल्य
वार्षिक ६–००
१ अंकका ०–५०

प्रत्येक १५ तारीख को प्रकाशित होगी।

वर्ष ६)   १५ नवम्बर १९६४   (अंक ४

सुधर्मा–सुवचन–सुधा

मूलः–डहरे य पाणे बुड्ढे य पाणे,
ते आत्तओ पस्सइ सव्व लोए।
उव्वेहती लोगमिणं महंतं,
बुद्धेऽप्य मत्तेसु परिव्वएज्जा ॥ १९ ॥

छायः–डिम्भश्च प्राणो वृद्धश्च प्राणः, स आत्मवत् पश्यति सर्वलोकात्।
उत्प्रेक्षते लोकमिमं महान्तम्, बुद्धोऽप्रमत्तेषु परिव्रजेत ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—छोटे और बड़े सभी प्राणियों को–समस्त लोकोंको–जो अपने समान देखता है और इस महान लोक को अशाश्वत देखता है वह ज्ञानी सयंम में रत रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं पण्डित रत्न श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल कृत भाष्य—

भाष्य--चिउँटो, जूं, मच्छर आदि छोटे-छोटे प्राणियों को अपने समान समझने वाला और जगत् को अनित्यता एवं दुःखमयता समझने वाला विवेकशील पुरुष ही प्रमाद रहित होकर संयम का आचरण करता है ।

समस्त प्राणियों में समान आत्मा विद्यमान है । आत्म द्रव्य सर्वत्र एक जातीय होने पर भी जीवों में बौद्धिक, शारीरिक या आध्यात्मिक अन्तर जो दृष्टिगोचर होता है, उसका कारण कर्म है । कर्म अर्थात् आवरण की न्यूनाधिकता के कारण किसी को छोटे शरीर की प्राप्ति होती है और किसी को बडा शरीर मिलता है । इसी प्रकार बौद्धिक भेद भी ज्ञानावरण आदि कर्मों के कारण होता है। अतएव शारीरिक एवं बौद्धिक भिन्नता होने पर भी आत्माओं के मूल स्वरूप में किंचित् भी भेद नहीं है । समस्त प्राणी उपयोगमय स्वरूप वाले हैं–अनन्तज्ञान, दर्शन शक्ति, आदिके भंडार हैं । जब आत्मा के गुणों का पूर्ण रूपेण प्राकटच होता है तब मूलगत सदृशता स्पष्ट प्रकट हो जाती है ।

सभी जीव समान स्वभाव वाले हैं । जैसे एक जीव सुख की आकांक्षा करता है और दुख से भयभीत होता है, उसी प्रकार अन्य जीव भी सुख की इच्छा रखते हैं और दुःख से बचना चाहते हैं। विवेकीजन वही है जो इस प्रकार विचार करता है कि–जैसे मृत्यु मुझे अनिष्ट है और जीवन इष्ट है। मेरे साथ छल-कपट करके मुझे ठगने वाला निन्दनीय कार्य करता है, उसी प्रकार यदि मैं किसी को धोखा देताहूँ तो निन्दनीय कार्य करता हूँ । इस प्रकार समता भावकी आराधना करने से संयम की आराधना होती हैं । जिसके अन्तःकरण में साम्यभाव का उद्रेक हो उठता है वह अन्य प्राणी को कष्ट देना अपने आप को कष्ट देने के समान अप्रिय अनुभव करता है । वह दूसरे प्राणियों के सुख के लिए इतना अधिक प्रयत्नशील रहता है, जितना अपने सुख के लिए । जैसे कोई पुरुष अपने को दुःख देने की बात मन में भी आने नहीं देता, उसी प्रकार वह साम्य भाव का आराधक दूसरों का अहित करने का संकल्प तक नहीं करता । जैसे आप दुःख का अनुभव करके विकल हो जाता है उसी प्रकार अन्य प्राणियों की वेदना भी उसे विकल बना देती है । अपना दुःख उत्पन्न होने पर उसके प्रतीकार के लिए जैसे वह उद्यत होता है उसी प्रकार अन्य प्राणियों को दुःखी देख कर समता भावी पुरुष अकर्मण्य होकर नहीं बैठा रहता, वरन् उस दुःख को निवारण करने के लिए पूर्ण प्रयत्न करता है ।

महापुरुषों के चरित का सावधानी के साथ अध्ययन किया जाय तो प्रतीत होगा कि वे जगत् के दुःख को अपना ही दुःख मानकर उसके निवारण के लिए उद्योगशील बने रहते थे । यह साम्य भाव उनमें जीवित रूप से विद्यमान था । उनके अद्भुत उत्कर्ष का प्रधान कारण भी यही साम्य भाव था।

साम्य भाव की आराधना के लिए पर पदार्थों के प्रति आसक्ति का अभाव आवश्यक है । जिसके अन्तःकरण में इन्द्रियों के विषयों सम्बन्धी तथा भोगोपभोग के अन्य साधनों सम्बन्धी ममता की अधिकता होती है वह सदा नाना प्रकार के संकल्प-विकल्पों में उलझा रहता है । उसे निराकुलता का अपूर्व आनन्द प्राप्त नहीं होता । अतएव साम्य भाव की आराधना के लिए संसार को अशाश्वत समझकर उससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदासीनता धारण करनी चाहिए। विचारना चाहिए कि समस्त संसार के पदार्थ नाशवान हैं। इनके साथ आत्मा का कुछ भी वास्तविक संबन्ध नहीं है। जीव जब जन्म लेता है तो पूर्व जन्म के किसी भी पदार्थ को साथ नहीं लेता और जब आयुष्य पूर्ण करके परलोक की ओर प्रयाण करता है तब भी साथ में कुछ नहीं ले जाता। संसार के पदार्थ आत्मा का साथ नहीं देते। जीव मरकर जब नरक गति की भूख और और प्यास भोगता है, तिर्यञ्च गति की नाना प्रकार की व्यथाएँ सहन करता है तब कोई भी वस्तु या पूर्वजन्म का कुटुम्बी सहायक नहीं बनता।

इतना ही नहीं, संसार में आज जिन्हें जीव अपना मानता है, जिनके स्नेह में पडकर धर्म को भी भूल जाता है, जिन्हें प्रसन्न करने के लिए कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के भान को एक किनारे रखकर सभी कार्य करता है, जिनके पालन-पोषण के हेतु नाना सावद्य क्रियाएँ करता है, जिनके अनुराग में रत रहकर शेष संसार को कुछ भी नहीं समझता, वे आत्मीय जन क्या वास्तव में आत्मीय हैं ? जो सचमुच आत्मीय होता है वह त्रिकाल में भी आत्मा से अलग नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र, आदि गुण आत्मा के लिए आत्मीय हैं ? अतएव वे किसी भी काल में आत्मा से न्यारे नहीं होते। इसी प्रकार क्या कुटुम्बीजन सदा साथ देते हैं ? नहीं।

संसार में ऐसा कोई जीव नहीं है जिसके साथ कोई सम्बन्ध न हो, चुका हो सभी जीवों के साथ सब का संबंध हो चुका हैं। अगर वे वास्तव में आत्मीय होते तो क्या आज पराये बन सकते थे ? फिर भी रागान्ध मनुष्य की आँखे नहीं खुलतीं। वह अपनी आत्मीयता की भावना को एक छोटी-सी सीमा में बन्द कर रखता है। ज्ञानी जन इस प्रकार विचार करते हैं कि—संसार के समस्त संबन्ध नश्वर हैं। आत्मा सब पदार्थों से विलग है, उसके साथ किसी का संबंध नहीं हो सकता। शरीर में आत्मा रहता है, फिर भी दोनों के संयोग विनाशशील है। शरीर जड है और आत्मा चिदानन्दमय है। दोनों का एक्य कैसे हो सकता है ? जब शरीर भी विनश्वर है तो संसार के अन्य संबंध, माता, पिता, पुत्र और भाई आदि के रिश्ते, कैसे नित्य हो सकते हैं ? इन सबका संबंध तो शरीर के साथ है, जब शरीर ही स्थायी नहीं यह रिश्ते स्थायी कैसे हो सकते हैं ? 'मूलं नास्ति कुतः शाखा' अर्थात् मूल के अभाव में शाखाएँ किस प्रकार ठहर सकती हैं ? ज्ञानीजन ठीक ही कहते हैं—

> यस्यास्ति नैक्यं वपुषाऽपि सार्धम्,
> तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः ?
> पृथक् कृते चर्मणि रोमकूपाः,
> कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥

अर्थात् आत्मा की शरीर के साथ ही एकता नहीं है तो फिर पुत्र, स्त्री और मित्रों के साथ क्या एकरूपता हो सकती है ? यदि शरीर के ऊपर से चमडी उखाड ली जाय तो रोमकूप कैसे रह सकते हैं ? कदापि नहीं रह सकते।

तात्पर्य यह है आत्मा समस्त पदार्थों से भिन्न अपने ही गुणों में रमा हुवा है। संसार के अनित्य पदार्थों के साथ उसका संबंध नहीं है। इस प्रकार विचार कर संसार में राग-भाव का त्याग करना चाहिए और आत्मशुद्धि के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

.... तपस्वी मुनिश्री बेलऋषिजी महाराज ....

लेखक--श्री सोहनलालजी सुराना, बी. ए. साहित्य रत्न, (इन्दौर)

तप और संयम की कठोर आराधना से मुनियों में अलौकिक आत्मिक शक्ति आ जाती है। इस प्रकार के तेज के परिणाम स्वरूप कई बार ऐसी अद्भुत घटनाएं घट जाती हैं, जिन्हें अपनी आंखो से देखने के पश्चात् ऐसा विश्वास हो जाता है कि इस चमत्कार का श्रेय संबंधित मुनिजी की लब्धि को ही है।

कोई पचास वर्ष पूर्व की बात है। ऋषि संप्रदाय में प्रातः स्मरणीय आत्मार्थी मुनि श्री बेलजी ऋषि हुए हैं जिन्होंने १६ वर्ष तक छाछ पीकर अपना जीवन बिताया। कभी व्यावच्च नहीं कराई तथा आडा आसन नही किया अर्थात् दिन रात में सोते नहीं थे। ऐसे कठोर तपस्वी संत श्री बेलजी ऋषि कच्छ के कोशलपुर में पैदा हुए थे- आपकी माता का नाम जेठाबाई व पिता का नाम- देवराजजी था। आपने खेचरऋषिजी के पास दीक्षा ग्रहण की थी। आप एक चादर व दो चौलपट्टे में अपना निर्वाह करते थे। आहार में संयम, कपडो में अपरिग्रह ओर तो और यदि पांव में कांटा भी लग जावे तो नहीं निकालते थे। ऐसे महापुरुषों के चरणोंका ऐसा असीम प्रभाव था कि आप जहां भी जाते आनंद हो जाता था।

महासती बाल ब्रह्मचारिणी श्री रतन कुवरजी म. के स्तवनकी ये कड़ियाँ–

धन्य तपस्वी बेलऋषिजी तपके संयम धार,
लेजो मुझ विनती स्वीकार।
क्षण में मुनिवर कोसों जावे,
नजर किसी के भी नहीं आवे।
भरी नदी में मारग पावे, शेर चरण में शीश झुकावे।
निशि में पहरा देव लगाते, धन्य बेल ऋषि अणगार॥
जिनकी याद आवे हर बार॥
पेटलावद में संथारा ठाया, देवों ने वादित्य बजाया।
वह झनकार पात्र से आया,
पटियों के नीचे से सुनाया।
भृत्य चिन्ह भी देव बताया, धन्य आप अवतार।
जिनकी याद आवे हर बार।
एक ही थे अनेक दिखाते।
भक्त शीघ्र ही दर्शन पाते॥
उग्रणीसे चुमैत्तर साले,
उसी दिवस तुम स्वर्ग।
'रतन" निर्जरा करे कर्म की, छिन में वेड़ा.......
जिनकी याद आवे हर बार।

स्वतः मुनि रत्न की अलौकिकता का परिचयदे रही है। श्रद्धेय बेलजी ऋषि छाछ के अतिरिक्त कोई भी पदार्थ बहरते नहीं थे पर कभी छाछ के साथ मक्खन कभी आ जाता तो मुनिराज स्वयं उसी समय वह मक्खन वहराने वाले को वापस लौटाने जाते। उमरवाड़ा, प्रतापगढ, तथा पटेलवाड की मक्खन लौटाने की घटनाओं में यह विचित्रता है कि वह मक्खन कभी भी समाप्त न होने वाला मक्खन बन गया था।

९, १७, ३१ तथा ६१ की तपस्या बढ़ाने के बाद अभिग्रह पूरा न होने से मुनि रत्न ने ६ माह की तपस्या पचख ली पर इसी बीच गुरुजी का स्वर्गवास होने पर आपने मृत्यु पर्यन्त केवल छाछ का आगार रख कर तपस्या पचख ली। यह तपस्यालगभग १६ वर्ष तक चली। अंत में ७ दिन का संथारा सीझने पर संवत् १९७४ में आपका चैत सुदी १ को स्वर्गवास पेटलावद में हुवा।

ऐसे घोर तपस्वी मुनिरत्न को हमारी शत -शत वंदना।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवचनकार—
पं. प्रवर श्री.
पुष्करमुनिजी
महाराज

सम्पादक—
श्री देवेन्द्रमुनिजी म. शास्त्री
'साहित्यरत्न'

जीवन दृष्टि के तत्त्व

सूर्य का उदय सृष्टि को नया रूप, नया जीवन प्रदान करता है। रजनी का निविड अन्धकार सहस्त्ररश्मि के उदित होते ही असीम आलोक के रूप में पलट जाता है और चराचर जगत् में एक नूतन स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है। सुषुप्ति की जडता समाप्त हो जाती है और जागृति की चेतना एवं चहल-पहल प्रारंभ हो जाती है। जैसे समग्र विश्व में सहसा महाप्राण ही संचार हो उठा हो !

सम्यग्दर्शन का उन्मेष होने पर आत्मा की भी ऐसी ही स्थिति होती है। जब तक सम्यग्दर्शन का उदय नहीं होता आत्मा सुषुप्त, जडता ग्रस्त, और प्राणविहीन-सा बना रहता है। मगर सम्यग्दर्शन का उदय होते ही आत्मा में एकदम नवीन आलोक उत्पन्न होता है और वह आलोक उसमें एक ऐसा स्पन्दन पैदा करता है जो पहले कभी अनुभव में नहीं आया होता।

सम्यग्दर्शन की अपूर्व ज्योति आत्मा के विचारों पर तो गहरा प्रभाव डालती ही है. व्यवहार में भी आमूल चूल परिवर्त्तन उत्पन्न कर देती है। विचार और आचार में गहरा संघर्ष है। आचार, विचार का क्रियात्मक-मूर्त्त रूप है। अतएव जब हमारे विचार में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होता है तो आचार पर उसका असर न होना असंभव है। यह आवश्यक नहीं कि सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होते ही मनुष्य महाव्रत अथवा अणुव्रत अंगीकार कर सर्वव्रती या देशव्रती बन ही जाय, तथापि यह निश्चित है कि उसकी जीवनप्रणाली में उसके व्यवहार में, और विशेषतः व्यवहार को प्रेरित करने वाली दृष्टि में महान् अन्तर आ जाता है।

अध्यात्मवेत्ता मनीषियों ने सम्यग्दृष्टि के जीवन व्यवहार को प्रभावित करने वाले मूलाधारों का वर्गीकरण किया है और उन्हें पाँच भागों में बाँट दिया है। वे सम्यग्दर्शन के पाँच लक्षण कहलाते हैं, क्योंकि मोटे तौर पर वे सम्यग्दर्शन के अस्तित्व के परिचायक चिह्न होते हैं। वे पाँच लक्षण ये हैं[१] (१) प्रशम (२) संवेग (३) निर्वेद (४) अनुकम्पा और (५) आस्तिक्य। (१) प्रशम—आत्मा अनादि काल से भीतर ही भीतर धधकनेवाली कषाय की आग से संतप्त रहता है। मिथ्यात्वदशा में कषाय जनित संताप अपनी तीव्रतम स्थिति में होता है मगर जब मिथ्यात्व का अन्त होता है तो अनन्तानुबंधी नामक तीव्रतम कषाय का अन्त हो जाता है और तज्जन्य संताप भी दूर हो जाता है। अन्तरतर में एक प्रकार की अनिर्वचनीय शान्ति की मधुर अनुभूति होने लगती है। आत्मा अपने को शान्त और स्वस्थ अनुभव करने लगता है। संक्षेप में, यही प्रशम भाव है।

(२) संवेग—भवभ्रमण के प्रति भीति का भाव होना संवेग है। सम्यक्त्वी जीव किसी अन्य भय से भीत नहीं होता। उसकी रग-रग में निर्भयता व्यापी रहती है। जीवन का कण-कण और क्षण-क्षण।

निर्भयता एवं निर्द्वंद्वता से ओत-प्रोत रहता है। उसके कदम कभी लडखडाते नहीं। किन्तु पापमयी प्रवृत्ति करते हुए वह हिचकिचाता है, घबराता है और भयभीत होता है। वह पापभीरु होता है और जन्म-मरण की परम्परा को बढ़ाने से डरता है। आत्मा में उदित हुई विमल सात्विकता के कारण ही ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। उसका वेग कुमार्ग की ओर से हट जाता है, संसारिक वासनाओं की, ओर उसका वेग नहीं होता और न कषाय की ओर ही होता है। वह बढ़ता है वास्तविक शान्ति की ओर, धर्म की ओर। उसके मुस्तैद कदम

१— धर्म संग्रह अधिकार २ श्लोक २२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदा मुक्ति के महामार्ग की ओर ही बढ़ते हैं। संक्षेप में कहा जाय तो मोक्ष की अभिलाषा संवेग है।

एक आचार्य ने संवेग की व्याख्या करते हुए इस प्रकार कहा है—

तथ्ये धर्मे ध्वस्तहिंसा प्रधाने,
देवे रागद्वेषमोहादिमुक्ते;
साधौसर्वग्रन्थसन्दर्भहीने,
संवेगोऽसौ निश्चलो योऽनुरागः॥

अर्थ — अहिंसाप्रधान सत्य धर्म पर, राग-द्वेष-मोह आदि समस्त विकारों से विरहित देव पर और परिग्रहहीन साधु पर अटल अनुराग होना संवेग कहलाता है।

३) **निर्वेद**—सम्यग्दर्शन का तीसरा लक्षण निर्वेद है। सांसारिक विषयभोगों के प्रति, फिर चाहे वे मानषिक हों या दैवी, विरक्त का भाव होना निर्वेद है। सम्यग्दृष्टि के चित्त में परमानन्दमय आत्मस्वरूप के प्रति इतना उग्र आकर्षण उत्पन्न हो जाता है कि संसार के उत्तम से उत्तम काम-भोग भी उसे अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकते। मानव समूह में चक्रवर्ती सम्राट् के और देवों में इन्द्र के भोगोपभोग सर्वोत्तम समझे जाते हैं और बडे बडे घोर तपस्वी भी, जिन्हें कि सम्यक्त्व का लाभ नहीं हुआ है, इनकी कामना करते हैं। किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव, भले ही वह तपस्वी एवं त्यागी न बना हो, इनके प्रलोभन में नहीं पडता। उसे यह काम-भोग नीरस, दुःख के हेतु, आकुलता बढ़ाने वाले और जन्म-मरण की परम्परा के निमित्त रूप ही प्रतीत होते हैं। वह विषयों का उपभोग करता हुआ भी उनमें आसक्त, तन्मय, तल्लीन एवं तच्चित्त नहीं होता। कमलपत्रवत् निर्लेप रहता है। कमल कीचड़ में उत्पन्न होता है और जलपरिपूर्ण सरोवरमें स्थित रहता है,) तथापि वह जल और कीचड़ से अलिप्त रहता है। कमल के पत्रोंपर से पनी बह जाय तो भी चिकनाहट के कारण उन पर ठहरता नहीं—

जहा पोम्भ जले जायं,
नोव लिप्पइ वारिणा,

उत्तरा. अध्य. २५. गा. २७

सम्यग्दृष्टि की आन्तरिक स्थिति भी इसी प्रकार की होती है। वह ससार में रहता हुआ भी संसार से अतीत-सा रहता है। नाटक का एक पात्र राजा का अभिनय करता है। वह युद्ध करता है। युद्ध में पराजित होने पर खेद का प्रदर्शन करता है, प्रसन्नता के अवसर पर प्रसन्नता प्रकट करने में किसी राजा से कम नहीं ठहरता, उसकी वेष-भूषा और भाषा, सब राजा की ही तरह होती है, मगर क्या वह अपने अन्तस में यह नहीं समझता कि मैं राजा नहीं, सिर्फ राजा का अभिनय कर रहा हूँ? सम्यग्दृष्टि भी अपने गृहस्थजीवन के क्षेत्र में विविध प्रकार के अभिनय करता है, दुःख सुख के प्रसंगों में दुखी एवं सुखी होता है, फिर भी अन्तर से अलिप्त ही रहता है। ससार का तीव्र से तीव्र एवं मोहक से मोहक प्रलोभन भी उसकी अलिप्तता को चुनौती नहीं दे सकता।

'योगबिन्दु' में आचार्यप्रवर हरिभद्र ने सम्यग्दृष्टि के संबंध में, कहा है—

मोक्षे चित्तं, तनुर्भवे।

सम्यग्दृष्टि का मन मोक्ष में और तन संसार में होता है। कितना संक्षिप्त, सुन्दर और सारगर्भित चित्रण है, सम्यग्दृष्टि का हूबहू चित्र ही चार अक्षरों में अंकित कर दिया है। वास्तव में सम्यग्दृष्टि की मनोवृत्ति संसारातीत होती है। जैसे गाय का ध्यान बछडे की ओर और पनिहारी का ध्यान मस्तक पर रक्खे हुए घर की ओर बराबर बना रहता है, उसी प्रकार संसार व्यवहार में व्यापृत रहता हुआ भी सम्यग्दृष्टि अपनी सूक्ष्म एवं आन्तरिक दृष्टि मुक्ति पर ही गडाये रहता है।

सम्यग्दृष्टि संसार में उसी प्रकार रहता है जैसे विभीषण लंका में रहता था। कहते हैं—एक बार भक्त प्रवर हनुमान ने विभीषण से पूछा—बन्धुवर, आप यहाँ किस प्रकार रहते हैं? विभीषण बोले—

सुनहु पवनसुत! रहनि हमारी,
जिमि दसनन महँ जीभ बिचारी।

'राम चरित मानस'

जैसे बत्तीस दाँतों के बीच जीभ को सदा सतर्क और सावधान रहना पड़ता है, उसी प्रकार मुझे यहाँ रहना पड़ता है।

एक उर्दू शायरने अलिप्त मानस का जो चित्रण किया है, सम्यग्दृष्टि के संबंध में वह पूरी तरह घटित होता है।

लाई हयात आए, कजा ले चली, चले,
अपनी खुशी न आए, न अपनी खुशी चले।
बेहतर तो यही कि न दुनियाँ से दिल लगे,
पर क्या करें जो कामना बेदिल्लगी चले॥

'उर्दू शायरी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशय यह है कि--जिन्दगी हमें इस दुनियाँ में लाई तो आ गये, मौत जब ले गई तो चल दिये। हम अपनी इच्छा से न जन्मना चाहते हैं, न मरना चाहते हैं। जन्म-मरण की इस लंबी श्रृंखला से बँधा रहना हमें पसद नहीं। उत्तम तो यही है कि संसार में रहते भी संसार में मन न लगे, मगर करें क्या, जब संसार में बैठे हैं तो सांसारिक मानवों से प्रेम करना ही पड़ता है! व्यवहार-साधन किये बिना कैसे काम चल सकता है!

सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि, दोनों ही संसार के भोगोपभोगों का उपभोग करते हैं, किन्तु दोनों के उपभोग में महान अन्तर होता है। उसे मोटे रूप में इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं—भ्रमर सौरभमय सुमनों पर मंडराता है, आलीन होता है, उनका रसास्वादन करता है, मगर फूलों का ही नहीं हो रहता। वह जब उड़ने की इच्छा करता है तभी उड़ जाता है। कोई बन्धन उसने अपने लिए निर्माण नहीं किया है। मगर श्लेष्म पर बैठने वाली मक्खी की बात निराली है। वह उसमें ऐसी फँस जाती है कि उड़ने की इच्छा हो तो भी उड़ नहीं सकती। वह अपनी जिन्दगी वहीं समाप्त कर देती है।

इस प्रकार सम्यग्दृष्टि का भोग भ्रमर के समान है तो मिथ्यादृष्टि का मक्खी के समान।

सम्यग्दृष्टि दुःखों-संकटों के थपेड़ों से घबराता नहीं और सुख की लोल लहरों में अपने जीवन को विनष्ट करता नहीं। वह फूल तथा शूल में, मित्र तथा शत्रु में और इष्ट तथा अनिष्ट में समबुद्धि अनुभव करता है।

सहस्त्रों वर्षों तक जल के तल में निमग्न रहने पर भी स्वर्ण पर काई नहीं चढ़ती। इसी प्रकार सांसारिक दायित्वों को निभाने और चिरकाल तक गार्हस्थ्य में रहने पर भी सम्यग्दृष्टि पाप से लिप्त नहीं होता। इसी से शास्त्रकार कहते हैं—

सम्मत्तदंसी न करेइ पावं।

सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी कषाय से प्रेरित पाप नहीं करता और न पापाचरण की आन्तरिक रूचि ही होती है।

इस प्रकार सम्यग्दृष्टि की अन्तरात्मा में जो निर्लेपवृत्ति उदित होती है, उसे निर्वेदभाव की संज्ञा प्रदान की गई है।

(४) **अनुकम्पा**— दुःखी प्राणी का अवलोकन कर हृदय में कम्पन होना और तदर्थ दुःख मुक्ति की भावना अनुकम्पा है। सम्यग्दृष्टि जीव का चित्त ऐसा सात्त्विक और सुकोमल बन जाता है कि वह दूसरे को दुःखमय स्थिति में देखकर आँखें नहीं मूँद सकता। वह उस दुःख को दूर करने की भरसक चेष्टा करता है। वह प्राणिमात्र में मैत्री और बन्धुभाव को साकार देखता है 'मित्ती मे सव्वभूएसु' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उदार स्वर उसके अन्तर्मानस में सतत झंकृत होता रहता है। कभी किसी प्राणी को कष्ट में देखता है तो उसके तन, मन और नयन आकुल-व्याकुल हो उठते हैं, वह विकल और विह्वल होकर उसके निवारण के लिए अपना समस्त सामर्थ्य समर्पित कर देता है। उसके लिए अपना दुःख उपेक्षणीय हो सकता है, अन्य का नहीं। वह अपने प्रति वज्र-सा कठोर होकर भी पर के प्रति कुसुम-सा कोमल होता है। एक कपोत की प्राणरक्षा के लिए अपने अङ्ग-अङ्ग को काट-काट कर अर्पित करने वाले मूर्धन्य महाराजा मेघरथ की गरिमामयी गाथा सम्यग्दृष्टि की आन्तरिक मनोभावना को समझने में बहुत सहायक हो सकती है। क्या रिश्ता था कबूतर के साथ मेघरथ का? फिर वह कौन-सी भावना थी, जिससे प्रेरित होकर वह अपने शरीर की आहुति देने को तैयार हो गया?

और, उन प्रातःस्मरणीय महामुनि धर्मरुचि[1] की गौरवमयी गाथा, सहस्त्रों वर्षों के बाद, आज भी हमारे हृदय को आलोकित कर देती है। जिन्होंने अनुकम्पा की पावन वेदिका पर अपने प्राणों की बलि दी थी।

भगवान् भास्कर अपनी प्रखर रश्मियों के साथ व्योम पर आधिपत्य स्थापित कर अठखेलियाँ कर रहा था। चारों ओर भीष्म-ग्रीष्म की उष्णता का निष्कंटक साम्राज्य था। भूतल—तवे की तरह तप्त हो रहा था।

एक महानमुनि नीची निगाह किये चले जा रहे थे। कृश काय मगर दमकता हुआ चेहरा! विशाल भाल! गौरवपूर्ण उज्ज्वल नयन, जिनसे करुणा को स्रोतस्विनी प्रवाहित हो रही थी। गंभीर और प्रशान्त मुद्रा। उन्हें देख नागरिक आश्चर्यान्वित हो रहे थे-यह क्या, एक दिनकर आकाश में है, दूसरा पृथ्वी पर कहाँ से आ गया?

वह महाश्रमण शनैः शनैः शालीनतामयी गतिसे, मौन भाव से पथ पर अग्रसर हो रहा था। सहसा एक भव्य भवन केन्द्र द्वार पर स्थित एक रमणी ने आवाज लगाई-महाराज, अनुग्रह कीजिए। आहार विशुद्ध है।

१—ज्ञाताधर्म कथा, अध्ययन. १६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमण पहुँचे भोजनालय के निकट। रमणी का कर-कमल शाक-पात्र से सुशोभित था। मुनि ने अपना पात्र पसारा और रमणी ने, किसी अज्ञात आकुलता के साथ, पात्र का सारा ही शाक मुनि के पात्र में उँडेल दिया। मुनि 'बस-बस' कहते रहे, मगर उसे सुनने का अवकाश ही नहीं था।

मुनि उस दिन शाक ही लेकर लौट पड़े अपने गुरुदेव के श्री चरणों में,

गुरुदेव को आहार दिखलाया। उन्होंने खेद के साथ मुनि के चेहरे की ओर देखते हुए कहा-देवानुप्रिय! मास-खमण की दीर्घ तपस्या के पारणामें केवल शाक ही!

मुनि गंभीर स्मित पूर्वक बोले-भंते! वह बहिन मानी ही नहीं। उसने सारा शाक दे दिया। यही इतना ही गया कि दूसरे आहार की आवश्यकता ही नहीं रही।

श्रमण ने अपनी प्रशस्त परम्परा के अनुसार गुरुदेव को आमन्त्रित किया आहार ग्रहण करने के लिए। आमंत्रण को अंगीकार, करके अथवा सहसा उदित हुई किसी आशंका से प्रेरित होकर आचार्य ने शाक का एक कण मुख में डाला और फिर अपने प्रिय अन्तेवासी से कहा वत्स! यह क्या लाया है? यह तो गरल है, हलाहल है।

गुरूदेव ने शिष्या को आदेश दिया। इस आहार को ऐसे स्थान पर परठ दो कि किसी जीव की हिंसा न हो।

मास-तपस्वी पुन: पात्र लेकर चल पड़ा वनप्रदेश की ओर। मुख-कमल मुरझा रहा था ग्रीष्म के दुस्सह ताप में, किन्तु वह योगी चला जा रहा था ऐसी निर्जीव भूमि की तलाश में, जहाँ शाक परठनें से किसी जीव को आघात न पहुँचे।

एक स्वच्छ स्थान दिखलाई दिया, प्राणियों से रहित। एक कण आहार का डाला भूमि पर और वहीं बैठ कर देखने लगे कोई जीव-जन्तु तो नहीं आता है इसे खाने के लिए। मगर तीव्रघ्राण चींटियाँ शाक की गंध से प्रेरित हो उमड़ने लगीं, मानों हलाहल शाक के रूप में मृत्यु उन्हें आह्वान कर रही थी।

अपने ऊपर आये उपसर्गों और परीषहों से कभी न हिलने वाले मुनि का दिल इस दृश्य को देख कर दहल उठा। मैं अपनी [illegible]क्षा के लिए इन असंख्य जीवनधारियों के संहार का कारण [illegible]

करूणा सागर का अन्त:करण करूणा की तरल तरंगों से तरंगित होने लगा। अनुकम्पा की परम पूत भावना हृदय में ठाठें मारने लगी। सोचा—गुरुदेव का आदेश है, जहाँ परठने से किसी जीव की हिंसा न हो, वहाँ शाक परठा जाय। ऐसा स्थान मेरे उदर के अतिरिक्त और कोई नहीं दीखता। बस, उन्होंने पात्र उठाया और जीवरक्षा के पवित्र विचार से, उस हलाहल को गले के नीचे उत्तार लिया।

वह थे धर्मरुचि अनगार जो जीवरक्षा के लिए सदा मूर्तिमान आदर्श रहेंगे।

एक विचारक अंगरेज कहता है—तूं अपना सुख पीछे देख। प्रथम दूसरे के सुख का विचार कर।'

एक बार सन्तहृदय तुकारामने भी कहा था—यह शरीर स्वर्ण कलश के सदृश है, इसमें विलास की शराब न भरो; अनुकम्पा का अमी-रस भर कर इस स्वर्णकलश की शोभा बढाओ।

जिसके हृदय में इस प्रकार की अनुकम्पा अठखेलियाँ करती हैं, समझ लीजिए वही अपने जीवन को उत्थान के महापथ पर अग्रसर कर रहा है।

सम्यग्दृष्टि में स्वभावत: अनुकम्पा का अक्षय स्रोत फूट पड़ता है और वह प्राणियों के आर्तिनाश को ही अपने जीवन का महान् लक्ष्य बना लेता है। कवि कहता है—

न त्वहं कामयेदुराज्यं, न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दु:खतप्तानां, प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

मुझे राज्य नहीं चाहिए, वह विलाश और अभिमान की दुर्वृत्ति उत्पन्न करता है। मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए, वह गांठ के पुण्य के क्षय का स्थान है; वहाँ धर्म-पुण्य का संयम नहीं हो सकता। मुझे पुनर्भव की भी कामना नहीं, उससे बन्धनों की वृद्धि ही हो सकती है। मेरी एक ही कामना और एक ही अभिलाषा है—प्राणियों की पीडा का नाश करूँ। जहाँ कहीं कोई दु:खी, संकटग्रस्त और पीडित प्राणी दृष्टिगोचर हो, मैं उसे उबार सकूं-दु:ख से मुक्त कर सकूं, उसके हृदय के घाव पर मलहम लगा सकूं।

इसे कहते हैं अनुकम्या। अनुकम्पा सम्यकत्व की कसौटी है। जिस आत्मा में सम्यग्दर्शन का आविर्भाव हुआ है, उसमें अनुकम्या का आविर्भाव अवश्यभावी है। जहाँ अनुकम्पा नहीं, वहाँ सम्यग्दर्शन का अस्तित्व नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दंड मांडयो पछे जिणां सुं दंड सज्यो नहीं तिणांरी वदलीसाढा नवमण सोनो रांणों जी नें देनें दस हजार घर नागोरी लुंक गच्छकिया । इकावन उपासरा कराया । तठा पछे वले मेवाड गोढ़वाड संथारो दिन ९ रो नागोर मध्यें । ६७ । तत्पट्टे श्री वर्द्धमानजी जात वैद्य मुंहता । पिता नाम सूरोजी । माता लाडसदेजी । जन्म जाखासर । चारित्र नागोर । पदवीनागोर संवत १७२५ माघ शुक्ल पांचुं तठा पछे १७३० वैशाख सुदि १० श्री वीकानेर पधारया सांमेलो उगूणौं दरवाजै सूं नगारो निसाण ढोल आखी वाजा झालर संख पगमंडा पटोली समेत हुवो पोलांचार हुई पोल १ सूराणां री । पोल एक चोर वेढी-चारी । पोल १ कावडीयांरी । पोल १ सर्व सामग्री री पंचा-यतीरी । इण भांत पोला ४ हुई । नालेरां री प्रभावना हुई । खमासण सूराणैं विमलदासजी रे घरे हुई तठा पछे आसाढ चोमासै उपर खरतरां कवलांएका करने श्रावकां सुं सलाकरने मारग में झालर संख वजांवणरी आण दिराय दीवी तिवारै श्री जी कह्यो सदामदम्हे वजावांछां अरअवार गाजा वाजा सुं सांमेलो हुवो थे सर्व जती लारै इछा अवै आंण क्युं दीरावोछो तिवारै जती बोल्या । इतरा दिनम्हे नहीं वरज्या अबे ही वरज्या इसो कहने वाले आंणदिरायदीवी तिवारै उण चौमासे श्री पूज्य जी कपडो वैरणनें उठ्या नहीं । दूजे वर्ष श्रावकां भेला हुई नें कह्यो कपडो वेहरयां बिनां क्यूं कर वणें । तिवारै श्री पूज्य जी फरमायो विना मर्यादि वैइरणाने क्यूंकर उठां तिवारै श्रावकां कह्यो ओकजीयो तो दरवार बिनां निवडै नहीं । दरवार में आपणों अबार दाव लागे मालवे में विचा-रतां ३५ पैंतीस हजार घर प्रतिबोधी नागोरी लुंके गच्छकिया पदवी वर्ष २७ भोगवी । संथारो मेडता मध्यें दिन २१ इक-वीसरो । ६१॥ तत्पट्टे श्री वयरागर जी । जात श्रीमाल । पिता नाम भल्लराजजी । माता नाम रत्नवतीजी । जन्म नागोर । पदवी नागोर । पदवी वर्ष १९ भोगवी संथारो दिन ११ इग्या-रे रो मेडता मध्ये ॥ ६२ । तत्पट्टे श्री वसुपाल जी जात कड-वांणी । पिता नाम महाराजजी माता नाम इर्षाजी । जन्म नागोर । पदवी नागोर । पदवी वर्ष ७ भोगवी । सन्थारो दिन २७ सत्तावीस रो मेडता मध्यें । ६३ । तत्पट्टे श्री कल्याणदा-सजी । जात सूंराणां । पिता नाम सिवदास जी । माता नाम कुंसलाजी । जन्म राजलदेसर । चारित्र बीकानेर पदवी नागोर । पदवी वर्ष २४ भोगवीं । संथारो दिन ८ दिन आठे रो लाहोर मध्ये । ६४ । तत्पट्टे श्री मैरूंदासजी । जात सूंराणा पिता नाम तेजसी जी । माता नाम लक्ष्मी जी । जन्म नागोर । चारित्र नागोर । पदवी नागोर । पदवी वर्ष १२ भोगवी । संथारो दिन १० रो सोजत मध्ये । ६५ । तत्पट्टे श्री नेमिदा-सजी । जात सूंराणा पिता नाम रायचन्द जी । माता नाम सजनाजी । जन्म बीकानेर । चारित्र बीकानेर । पदवी नागोर । पदवी वर्ष १७ भोगवी । संथारो दिन ७ सात रो उदैपुर मध्ये । ६६ । तत्पट्टे श्री आसकरण जी । गोत्र सूंराणा । पिता नाम लाचोजी । माता नाम तारांजी । जन्म मेड़ते । चारित्र मेड़ते । पदवी नागोर । पदवी वर्ष १८ भोगवी । नहीं । श्री हजूर अरू वरू छांण तपावस करसी जद कजीयों नीवडसी । आप ख्यमा करो । कपडो वैहरण ने पधारो । इसो कह्यां जत्यां ने घरे बैहरणने मेल्या घरां सगलांई में पंच शब्दों बजायो । इण भांत वर्ष ३ नीकल गया । तठा पछे श्री पूज्य जी रै शरीर में कसर अपनी तिवारै आ-परो अंत समय जांणी संथारो लियो । दिन ७ सात रो संथारो आयो । पदवी वर्ष ८ भोगवी । ६७ । तत्पट्टे श्री सदारंग जी जात सूंराणा । पिता नाम भागचन्दजी । माता नाम जसो-दाजी । जन्म काल़ू । चारित्र काल । पदवी नागोर । जिणं सं. १७३७ पातस्याह आलमगीरने उपासरै री जागा बाबत रात रा परचो देखायो ।

सदारंगजी का इससे आगे भी पट्टावली में विस्तृत वर्णन है । पर उसमें कुछ विवादास्पद चर्चा है । इसलिए आगे का विवरण नहीं दिया जा रहा है । पट्टावली के अन्तमें यह लिखा गया है कि सदारंगजी के २४ शिष्य हुए और ३८ वर्ष तक आचार्य पद पर रहे । अन्तमें १० दिनका अनसन करके बीका-नेर में संवत् १७७२ में स्वर्गवासी हुए । आश्चर्य है विजय-मुनिजी सूचित मनोहरदासजी का नाम सदारंगजी के २४ शिष्यों में नहीं हैं संभव है संस्कृत पट्टावली में सूचित नामों में कुछ गडबड हो । मारवाडी पट्टावली में उनके शिष्यों की संख्या १२ लिखी है । आशा है उपरोक्त विवरण से विजय-मुनिजी के लेख की संशोधनात्मक पूर्ति हो जायगी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हम कौन थे क्या हो गये

स्वतन्त्र भारत और चरित्र-निर्माण

लेखक–डॉ० नरेन्द्रकुमारजी भानावत, M. A. P. H. D. "साहित्य रत्न"
(हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

शताब्दियों की पराधीनता, विश्व-युद्ध की विभीषिका, अकाल और महामारी ने भारतीय जन-जीवन को आर्थिक एवं नैतिक दृष्टि से कमजोर तथा खोखला बना दिया था। आजादी से पूर्व राष्ट्रनेताओं का ध्यान भारत को विदेशी शासन से मुक्त कराने की ओर ही केन्द्रित रहा। चरित्र-निर्माण का कोई कार्यक्रम उस समय जनता के सामने नहीं आया। यों विभिन्न धर्माचार्य हर युग में आत्म-साधना की प्रेरणा देते रहे पर राष्ट्रीय-स्तर पर कोई नैतिक योजना लागू की गई हो, ऐसा नहीं लगता।

आजादी के बाद देश की सुख-समृद्धि के लिए आर्थिक योजनाएँ बनाई गईं। लोगों के व्यथित एवं निराश मन आशा और उल्लास से भर उठे। बडे-बडे बांध बांधे गये, बिजली घरों से प्रकाश और शक्ति का स्रोत फूट पडा। खाद्य एवं उद्योग की दृष्टि से हम एक सीमा तक स्वाश्रयी बने। शरीर को सजाने और संवारने के प्रसाधनों में आशातीत वृद्धि हुई। पर मानव केवल शरीर नहीं है। शरीर के अलावा भी उसकी एक चेतना है, आत्मा है, जिसकी भूख अधिक तीव्र है। उसकी परितृप्ति में ही जीवन की सार्थकता है। पर आत्मा की भूख मिटाने के लिए मानव मन का निर्माण करने के लिए कोई मानवीय योजना अब तक सामने नहीं आई है। अगर योजना में मानव-मन के निर्माण का प्रयत्न नहीं किया गया, मन की उच्छृंखलित प्रवृत्तियों का बांध नहीं बांधा गया, आत्मा के बिजली घर में ज्ञान की शक्ति और विवेक का प्रकाश नहीं पैदा किया गया, नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा नहीं की गई तो ऐसा लगेगा कि सत मंजिला महल तो बन गया पर उसमें निवास करने वाला सच्चा मनुष्य नहीं है। यदि आर्थिक योजना के साथ नैतिक योजना नहीं बनाई गई, राष्ट्र-निर्माण के साथ-साथ चरित्र-निर्माण की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो हमारी वही दशा हो सकती है जो बलि की हुई थी।

राजा बलि की कहानी

कहा जाता है कि राजा बलि राज्य-भ्रष्ट होने के पश्चात् अज्ञातवास में रह रहे थे। एक दिन देवराज इन्द्र उनसे मिलने जा पहुँचे। वार्तालाप हो ही रहा था कि इन्द्रने साश्चर्य देखा—बलि के शरीर से साक्षात् लक्ष्मी प्रकट हुई और इन्द्र को सम्बोधित करके बोली–

"देवराज! मेरे चार चरण हैं। जो राष्ट्र मेरे इन चार चरणों को स्थिर आधार पर प्रतिष्ठित क

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है वहीं मैं स्थायी निवास करती हूँ। बलि मुझे स्थिर आधार नहीं दे सका। अब, मैंने राज्य का परित्याग कर दिया है। अब मैं आपके राज्य में आना चाहती हूँ। बतलाइए, आप मेरे चरणों को कहाँ-कहाँ प्रतिष्ठित करेंगे ?"

देवराजने सहर्ष उत्तर दिया-"शुभे ! आप अपना पहला चरण भूमि पर रखिए जिसे हमने अपने स्वेद-कणों से अन्नपूर्णा बना दिया है। दूसरा चरण इस जलराशिपर दीजिए जो सुनियंत्रित होकर अमृतमयी बन गयी है। तीसरा चरण अग्नि पर रखिए जो राष्ट्र की जन-शक्ति है और जिसका उपयोग हम राष्ट्रहित में कर रहे हैं, तथा चौथा चरण प्रजा पर रखिए जो चरित्रवान है।"

यह सुनकर लक्ष्मी देवलोक में चली गई। राजा बलि के राज्य में तीन आधार तो सुदृढ थे पर चौथा आधार (चरित्र) पंगु और जर्जर था, इसीलिए लक्ष्मी चली गई। कहना न होगा कि हमारी आर्थिक योजनाओंमें इस चौथे आधार की उपेक्षा की जा रही है। जब तक चरित्र का निर्माण नहीं होगा तब तक अन्य आधार भी विचलित रहेंगे।

कहने और करने में फर्क क्यों ?

कहने को तो हमारा देश धर्मप्रधान देश कहलाता है। पर यह विचित्र बात है कि इस देश में धर्म के नाम पर जितना ढोंग रचा जाता है शायद उतना उन देशों में नहीं जो अपने आपको धर्म प्रधान नहीं कहते। हम धर्म के द्वारा ही मरना चाहते हैं। गांधीजी ने एक बार भाषण देते हुए कहा था-अन्य देशों में "हाँ" का अर्थ "हाँ" होता है और "ना" का अर्थ "ना"। पर हमारे देश में इसका उलटा होता है। जब हम "हाँ" कहते हैं तो उसका अर्थ "हाँ" नहीं "ना" होता है और जब हम "ना" कहते हैं, तब उसका अर्थ "ना" नहीं "हाँ" होता है। धर्म की ओट में कितना अविश्वास, छल और धोखा पल रहा है। यह सब नैतिक शक्ति की कमी के कारण है।

आज हम स्वतन्त्र हैं। हमने विदेशी नियन्त्रण को उतार कर फेंक दिया है। पर अपने नियन्त्रण में रहना ही हमारे लिए कठिन हो गया है। जब तक आत्मानुशासन, आत्म-संयम और आत्म-नियन्त्रण की भावना का विकास न होगा तब तक जीवन-निर्माण की योजना अधूरी और एकांगी रहेगी। स्वतंत्र भारत की सुरक्षा और समृद्धि के लिए जितनी आवश्यकता भौतिक उन्नति की है उससे कहीं अधिक आवश्यकता आत्मिक एवं नैतिक उन्नति की है। आज चारो ओर जो भ्रष्टाचार, घूस खोरी, मिलावट और दोहरे व्यक्तित्व की चर्चा है उसके मूल में आत्मशक्ति का अभाव है। इस आत्म-शक्ति के विकास के लिए व्यक्ति को कठोर साधना करनी पडेगी। व्यक्ति समाज की इकाई है। समाज को सुखी और सम्पन्न बनाने के लिए व्यक्ति को आत्म-सुधार का आन्दोलन छेडना पडेगा। उसे 'स्व' की परिधि का विस्तार करना होगा और 'पर' को अपना बनाना होगा।

चरित्र का माप दण्ड

आज चरित्र का मापदण्ड सदाचार न रहकर पैसा बन गया है। समाज में पूंजी की अधिक प्रतिष्ठा है। येनकेन प्रकारेण धन-संग्रह करना आज के युग का मिशन है। आज की 'माँ' खोटी इकन्नी देकर किसी अंधे से सब्जी खरीदना अपना गौरव समझती है। आज का 'बेटा' शुद्ध देशी घीं के नाम पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनस्पति घी बेचना अपना बडप्पन समझता है । आज का 'नेता' नैतिकता से दूर हटकर तोड-फोड करने में नेतृत्व समझता है । आज का 'अफसर' सेवा-भाव को वनवास देकर सत्ता से चिपके रहना धर्म समझता है । आज का 'विद्यार्थी' परीक्षा में नकलकर विद्वत्ता का प्रमाण-पत्र चाहता है । और पता नहीं कौन...... क्या क्या......चाहता है । चरित्रहीनता के इस सांप ने मानव की अन्तरात्मा को चारों ओर से घेर लिया है। डस लिया है । विष के विपुल प्रवाह में सब बहे जा रहे हैं । कौन गारुडी आकर सबका उद्धार करे ? सबको विषमुक्त करे ? यह गारुडी सबके मन-मन्दिर में बैठा है, आवश्यकता है उसे जगाने की । और वह जागेगा पवित्र आचरण से, निष्काम कर्म से, सात्त्विक प्यार से ।

राष्ट्र के चरित्र-निर्माण में शिक्षा का बहुत बडा हाथ है । शिक्षा के दो कार्य हैं । एक ओर वह दिमाग को ज्ञानवान बनाये दूसरी ओर चरण को आचारवान बनाये । विचार और आचार दोनों को साथ-साथ समुन्नत करे । आज की शिक्षा में इस समन्वय भावना का अभाव है । यही अभाव चरित्रहीनता का कारण है ।

ज्ञान की सार्थकता

आज का शिक्षक बालक को खूब ज्ञान देता है। उसका सिर बढता जाता है पर पैर (आचरण) एक जगह जमे रहते है । केवल सिर मात्र के बढने का परिणाम क्या होगा ? वह कुछ सीमा तक चलकर लडखडाकर गिर जायगा । उसका यह ज्ञान क्रिया (पैर) के अभाव में दुःखदायी सिद्ध होगा। ज्ञान की सार्थकता क्रिया (आचारण) के सम्मिलन में है । सिर के आगे बढने की सफलता पैरों के साथ-साथ चलने में है । सिर और पैर साथ-साथ चलें, ज्ञान और क्रिया साथ-साथ फलें । भौतिक ज्ञान से सभ्यता का विस्तार तो होगा पर संस्कृति का 'केनवास' नहीं बढेगा, बगीचामें फूल तो खिलेंगे पर मन-मधुकरों की गुंजार नहीं होगी, आकाश में चाँद तो चमकेगा पर चित्त का चकोर उस और देखेगा नहीं । इसके लिए आत्मा का विकास करना होगा और चरित्र-निर्माण के बिना यह संभव नहीं ।

.... श्री आचार्य गुरुदेव-स्तुति ....

(तर्ज—आरती ॐ जय जगदीश हरे.........)

ॐ जय आनन्द गुरुदेवा, स्वामी, जय आचार्य गुरुदेवा
श्रमण संघ के नेता, आगम के ज्ञाता ।।ॐ।।टेर।।
जिन शासन को चमकाया, उसे ऊँचा उठाया ।।स्वामी०।।
विश्व मैत्री का पाठ, आपने सिखाया ।।ॐ।।१।।
महिमा भारी विश्व में, जैन धर्म के नामी ।।स्वामी०।।
सत्य अहिंसा सिखाते, संगठन के स्वामी ।।ॐ।।२।।
चतुर्विध संघ के नायक, सब के मन भाया ।।स्वामी०।।
भाग्य हमारे जागे, आनन्दऋषि पाया ।।ॐ।।३।।
आनन्द मूर्ति है प्यारी, मंगलमय भारी ।।स्वामी०।।
नर-नारी सब नमते, आचार्य गुरुराई ।।ॐ।।४।।
देवीचन्द के नन्दा, हुलसा के आनन्दा ।।स्वामी०।।
भव-भव के काटे फन्दा, जन-मन सुखकन्दा ।।ॐ।।५।।
वणी शहर चौमासा ठाया, चौवीसो नव्वे आया ।।स्वामी०।।
'भानुऋषि' करता वन्दन, आचार्य गुरु पाया ।।ॐ।।६।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी समाज के विकास की रूप रेखा

लेखिका--महासतीजी श्री चन्द्रावतीजी महाराज

आज के युग में जैन समाज के सामने सबसे महत्त्व-पूर्ण प्रश्न है, कि जैन धर्म का संरक्षण एवं संवर्धन। यद्यपि जैन धर्म के संरक्षण एवं विकास का उत्तरदायित्व सन्त-सती वर्ग पर है। उन्हीं के सहयोग से यह धर्म टिक रहा है। किन्तु उनका सहयोग सर्वत्र और सर्वदा सम्पूर्ण देशकाल व्यापी नहीं है। उनका क्षेत्र कहीं २ व्याख्यान देने, एवं साहित्य निर्माण तक सीमित है,। जिस देश काल. एवं कार्य क्षेत्र में संत, सती-वर्ग सहयोग नहीं दे सकते, उनका उत्तरदायित्व गृहस्थ वर्ग को सभालना चाहिये।

जैन समाज के विकास में महिला, समाज के सहयोग की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि महिला समाज में जैनधर्म में शिक्षा का सुचारु रूप से विकास हो तो जैनधर्म की नींव अत्यन्त सुदृढ हो सकती है। महिलाएँ जाग उठें, तो युग जाग उठेगा। माताओं की गोद में खेलने वाले नन्हे-मुन्ने-मुन्नी भविष्य की नूतन समाज है। भावी समाज की सुआशाओं के सुनहरे सपने उन्हीं की गोद में सज रहें हैं। राम, कृष्ण, महावीर, और महात्मा गाँधी जैसे भारत के चमचमाते सितारे उन्हीं की गोद में उदित हुए हैं। नारी नये समाज की सर्जनकर्त्री है। वह भावी समाज को जैसा चाहे वैसा बना सकती है।

वह क्या आदर्श माता है जिसने अपनी सन्तति के जीवन चित्र के धर्म श्रद्धा का रंग नहीं भरा? वह माता जननी भले ही कहलाए, किन्तु आदर्श माता कहलाने का सौभाग्य नहीं पा सकती। वह क्या आदर्श पत्नी है जो अपने पति के हृदय में धर्म प्रेम का अमृत नहीं उडेल सकती है। जो नारी समाज के क्षणिक विषय-विलासों में अपने पूज्य पति के धर्म का पथ भूलते हुऐ देख सकती है, और स्वयं भी भूल जाती है। ऐसी नारी अधर्म सहायिका होने से अधमा गिनी जाती है। धर्म ग्रन्थों में नारी को इसलिये नरक का द्वार बतलाया है कि जो नारी धर्म सहायिका बनकर पति को धर्म मार्ग में प्रवृत्त कर सकती है वह स्वर्ग का द्वार भी बना सकती है।

नारी समाज ने धार्मिक क्रान्ति में कितना सहयोग दिया है, प्राचीन इतिहास के सुनहरे पृष्ट आज भी उनकी यशोगाथाओं को दुहरा रहे हैं। धर्म रक्षा के लिये नारियोंने आज तक कितने बलिदान किये हैं। भारतीय संस्कृति एवं धर्म नारियों का धर्म दृढता एवं बलिदान के कारण ही विश्व में जीवित हैं। उनका धर्म धरित्री सा अचल है, उनका सतीत्त्व तेज अद्वितीय है।

जैन धर्म के गौरव को चमकाने वाली उन आदर्श नारी को क्या हम भूल सकते हैं जिसकी-मगध सम्राट श्रेणिक जैसे शिकारी मांसहारी परम नास्तिक पति को भी भगवान् महावीर का सच्चा भक्त बनाने का श्रेय है। उसका नाम था चेलना! वह भगवान् महावीर के परम भक्त वैशाली के सम्राट् चेटक की धर्म तत्त्वज्ञा सुपुत्री थी। जब वह मगधेश की महासम्राज्ञी बनती है तो उनके सामने स्वर्ग सा ऐश्वर्य है, विस्तृत सामराज्य है और मगधेश का पूर्ण स्नेह प्राप्त है। किन्तु रानी चिन्तित है, उसे सब शून्य लगता है! अपने जीवन स्वामी का जीवन धर्म से विपरीत देखकर। जहाँ पति-पत्नी के आचार-विचार के पथ भिन्न २ हों वहाँ हार्दिक स्नेह कब निभ सकता है। सती चेलना वैभव बिलासों में अपने धर्म का पथ न भूल सकी। वह पति को धर्म की ओर उन्मुख करने को सतत श्रम करती है और बुद्धि तथा प्रेम के बल से अपने स्वामी के हृदय को जीतकर एक दिन उन्हें सच्चा जिनभक्त बनाने में सफल हो जाती है। यह आदर्श पत्नी का एक आकर्षक व ज्वलंत उदाहरण है। ऐसी श्रीमती सुभद्रा आदि अनेक महिलाएँ हुई हैं। जिन्होंने हजार २ संकट सहकर भी अपने धर्म तक को नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोडा, बल्कि अपने प्रभाव से सारे परिवार में धर्म फैला दिया। आदर्श धर्मवती माता पुतली बाई यदि महात्मा गांधी को विलायत जाते समय मांस एवं पर-स्त्री त्याग की शपथ न दिलाती तो क्या उन्हें महात्मा बनकर विश्ववंद्य बनने का श्रेय मिलता? आज के जैन समाज में भी यदि सती चेलना जैसी आदर्श पत्नियाँ हों मदालसा व पुतलीबाई जैसी माताएँ हों तो क्या कारण है कि —हमारी भावी पीढी धर्म से विमुख हो जाय, और धर्म का अस्तित्व खतरे में पड जाय। आज की महिलाओं को भी हमें उदाहरण सामने रखकर आदर्श पत्नी व मातृत्व के कर्त्तव्य सीखने चाहिये।

परिवार के व्यापक क्षेत्र में नारी का माता भगिनी, भामिनी आदि अनेक रूप से प्रगाढ सम्बन्ध है। एक सुरक्षित धर्मवती सन्नारी सहज में ही अपने आस पास के क्षेत्र में धर्म की शोभा को फैला सकती है। शरीर में नाडी की गति ठीक है तो जीवन स्वस्थ, सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट रहेगा, और डाक्टर या वैद्य पहले नाडी की परीक्षा करते हैं। ठीक उसी प्रकार हमारे भारतीय समाज के व्यापक क्षेत्र में नारी का स्थान नाडी के समान है। जिस समाज की नारियों में नव जागृति हैं उनका जीवन धार्मिक शिक्षा में सम्पन्न है। एवं उनके आचार-विचार आदर्श हैं तो उस समाज में स्वर्ग का सौख्य उतर जायेगा! फिर समाज को किसी भी प्रकार का खतरा नहीं। समाज का धर्म एवं संस्कृति उन्हीं के हाथों में सुरक्षित है।

आज के युग में स्त्री समाज में शिक्षा का विकास तो हो रहा है, किन्तु पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से उनमें धर्म के प्रति विश्वास भी उठता जा रहा है। इस युग में धार्मिक शिक्षण की नितांत आवश्यकता है। जिससे उनमें धर्म के प्रति दृढ विश्वास पैदा हो और लज्जा, सादगी, सुशीलता, विनय, आज्ञा-पालन आदि सद्गुणों का विकास हो। धार्मिक शिक्षण के लिये "जैन धर्म शिक्षा विकास" की एक सुनिश्चित पद्धति होनी चाहिये।

महिलाओं के सामने जैन समाज के प्रचार करने का एक सर्वोच्च आदर्श जगमगा रहा है। नारी समाज के गौरव की चार-चांद लगाने वाली एक महान् नारी हुई है। इनका नाम था "भगवती मल्लि।' चौवीस तीर्थंकरो में इनका नाम १९ वां है। सम्पूर्ण विश्व में सर्वोत्कृष्ट पद है तीर्थंकर पद। इस महान् पद को प्राप्त करने में भी नारी का स्थान पीछे नहीं रहा है। भगवती मल्लि ने तीर्थंकरी की स्थापना की, धर्म चक्र का प्रवर्त्तन किया, और त्रिजगत् की वंद्य बनी।

नारी समाज के लिये यह क्या गौरव की बात नहीं? नारी विकास की उस चरम सीमा तक पहुँची है जहाँ शान्ति का अक्षय स्रोत है, ज्ञान का अनंत आलोक है, एवं अपूर्व आनन्द का असीम सुधा सरोवर है। इस आदर्श को अपने आगे रखकर आधुनिक महिला समाज को भी विकास के अनंत विकास के पथ की ओर कदम बढाना है।

जैन धर्म शिक्षा विकास के रचनात्मक कार्यक्रमों से महिला समाज की दीप शिखाएँ प्रज्वलित हो उठी तो भारत का घर २ धर्म के दिव्य प्रकाश से जगमगा उठेगा। और इसमें यदि सुशिक्षित महिलाएँ श्रम तथा बुद्धिदान दें तथा और भी महिलाएँ महती संख्या में तन-मन तथा धन से सहयोग दें। तो विश्वास है कि धर्म समाज की जडे मजबूत हो जावेगीं, एवं धर्म को विजय-विजयन्ती विश्व में फहरा सकेगी।

जैनधर्म शिक्षा विकास की योजना की रूपरेखा निम्न प्रकार हो सकती है। गांव २, नगर २ में श्रीमल्लि भगवती महिला-मण्डल की स्थापना हो। महिला समाज की यहशाखा स्वाध्याय संघ में भी सम्मलित हो सकती है। क्योंकि उसका उद्देश्य भी धर्म-शिक्षा विकास है एवं जैन धर्म प्रचार करना है।

इस संघ की सदस्या वनने के लिये कुछ सामान्य तथा विशिष्ट सामुदायिक कार्यक्रम एवं नियमों को पालना होगा।

१) प्रत्येक महीने में कम से कम दो या चार धर्म सभा होनी चाहिये। सभा सुविधानुसार दोनो चतुर्दशियों को एवं रविवार को हो। सभा में सामूहिक सामयिक एवं प्रार्थना हो। बाद में शिक्षित बहनोंके भाषण, धर्म संगीत, धर्म कथाएँ, शास्त्र वाचना या धर्मचर्चा आदि कार्यक्रम रक्खे जायें। प्रत्येक सदस्याका यथासम्भव सभा में आना आवश्यक रहेगा। सदस्या के नाम रजिस्टरों में दर्ज हो, आने पर उपस्थिति लगाये और बिना कारण नहीं आये तो दण्ड निर्द्धारित किया जाय। शिक्षित बहन अशिक्षित बहनों को शिक्षण दें या पुस्तकें पढकर सुना दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२) जिस बहन को पढना व लिखना अच्छी तरह आता हो तथा प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल, स्वाध्याय आदि का विशेषज्ञान हो उसे बडी सदस्या को सूचि में लिया जाय। उसी पर दूसरी बहनों को सिखाने का उत्तरदायित्व रहे।

३) शिक्षित बहन को प्रतिमास एक धर्म की पुस्तक पढनी चाहिये। एवं नयाशिक्षण लेते रहना चाहिये, भले ही १ भजन १ कथा या १ बोल नया सीखे पर सीखे अवश्य।

४) यदि गांव में संत-सतीजी म. विराजमान हों तो १ बार दर्शन अवश्य करना एंव यथासंभव बच्चों को भी साथ ले जाये।

५) अपने २ घर दिन में एक बार सुबह या संध्या को परिवार एंव बच्चों के साथ प्रार्थना अवश्य करना। बच्चों को नमस्कार मंत्र, २४ तीर्थंकरों के नाम, प्रार्थना और धार्मिक संगीत सिखाना। धर्मकथाएँ कहना। और बच्चों में ऐसी आदत डालनी चाहिये कि माता पिता को प्रणाम, गुरुदर्शन, एव प्रार्थना, माला फेरना नवकार मंत्र गिनने के बाद ही वे नाश्ता या भोजन करें।

६) अरिहन्त देव एवं निर्ग्रन्थ गुरु के सिवाय अन्य देव गुरु की वंदना, पूजा करना नहीं। और भी अन्य प्रकार के मिथ्यात्व का पोषण नहीं करे।

७) बारीक वस्त्र पहनकर बाहर जाना नहीं।

८) मृत्यु वालों के घर पर रात के समय व दिन में भी असमय रोने नहीं जाना। दिन में १ से ३ तक का निश्चित समय बांध-दिया जाय। बालवृद्ध की मृत्यु पर १ महीने से अधिक नहीं रोना और युवक मृत्यु पर भी ६ मास से अधिक नहीं रोना।

९) निन्दा नहीं करना, किसी पर कलंक न लगाना, किसी से झगडा नहीं करना, पुराने दबे क्लेशों को नहीं जगाना कारणवश झगडा हुवा तो उसी दिन क्षमायाचना करना नहीं तो पक्खी को तो अवश्य क्षमापना करना।

१०) दूसरे कारण से पैदा हुए अपने क्रोध में बेसुध हो, बच्चों को पीटना नहीं।

११) रेशम, चर्बी आदि महाहिंसा से बनेवस्त्र नहीं पहनना।

१२) चोरी नहीं करना, मादक नशीले पदार्थ काम में नहीं लेना, आत्महत्या न करना।

१३) स्वपति संतोष, व्रत रखना एवं पर्वतिथि आदि अन्य दिनों में सदाचार की वृद्धि करना।

१४) गन्देगीत नहीं गाना, भद्दे चित्र नहीं देखना।

१६) महिला समाज की शिक्षा के विकास के लिये यथाशक्ति मासिक चन्दा देना। कम से कम नियमित प्रतिमास एक रूपया अनिवार्य रूप से देना। इस चन्दे से असहाय विधवा तथा गरीब बच्चों की शिक्षा के लिये भी व्यवस्था हो।

शिक्षा विकास योजना के अनुसार प्रत्येक धर्म स्थान में लाइब्रेरी हो। जिसमें महिला योग्य निर्धारित साहित्य हो, जैसे श्री जवाहराचार्य का गद्य कथा साहित्य। जैसे-महासती चंदनबाला, राम बनवास, शीलभद्र चरित्र, पांडव, हरिचन्द्र तारामती चरित्र, तीर्थंकर चरित्र, महिला मणि रत्न माला के १६ सतियों के चरित्र अत्यन्त उपयोगी हैं। इसी प्रकार अन्य चौपाइयाँ संगीत, काव्य, शास्त्र, बोल संग्रह थोकडा विषय का विविध विषयक साहित्य हों। उनका नियमित रूप से एक या दो घण्टे अध्ययन होता रहे। कथाओं से शिक्षा तथा मनोरंजन दोनों होता रहे। इस पद्धति से महिला समाज में धर्म के प्रति आकर्षण पैदा होगा एवं जैन धर्म का शिक्षण स्थायी रूपसे फलता-फूलता रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीप जले दीवाली आई !

(रच.—श्री सरदारमलजी जैन, बी. काम., कलकत्ता)

दीप जले दीवाली आई !
किन्तु हृदय का तिमिर न भागा मानवने समता नहीं पाई ।।
मां कमला के प्रेम पुजारी, नये नये पाखंड रचाते,
आश्रित जन का खून चूसकर, मानवता पर मसि फैलाते ।
इन पाषाण उरों को देखो, अब तक कुछ भी दया न आई ।।
दीप जले दीवाली आई ।।

इधर छमा छम है घुंघरू की, उधर काल की गर्जन तर्जन,
इधर सुन्दरी सुरा झूमती, उधर मचा है दीना क्रन्दन,
इन्हीं मस्तियों में जाती है, श्रमिकों की सम्पूर्ण कमाई ।।
दीप जले दीवाली आई ।।

पैसे-पैसे की खातिर यहाँ, पिता-पुत्र लड-लड-मरते हैं,
स्वर्गिक गृह है कलह केन्द्र अब कुत्ते नित भोंका करते हैं ।
आत्मीय अब कौन किसी का ? द्वेष भावना जगमें छाई ।।
दीप जले दीवाली आई ।।

दीप मालिके ! तुम्हीं आज कुछ, इस दुनियाँ को पाठ पढाओ ।
उर-मन्दिर को आलोकित कर, मानव में मानवता लाओ ।
तभी मनोरथ सिद्ध हमारा हो दीवाली शुभ सुखदाई,
दीप जले दीवाली आई ।।

मूक इतिहास का एक मुखर पृष्ठ--

पतन से उत्थान की ओर—

रचनाकार-श्री पारसमल 'प्रसून' M. A. साहित्य रत्न, श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ (जोधपुर)

कलापूर्ण कमाल का नृत्यकरते १ सहसा युवा नटकी नजर पडी सामने के दुमंजिले मकान पर ।

क्याही दुर्लभ दृश्य था । एक नवयुवक साधु समग्र अलंकारों से सुसज्जित अनिंद्य सुंदरी षोडशी से भिक्षा ग्रहण कर रहे थे । संपूर्ण एकांत था । पर साधु की दृष्टि पात्रकी ओर ही थी । अहा ! कामिनी के मायावी आकर्षक जाल से कितने मुक्त । त्यागकी चरम सीमा ।

युवा नटकी भाव धारा पलटी । "और एक हूं मैं जो नट कुमारी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो अपने कुल की प्रतिष्ठा को धूल में मिला, ऐसा निकृष्ट धंधा करते इधर उधर डोलता फिरता हूँ । धिक्कार है मेरी इस काम वासना को !

सांसारिक प्रेम में पागल श्रेष्टि पुत्र "इलायची कुमार" को सही दिशा मिल गई ।

शानदार नृत्यकी उल्लासभरे वातावरण में मधुर समाप्ति । इनामों की बौछार । सम्राट् मुग्ध । नट बालिका का पिता प्रभावित । विवाह का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकृत ।

पर अब सब यह व्यर्थ था । यह आकर्षण अब इलायची कुमार को पथभ्रष्ट करने में अक्षम था ।
भोगी इलायची कुमार अब त्यागी थे । वे बढ चले-प्रेय से श्रेयकी ओर ।
अंधकार से प्रकाश की ओर ।

मरण से जीवन की ओर । • • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे इतिहास का एक रोमांचकारी पृष्ठ—

अबला नहीं सबला प्रत्युत प्रबला

—फूल सी कोमल पर वज्र से भी कठोर

रचनाकार—श्री पारसमल 'प्रसून' M. A. साहित्य रत्न, श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ (जोधपुर)

नियति का कितना क्रूर चक्र। कलकी महारानी चंपापति दधिवाहन की पट्टरानी को उसकी सुकुमार दुहिता के साथ एक ऊंट सवार लूटमें लूटकर विक्रयार्थ ले जा रहा है।

भयंकर मार्ग। विकट यात्रा। राज छूट गया। पति बिछुड गये। पर इतने से ही बस कहां?

अब तो धर्म व इज्जत पर संकट आगया था। महारानी के मादक रूप का घायल ऊंटपति रानी के प्रणय का भिक्षुक था। वह तो उसे अपनी वल्लभा बनायेगा ही। प्यारसे बने तो अच्छा नहीं तो जबरदस्ती ही। क्यों कि प्रेम के क्षेत्रमें हरकदम सही है।

रानी क्या करे? वहतो साधन से विपन्न थी। असहाया थी। एकाकी और बिल्लकुल निहत्थी। उसकी लड़की-कोमलांगी क्या कर सकती है?

पर रमणी तो सिंहनी थी। उसने जान गंवाना तो सीखा था पर आन गंवाना नहीं।

जब हर वजनदार युक्तियाँ भी ऊंट सवार के सामने निष्फल गईं तो उस वीरांगना ने क्या किया?

इतिहास बताता है इस कोमलांगी ने-मृगनयनी ने-गज गामिनी ने-अपनी जिव्हा हाथसे खींचकर बाहर तोड़कर फेंक दी थी उस कामांध के समक्ष और जान देने के इस रोमांचकारी सौदे को यह ग्राहक स्वीकार न कर सका था।

अब तो पापो-कामी-विलासी का दिल परिवर्तित होगया। उसने दुःख पश्चाताप व श्रद्धा से उस दिवंगत आत्मा को सादर नमन कर अपनी अच्छी बहिन से इस नालायक भाई को क्षमा करने की अनुनय भरी याचना की।

भला फिर धर्म के पथ पर सहर्ष बलि होने वाली इस अनोखी सती धारिणी की दुहिता आगे जाकर भगवान् महावीर की ३६००० साध्वियों की नेत्री चंदनबाला कैसे न बनती?

"हीरेकी खानसे तो हीराही निकलेगा।"

जैनागमों के पावन पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में सुअंकित महारानी धारिणी की यह-आन-मान शान से परिपूरित, वीरता एवं दर्प से युक्त शौर्यगाथा नारी जाति की कमनीय कीर्ति की अमर दीपशिखा है।

卐 अनुसन्धान करो 卐

तुम अपनी विशुद्ध एवं विवेकवती बुद्धिको परमात्माके चिन्तन से भरपूर कर लो और स्वयं ही अपने अन्तरमें स्थित परमात्माका साक्षात्कार करो। देखो, तुम मृत्युओंकी भी मृत्यु हो, तुम स्वयं ईश्वर हो। तुम इस प्रकार अनुसन्धान-चिन्तन करो कि "मैं ही सर्वाधिष्ठान ब्रह्म हूं। सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मैं ही हूं।" इस प्रकार तुम अपने आपको अपने वास्तविक एक-रस अनन्त अखण्ड स्वरूप में स्थित कर लो।

श्री बाबा शारदारामजी महाराज

संस्थापक—श्री परमानन्दसंदेश वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिला जगत

—० आज की नारी और उसकी समस्याएँ ०—

लेखिका—श्रीमती शान्तादेवी भानावत

जैन धर्म ने चार तीर्थों साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाकी स्थापना कर नर और नारी को समान अधिकारी बनाया है। वस्तुतः संसार रुपी सड़क पर दौडने वाले जीवन रथ के नर और नारी दो पहिये हैं। दोनों का अपना अलग अलग स्थान होते हुए भी समान मूल्य और महत्व है। किसी एक को घटा-बढा कर हम नहीं देख सकते हैं। एक पहिये (नारी) को किसी वाडे में बन्द कर हम दूसरे पहिये (नर) से यह आशा नहीं कर सकते कि वह संसार की परिक्रमा कर सकेगा। कहना तो यह होगा कि यह नारी-जो कि नाडी की तरह समाज और राष्ट्रका नियन्त्रण तथा निरीक्षण कर जीवन को स्वस्थ और सुखी बनाती है—का महत्व नर से कहीं अधिक है। राष्ट्र कवि श्री मैथिली शरण गुप्त ने इसी ओर संकेत करते हुए "द्वापर" में लिखा है।

"एक नहीं दो दो मात्राएँ, नारो नर से भारी"

लेकिन आज नारी के सामने कुछ इस प्रकार की समस्याएँ और कठिनाइयाँ हैं। जिनके कारण संविधान में दिये गये समान अधिकारों का वह उपयोग और उपभोग नहीं कर सकती है। उन्हीं मोटी मोटी समस्याओं का दिग्दर्शन संक्षेप में मैं इस लेख में करा रही हूँ।

नारी-शिक्षा—वैदिक काल में स्त्रियों को पढ़ने का पूरा अधिकार था। वे पतियों के संग यज्ञशाला में बैठ कर धर्म-चर्चा किया करती थीं लेकिन समय की गति के साथ उनका मान घटा और वे पैर की जूतियाँ कहलाने लगीं। महाकवि तुलसी ने

"ढोर गँवार, शूद्र पशु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी"

कह कर नारी जाति की उपेक्षा की। लेकिन आज कीं परिस्थितियाँ वदल गई हैं। आज की नारी जग चुकी है। वे अब पैर की जूती न रह कर के सिर की टोपी बन गई है। लेकिन नारी जाति के लिये शिक्षा की अनिवार्यता हमारे समाज में अब भी पूर्ण रूप से नहीं मानी गई है। यही कारण है कि जब कन्याओं का पाणिग्रहण किया जाता है। तब उन्हें वर का मोल करना पडता है। अगर लडकियाँ शिक्षिता हो जायँ तो वर-चयन की क्षमता उनमें बिना किसी क्रय विक्रय के अपने आप आ जायगी। शिक्षा का मतलब केवल किताबी ज्ञान से न होकर घरेलू ज्ञान से है। हमें यह न समझना चाहिये कि वह पढ लिख कर नौकरी ही करेगी। शिक्षा को ओर हमें बिना किसी झिझक के ध्यान देना चाहियें। आज की शिक्षा ने नारी को तितली और परी बना दिया है। एक बालिका का अपनी अध्यापिका के प्रति यह संकेत—

'एक बहनजी हमें पढ़ाती।
गोरी गोरी दुबली पतली।
रँग बिरँगी बन कर तितली।
यों इठलाती यो बल खाती।
ज्यों नाचा करती कठ पुतली।'

इसका प्रतीक है। अतः धार्मिक शिक्षा की ओर भी समुचित ध्यान दिया जाना चाहिये।

पर्दा-प्रथा—नारी के लिये पर्दा जेल खाने से, किसी प्रकार कम नहीं। पर्दे की चहार दिवारी में रह कर नारी की आत्मा घुल घुल कर मृत और मूर्छित हो जाती है। पर्दा भारतीय सभ्यता की देन न होकर मुस्लिम सभ्यता की देन है। हमारी बहनें अपने रिश्तेदारों से पर्दा निकाल कर अपरिचित व्यक्तियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(फेरी वाले गोटे किनारी वाले) से खुल २ कर बातें करने में अपना मान और मर्यादा समझती हैं। जो सुधारवादी बहनें घूंघट हटाती हैं उनकी निन्दा करने में दिन रात एक कर देती हैं। पर इससे सुधारवादी बहनों को निराश और हताश न होकर आशा और उत्साह के साथ अपनी माताओं को पर्दा की बुराइयों से परिचित कराना चाहिये और जो अविवाहित कन्याएँ हैं। उन्हें यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि वे कभी पर्दा न करेंगी।

रोने-पीटने की प्रथा—महिलाओं में यह प्रथा बहुत ज्यादा प्रचलित है। किसी के मरने पर छाती कूट-कूट कर हमारी ये माताएँ और बहनें धरती-आकाश एक कर देती हैं। और इसी में वे अपना धर्म समझती हैं। पर वस्तुतः आर्त्तध्यान और मोहनीय कर्म बाँधकर वे पाप की भागिनी बनती हैं। यह तो दुनियाँ का शाश्वत नियम है कि जो जन्म लेता है वह मरता भी है। इसी बात को संकेत कर कबीरदासजी ने कहा है। —

'माली आवत देखिके, कलियाँ करी पुकार,
फूलि फूलि चुन लिए, कलि हमारी बार।'

हमें यह सोचकर धीरज रखना चाहिए कि आत्मा तो अमर है। और यह पंचभूति शरीर जीर्ण शीर्ण कपड़ों की तरह बदलता हुआ नया आकार ग्रहण करता रहता है।

आभूषण प्रियता–सोने, चाँदी के जेवर पहनने में औरतें अपना अहोभाग्य समझती हैं। पर सच तो यह है कि पुरुषों ने स्त्री को अपनी दासी बनाने के लिए इन सोने-चाँदी की बेडियों से उसे नरक से लेकर शिखा तक अकड दिया है। सोना उसके सौभाग्य का चिह्न बन गया। पाँच सेर वजन को अपने गले में डालकर छाती पर लाद कर वह गजगामिनी अपने को सर्वगुण सम्पन्न साबित करने लगी। लेकिन हमें मालूम होना चाहिये कि येही भूषण भुजंग बनकर हमें डसते रहे और उसी वैभव और विलास के मदभरे विष को हम अब तक पीती रहीं। लेकिन अब समय आ गया है। इन आभूषणों को तोड फेंकने का।

शिशु के लालन-पालन की प्रक्रिया—नारी वस्तुतः गृह देवी है। वह युग पुरुषों की जननी है। नारी के लिए कहा गया है।

'नारी नारी क्या कहो, नारी नर की खान।
नारी ही के गर्भ से हुए वीर भगवान्॥

नारी भी जीवन की नशा में पड़े हुए मानव के लिए सुनहरा प्यार लेकर आती है। सब दोषों के बझनेपर ऊषा का श्रृंगार लेकर आती है। निराशा के भूल भूलैया में पडे हुए मानव के लिये आशा की पतवार लेकर आती है। लेकिन आज की नारी प्रबला न होकर अबला हो गई है। जिसके लिए राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्तजी को लिखना पडा।

'अबला जीवन हाय? तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

परन्तु आज की नारियों की आँखों में न तो पानी है और न आँचल में दूध। जो बालक भगवान की तरह भोला होता है उसे माताएँ ताड़ना देती हैं। डाकन और भूत की बातें कह कर डराती हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि मनोवैज्ञानिक ढंग से बच्चों का पालन-पोषण किया जाय। क्योंकि हम में ही वह शक्ति है जिसके बल पर हम गाँधी और नेहरू जैसे राष्ट्रप्रेमियों को महावीर और बद्ध जैसे धर्मवीरों को कृष्ण और प्रताप जैसे कर्मवीरों को पैदा कर सकती हैं। सचमुच नारीका व्यक्तित्व बहुमुखी है। उसमें मिनिस्टर की तरह स्फूर्ति है, माँ की तरह प्यार है, दासी की तरह सेवा भाव है। रँभा को तरह सौन्दर्य है। वह करुणा की मूर्त्ति और सरलता की तस्वीर है। यदि वह रानी लक्ष्मीबाई की तरह रण क्षेत्र में पाँच जन्य का शँखनाद कर सकती है तो मीराबाई की तरह मठस्थल में भक्ति रस की मन्दाकिनी भी बहा सकती है। यदि वह पद्मिनी की तरह अँगार का श्रृंगार कर सकती है तो पन्नों की तरह स्वामी भक्ति के लिये अपने लाल का बलिदान भी कर सकती है। आज के युग में नारी की आत्मा जाग उठी है। वह रूढि गत बन्धनों को तोड़ने के लिये छटपटा रही है। विजय लक्ष्मी पँडित ने विदेशों में जो आदर पाया और राजकुमारी अमृतकौर ने जो कार्य-कुशलता दिखाई है वह नारी जाति के लिये गौरव और गर्व की वस्तु हैं। अगर हमारी उपर्युक्त समस्याएँ हल हो जाती हैं तो हम अपनी वीर परम्परा को युग युग तक कायम रख सकेंगी इसमें कोई सन्देह नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्र के अंचल से

॥ श्री वर्द्धमानाय नमः ॥

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी, [अहमदनगर]

इस वर्ष बार्ड की उपाधि परीक्षाएँ दिनाङ्क ११-११-६४ से प्रारम्भ हो रही हैं। इन परीक्षाओं में निम्न स्थानों से पूज्य संत-सती वृन्द एवं इतर परीक्षार्थी प्रविष्ट हो रहे हैं।

महाराष्ट्र

१) कोट (मुम्बई)
२) कोपरगांव
३) काँदावाडी
४) गोंदिया
५) घाटकोपर
६) दादर
७) नन्दूरबार
८) परतुर
९) भुसावल
१०) मलाड
११) धुलिया
१२) विलेपारले
१३) वाघली
१४) अन्धेरी

कर्णाटक [म्हैसूर]

१५) कोप्पल

मध्यप्रदेश

१६) शाजापुर

राजस्थान

१७) उदयपुर
१८) भीलवाडा
१९) नांदेशमा
२०) जोधपुर
२१) जयपुर
२२) बीकानेर
२३) भोपालगढ
२४) चित्तौडगढ
२५) कुण्डेरा
२६) डबोक
२७) ब्यावर
२८) कोटडा

सौराष्ट्र

२९) राजकोट
३०) टंकारा
३१) भावनगर
३२) वडिया
३३) जूनागढ
३४) जामनगर
३५) दामनगर
३६) पालियाद
३७) वढवाणसीटी
३८) सुरेन्द्रनगर
३९) बोटाद
४०) अहमदाबाद
४१) पालनपुर
४२) खंभात

पंजाब

४३) रोहतक
४४) चारखीदादरी
४५) रोपड
४६) फरीदकोट
४७) मालेरकोटला

उत्तर प्रदेश

४८) आगरा
४९) मेरठ

इस प्रकार कुल ४९ स्थानों से २८२ परीक्षार्थी जिनमें ६९ पूज्य साधु-साध्वीजी म. और २१३ गृहस्थ सम्मिलित हो रहे हैं। इन परीक्षाओं के परिणाम ९ जनवरी १९६५ को घोषित होंगे।

परीक्षा बोर्ड की प्रथमा पर्यन्त प्रारम्भिक परीक्षाएँ १७-१-६५ से प्रारम्भ होनेवाली हैं उन परीक्षाओं के लिए बहुत से केन्द्रों से आवेदन पत्र बोर्ड-कार्यालय में पहुँच चुके हैं। जिन केन्द्रों से अभी तक नहीं पहुँचे हैं उनके लिए ३० नवम्बर १९६४ तक अवधि निर्धारित है तब तक अवश्य भेज देने का लक्ष रखें।

बदरीनारायण शुक्ल (परीक्षाधिकारी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

-: आजीवन सदस्य :-

१	के. चु. भटेवडा	राहू (पूना)	४३	भी. मा. कर्नावट	सिरसमार्ग	८५	चु. भ्र. प्रे. देसरडा	न्हावरा
२	ता. रां. मा. सुन्दराबाईजी	आष्टा	४४	बा. डा. बद्दानी	अमरावती	८६	कां. जा. नाहर	आलेगांव
३	इन्दरबाईजी	,,	४५	सु. भ्र. मो. मुथा	देवळाली	८७	प. ही. कटारिया	बाल्की
४	श्रीमती रा. डागा	भोपाल	४६	प. कि. छाजेड	म्हसे	८८	फू. बा. बाफना	राहुरी
५	जी. ते. ललवानी	श्रीरामपुर	४७	मू. रि. संकलेचा	मजलेगांव	८९	मा. गं. चोरडिया	बोरी
६	मे. ध. जैन	मगरदा	४८	हां. भ्र. च. शिंगी	अहमदनगर	९०	पु. शो. चोरडिया	,,
७	कि. चौधरी	शुजालपुर	४९	चं. ध. वैद	चांदा	९१	रा. ल. भंडारी	सिरसाला
८	गें. इ. जैन ,,	,,	५०	सु. सु. कुचेरिया	पाथर्डी	९२	ध. द. संचेती	पूना
९	कं. दी. जैन ,,	,,	५१	वि. शा. संकलेचा	अमरावती	९३	ज. चु. सांड	रहाता
१०	सू. न. जैन ,,	,,	५२	न. मु. बोरा	पीपला	९४	हू. न. गांधी	श्रीरामपुर
११	रा. चौ को ,,	,,	५३	चाँ. मू. चंगेडिया	बरोरा	९५	झुं. भ्र. ही. भलगट	गुलबर्गा
१२	का. ही. जैन ,,	,,	५४	एक गुप्तदानी सद्‌गृहस्थ	अ.नगर	९६	ब. चं. गुगले	मलाड
१३	ज. खो. डोशी	इन्दौर	५५	भी. के. ललवानी	मनमाड	९७	र. ही. लूंकड	श्रीरामपुर
१४	इ. सू. चोपडा	भामाठाण	५६	ब. मा. गांधी	पिंपलगाव	९८	कु. न. गांधी	,,
१५	मे. टाटिया	सारंगपुर	५७	प्रे. भ्र. ज. बोरा	,,	९९	सु. लुणावत	धामणगांव
१६	प्रे. जी. वेदमुथा	वर्धा	५८	मो. चु. मुथा	वांबोरी	१००	शांतिलालजी चौधरी	राजगढ
१७	दे. भि. कांकरिया	राहू	५९	सौ. रू. सू भ्र. झुंबरलालजी	,,	१०१	न. शा. भाई	मलकापुर
१८	श्री. न. पितलिया	सीहोर	६०	मू. द. चंगेडिया	सोनई	१०२	ही. ल. मुथा	लक्ष्मेश्वर
१९	के. घी. बाफणा	नागपुर	६१	पू. मो. नाहर	घोडेगांव	१०३	सि. र. भुरा	सिवनी
२०	क. ल. रांका	शुजालपुर	६२	ने. ब भटेवडा	वांसदा	१०४	च हि. कुकुलोल	कोल्हार
२१	स. व. जैन	शाजापुर	६३	ब. च. सिंगी	देवळाली	१०५	वि. पु. राकेचा	,,
२२	सु. जी. सिंदरसीवाला	,,	६४	श्री. रा. मुथा	,,	१०६	ना. भ्र. रा. गुगले	,,
२३	वैं. र. स. मुणोत	वांबोरी	६५	झु. पू. बाफना	श्रीरामपुर	१०७	स. म. रांका	,,
२४	भं. के. जोगड	बोदवड	६६	ने. गु. मुथा	बेलापुर	१०८	फ. ज्. गुगलिया	,,
२५	झु. ध. मुथा	अहमदनगर	६७	चु. पू. तातेड	,,	१०९	मो. झुं. रांका	चिंचोली
२६	अ. मा. गुगले	पाथर्डी	६८	मो. र. हिरन	,,	११०	प. का. रांका	,,
२७	ना. भ्र. र. भंडारी	पीपला	६९	के. मां. संचेती	चिंचवड	१११	हु. च. समदडिया	अस्तगांव
२८	सौ. गु. भ्र. सि. बोरा	अ.नगर	७०	ह. सो. मुनोत	निंबारी	११२	भा. झुं. गुगले	पाथर्डी
२९	ब. झुं. कोठारी	,,	७१	गं. मो. कोठारी	पूना	११३	उ. ह. कातरेला	अमरावती
३०	ला. पा. मा. कोंडाबाईजी	पाथर्डी	७२	क. के. कांकलिया	पूना	११४	कां. मा. गांधी	मुंबई
३१	सौ. च. मो. लुणिया	जंजीरा	७३	मो. ल. खिवसरा	,,	११५	जे. मा. कटारिया	खरवंडी
३२	मि. रा. भटेवडा	केडगांव	७४	र. मा. ओस्तवाल	सांगली	११६	जे. धों. कटारिया	,,
३३	फ. मु. शिंगी	नेवासा	७५	छो ब. गुगळे	वांबोरी	११७	ह. त. गांधी	वाम्बोरी
३४	भा. खु. गांधी	आश्वी	७६	इं. गं. कोठारी	,,	११८	मो. द. डांगी	अ. नगर
३५	ना. क. छाजेड	चकलाआंबा	७७	नें. झुं. सुराणा	राहुरी	११९	जी. मे. बोरा	वाम्बोरी
३६	उ. बा. देसरडा वकील	चाळीसगांव	७८	चां. मो. भंडारी	घोडनदी	१२०	उ. बा. धाडीवाल	संगमनेर
३७	भ. झुं. गुगळे	करंजी	७९	धू. भि. फुलफगर	घोडनदी	१२१	मो. ला. मुणोत	भिंगार
३८	चां. भ. मुणोत	वांबोरी	८०	चं. शो. गादिया	,,	१२२	भे. दी. गांधी	लोणावला
३९	कि. बी. पटवा	पाथर्डी	८१	चां. सु. कोठारी	बेलापुर	१२३	ज. सु. गुजराथी हलवाई	मालेगांव
४०	छो. ने गुगळे	लोहसर	८२	रा. पो. गांधी	रस्तापुर	१२४	मो. ज. ओस्तवाल	वाम्बोरी
४१	ही. भ्र. न. सुरपुरिया	पूना	८३	जे. शां. संघवी	उत्राण	१२५	ने. घ. कटारिया	खरवंडी
४२	रा. भ्र. म. कोठारी	सतारा	८४	भू. रा. कोठारी	केडगांव	१२६	खु. मि. मुणोत	करंजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२७	श्री. बं. ने. पारख	संगमनेर
१२८	,, ता. रा. चोरडियाम्हा.	पिपलगाव
१२९	,, पू. कां. भंडारी	कडा
१३०	,, चु. गु. मुथा	घाटसिरस
१३१	,, गीगीबाई फिरोदिया	अ. नगर
१३२	,, न. धो. कटारिया	लोणी
१३३	,, ह. अ. चोरडिया	अकोलनेर
१३४	,, सौ. रु. झुं. कटारिया	चांदा
१३५	,, पु. प. मुथा	घाटसिरस
१३६	,, सु. भ्र. ता. डोशी	अ. नगर
१३७	,, मा. ध. बोथरा	खरवंडी
१३८	,, स. मो. लुणावत	जालना
१३९	,, पु मा. कटारिया	इचलँकरंजी
१४०	,, ही. रा. भटेवडा	पूना
१४१	,, ही. क. खाटेड	पूना
१४२	सौ. शांताबाई मो. नाहर	पूना
१४३	श्री. रा. शो. टाटिया	पूना
१४४	,, फू. तु. माल	खडकी
१४५	,, मा. रा. बाफना	वडगांव
१४६	,, ध. ही. बाफना	वडगांव
१४७	,, ह. रा. बाफना	वडगांव
१४८	श्री. आ. स. चोरडिया	खेड
१४९	,, दी. ध. चोरडिया	पिपळवंडी
१५०	,, रा. ला. चोरडिया	बोरी बुद्रुक
१५१	,, भा. कुं. गांधी	संगमनेर
१५२	,, चू. र. भंडारी	अश्वी
१५३	,, द. रा. गांधी	प्रवरासंगम
१५४	,, ग. न. चोपडा	खांबा
१५५	,, शो. च. भटेवडा	राजुरी
१५६	,, मि. मो. कोठारी	अहमदनगर
१५७	,, फ. आ. फिरोदिया	साकूर
१५८	,, जा. मि. भडारी	मंचर
१५९	,, फू. र. कटारिया	संगमनेर
१६०	,, शां प्रे. कटारिया	अहमदनगर
१६१	" उ. श. चोपडा	साकूर
१६२	" च. लू. हिरण	साकरवाडी
१६३	" बं. फ. बाफना	साकूर
१६४	" के. बं. कटारिया	अ. नगर
१६५	,, क. बु. फिरोदिया	साकूर
१६६	,, धा. जे. शाह	यवतमाल
१६७	,, ही. जे. चोरडिया	पूना
१६८	,, ने. चां. शिंगी	घोरपडी
१६९	श्री. रू. मा. नाहर	रांजणगांव
१७०	,, शं. भा. दूगड	अमलनेर
१७१	,, कोट व. स्था. संघ	मुंबई
१७२	,, मोहनलालजी कीमती	इन्दौर
१७३	,, भा. छ. तुरखिया	इन्दौर
१७४	,, भं. शा. वाकड	इन्दौर
१७५	,, शि. जो. सर्राफ	देवास
१७६	,, र. मु. बजाज	,,
१७७	,, इ. सांड	बडावदा
१७८	सौ. मां. लसोड	प्रतापगढ
१७९	श्री. वि. ल. गेलडा	बोदवड
१८०	,, स्वा. नै. भटेवडा	चाकण
१८१	,, व. स्था. श्रा. संघ	बदनोर
१८२	,, कि. मि. भलगट	भंडारा
१८३	,, कि. झु. भलगट	,,
१८४	,, कि. जं. भलगट	,,
१८५	,, ह. मि. बाफना	पांडुरणा
१८६	,, अ. मो. डांगी	भीलवाडा
१८७	,, भी. क. संचेती	नांदूरा
१८८	,, मो. क. झामड	पीपलगांवराजा
१८९	,, ज. खो. डोशी	इन्दौर
१९०	,, नेमीनाथ जैन	देवास
१९१	, क. झु गांधी	अश्वी
१९२	,, द. ओं रांका	सैलाना
१९३	,, हु. ब. दसोरिया	प्रतापगढ
१९४	,, पा. वि. ढावरिया	अजमेर
१९५	,, रा. पू बूरड	शिराला
१९६	,, हं. नाहर	अजमेर
१९७	,, ने. शा. हरकावत	अजमेर
१९८	,, मां. भँ. बोरदिया	गुलाबपुरा
१९९	,, ज. खो. डोगी	अमरावती
२००	,, गुप्तदानी सद्गृहस्थ	
२०१	,, बैजनाथजी जैन	जयपुर
२०२	,, क. र लोढा	दिल्ली
२०३	,, मदनलालजी मुणोत	कोटा
२०४	,, मा मो. विनायकया	मोहाडी
२०५	,, सं. मु. भांडावत	जोधपुर
२०६	,, ध. चु. जैन	बोदवड
२०७	,, मा. मं. रांका	पारसिवनी
२०८	,, देवीसिहजी मुणोत	बुलढाणा

To

श्रीमान् सम्पादक महोदय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मुकाम हरिद्वार

पोस्ट हरिद्वार

जिला सहारनपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः
ॐ अर्हम्

सुधर्मा

पुस्तकालय गुरुकुल काँगड़ी

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी की मुख पत्रिका

22.10.64

वर्ष ६) १५ अक्टूबर १९६४ (अंक ३

★ इस अंक में ★

१ सुधर्मा–सुवचन–सुधा	पं. श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल	१
२ जिनवाणी (कविता)	....	४
३ ईश्वर और उसकी भक्ति	....	५
४ आचार्य श्री के गुण गान	मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी म. "कमल"	६
५ उन्नति और अवनति का रहस्य	उपाध्याय कविवर्य श्री अमरमुनि जी म.	७
६ धर्म की आवश्यकता क्यों ?	श्री दौलतरामजी मिश्र	१२
७ महापुरुष के तीन रूप	डॉ इन्द्रचन्दजी शास्त्री M.A.P.H.D	१४
८ पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म. कृत–दशहरे पर्व का विराट् आध्यात्मिक सांग रूपक	डॉ. नरेन्द्रकुमारजी भानावत M.A.P.H.D साहित्य रत्न	१६
९ सुख का स्वरूप	श्री श्रीप्रकाशजी दूबे M.A.	२२
१० श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की कार्यकारिणी समिति बैठक का विवरण	बोर्ड–मंत्री	२५
११ उपाधि परीक्षाओं की समय सारिणी	परीक्षाधिकारी श्री ति. रत्न स्था. जैन धा. परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी	२८

सम्पादक

पं. बदरीनारायण शुक्ल ❀ **पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल** ❀ **डॉ. नरेन्द्रकुमार भानावत**

जैन सिद्धान्ताचार्य, सर्वदर्शनशास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम्. ए. पी. एच्. डी. 'साहित्यरत्न'

卐 प्रबन्ध सम्पादक – पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी 卐

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवर्ण नामावली

सदुपदेशक–परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज

संस्थापक–दानवीर शाह केशवजी जवेरचन्द, जामनगरवाले, जालना

आधारस्तम्भ

१ श्री. चन्द्रभानजी रूपचंदजी डाकलिया, श्रीरामपुर (नगर)
२ ,, केशरचंदजी कचरदासजी बोरा आश्वी ,,
३ ,, सूरजमलजी कस्तूरचन्दजी गांधी अहमदनगर
४ स्व. माणकचंदजी किसनदासजी मुथा अहमदनगर
५ श्री. रा. ब कुन्दनमलजी लालचन्दजी कोठारी ब्यावर

संरक्षक

१ श्री. तिलोकचंदजी खूबचंदजी गुंदेचा चांदा (नगर)
२ ,, फकीरचंदजी उत्तमचंदजी गुगले चिचोंडी शिराळ ,,
३ ,, माणकचंदजी उत्तमचंदजी गुगले पाथर्डी ,,
४ श्रीमती शक्करबाई रतनचंदजी सुराणा द्रुग (मध्यप्रदेश)
५ श्री. पन्नालालजी गुलराजजी गांधी मावावाले पूना
६ स्व. श्री. पन्नालालजी गुगले पाथर्डी के स्मारक
७ श्री. मगनीरामजी फकीरचंदजी दुधेडिया श्रीरामपुर
८ सौ. धोंडाबाई भ्र. उत्तमचंदजी संचेती पूना
९ श्री, कुन्दनमलजी कस्तूरचंदजी बोरा ,,
१० नवलमलजी सरदारमलजी पुंगलिया नागपुर
११ भिकमदास पोखरणा चै. ट्रस्ट पूना
१२ श्री. उदयरामजी हरकचन्दजी रैदासणी बीबी

सहायक सदस्य

१ श्री. उत्तमचंदजी कचरदासजी भटेवड़ा राहू (पूना)
२ ,, बंशीलालजी अमोलकचंदजी भटेवड़ा ,, ,,
३ ,, माणकचंदजी भीवराजजी भटेवड़ा ,, ,,
४ सौ. श्रीकुंवरबाई भ्र. मूलचंदजी भटेवड़ा ,, ,,
५ श्री. प्रतापमलजी फूलचंदजी बनवट आष्टा
६ सौ. उमरावबाई भ्र. हस्तमलजी जैन शाजापुर
७ श्री. केशरीमलजी बापूलालजी जैन शुजालपुर
८ ,, रंभाबाई भ्र. गणपतसिंहजी जैन ,,
९ सौ. तेजकुंवरबाई धर्मपत्नी डालचंदजी चौधरी ,,
१० श्री. मोजीलालजी भीमसिंहजी जैन ,,
११ ,, बीजराजजी जुगराजजी संचेती मलकापुर
१२ ,, तेजमलजी भीवराजजी संचेती ,,
१३ श्री जवरीबाई भ्र. धूलजीभाई शाजापुर
१४ श्री. हिंमतलालजी सा. जैन शाजापुर
१५ ,, कनकमलजी चुन्नीलालजी गांधी चांदा
१६ ,, नारायणदासजी मोहनलालजी मंडलेचा येवला
१७ ,, भागूबाई भ्र. चंदनमलजी गादिया बेलापुर
१८ ,, मगनलाल सुंदरजी शाह अमरावती
१९ ,, हेमकुंवरबाई भ्र. कालीदासजी शाह सातारा
२० ,, मयाशंकर चत्रभुज शाह अमरावती
२१ ,, शान्तिलाल पोपटलाल काठेड अहमदनगर
२२ श्री. कचरदास मोहनलाल लोढा अहमदनगर
२३ ,, गेंदमल राजमल जैन शुजालपुर
२४ ,, लाभचन्दजी गुलाबचन्दजी चोरडिया हिंगणघाट
२५ श्री. कुंदनमलजी लुंकड की सुपुत्री सायरबाईजी बेंगलोर
२६ ,, सिमरतमलजी चुनीलालजी मुथा वांबोरी
२७ ,, धनराजजी मोतीलालजी कांकरिया पूना
२८ ,, खुशालचंद संपतलाल भूरट घोड़नदी
२९ ,, मोतीलालजी मोहनलालजी सिंगी पूना
३० ,, मिश्रीलालजी हस्तीमलजी दुगड घोड़नदी
३१ ,, कचरदासजी प्रकाशमलजी भलगट अहमदनगर
३२ ,, सुखरामजी प्रेमराजजी मुथा बेलापुर
३३ ,, सौ. शांताबाई बाबूलालजी रैदासनी नशीराबाद
३४ ,, ताराचंदजी भीवराजजी भटेवडा राहू (पूना)
३५ ,, तुलसाबाईजी कोचर हिंगणघाट
३६ ,, जसराज कालाभाई लाठिया मुर्तिजापुर
३७ , बापूलाल प्रेमचंद संघवी अकोला
३८ ,, शाह नागजी पानाचंद बारवडा रायपुर
३९ ,, रूपचंदजी गोकुलचंदजी कोठारी कोपरगांव
४० ,, चन्दनमल नन्दरामजी गांधी श्रीरामपुर
४१ ,, दलीचन्द गुलाबचन्दजी पारख नागपुर
४२ ,, उत्तमचन्दजी चुनीलालजी मुथा वाम्बोरी
४३ ,, कचरदास रूपचंदजी कर्नावट इचलकरंजी
४४ ,, हंसराजजी गुलाबचंदजी लुणावत लोणावला
४५ ,, गेंदालालजी मोतीलालजी जैन ट्रस्ट इन्दौर
४६ ,, राजमल नन्दलाल मेहता चै. ट्रस्ट भुसावल
४७ सौ. सुगनबाई चांदमल जैन देवास
४८ श्री कालूलाल पूरालाल जैन आगर
४९ श्री हरिश्चन्द्रजी पूनमचन्दजी बडेर, जयपुर

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के लिए

प्रकाशक व मुद्रक पं० बदरीनारायण द्वारकाप्रसाद शुक्ल

मुद्रण व प्रसिद्धिस्थल श्री सुधर्मा मुद्रणालय ८३२ जूना कापड बाजार पाथर्डी, जि० (अहमदनगर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की ज्योति जगाने हेतु विविध निबन्ध–प्रबन्ध माला स्वरूप धार्मिक आध्यात्मिक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक **मासिक पत्रिका।**

ॐ अर्हन्
सुधर्मा

मूल्य
वार्षिक ६-००
१ अंकका ०-५०

प्रत्येक १५ तारीख को प्रकाशित होगी।

वर्ष ६) १५ अक्टूबर १९६४ (अंक ३

सुधर्मा–सुवचन–सुधा

मूल—जे केइ सरीरे सत्ता, वण्णे रूवे य सव्वसो।
मणसा काय वक्केणं, सव्वे ते दुक्खसंभवा ॥११॥

छाया——ये केचित् शरीरे सक्ताः, वर्णे रूपे च सर्वशः।
मनसा कायवाक्याभ्याम्, सर्वे ते दुःखसम्भवाः ॥११॥

शब्दार्थ-जो कोई प्राणी मन, वचन और काय से शरीर में आसक्त हैं तथा वर्ण, और रूप में पूर्ण रूपेण आसक्त हैं, वे दुःख के भाजन होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं पं. रत्न श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल कृत भाष्य—

भाष्य—ज्ञानैकान्तवादी, चरित्र से विमुख होकर क्या फल पाते हैं, यह इस गाथा में प्ररूपण किया गया है।

जो शरीर में तथा रूप आदि में आसक्त होते हैं एवं जिन्हें विषय भोगों में अत्यन्त ममता है, वे वहिरात्मा जीव हैं। उन्हें आत्मा का अनुभव नहीं है अतएव आत्मिक सुख के अपूर्व स्वाद से अनभिज्ञ हैं। वे इन्द्रिय-सुखों के कामी बनकर इन्द्रियों से प्रेरित होते हैं—इन्द्रियों के क्रीत दास बन जाते हैं। इन्द्रियाँ उसके अन्तःकरण में नाना प्रकार की कामनाएँ जागृत कर देती हैं और वह कामनाओं की पूर्ति करने में ही अहर्निश उद्यत रहता है। कामनाओं की पूर्त्ति करने के साधन रूप धन कमाने की प्रबल लोलुपता से प्रेरित हो कर वह पुरुष घृणित और निन्दनीय कार्य करने से भी नहीं डरता है। वह धनोपार्जन के लिए भोले और गरीबों को चूसता है, नीति-अनीति के विचार को ताक पर रख देता है। अर्थ के अतिरिक्त और सब उसके लिए अनर्थ बन जाता है।

इन्द्रिय लोलुप पुरुष विवेक शून्य होकर भक्ष्य-अभक्ष्य का भान भूल जाता है, अपनी जाति और कुल की प्रतिष्ठा को कलंकित करते हुए संकोच नहीं करता। उस का चित्त सदा चंचल, निर्बल और उद्विग्न रहता है। वह इन्द्रियों की प्यास बुझाने के लिए ज्यों-ज्यों प्रयत्न करके भोगोपभोग की सामग्री संचित करता है त्यों त्यों इन्द्रियों की प्यास बढती जाती है। ज्यों-ज्यों व्याकुलता बढती जाती है त्यों-त्यों उसका आर्तध्यान बढता जाता है। और ज्यों-ज्यों आर्तध्यान बढता जाता है त्यों-त्यों पाप कर्मों का बंध बढता जाता है। इस प्रकार इन्द्रिय-लोलुप मनुष्य अन्त में भीषण व्यथाएँ सहन करता है।

शरीर पर ममता होने से दृष्टि बहिर्मुख हो जाती हैं। बहिर्मुख व्यक्ति आत्मा के अनन्त सौन्दर्य को दृष्टिगोचर करने में अन्धा हो जाता हैं। वह आत्मा के सद्गुण रूपी सुरभि-समन्वित प्रसूनों को नहीं सूँघ सकता। निर्मल अन्तःकरण से उद्भूत होनेवाले अन्तर्नाद को वह नहीं सुन सकता। वह शरीर की बनावट में ही जीवन की कृतार्थता मानता हैं। शरीर को "अपना" समझकर उसकी सेवा शुश्रूषा करता है वह शरीर के असली अपावन रूप नहीं देखता। वह आत्मा और शरीर का पार्थक्य नहीं मानता। आत्मा चेतनमय है, शरीर जड है, आत्मा अमर तत्त्व है और शरीर विनश्वर पुद्गल की पर्याय है, यह भेद-ज्ञान उसके अन्तर में परिस्फुरित नहीं होता इसलिए वह शरीर के महत्तम उद्देश्य का परित्याग कर देता है। बहिरात्मा जीव की स्थित बडी दयनीय है।

अन्तरात्मा शरीर को आत्महित-साधन का निमित्त मानकर उसका पोषण करते हैं। वे उस पर अणुमात्र भी आसक्ति नहीं रखते। शरीर पर मोह रखने वाले का मोह क्रमशः विस्तृत हो जाता है, क्योंकि शरीर का मोही शरीर को साताकारी पुद्गलों पर राग और असाताकारी पुद्गलों पर द्वेष भी करने लगता है। तदनन्तर उन पुद्गलों की प्राप्ति में जिसे वह बाधक समझता हैं उससे भी द्वेष करने लगता है। इस प्रकार शरीर-मोह की परम्परा क्रमशः परिवर्धित होती जाती हैं और उसका कहीं अन्त नहीं प्रतीत होता। अतएव अन्तरात्मा पुरुष शारीरिक मोह को हृदय में अवकाश ही नहीं देते। वह सोचता है कि—मोह के फन्दे से सदा बचते रहना चाहिए। मोह ही आत्मा के शत्रुओं का सेनापति है। इसके अधीन होकर आत्मा अपनी ज्ञान-आनन्दमय कोष को लुटा रहा है। जो इसके कैद से मुक्त हो जाता है वह चिदानन्द का पात्र परम वीतरागी, परम अविनाशी, सर्वज्ञ, सिद्ध, बुद्ध, शुद्ध बन जाता है। भला आत्मा और शरीर जैसे विपरीत गुण वाले पदार्थों का परस्पर क्या संबंध ! मोह और आत्मा की जैसी मैत्री ? एक आकुलता उत्पन्न करने वाला और आत्मा निराकुलतामय है मोह दुःख रूप है, आत्मा सुखमयी है। आत्मा अज्ञान के कारण ही मोह के चक्कर में पडा है जब शरीर और आत्मा निर्मल दृष्टि करता है और विरक्त एवं अनासक्ति के तीक्ष्ण शस्त्र से, आत्मिक अनुभूति के पराक्रम का अवलम्बन करके मोह आदि शत्रुओं को पल भर में पराजित कर देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोह ही वह घोर शत्रु जो आत्मा को अपने अनन्त सुख का भान नहीं होने देता और सुख के लिए क्षुद्र, विनश्वर, पापजनक भोगों का आश्रय लेने के लिए प्रेरित होता है। आत्मा का स्वभाव ही अनन्त आनन्दमय है। वह अनंत काल से और परिणाम से परिमित नहीं है। उसके भोगने के लिए पापाचार नहीं करना पडता। वह तो आत्मा को आत्मा के द्वारा आत्मा में स्थिर करने से प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार जो अपना है। अपने समीप है, उसे प्राप्त करनेके लिए इन्द्रियों की गुलामी, जगत् की गुलामी और भोगोपभोगों की अभ्यर्थना करने की क्या आवश्यकता है ? फिर भी मोह के प्रभाव से मूढ बने हुए मनुष्य इस तथ्य को नहीं समझते। वे आत्मा के भीतर प्रवेश नहीं करते। वे इन्द्रियजन्य, अतृप्तिकारक, तृष्णावर्धक, पराश्रित, विनाशशील, शान्त, दुःखों से व्याप्त और परमित सुख के लिए निरन्तर लालायित रहते हैं।

बाह्य पदार्थ वास्तव में न सुखदाता है, न दुःख दाता है, न बंध का कारण है, न मुक्ति का कारण है। आत्मा के राग भाव-मोह रूप परिणाम ही दुःखदायक है और वीतराग भाव अर्थात् शरीर आदि के समस्त पर पदार्थों के प्रति अनासक्ति रूप परिणत ही सुख का कारण है। जिसे धन-धान्य, वैभव, आदि प्राप्त नहीं है, वह भी यदि उनमें मूर्छा-ममता आसक्ति रखता है तो उसे अवश्य बंध होता है। अतएव बाह्य पदार्थों की अपेक्षा आत्मा की राग-द्वेष परिणत ही अधिक अनर्थकारी होती है। अतएव सूत्रकार ने यहाँ शरीर संबंधी तथा इन्द्रिय-विषय संबन्धी आसक्ति को दुःख जनक बतलाया है।

सूत्रकार ने शरीर संबंधी तथा वर्ण और रूप सबंधी आसक्ति को यहाँ दुःख का कारण कहा है सो इस से यह नहीं समझना चाहिए कि अन्य धन जन आदि के प्रति होने वाली अथवा स्पर्श आदि विषयों में होने वाली आसक्ति दुःख का कारण नहीं है। जैसे 'साँपनाथ वैसे नागनाथ' की कहावत के अनुसार पर-पदार्थों की सभी प्रकार की आसक्ति एकान्त दुःखका ही कारण है। अतएव उपलक्षण सेसभी आसक्तियों का ग्रहण करना चाहिए।

वर्ण और रूप सामान्य रूप से एकार्थक से प्रतीत होते हैं, किन्तु सूत्रकार ने दोनों का एकत्र प्रयोग किया है, अतएव रूप का तात्पर्य यहाँ सुन्दरता समझना चाहिए। वर्ण अर्थात् रंग और सौन्दर्य में भेद प्रसिद्ध है। सुन्दरता का किसी वर्ण विशे । में संबन्ध नहीं है। कोई भी वर्ण हो, जो जिसे रुचिकर है वह उसे प्रिय लगता है। सौन्दर्य आकृति आदि की भी अपेक्षा रखता है अतएव दोनों की भिन्नार्थकता सिद्ध है।

'मनसा कायवक्केण' कहने का प्रयोजन यह है कि जो मनुष्य केवल मन से आसक्त होते हैं उन्हें भी दुःख भोगना पडता है, तो जिनका सम्पूर्ण योग सर्वशः अर्थात् पूर्ण रूप से बाह्य पदार्थों में आसक्त है उनकी कितनी दुर्गति होगी ! उन्हें तो अत्यंत दुःख का पात्र बनना पड़ेगा। वे घोर दुःख से बच नहीं सकते।

–० हार्दिक अभिनन्दन !! ०–

सुधर्मा के सम्पादक मण्डल में डॉ. नरेन्द्रकुमारजी भानावत *M. A. P. H. D.* 'साहित्य रत्न' हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ने अपनी स्वीकृति प्रदान की है। जिससे हार्दिक प्रसन्नता है। भानावतजी सुयोग्य विद्वान् लेखक हैं इनकी विचारों से "सुधर्मा" के पाठक अपनी ज्ञान तृप्तिकर पत्रिका को लोकप्रिय बनाने में सहायक होंगे इस शुभकामना के साथ भानावतजी के शुभागमन पर 'सुधर्मा परिवार' की तरफ से हार्दिक स्वागत एवं अभिनंदन है।

पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी (प्रबन्ध–सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन वाणी

तीर्थङ्कर की सुता दुलारी,
जग-जीवों की माता प्यारी,
वसुधा की संतत हितकारी,
उपकृत हैं तुझसे जगभारी,
विहरी और सदा विहरे तूं हे माँ ! देश-विदेश ॥१॥

जननी तू है विश्वतारिणी,
कर्म-कोष अघदल-संहिरणी,
जन्म-मरण सन्ताप हारिणी,
भव्य-जीव-मुनि मन विहारिणी,
कर दे नष्ट जगज्जीवों के करुणामयि ! सब क्लेश ॥२॥

धन-वैभव की हृदय हीनता,
भोगों की आत्मिक मलीनता,
आशा की दयनीय दीनता,
सुख-दुःख की स्थिरता विहीनता,
समझा कर कर दे तूं जग को माता ! मोह विमुक्त ॥३॥

उषा काल के खिले सुमन पर,
जल तरंग पर किशलय गण पर,
बृहत् गगन पर तारा गण पर,
तम पर द्युति पर त्रिविधि पवन पर,
दर्शन ज्ञान चरित्र लिखे हों माँ ! सम्यक् संयुक्त ॥४॥

सरिता में सरवर सागर में,
गिरि गह्वर में नगर-नगर में,
डगर-डगर में वसुधा भर में,
जल-चल में अनंत अम्बर में,
एक बार हो उठे पुनः माँ ! तेरा ही जय घोष ॥५॥

स्वार्थों पर समता जय पावे,
मिथ्या की माँ मारी जावे,
सुख की घटा घिरे घहरावे,
माँ ! कषायदल पीठ दिखावे,
दोष दलनि ! प्राणी समूह को कर दे अब निर्दोष ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर और उसकी भक्ति

'संकलित'

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

अध्यापक—नन्दकिशोर ! तेरे घुटने में यह क्या लगा है ?

नन्द—अभी पाठशाला की ओर दौडा आ रहा था, रास्ते मे पत्थर की ठोकर लग जाने से गिर पडा। इसी से घुटने छिल गए।

सुरेश—गुरूजी ! यह हम लोगों से बहुत लडता-झगडता है। जान पड़ता है कि परमात्मा ने इसे दंड दिया है।

शंकर—इसने कल मुझे गालियाँ दी थी। ईश्वर घट-घट व्यापी है वह जैसे को तैसा दंड देता है।

वीर सेवक—गुरुजी ! माँ कहती थी कि संसारी जीवों को जो सुख-दुःख होता है, वह कर्म के निमित्त से होता है और सुरेश कहता है कि परमात्मा दंड देता है। अनुग्रह करके बतलाइए कि दंड कौन देता है ?

गुरूजी—मेरे प्यारे विद्यार्थियों। तुमलोग यह जानते हो कि परमात्मा में न राग होता है, न द्वेष होता है, न इच्छा होती है। उसके शरीर भी नही होता। तुम्हें यह भी मालूम है कि वह कृत्य और स्वाधीन है।

सुरेश—जी हाँ, यह बात तो आप ने एक दिन बतलाई थी।

गुरूजी—अच्छा, जिसमें राग, द्वेष और इच्छा नहीं है। वह किसी को दंड देने की इच्छा कैसे कर सकता है ? वह जगत् की रचना करने की भी इच्छा कैसे कर सकता है ? और जब उसकी इच्छा ही नहीं होगी तो क्या कोई उससे जबर्दस्ती रचना करवा लेगा ? अगर ऐसा हुवा तो बेचारा ईश्वर, ईश्वर ही नहीं रहेगा और वही जबर्दस्ती करने वाली शक्ति ईश्वर कहलाएगी।

दूसरी बात यह है कि परमात्मा कृत कृत्य है। कृत कृत्य वह कहलाता है जिसे कोई कार्य करना शेष न हों। यदि संसार के कार्य ईश्वर को ही करने हों तो वह कृतकृत्य नहीं रहेगा।

शंकर—गुरुजी ! आप की बात से मैं बड़े संदेह में पड़ गया हूँ। आप ने जो कहा, वह तो ठीक है पर मैंने सुना है

होकर दीन दयाल वह, उपजावत संसार।
तातें प्रभुपद सेवना, है जीवन को सार॥

क्या यह बात मिथ्या है ?

गुरूजी—प्रिय शिष्य ! तुम्हीं इस बात का विचार करो। देखो, यदि परमात्मा दयालु होकर संसार को बनाता तो वह दीन, दुःखी और पापी जीवों को क्यों पैदा करता ? जिसे दुःखी देखकर हमारा हृदय भर आता है। उसे बनाते समय परमात्मा को दया नहीं आती ? फिर उसे हम दयालु कैसे कह सकते हैं ?

पहले वही जीवों को दुराचार करने की बुद्धि देता है और फिर उन्हें दंड देना प्रारंभ करता है। क्या कोई न्यायी राजा ऐसा करेगा कि पहले अपनी प्रजा को जान बूझकर चोरी करने दे, दुराचार में पडने दे, और फिर उसे दंड दे कि-तुमने यह चोरी क्यों की ?

एक पिता अपने पुत्र को अपनी नजरों के सामने कुएँ में गिरने देता है। वह चाहे तो बचा सकता है, मगर बचाता नहीं। जब पुत्र कुएँ में गिर जाता है तो उसे निकाल कर सजा देता हैं। ऐसे पिता को तुम दयालु कहोगे ? नहीं ! इस कारण बच्चों। राग, द्वेष और इच्छा से रहित परमात्मा को इन झंझटों से कोई मतलब नहीं है।

सुरेश—गुरूजी ! यदि परमात्मा संसार को नहीं बनाता तो कौन बनाता है ? आखिर कोई न कोई बनाता तो होगा ही। किसी के बनाए बिना तो बन नहीं सकता।

गुरुजी—हाँ सुरेश ! तुम्हारा कहना ठीक है। पर इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने से पहले यह सोच लो कि यह संसार है क्या वस्तु ? असल में जड और चेतन का समुदाय ही जगत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(संसार) है। इन में से चेतन को बनाने की तो आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि चेतन कभी बनता नहीं है। वह अनादि और अनन्त है। रह गया जड सो वह भी नित्य है। उसे बनाने वाले की भी आवश्यकता नहीं है। देखो, कागज जड वस्तु है। जब तुम उसे जला डालते हो तब भी वह राख के रूप में बना ही रहता है। उसका कभी नाश नहीं होता। केवल अवस्था बदल जाती है। वह पहले कागज की अवस्था में था, अब राख के रूप में बदल गया। ऐसी अवस्था में बनाने को रहा ही क्या ?

सुरेश—गुरुजी ! आप कहते हैं कि अवस्थाएँ बदलती रहती हैं तो उनको बदलनेवाला भी कोई होना चाहिए।

गुरुजी—हाँ, अवश्य होना चाहिए। बताओ, तुमने कागज को जलाकर राख बना दिया तो अवस्था को बदलनेवाला कौन हुआ ?

सुरेश – मैं।

गुरुजी—कुम्भार ने मिट्टी से घडा बनाया तो मिट्टी को घडे के रूप में बदलनेवाला कौन है ?

सुरेश—कुम्भार ही।

गुरुजी—बस, इसी तरह कोई कुछ करता है, कोई कुछ। इसी से यह सब परिवर्त्तन होता है। कुछ कार्य ऐसे-ऐसे भी होते हैं जिन्हें कोई पुरुष नहीं करता। वे सब निसर्ग (स्वभाव) से होते हैं। जैसे बादलों का बनना, पानी बरसना, बिजली चमकना आदि। जगत् में ऐसा कोई कार्य नहीं दिखलाई देता जिसे करने के लिए परमात्मा की आवश्यकता हो।

एक बात और ध्यान में रखनी है। यदि ईश्वर घट-घट व्यापी अर्थात् सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है तो वह बिल्कुल हिलडुल नहीं सकता और बिना हिले-डुले कोई कुछ भी कार्य कैसे कर सकता है ? इस कारण ईश्वर कुछ भी काम नहीं कर सकेगा। अगर ईश्वर कुछ क्रिया कर सकता है तो पापियों को पाप करने से तुरन्त क्यों नहीं रोक देता ?

सुरेश—जी हाँ, यह बात तो समझ में आ गई, किन्तु एक शङ्का नहीं मिटी। वह यह है कि यदि परमात्मा हमें सुख-दुख नहीं देता तो उसकी भुक्ति करने की क्या आवश्यकता है ?

'जेहि जासो मतलब नहीं, ताकी तांहिन चाह।'

गुरुजी—तो तुम यह कहते हो कि परमात्मा हमें सुख दे तो उसकी भक्ति करनी चाहिए, अन्यथा नहीं ! अगर ऐसा है तो यह तुम्हारी भक्ति नहीं वरन् परमात्मा को फुसलाना है और अपने सुख के लिए उसकी चापलूसी करना या घूस देनेका प्रयत्न करना है। यह उचित नहीं है। बिना किसी सांसारिक इच्छा के परमात्मा की भक्ति करना ही सच्ची भक्ति है। ऐसी निष्काम भक्ति ही श्रेष्ठ होती है।

अब रही यह बात कि परमात्मा की भक्ति करनी क्यों चाहिए ? सो भक्ति करने के अनेक कारण हैं। प्रथम तो हमें हेय-उपादेय का जो ज्ञान होता है, वह ईश्वर से ही होता है। इस कारण हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिए।

दूसरे, परमात्मा आध्यात्मिक उत्कर्ष का आदर्श है और आदर्श के प्रति आदर होने से ही उस ओर प्रवृत्ति होती है।

तीसरे, जो शुद्धात्मा होते हैं, उनके प्रति चारित्रवालों की स्वाभाविक भक्ति होती है। मनोविज्ञानशास्त्र का नियम है कि जैसी वस्तु का विचार किया जाय या जिसकी निरन्तर कामना की जाय, कालान्तर में वैसी ही मनोवृत्ति हो जाता है। इस नियम के अनुसार ईश्वर का विचार और ईश्वरत्व की कामना करने से हम भी ईश्वर बन सकते हैं।

इन सब कारणों से ईश्वर की भक्ति करना हमारे लिए लाभदायक है। ● ● ●

❀ आचार्य श्री के गुणगान ❀

सं—मुनि महेन्द्र कुमार 'कमल'

तर्ज—जय बोलो महावीर......

आनंद ही आनंद गाएँगे,
चरणों में शीष झुकाएँगे ॥
जय श्रमण संघ के स्वामी की,
आचार्य प्रवर गुण धामी की,
मंगलमय दर्शन पाएँगे ॥
माता हुलषा के नन्दन हैं,
श्रद्धा से शत २ वन्दन हैं।
नव जीवन सरस बनाएँगे ॥
लाखों जनता के प्यारे हैं,
जिन शासन के उजियारे हैं।
अब रसिक सुपथ हम पाएँगे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नति और अवनति का रहस्य

लेखक--उपाध्याय कविवर्य श्री अमरमुनिजी म०

मनुष्य कभी ऊपर उठता है, तो कभी नीचे गिरता है। एक झूला होता है।

वह झूला कभी ऊपर की ओर जाता है और कभी नीचे की ओर। उस झूले में बैठा हुआ झूलने वाला भी झूले के साथ ही ऊपर तथा नीचे चढता-उतरता रहता है। इसी तरह मनुष्य को ऊपर और नीचे ले जाने वाली उसकी अपनी मनोवृत्तियाँ ही हैं। इसलिए मनुष्य को हर समय अपनी वृत्तियों पर नियंत्रण तथा निगरानी रखनी चाहिए।

वृत्तियाँ ही स्वर्ग- नरक हैं

नरक और स्वर्ग की कल्पना इन वृत्तियों के आधार पर ही है। मनुष्य सोचता है कि मैं नरक में हूँ या स्वर्ग में हूँ पर शरीर से नरक या स्वर्ग में होना बहुत स्थूल है। देखना तो यह चाहिए कि किन वृत्तियों के कारण हमारा जीवन नरक रूप में या स्वर्ग-रूप में परिणत हुआ है? इसलिये इन सब का कारण स्वयं की वृत्तियाँ ही हैं। यदि वे वृत्तियाँ नारकीय जीवन में रस लेती हैं, संसार के अन्याय-अत्याचार में रस लेती हैं तो यह जीवन भी नरक के समान ही है। और यदि जीवन में अहिंसा-करुणा, दया का भाव है, यदि मन साधना में प्रवृत्त होता है तो वही स्वर्ग है। इसलिये देखना यही होगा कि ये वृत्तियाँ शैतान के चरणों की उपासना करती हैं या भगवान् के चरणों की? यदि इन वृत्तियों पर हर क्षण निगरानी रखी जाय और यह प्रयत्न किया जाय कि वे शैतान की ओर न जाकर भगवान् की ओर ही जाएं तो मनुष्य उच्च स्तर पर पहुँच कर जीवन में आनंद, मंगल की सृष्टि कर सकता है। वह आनन्द, मंगल केवल उस व्यक्ति तक ही सीमित न रहकर पूरे समाज में व्याप्त हो जाएगा।

जीवन विश्लेषण

मनुष्य संसार में आया है तो केवल अपना ही स्वार्थ साधने के लिए नहीं आया है। अपने शरीर के घेरे में ही बन्द हो जाना उसका बुनियादी उद्देश्य नहीं है। आज जो मानव स्वार्थ-परायण हो गया है वह उसका स्वभाव नहीं—विभाव है, विकृति है। विकृतियों का विकार है। सामाजिक रूप धारण करके अपने जीवन को उन्नत करना ही मनुष्य का बुनियादी कर्त्तव्य होना चाहिए। हम सदियों से मनुष्य के मन का अन्वेषण और विश्लेषण करते रहे हैं। कितने ही शास्त्रकार, धर्मोपदेशक और मनोवैज्ञानिक आए और मानव की वृत्तियों के संबंध में विविध प्रकार के अन्वेषण किए। मनुष्य के मन में कब अँधकार छाता है और कब प्रकाश फैलता है? कब आलस्य उमड़ता है और कब स्फूर्ति उत्पन्न होती है? इसका विश्लेषण अनेक मनस्वियों ने किया। मन क्या है? इंद्रियाँ क्या हैं? आत्मा क्या है? और इन सब पर वृत्तियाँ किस तरह हावी रहती हैं? इन सब बातों पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसन्धान हुआ। भारतवर्ष मानसिक विश्लेषण का बहुत बड़ा केन्द्र रहा है। यहाँ का दर्शन इतना व्यापक और गहरा है कि उसको पढ़ने तथा समझने के लिए हज़ार-हज़ार जन्म भी पर्याप्त नहीं हैं। ज्ञान और चिन्तन की दृष्टि से हमें इतनी बडी सामग्री उपलब्ध है कि उसके होते हुए ज्ञान-दारिद्रय का प्रश्न नहीं उठता। भले ही आर्थिक या प्राविधिक-टेक्निकल-चीजोंके लिए भारत को दूसरे देशों की मदद मांगनी पडे, किन्तु विचार-चिन्तन के लिए हमारे पास अटूट खजाना भरा हुआ है। मन की वृत्तियों का भी खूब विश्लेषण यहाँ के चिन्तकों ने किया है। उस सारे चिन्तन का निष्कर्ष थोडे में, मैं प्रकट करता हूँ।

मेरापन-तेरापन

यद्यपि मन की वृत्तियों के अनेक रूप-रूपान्तर हैं, पर मुख्य रूप से उन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहला भाग स्वयं अपने से संबंधित होता है। जैसे यह मेरा शरीर है, मेरा परिवार है, मेरा धन है, आदि। यह जो ममत्व की यानी "मेरेपन" की भावना है. वह एक वृत्ति है तथा दूसरी भावना "तेरेपन" की है। 'मेरा' और 'तेरा' में ही संसार बँटा हुआ है। दोनों ही वृत्तियाँ समान रूप से अच्छी और बुरी हो सकती हैं। यदि इनकी दिशा गलत हो जाए तो इन वृत्तियों के कारण दुर्भावनाएँ पैदा हो सकती हैं और यदि इनकी दिशा सही रास्ते की और मुड़ जाए तो सद्भावनाओं का जन्म होता है। तेरापन और मेरापन की समस्या का जब तक फैसला नहीं होता, तब तक जीवन की समस्याएँ हल नहीं हो सकतीं। मेरापन एक अलग ढंग का विचार है। तेरापन भी एक दूसरे ढंग का विचार है। और जब कोई वस्तु मेरे से तेरे के रूप में बदल जाती है तो उसका एक तीसरा ही ढंग हो जाता है। इसलिए प्रश्न यह है कि तेरे और मेरे का द्वन्द्व किस हद तक चले? इस द्वन्द्व में से ही सब प्रकार की वृत्तियाँ जन्म लेती हैं, उन वृत्तियों का विस्तार होता है। मैं एक उदाहरण देकर दोनों तरह की वृत्तियों का विश्लेषण कर रहा हूँ।

दो प्रसंग

हम समझने के लिए कल्पना करते हैं। मान लीजिए कि शांतिदेवी नाम की एक स्त्री है। वह बहुत रूपवान और गंभीर वृत्तियों वाली है। वह अपने कमरे से बाहर आती है और दरवाजे के पास ही तेल से भरी हुई एक बोतल देवी जी के पैर से टकराकर फूट जाती है। और सारा तेल फर्श पर फैल जाता है। चूँकि वह बोतल नौकर ने वहाँ छोड़ रखी थी, इसलिए शांतिदेवी की शान्त भावनाएँ भयंकर क्रोध में परिणत हो जाती हैं। देवी जी का पारा आसमान पर चढ़ जाता है और नौकर को ऐसी फटकार मिलती है, ऐसी-ऐसी गालियाँ मिलती हैं कि विचारा नौकर सटपटा जाता है। नौकर कहता है कि मैंने तो सोचा था कि हाथ का काम निपटाकर बोतल को ठिकाने रख दूँगा, किन्तु अचानक ही आपका आना हो गया और बोतल फूट गई। देवी जी और अधिक गुस्से से भरकर कहती हैं कि खबरदार, जो आगे कभी कोई भी चीज बीच रास्ते में रखी तो! बात समाप्त हो गई। काम चलता रहा। संयोग से एक दिन शांति देवी ने तेल लगाया। और तेल की बोतल फर्श पर ही छोड़कर काम से ही कहीं दूसरी और चली गई। वहीं उसने किसी कार्यवश नौकर को आवाज दी। मालकिन की आवाज सुनते ही नौकर दौड़ता हुआ उस और बढा कि रास्ते में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखी हुई बोतल से टकरा गया। पिछली बार की तरह ही तेल फर्श पर बिखर गया। बिचारे नौकर के पैर में कांच का एक टुकड़ा भी गड़ गया और खून बहने लगा। वह बिचारा अपने कष्ट को भूलकर भी उन कांच के टुकडों को उठाने लगा। पर जब देवीजी ने यह देखा तो गुस्से में आँखें लाल करके बोलीं कि ये तुम्हारी आँखें हैं या बटन? देखकर नहीं चला जाता? क्या अन्धे हो गए हो?

दो प्रसंग हैं। मानव की वृत्तियों के दो नमूने। घटना में कोई अन्तर नही है। पहली घटना में भी बोतल का फूटना और तेल का गिरना समान है। अन्तर केवल इतना ही है कि पहली घटना में स्वयं मालकिन दोषी थी और दूसरी में नौकर। जब स्वयं देवीजी से बोतल फूटी तो कहा गया कि बोतल जहाँ-तहाँ रास्ते में क्यों रख देते हो? और जब नौकर के पैर से फूटी तो कहा गया कि क्या अन्धे हो गए हो? यह तेरा और मेरा का द्वन्द्व ही संसार को उलझाए हुए है। असल में जब तक इस द्वन्द्व में संतुलन नहीं होगा, तब तक समस्या का सुलझना कठिन है।

वृतियों का द्वन्द्व

रोजमर्रा के जीवन का एक दूसरा उदाहरण और रखता हूँ। रेल की यात्रा में कुछ यात्री डिब्बे के अन्दर बैठे होते हैं और कुछ यात्री प्लेटफार्म पर खडे हैं। जो प्लेटफार्म पर होते हैं, वे जब अन्दर आने का प्रयत्न करते हैं, तब अन्दर वाले कहते हैं कि चलो आगे जाओ। इस डिब्बे में जगह नहीं है। इस तरह की बातें अन्दर बैठे हुए यात्री बोलते हैं। बाहर का यात्री दयनीय होकर अनुरोध करता है कि किसी तरह उसे थोडी सी जगह दे जाए, वह खड़ा-खड़ा ही चला जाएगा। जब अन्दर वाले मानते ही नहीं तो बाहर वाले यात्री अकड़ के साथ कहते हैं कि हमने भी टिकट लिया है। क्या तुमने रेल को खरीद लिया है जो हमें अन्दर नहीं आने दोगे? इस तरह नरम-गरम होकर यात्री डिब्बे के अन्दर घुसते हैं और किसी तरह अपने लिए अन्दर जगह बना लेते हैं। इसी बीच भागते हुए कुछ और यात्री पहुँच जाते हैं और डिब्बे में चढ़ने की कोशिश करते हैं, तब वे नवागन्तुक महाशय भी बाहर के यात्रियों से इस तरह पेश आते हैं और वही व्यवहार करते हैं, जो व्यवहार उनके साथ हुआ था। यहाँ भी घटना समान है, केवल मेरे और तेरे का अन्तर है। जब खुद पर आ पड़ती है, तब आदमी दूसरे आदमी की आदमियत को चुनौती देता है और कहता है कि क्या तुम्हारी इन्सानियत खत्म हो गई है? किन्तु जब वही सवाल अपने सामने प्रस्तुत होता है तो आदमी अपनी आदत को भूलकर वैसा ही व्यवहार करने लगता है। इसी को मैंने पीछे वृत्तियों का द्वन्द्व कहा है। इस द्वन्द्व के सामने बाहर के सब द्वन्द्व नगण्य हैं।

दानवी वृत्ति

साधना की बहुत बातें होती हैं। आखिर साधना है क्या? अपने मन को मांजना और अपनी वृत्तियों पर नियंत्रण रखना ही तो साधना है। अनेक तरह के क्रियाकांडों में उलझ जाना ही साधना नहीं है। साधना का सही स्वरूप तभी प्रगट होगा, जब मनुष्य इस द्वन्द्व पर विजय प्राप्त करेगा। पहला द्वन्द्व दानवी वृत्ति का है। हाथ-पैर आदि अंगोपांग तो मनुष्य के होते हैं, पर मनुष्यता का आचरण नहीं होता, वहाँ दानवता के दर्शन होते हैं। फिर मनुष्य सोचता है कि जो मेरा है- वह तो है ही, किन्तु जो तेरा है यानी दूसरे का है, वह भी मेरा ही है। उस पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही अधिकार कर लूँ। इसी भावना के परिणाम-स्वरूप वह हाथ में डंडा लेकर आता है और दूसरों की चीजों पर आधिपत्य कर लेता है या दूसरों को धोखा देकर स्वयं मालिक बन जाता है। एक व्यक्ति को स्वप्न आया, मानों देवी ऐसा कह रही है कि यदि तुम अपने पुत्र की बलि चढ़ाओ तो तुम्हें राज्य का अधिकार प्राप्त हो सकता है। वह व्यक्ति सुबह उठा तो सब से पहले यही विचार दिमाग में घूमने लगा कि लड़के का क्या है? यह तो फिर पैदा हो जाएगा, पर क्या राज्य बार-बार मिलता है? उसने अपने पत्नी को पूछा। वह भी राज्य के लोभ में पुत्रकी ममता भूल गई और पुत्र देवी के चरणों में चढ़ा दियागया। यह उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य की वृत्तियाँ कितनी प्रबल होती हैं और वे मनुष्य पर किस तरह हावी हो जाती हैं। इन वृत्तियों ने ही औरंगजेब जैसे पुत्र को बाध्य किया कि अपने पिता को भी जेल में डाल कर सड़ाए। जयचन्द को बाध्य किया कि वह अपने तुच्छ अहंकार की पूर्ति के लिए देश की इज्जत विदेशियों के हाथ बेच डाले। इसलिए इस वृत्ति को दानवी-वृत्ति के नाम से संबोधित करना अनुचित नहीं हैं। इसी दानवी वृत्ति का प्रतीक-रावण था, कंस था, और दुर्योधन था। दुर्योधन अपने राज्य पर तो जमा हुआ था ही, पर पांडवों का राज्य भी हमारा ही है, यह कहकर दानवी वृत्ति का प्रतीक बन गया। अन्यथा दुर्योधन के पास क्या नहीं था? धन था, राज्य था, महल थे, सब कुछ था। पर फिर भी उसने दंभ किया, धोखा किया, अपना है वह तो अपना है ही, दूसरे का भी अपना ही है- इस दुर्भावना के कारण ही उसने इतिहास में अपने नाम के साथ अपयश जोड़ दिया। लोग कहते हैं कि पेट के लिए धोखा देना पड़ता है इत्यादि। लेकिन क्या दुर्योधन के सामने भूख की समस्या थी? क्या वह आर्थिक संकट में था? यह सब नहीं था, फिर भी उसने सारा षड्यन्त्र तैयार किया। अखिर युद्ध हुआ। भाई-भाई के खून का प्यासा हो गया। न केवल शारीरिक हानि हुई, बल्कि बौद्धिक हानि भी असीमित रूप से हुई। उस युद्ध के बाद भारतवर्ष का भयंकर पतन हुआ। उस समय से गिरा हुआ भारत आज तक उठ नहीं पाया है।

मानवीय वृत्ति

उस द्वन्द्वात्मक वृत्ति का दूसरा प्रकार मानवीय वृत्ति है। इस वृत्ति में मनुष्य अपनी चीज पर तो दृढ़तासे अधिकार रखता है, पर दूसरों की चीजों का हड़पने की कोशिश नहीं करता। दो लड़कियाँ गोबर बीन रही थीं। दोनों ने सोचा कि कभी किसी को गोबर अधिक मिल जाता है तो कभी किसी को। फिर एक-दूसरे के मन में दुःख होता है, या झगड़ा होता है। इसलिए दोनों ने मिलकर यह तय किया कि हम दोनों जितना भी गोबर लाएँगी, उसमें से आधा तुम्हारा और आधा मेरा। यह भावना पहली भावना के बजाय अधिक सौम्य और स्वस्थ है। पर यह वृत्ति भी अपने में पूर्ण नहीं है। इस वृत्ति में कुछसंकीर्णता तो है ही। फिर भी सह-अस्तित्व की बुनियाद पर यह विचार चल सकता है। जैसे राष्ट्रों की सीमाओं के बारे में सह-अस्तित्व का सिद्धान्त कायम हुआ है, वैसे ही जीवन के हर क्षेत्र में सह-अस्तित्व का सिद्धान्त कायम करना ही मानवीय वृत्ति का प्रतीक है।

दैवी वृत्ति

जब मनुष्य मेरेपन की भावना से भी ऊपर उठ जाता है तब उसमें दिव्य वृत्तियाँ जागृत हो जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इन वृत्तियों के जागृत होने का अर्थ यह है कि जो दूसरे का है, वह तो दूसरे का पर जो मेरा है वह भी दूसरे का ही है। समाज और राष्ट्र का ही है। समाज और राष्ट्र ने मिलकर ही मुझे यह सब दिया है, इसलिए जब भी जरूरत पडे, समाज ये सब चीजें मुझसे वापस ले सकता है। इसी दिव्य-वृत्ति, देववृत्ति का परिचय राम के वन-गमन के अवसर पर अयोध्या-वासियों को मिला था। चारों ओर राम के राज्याभिषेक की चर्चा थी। समस्त प्रजा राम के चरणों में नतमस्तक होने को प्रस्तुत थी कि छोटों को छोडकर बडों को ही राज्य क्यों मिलना चाहिए? हम चार भाई साथ खेले, साथ रहे, साथ खाया, साथ बडे हुए। हम में कौन बडा है? कौन छोटा है? हम सब तो बराबर के भाई हैं, फिर मेरा ही अभिषेक क्यों हो रहा है? यह दिव्य-वृत्ति राम के मन में स्पंदन कर रही थी। जब उन्हें मालूम हुआ कि मेरी कैकेई माता भरत का राज्याभिषेक चाहती हैं, तब तो वे बिना किसी के कहे झट इसके लिए तैयार हो गए। थोडी सी जमीन के लिए आजकल बाप-बेटे में और भाई-भाई में संघर्ष छिड़ जाता है, मुकदमे होते हैं, लाठियाँ चलती हैं, पर राम के हृदय में दैवी वृत्तियाँ काम कर रही थीं। वे सब कुछ छोडकर वन की ओर चले। उनकी यह गौरव-गाथा इतिहास के पन्नों मे स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई है। लाखों वर्षों का काल-चक्र पूरा हो जाने के बाद भी ये अक्षर मिट नहीं सकते।

ब्रह्मवृत्ति

देववृत्ति से भी ऊँची है ब्रह्मवृत्ति। यही वृत्ति हमें आदर्श की भूमिका तक पहुँचा सकती है। अमेरिका में दो भाई थे दुर्घटना में चोट लगने से एक भाई अन्धा हो गया। दूसरे भाई ने डाक्टर से पूछा कि क्या किसी तरह से मेरे भाई को आँखें मिल सकती हैं? डाक्टर ने कहा– यह तो तभी संभव है कि किसी दूसरे व्यक्ति की आँख निकाल कर इसकी आँखों के स्थान पर लगा दी जाए। तुरन्त इस भाई ने कहा कि डाक्टर; मेरी एक आँख मेरे भाई को दे दो। जब मेरे पिता की संपत्ति में उसका आधा अधिकार है तो मुझ पर भी तथा मेरी चीजों पर भी उसका अधिकार है। डाक्टर इन्कार कर रहा था। सब लोग इन्कार कर रहे थे। स्वयं उसका भाई इन्कार कर रहा था। पर उसने किसी की नहीं सुनी। आखिर उसका आग्रह डाक्टर को मानना पडा। एक-एक आँख दोनों भाइयों ने बाँट ली। कितना ऊँचा सर्वस्वार्पण का विचार है यह! यह तो एक भाई की घटना हुई।

आगरा में रामकृष्ण मिशन में एक स्वामीजी काम कर रहे थे। वे बीमार हो गए। दिल का दौरा था। डाक्टरों ने बहुत चिकित्सा की। पर कोई भी दवा असर नहीं कर रही थी। बीमारी असाध्य थी। स्वास्थ्य संभल नहीं रहा था। यह बात स्वामीजी ने अच्छी तरह समझ ली कि अब मैं बहुत दिनों का मेहमान नहीं हूँ। इसलिए स्वामीजी ने डाक्टर से कहा कि डाक्टर, यदि मेरे शरीर का कुछ भी उपयोग किसी दूसरे के लिए हो सके तो वैसा करो। क्या मेरा कोई भी अंग इस काम के लायक है? डाक्टर ने जवाब दिया कि आपकी आँखें काम में आ सकती हैं। यह सुनते ही स्वामीजी का रोम-रोम पुलकित हो उठा। उन्होंने अन्तर मन से कहा कि डाक्टर जल्दी करो, और किसी जरूरतमन्द को मेरी आँखें दे दो। मैं यह तुम्हें लिखकर दे रहा हूँ। आखिर एक अन्धे को वे आँखें दे दी गई। और स्वामीजी को बताया गया कि एक अन्धा नौजवान आपकी आँखों से देख रहा है। उसके जीवन में प्रकाश हो गया है। यह सुनकर स्वामीजी का हृदय आनन्द विभोर हो गया। यही ब्रह्मवृत्ति कहलाती है। अपना सर्वस्व अर्पित करने का यह विचार ही हम सबका अंतिम ध्येय होना चाहिए। जब हम इन वृत्तियों का रहस्य समझ जाएंगे तो ऊपर उठने और नीचे गिरने का रहस्य भी समझ जाएंगे। ❋ ❋

('श्री अमर भारती, से साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म की आवश्यकता क्यों ?

लेखक—श्री. दौलतरामजी मिश्र

धर्म से यहाँ मतलब सम्यक् दर्शन (श्रद्धा) स्थान युक्त चारित्र से है। (पंचाध्यायी २।७१६)

प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि दूसरे मनुष्य उसके साथ सदाचरण करके उसे सुख पहुँचाये। परंतु यह तभी संभव है, जब कि वह भी दूसरों के साथ वैसा करे।

इन तथ्यों पर से स्व-पर सुखदायक आचरण का नाम पडा-धर्म।

श्री व्यासजी कहते हैं—

"श्रूयतां धर्म सर्वस्वं, श्रुत्वाचैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥"

अर्थात् धर्म का सार सुनो और सुन कर हृदय में धारण करो। दूसरों के साथ ऐसा आचरण मत करो कि जिससे, जिन दुःखद परिस्थितियों को तुम नहीं चाहते हो, वे उन्हें प्राप्त हो जाय।

धर्म की आवश्यकता के बारे में और भी स्पष्ट कहा गया है—

लोक यात्रार्थ सेवेई, धर्म प्रवचन कृतम्।
अहिंसा साधु हिंसेति, श्रेयान् धर्म परिग्रहः॥
(महाभारत)

अर्थात्—संसार में धर्म का प्रतिपादन जीवन निर्वाह के लिए ही किया गया है। अहिंसा अच्छी है या हिंसा यह निर्णय भी इसी आधार पर किया जायगा। इसी को ध्यान में रखकर धर्म का पालन करना चाहिए।

भावार्थ—यह है कि सभी के सुखपूर्वक जीवन निर्वाह के लिए धर्म की आवश्यकता है। कठिन प्रसंग में हिंसा (द्रव्य-हिंसा) या अहिंसा की अच्छाई का निर्णय भी इसी आधार पर किया जाना चाहिये।

सर गुरुदास बनर्जी अपनी "ज्ञान और कर्म" नामक पुस्तक पृष्ठ ५७ पर लिखते हैं कि-

'पृथ्वीपर बुरे आदमी भी हैं, इसीसे भले आदमियों को भी समय समय पर विवश होकर बुरे कर्म करने पडते हैं।"

अब सुख की व्याख्या समझ लें—

इन्द्रिय–विषय भोग को कहते हैं काम, और इसी का दूसरा नाम है सुख। इस सुख का आधार है अर्थ (धन)।

यदि दूसरों का खयाल न कर के, सुख–साधनों की लूट खसोट–छीना झपटी के लिए अर्थ का अमर्यादित उपार्जन किया जाय तो वह अन्याय–कदाचरण अधर्म–कहा जायगा।

पं. आशाधरजी ने धर्मात्मा के १४ लक्षण बतलाये हैं उसमें पहिला लक्षण यह है—

"न्यायोपात्त धनो यजन्,, (सा. ध. १।११)

श्री मनुजी ने लिखा है—

योर्थ शुर्विहि स शुचिर्न मृद्वारिसुचि शुचिः॥

अर्थात्—सबसे बडी शुचि अर्थ संबंधी शुचि है। मिट्टी पानी के द्वारा प्राप्त होनेवाली शुचि कोई शुचि नहीं।

तात्पर्य यह कि—

परस्पराविरोधेन, त्रिवर्गो यदि सेव्यते।
अनर्गलमतः सौख्यम्, अपवर्गोऽप्यनुक्रमात्॥

अर्थात्—धर्म, अर्थ, काम का अविरोध पूर्वक सेवन किया जाय तो इहलोक व परलोक में सुख मिलेगा।

— वाहीमसिंह

किंतु आश्चर्य है कि—

उर्ध्ववाहुर्विरोम्येषः नैव कश्चित् शृणोति ये।
धर्मादर्थश्चकामश्च स धर्मः किं न सेव्यते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—मैं ऊँचा हाथ करके पुकारता हूँ, पर मेरी कोई सुनता नहीं। धर्म में ही अर्थ, काम समाया हुआ है ऐसे सरल धर्म का लोग क्यों सेवन नहीं करते ?

—श्री व्यासजी

अस्तु, हमें गर्व यह करना चाहिए कि हम अपने से भिन्न, दूसरों की जो रक्षा (उनके प्रति सुखदाचरण) करते हैं सो केवल परोपकार है। असल में वह अपनी ही रक्षा (सुख) के लिए है। कहा है—

आत्मेतरांगिणामंग, रक्षणं यन्मतं स्मृतम् ।।
तत्परं स्वातः रक्षाया कृतंनातः परञ्चयत् ।।

(पं. २१७५६)

सर गुरुदास बनर्जी कहते हैं—

"मनुष्यों में स्वार्थ और परार्थ इतने अविछिन्न रूपसे बंधे हुए हैं कि सच्चा स्वार्थ परार्थ छोडकर हो ही नहीं सकता।"

अर्थात्–पर भले में ही अपना भला है।

श्री बंकिमचंद्र लिखते हैं—

"न जाने यह मनुष्य समाज कब सच्चे सुख के पाने का उपाय खोजेगा ? जितने विद्वान्, बुद्धिवान्, दार्शनिक और और तत्त्वज्ञ हैं, सब मिलकर देखें कि औरों को सुखी बनाने के सिवाय अपने सुखी होने का और कोई उपाय है या नहीं। मैं कहता हूँ कि नहीं है। मैं मरकर–जलकर राख हो जाऊँगा, मेरा नाम तक इस संसार से उठ जायगा, किंतु मैं मुक्त कंठ होकर कहता हूँ कि एक दिन लोग मेरी बात को अवश्य जानेंगे कि मनुष्य के सुख का मूल कारण दूसरों को सुखी करने के सिवाय और नहीं है। आज जैसे लोग धन, मान आदि के पीछे पागल ऐसे फिरते हैं, वैसे ही एक दिन सारी मनुष्य जाति दूसरों को सुखी बनाने के लिए पागल हुई फिरेगी। मेरी यह आशा एक दिन अवश्य सफल होगी।"

(चौबेका चिट्ठा पृ. ३५)

आज हम सदाचरण करते हुए भी दुःखी क्यों हैं ?

हम सदाचरण करते हैं राज्यदंड के भय से, धर्म समझकर नहीं। हमारे दर्शन (विश्वास) ज्ञान चारित्र (कार्य) में सत्यता-एकता नहीं। यही कारण है कि हम दुःखी हैं।

श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर कहते हैं—

"इस समय युरोपीय नई सभ्यता का युग उत्पन्न हुआ है! इस युग में लगातार ज्ञान-विज्ञान और मतामत का ढेर लगता जा रहा है, पर देखा जाता है कि इस सारी तैयारी के बीच में मनुष्य का हृदय सुखी नहीं है। उसे शांति नहीं, वह केवल रोया ही करता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य का हृदय जब तक इस विशाल सभ्यता के ढेर में से एक सुन्दर एकता स्थापित नहीं कर सकेगा तब तक वह आराम से गृहस्थी जमाकर प्रतिष्ठित नहीं हो सकेगा। तब तक वह केवल अस्थिर और अशाप होकर भटकता फिरेगा। इस युग में और सब जमा हो गया है, केवल उस राजलक्ष्मी (ज्ञान विश्वास कार्य की एकता) के दर्शन नहीं हुए। ज्ञान विश्वास और कार्य आपस में धक्कमधक्का करके एक दूसरे को सता रहे हैं। और वह भी सम्मिलित होने के लिए नहीं, किन्तु एक दूसरे को दबाने-विजय प्राप्त करने के लिए ही इनमें परस्पर भिडन्त हो रही है।"

(विविध प्रबंध पृ. २२३)

('जैन जगत्' से साभार)

☆ बिखरे हुए मोती ☆

किसी की सहायता करके उसे व्यक्त न करो, विश्वास रखो संकट में अदृश्य हाथ तुम्हारी सहायता करेगा।

–स्वामी सारशब्दानन्दजी

जिस व्यक्ति के पास गलत परामर्श देनेवाले और दुराचारी मित्र हों उसे विषैले सांपों की आवश्यकता नहीं।

–भगवान् महावीर

धन-दौलत एकत्र करने में जितना आनन्द प्राप्त होता है, अच्छे कार्यों में उसे व्यय करने से कहीं अधिक आनन्द मिलता है।

–महाभारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापुरुष के तीन रूप

लेखक—डॉ. श्री इन्द्रचन्द्रजी शास्त्री, *M. A. P. H. D.*, १०।१७, शक्तिनगर, दिल्ली

बौद्धों की महायान परम्परा में बुद्ध के तीन काय माने जाते हैं। (१) संभोगकाय (२) धर्मकाय तथा (३) निर्माणकाय। अस्थि, मांस आदि से बने हुए स्थूल शरीर को संभोगकाय कहते हैं, जिसके द्वारा बुद्ध खाना, पीना आदि कार्य करते हैं। बुद्ध के प्रवचनों को धर्मकाय कहा गया है जो उनकी परम्परा के रूप में अब भी विद्यमान है। निर्माण काय का अर्थ है—रचनात्मक कार्य। इसके दो अर्थ किये जाते है। बुद्ध की विभूतियों का वर्णन करने वाले पौराणिक-साहित्य में इसका अर्थ किया गया है-बुद्ध के द्वारा विरचित अनेक शरीर जिनके द्वारा वे अपने कार्य का सम्पादन करते हैं। किन्तु वास्तविक अर्थ है—बुद्ध का जन-मानस पर प्रभाव। उन्होंने अपने जीवन तथा उपदेशों द्वारा सर्वसाधारण में जो संस्कार डाले, मानव को ऊंचा उठाने में जो योगदान दिया वह निर्माणकाय है। धर्मकाय उनके अनुयायियों तक सीमित है। किन्तु निर्माणकाय उस परिधि में सकुचित नहीं है।

वास्तव में देखा जाय तो प्रत्येक महापुरुष के तीन काय होते हैं। प्रथमकाय उसके जन्म, माता-पिता तथा वंश आदि से संबंध रखता है। द्वितीय काय उसके द्वारा प्रारंभ की गई परम्पराएं हैं- जो उसके अनुयायियों तक सीमित हैं। तृतीय काय वह तत्व है जिसे उसने साक्षात अथवा परम्परया ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से विश्व को प्रदान किया है।

प्रस्तुत तीनों कायों का उत्तरोत्तर अधिक महत्त्व है। महापुरुष के स्थूलशरीर की अपेक्षा उसके संदेश एवं कार्यों का अधिक महत्व है और उनकी अपेक्षा भी अव्यक्त प्रभाव का।

इस दृष्टि से देखा जाय तो जो लोग स्थूल शरीर को महत्व देते हैं, कहना होगा कि वे महापुरुष को नहीं समझते। फिर भी यह मनोवृत्ति प्राचीन काल से चली आ रही है कि हम अपने नेता का जन्म ऐसे घर या कुल में सहन नहीं करते जिसे समाज में हीन-दृष्टि से देखा जाता हो। जातिवाद को महत्त्व देने वाली ब्राह्मण परम्परा में हीं नहीं, अन्य परम्पराओं में भी यह मनोवृत्ति प्रकट रूप से चली आ रही है।

जैन धर्म ने जातिवाद को कोई महत्त्व नहीं दिया। इतना ही नहीं महावीर ने इसका स्पष्ट शब्दों में विरोध किया था। फिर भी उसके मतानुसार कोई तीर्थङ्कर क्षत्रियेतर वर्ण में उत्पन्न नहीं होता। जैन-धर्म में त्रेशठ शलाका अर्थात् प्रत्येक युग के प्रधान पुरुष माने जाते हैं। वे सभी क्षत्रियवर्ण में उत्पन्न होते हैं। ब्राह्मण वर्ण का भी असलाप कर दिया। अर्थात् वहां भी महापुरुष उत्पन्न नहीं होते।

अंतिम तीर्थङ्कर महावीर के गर्भापहरण की घटना इस ज्वलन्त सत्य को और भी उग्र रूप में प्रकट करती है। कहा जाता है कि महावीर ने पूर्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म में कुल का अभिमान किया था। फलस्वरूप उन्हें नीच गोत्र का बन्ध हुआ। इसी लिए उनका जीव स्वर्ग से च्यवन करके देवानन्दा नामक ब्राह्मणी के गर्भ में आया। किंतु तीर्थङ्कर कभी भिक्षुक-कुल में उत्पन्न नहीं होते। अतःगर्भ का अपहरण करके उसे क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला के गर्भ में डाल दिया गया। कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसी घटनाएँ जन्म का महत्त्व देने वाली मनोवृत्ति को प्रकट करती हैं।

प्राचीन समय में जैन और बौद्ध परम्पराओं के समान भागवत परम्परा भी वेद बाह्य मानी जाती थी। उसके देवता कृष्ण अहीर जाति के थे। कालांतर में वह वह वैदिक परम्परा के साथ मिल गई और कृष्ण का जन्म क्षत्रिय माता-पिता से मान लिया गया।

सम्भोगकाय अर्थात् स्थूलशरीर को महत्त्व देने का दूसरा प्रकार कुटुंब पूजा है। हम जिस व्यक्ति को महापुरुष मान लेते हैं, उसके माता-पिता, भाई–बहन पत्नी तथा अन्य समस्त कुटुम्बियों को महत्त्व देने लगते हैं। जो व्यक्ति किसी महापुरूष के निर्माण में सहायक होना है, उसे महत्व देना दूसरी बात है किन्तु केवल संबंधी होना अपने आप में कोई महत्त्व नहीं रखता।

महापुरुष से संबद्ध स्थान को भी महत्त्व दिया जाता है। इसमें दो दृष्टियाँ हैं। पहली दृष्टि है महापुरुष का संपर्क होने के कारण वह स्थान उसकी स्मृति को तीव्र बना देता है। इस दृष्टि से उसका महत्त्व वास्तविक है, किन्तु स्थान की ही पूजा करना संभोगकाय की पूजा है।

सांची के स्तूप में बुद्ध का दांत रखा था। अंग्रेज शासक उसे लंदन के संग्रहालय में ले गये। पिछले दिनों उसे वापिस लाया गया। एक वर्ष तक उसकी पूजा होती रही, स्थान स्थान पर स्वागत के रूप में जुलूस निकलते रहे। अंत में एक भव्य मंदिर में पुनः प्रतिष्ठित किया गया। किन्तु वह दांत इतना बड़ा है कि प्राणि-शास्त्रियों के मतानुसार मनुष्य का नहीं हो सकता। इसी प्रकार पटना के संग्रहालय में एक खोपडी रक्खी गई। बताया गया कि वह बुद्ध के प्रधान शिष्य सारियुत्त की है। दूर-दूर से यात्री आने लगे और उसकी पूजा होने लगी किन्तु उसके लिये भी कहा जाता है कि वह खोपडी मनुष्य की नहीं है। वास्तव में देखा जाय तो इस प्रकार की पूजायें मानव बुद्धि को बांध रखती है, उसे स्वतंत्र विचरण नहीं करने देती।

धर्मकाय के द्वारा महापुरुष अपना संदेश देता है, किन्तु वह भी धीरे-धीरे एक संकुचित वीथी का रूप ले लेता है, उसकी आत्मा या जीवन समाप्त होता चला जाता है ओर बाह्य रूप महत्त्व प्राप्त करता जाता है। वेषभूषा तथा क्रिया-कांड के सामने जीवन शुद्धि की उपेक्षा होने लगती है। इस प्रकार वह प्रकाश होने के स्थान पर बुद्धि का आवरण बन जाता है।

निर्माणकाय महापुरुष की स्वस्थ प्रेरणा है, वहां आवरण या बंधन के लिये स्थान नहीं होता किन्तु यदि उसके संदेश का प्रचार जीवन–शुद्धि के स्थान पर बाह्य आडंबर के द्वारा किया जाता है तो वह भी अपने लक्ष्य से गिर जाता है। हमें यह मानना होगा कि बुझा हुवा दीप दूसरे दीप को प्रज्वलित नहीं कर सकता। प्रज्वलित दीप ही दूसरे दीप को प्रज्वलित कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म. कृत....

दशहरे पर्व का विराट् आध्यात्मिक सांग रूपक[1]

लेखक—डॉ. नरेन्द्रकुमारजी भानावत, *M. A. P. H. D.* 'साहित्य रत्न,
(हिन्दी-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय. जयपुर)

श्री तिलोकऋषिजी म. बीसवी शताब्दी के जैन कवियों में विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी, असाधारण काव्य. प्रतिभा के धारक और आचारनिष्ठ संत हो गये हैं। उनकी रचनाओं का अध्ययन सामान्य पाठक के लिए जितना आह्लादकारी है, विद्वद्-वर्ग केलिए उतना ही विदग्धकारी। उन्होंने जीवन का कोई ऐसा पक्ष नहीं छोडा जिस पर कलम न चलाई हो, जहाँ कलम न चली वहाँ तूलिका चली। पर शब्दों और रंगों का ऐसा सामंजस्य जो मन में विलासिता न जगाकर पवित्रता जगाये, दिल में उत्तेजना न पैदा कर हृदय में शांति स्थापित करे-बहुत कम देखने को मिलता है।

प्रस्तुत निबन्ध का विषय उनके कवित्व को संपूर्ण संदर्भों में देखने का नहीं है। यहाँ उनकी रूपक योजना के विशिष्ट प्रकार लौकिक पर्वों को आध्यात्मिक रूप में देखने एवं निरूपित करने की चेष्टा-पर ही प्रकाश डाला जा रहा है।

त्यौहार किसी भी जाति या देशकी संस्कृति के रक्षक और पोषक होते हैं। भारतीय त्यौहारों में दशहरे का बड़ा महत्त्व है। यह त्यौहार विजया दशमी नाम से भी पुकारा जाता है। इस दिन राम ने रावण का वध कर सीता को मुक्त किया था। दूसरे शब्दों में रामने रावण पर विजय पाई थी। दशमी का दिन होने से यह विजयादशमी कहलाया। इस त्यौहार को शक्तिका प्रतीक माना गया है। बंगाल में विशेषकर इन दिनों दुर्गा का पूजन किया जाता है जो कि शक्ति की अधिष्ठात्री देवी मानी गई है। यह तो सामान्य लौकिक मान्यता है जिससे दशहरे की परंपरा जोडी जाती है।

पर यह पर्व अपने में मानव जीवन के चिरन्तन सत्य को भी समेटे हुए है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में क्षण-प्रतिक्षण दशहरे का पर्व समारोह चलता रहता है। असद् प्रवृत्तियों का रावण सद् प्रवृत्ति के राम से संघर्ष लेता रहता है। मन की लंका कभी शान्त नहीं बैठी रहती। उसमें सूक्ष्म अन्तर्द्वन्द्व का चक्र घूमता ही रहता है। कवि तिलोक की दृष्टि अन्तर्मुखी बनी और उसके सद्-असद् प्रवृत्तियों के इस व्यापक पर गहन संघर्ष को शब्दों में ला उतारा। यही इस विराट् सांग रूपक की मनोभूमिका है।

इस आध्यात्मिक रूपक में कवि तिलोक ने राम और रावण के संपूर्ण परिवार को, उसके पारस्परिक सहयोग एवं विरोध को, उसकी सुखद-दुखद परिणाते को बडी तन्मयता के साथ गाया है, बडी कुशलता के साथ निभाया है। अध्ययन की दृष्टि से इस संपूर्ण रूपक को तीन भागों में बांटा जा शकता है।

१) रूपक में पारिवारिक संबंध
२) रूपक में संघर्ष एवं युद्ध
३) रूपक की परिणति

१) रूपक में परिवारिक सम्बन्ध-

दशहरे का आध्यात्मिक निरूपण प्रस्तुत करते समय कविने भौतिक शक्ति के प्रतीक रावण और उसके परिवार का तथा आत्मिक शक्ति के प्रतीक राम और उनके परिवार का विस्तार के साथ वर्णन किया है। सुविधा की दृष्टि से इसे दो भागों में बॉट सकते हैं-(अ) रावण का परिवार और (ब) राम का परिवार।

१—इस रूपक की रचना कवि ने संवत् १८३८ में विजयादशमी के दिन आंबोरी (दक्षिण) में की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अ) रावण का परिवार (असद् प्रवृत्तियाँ)

यह परिवार भरापूरा और सांसारिक भोग पदार्थों की ओर ललकने वाला है। इसका निवास तीन दण्ड[१] रूपी त्रिकूट द्वीप में स्थित लालच रूपी लंकर में है।[२] इसका मुखिया महामोह[३] रूपी रत्नश्रवा (जिसे विश्रवा भी कहा गया है) नामक राक्षस है जिसकी रानी क्लेश रूपी केकसी है। [४]महामोह (रावण) और क्लेश (केकसी) इन दोनों के संयोग से तीन पुत्र और एक पुत्री पैदा होती है। ये तीन पुत्र हैं मिथ्यात्व मोहनीय[१] (रावण) सम्यक्त्व मोहनीय[२] (विभीषण) और मिश्र मोहनीय[३] (कुंभकर्ण) इनमें सबसे बड़ा है मिथ्यात्व मोहनीय। जिसके दश मिथ्यात्व रूपी[४] मुख (इसी कारण वह अर्थात् रावण, दशानन कहलाता है) और बीस आश्रव[५] रूपी भुजाएँ हैं। दूसरा पुत्र सम्यक्त्व मोहनीय (विभीषण) है जिसमें थोडी न्याय बुद्धि है और तृतीय पुत्र मिश्र मोहनीय अधिक वाचाल है।[६]

---

१) जिससे आत्मा व अन्य प्राणी दंडित हों अर्थात उनकी हिंसा हो इस प्रकार की मन, वचन, काया की कलुषित प्रवृत्ति को दण्ड कहते है।

२) तीन दंड त्रीकूट द्वीप है, लालच लंक बंकवणी ॥

३) महामोह मोहनीय कर्म के उदय से पैदा होता है। जो कर्म आत्मा को मोहित करता है अर्थात् भले बुरे के विवेक से शून्य बना देता है वह मोहनीय कर्म है। यह कर्म मद्य के सदृश है। जैसे शराबी मदिरा पीकर भले बुरे का विवेक खो देता है तथा परवश हो जाता है। उसी प्रकार मोहनीय कर्म के प्रभाव से जीव सत् असत् के विवेक से रहित होकर परवश हो जाता है।

४) महामोह रत्नश्रवा नामक, राक्षस राजा इसमें धणी।
क्लेश केकसी राणी है उसकी, अकलदार समजो जहारी ॥

१— अदेव में देव बुद्धि और अधर्म में धर्म बुद्धि रूप आत्मा का विपरीत श्रद्धान मिथ्यात्व मोहनीय है।

२—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम या क्षमोपशम से उत्पन्न आत्मा का परिणाम। इससे मति आदि अज्ञान भी सम्यग्ज्ञान के रूप में परिणत हो जाते हैं।

३—मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा में कुछ अयथार्थ तत्त्व श्रद्धान होना।

४—जो बात जैसी हो वैसी न मानना या विपरीत मानना मिथ्यात्व है। इसके दस भेद हैं—(१) अधर्म को धर्म समझना (२) वास्तविक धर्म को अधर्म समझना (३) संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग समझना (४) मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग समझना (५) अजीव को जीव समझना (६) जीव को अजीव समझना (७) कुसाधु को सुसाधु समझना (८) सुसाधु को कुसाधु समझना (९) जो व्यक्ति राग द्वेष से मुक्त नहीं हुआ है, उसे मुक्त समझना (१०) जो व्यक्ति संसार से मुक्त हो चुका है, उसे संसार में लिप्त समझना।

५—कर्म बंध के कारणों को आश्रव कहते हैं-इसके बीस भेद हैं
(१-५) पाँच अव्रत:-हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह
(६-१०) पाँच इन्द्रियों (कान, आँख, नाक, जीभ और स्पर्श) की अशुभ प्रवृत्ति।
(११-१५) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।
(१६-१८) मन, वचन, काया रूप योगों की अशुभ प्रवृत्ति।
(१९) भण्ड, उपकरण आदि को अयतना से लेना व रखना।
(२०) सूई, कुशाग्र आदि वस्तुओं को अयतना से लेना व रखना।

६—मिथ्यामोहनी उसका फर्जंद, दश मिथ्या दश आनन है।
बीस आश्रव की भुजा है उसके, कपट विद्या की खानन है ॥
सम्यकत्व मोहनी विभीषण दूजा, नंदन सो कुछ न्यायी।
मिश्र मोहनी कुंभकर्ण ए, लचपिच बात में अधिकाई ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्येष्ठ पुत्र रावण का परिवार फैलता है। यह मिथ्या मोहनीय रूपी रावण प्रपंच रूपी मन्दोदरी से विवाह करता है। दोनों के संयोग से विषय रूपी इन्द्रजीत और अहं अर्थात् अभिमान रूपी मेघनाद का जन्म होता है। इस रावण के कुमति रूपी शूर्पणखाँ नामकी बहिन है। उसका विवाह कठिन क्रोध रूपी खर के साथ किया जाता है। इस क्रोध रूपी खर के दो भाई हैं। एक है दूषण (दुर्गुण) रूपी दूषण और दूसरा है तीन शल्य रूपी त्रिशिरा ।[2] संज्वलन[3] रूपी शंबूक (एक शूद्र तपस्वी) ज्ञान रूपी सूर्य हंस खड्गकी साधना करने के लिए उपशम रूपी रण में उपस्थित होता है। रावण के इस परिवार का रेखा चित्र यों प्रदर्शित किया जा सकता है ।

रावण का परिवार (असद् प्रवृत्तियाँ)

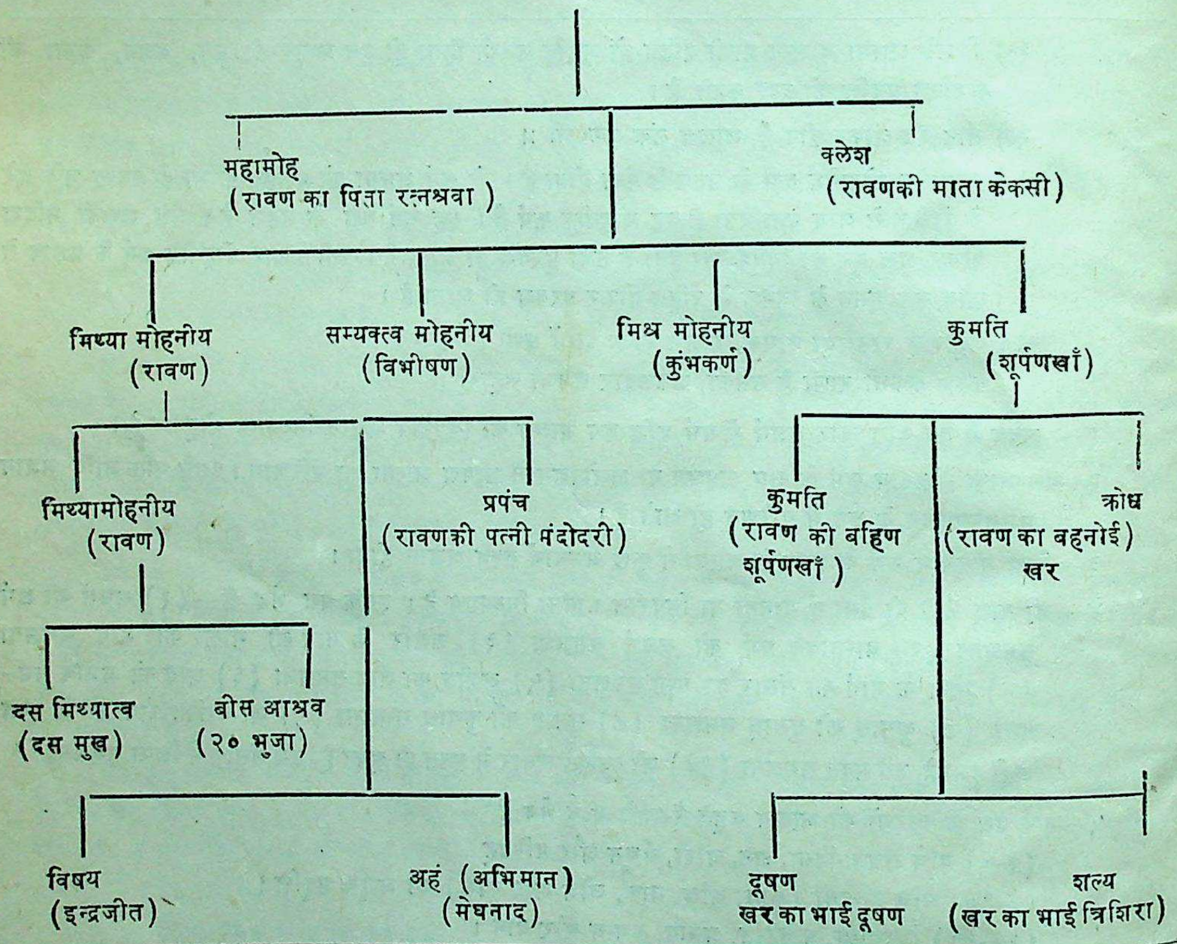

१) जिससे पाड़ा हो, उसे शल्य कहते हैं। इसके तीन प्रकार है- (१) माया शल्य (२) नियाणा शल्य और (३) मिथ्यादर्शन शल्य ।

२) परपंच नाम मंदोदरी नामें, मिथ्यामोह रावन राणी ।
विषय इन्द्रजीत अहं मेघ वाहन, मिथ्या रावण के सुख दाणी, ।
कुमाते नाम चंदनखा बहन है कठिन क्रोध खर के ब्याही ।
दूषण तीन शल्य त्रिशिरा, ये दोनों ही उसके भाई ॥

३) जो कषाय परीषह तथा उपसर्ग के आ जाने पर तपस्वियों को भी थोड़ा सा जलाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब) राम का परिवार (सत् प्रवृत्तियाँ)

रावण का परिवार जहाँ असत् प्रवृत्तियों का पोषक है वहाँ राम का परिवार सत् प्रवृत्तियों का प्रतिपालक । इस परिवार का मुखिया दशलक्षण धर्म [1] रूपी राजा दशरथ हैं । इस राजा के संवर [2] भावना रूपी कौशल्या नाम की पटरानी है । दोनों के संयोग से धर्म रूपी राम की प्राप्ति होती है । राजा दशरथ के एक रानी और है । इस समकित [3] रूपी सुमित्रा रानी से सत्य रूपी लक्ष्मण का जन्म होता है । धर्म रूपी राम का विवाह सुमति रूपी सीता के साथ होता है। राजा दशरथ (दश लक्ष्मण धर्म) की आज्ञा पाकर राम, लक्ष्मण और सीता (धर्म, सत्य और सुमति) तीनों संयम [4] रूपी वनवास ग्रहण करते हैं।[5] इस परिवार का रेखा चित्र कों दर्शाया जा सकता है–

राम का परिवार (सत् प्रवृत्तियाँ)

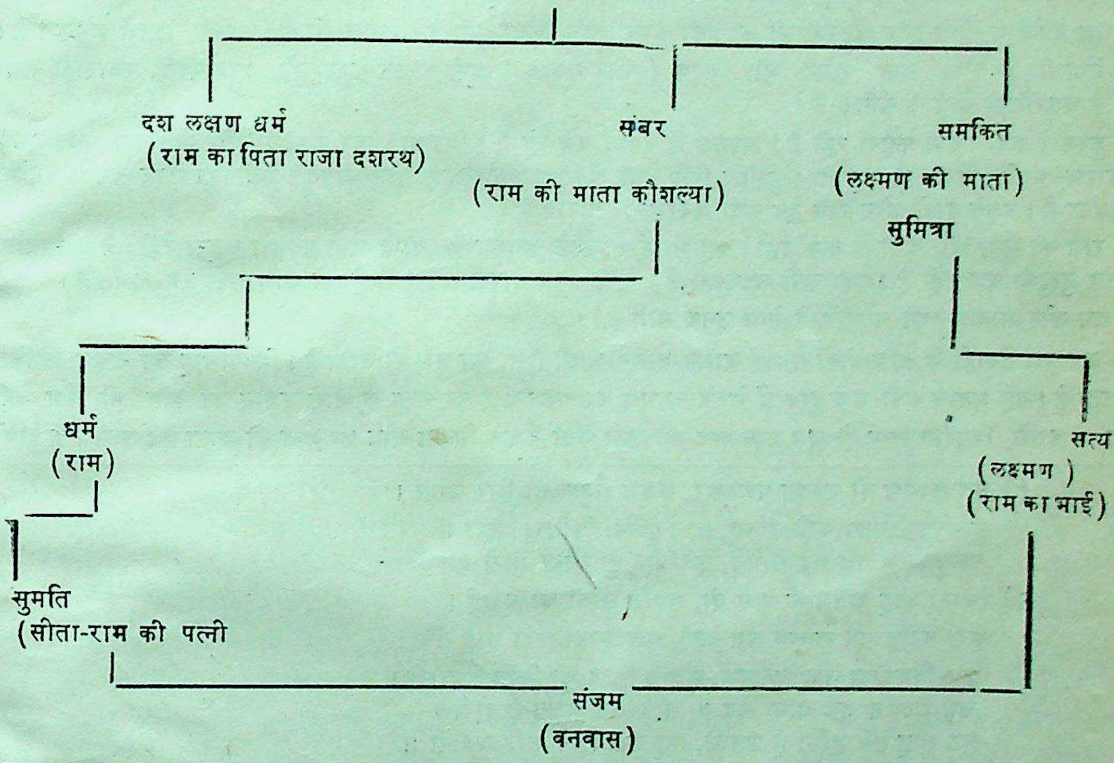

---

१) मोक्ष की साधन रूप कियाओं के पालन करने को धर्म कहते हैं। इसके १० भेद हैं—१) क्षमा (२) मार्दव (३)आर्जव (४) मुक्ति (५) तप (६) संयम (७) सत्य (८) शौच (९) अकिंचनत्व और (१०) ब्रह्मचर्य,

२) संवर—जिन क्रियाओं से कर्मों का आना रुक जाता है, वह संवर है।

३) समकित—सर्वज्ञ द्वारा प्ररूपित पारमार्थिक जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना समकित है।

४) सर्व सावद्य व्यापार से निवृत्त होना संयम है।

५) उसी बखत में राम राजगृहि, दश लक्षण दशरथ राया।
संवर भावना राणी कौशल्या, धर्मराम पुत्र जाया ॥
समकित सुमित्रा राणी दूसरी, सत लक्ष्मण की महतारी।
सुमति सीता से धर्म राम का बहोत ठाठ सें विवाह भया।
एक दिवस वो पिता हुकुम सें, तिनु ही संजम बन में गया॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२) रूपक में संघर्ष एवं युद्धः-

कवि तिलोकऋषि ने रचना के प्रारंभ में दोनों परिवारों का विस्तृत परिचय देकर रचना के मध्य में दोनों परिवारों के बीच उठे हुए द्वन्द्व एवं संघर्ष को वाणी दी है। दोनों परिवारों में द्वन्द्व का कारण बनती है कुबुद्धि अर्थात् शूर्पणखाँ। वह संज्वलन रूपी शंबूक का अन्त नहीं देख सकती। इसी लिए अपने पति (क्रोध रूपी खर) और देवर (दूषण, शल्य) को चढ़ा लाती है। पर सत्य के आगे क्रोधादि कषायों एवं शल्यों को दाल नहीं गलती। वे लक्ष्मण के हाथ मारेजाते हैं।[१]

इस प्रयास में जब कुमति रूपी शूर्पणखाँ परास्त हो जाती है तब वह अपना दाव बदलती है और मिथ्यामोह रूप रावण के पास जाकर सुमति रूपी सीता की प्रशंसा करती है। रावण छलपूर्वक सीता का अपहरण कर लेता है। सुमति मिथ्या-मोह के जेलखाने में बन्द हो जाती है।[२]

पर यह स्थिति अधिक समय तक रहती नहीं। ज्यों हि धर्म रूपी राम को सन्तोष रूपी सुग्रीव और उसके दल की सहायता मिलती है त्योंही बन्दी सुमति की टोह मिल जाती है।[३] टोह मिलते ही युद्ध के नगाडे बज उठते हैं।

युद्ध वर्णन में दोनों ओर की सेनाओं का बडा भव्य वर्णन किया गया है। रावण की सेना ठीक उसके अनुरूप है। उसकी सेना में में क्रोध, मान, माया और लोभ (चार कषाय) रूपी राक्षस गजारोही, अश्वारोही, रथारोही तथा पदाति (चतुरंगिणी सेना) सैनिक हैं।

कुध्यान रूपी ध्वजा फहरा रही है। अपयश के नगाडे बज रहे हैं। विकथा[१] रूप कडखों (वीर गीतों का उच्चारण) का चारण-भाटों द्वारा हो रहा है। कुशील रूपी रथ में मिथ्यात्वी रावण सात व्यसन[२] रूपी हथियार संभाले सचेत होकर बैठा है। उसके दोनों ओर राग द्वेष रूपी जबरदस्त उमराव हैं।[३]

राम की सेना भी किसी से कम नहीं। वह भी ठीक उनके अनुरूप है। नीति रूपी पताका लहरा रही है। सज्झाय रूपी रण दुन्दुभी बज रही है। सत्य रूपी लक्ष्मणने धैर्य रूपी धनुष धारण कर रखा है। वे शील रूपी रथ में बैठे हैं। दान[४] शील, तप और भावना रूपी चतुरंगिणी सेना उनके साथ है।

जब पूर्ण तैयारी के साथ-दोनों सेनाएँ आमने-सामने आती हैं तो युद्ध शुरू हो जाता है। मिथ्यामोह रूप रावण क्रोधित हो उठता है। वह अज्ञान रूपी चक्र हाथ में लेकर लक्ष्मण पर चलाता है पर सत्य के आगे अज्ञान का कुछ भी वश नहीं चलता। इसके विपरीत सत्य ही जब ज्ञान चक्र को उठा लेता है तब मिथ्या मोह का अन्त हो जाता है। लक्ष्मण के हाथों

---

१) सत लक्ष्मण वो खड्ग पकड़कर, संजल संबुक का शिर घाया।
कुमति चंद्रनखा कही पतिसुं, खर, दूषण, त्रिशिरा धाया ॥
सत लक्ष्मण तब चढे सामने, उन तीनुं कुं लिया मारी।

२) मिथ्या मोह रावण के पास वो, सुमति सीता की बड़ाई।
करी बहोत तब लालच वश वहाँ, चल आया लंका सांई ॥
छल विद्या का नाद सुनाकर, सुमति सीता की किवि है चोरी।
राम लक्ष्मण जब जाना भेद ए, सांचे अब लाना है दोरी।
झूठ साहसिक दृष्टि है उसकी, सत् लक्ष्मणने करी खुवारी ॥

३) संतोष सुग्रीव जब भया पक्ष पर, बहोत भूप उसकी संगें।
जाम जांबुवाहन नील नलादिक, सुमन नाम हनुमंत अंगे।
खबर लाया वो सुमति सीता की बहुत जोरावर दुनियां में ॥

१—संयम में बाधक चारित्र विरुद्ध कथा। इसके ४ प्रकार हैं- (१) स्त्री कथा (२) भक्त कथा (३) देश कथा (४) राज कथा।

२—(१) जूआ (२) मांस (३) मदिरा (४) वेश्या (५) शिकार (६) चोरी और (७) परस्त्री गमन।

३—चार कषाय राक्षस दल भारी, कुध्यान धजा के फर्रावे।
अपकीर्ति का बजे नगारा, विकथा का कड़खा गावे।
कुशील रथ में बैठा हुशियारी, सात व्यसन शस्तर धारे।
राग द्वेष उमराव जोरावर, सहेज सुभट सें नहि हारे।

४—दान शीयल तप भाव की सेना, ले के गया लंका ठामें।
नय नेजा, सझाय घोष दे, राम आय चढ़ तिन वारी।
सत लक्ष्मण तब धीरज धनुष ले, बैठे छील रथ के मांड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी कारण रावण मारा जाता है।[५]

दोनों परिवार (प्रवृत्तियों) में घटित इस संघर्ष एवं युद्ध को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है—

कुमति (शूर्पणखाँ) के प्रयत्न से मिथ्यामोहनीय (रावण) द्वारा सुमति (सीता) का अपहरण

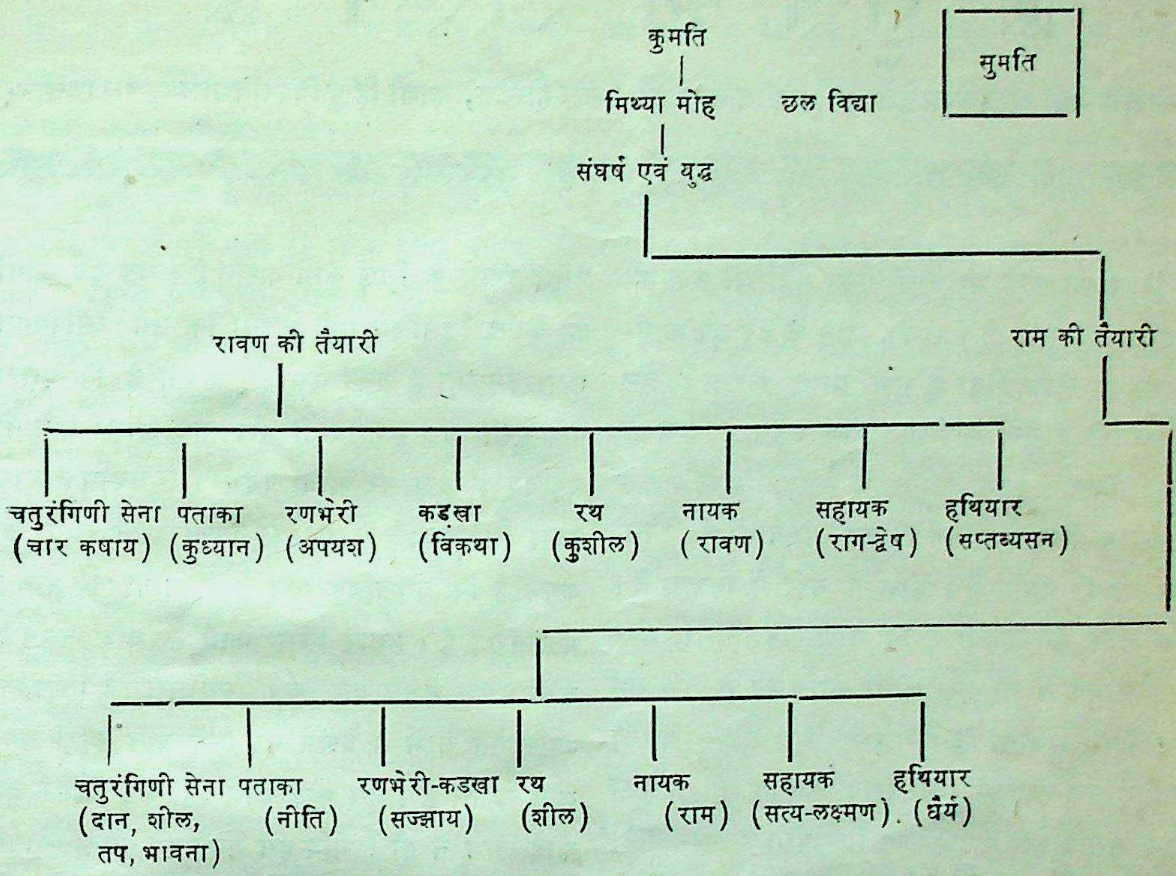

रूपक की परिणति

इस युद्ध में राम की विजय और रावण की पराजय होती है। मिथ्यामोहनीय रावण के अन्त होते ही सुमति रूपी सीता के सारे बन्धन खुल जाते हैं। वह मुक्त हो जाती है। उसकी राम-लक्ष्मण से भेंट होती है। कहना न होगा कि सुमति (सीता) की प्राप्ति के लिए धर्म रूपी राम को अपने सद्गुणों की पूरी सेना तयार करनी पड़ती है। जब यह सेना अपने उद्देश्य को पूर्ण कर लेती है, प्रतिपक्षी को परास्त कर देती है तो मुक्ति सहज ही आ मिलती है। राम और लक्ष्मण अर्थात् धर्म और सत्य अपने सद्गुणों से मिथ्या मोह रूप रावण और उसके सहायक राग, द्वेष रूपी जबरदस्त सैनानियों का अन्त कर सीता को, सुमति को ले आते हैं और मोक्ष रूप अयोध्या नगर में प्रवेश करते हैं, जहाँ जन्म-मरण का कोई दुख नहीं।[१] यही सच्चा राम राज्य है। दशहरा पर्व इसी राम राज्य को प्राप्त करने का सन्देश देता है।

५— रू बरु जब मिले आनकर, मिथ्या रावण कूं रीश आइ।
अज्ञान चक्र मेला लक्ष्मण पर, जोर चला नहिं लीगार रे।
ज्ञान चक्र जब मेला हरि ने, एकदम में रावण मारे।
राम लक्ष्मण की जीत भई जब, जग में भया जय जय भारी॥

१—सुमति सीता कुं लेकर आये, मुक्ति अयोध्या राज करे।
जन्म मरण भय दुःख मिटें जिहाँ, राम राजा सो जग में खरे॥ ● ● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख का स्वरूप

लेखक–श्री श्रीप्रकाश दुबे, M. A. शोध छात्र ८९ अय्यर होस्टेल, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

विश्व का कोई भी प्राणी ऐसा नहीं जो सुख की कामना न करता हो। प्रत्येक जीव के हर एक कार्य-कलाप का लक्ष्य होता है सुख प्राप्त करना। हम धन कमाते हैं सुख के लिए; श्रम करते हैं सुख के लिए; विचार करते हैं सुख के लिए; दुःख उठाते हैं सुख के लिए। जीवन के चार पुरुषार्थों में 'काम' सुख का ही पर्याय है। मोक्ष के बारे में विवाद है। कुछ लोगों का कहना है कि मोक्ष मिलता है और इसी जीवन में तो कुछ लोगों का कथन है कि यह सब केवल भुलावा है। परन्तु सुख प्राप्त करना चाहिए इस बारे में सभी लोग सहमत हैं चाहे वे परम संसारी हों या अत्यन्त विरागी।

वास्तविक सुख कहाँ है और यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है, यह प्रश्न विचारणीय है। इसके ऊपर आज के साहित्य में तथा पहले के साहित्य में भी काफी चर्चा हुई है। वर्तमानकाल में तो सुखवाद नाम से एक मत ही चल पडा है। कुछ लोगों का कहना है कि व्यक्तिगत सुख ही सर्वोत्तम है। हमें जैसे भी हो अपनी तुष्टि के लिए प्रयत्न करना चाहिए। इसे स्वार्थपरक सुखवाद कहा जाता है। परन्तु यदि सभी लोग अपने सारे कार्य अपने सुख के लिए ही करें तो समाज की व्यवस्था ही न रह जाय। पिता अपने पुत्र को, पति अपनी पत्नी को मित्र अपने शुभेच्छु को या स्वामी अपने सेवक को प्रसन्न रखने के लिए कार्य करता है। वह इन कार्यों को केवल इसलिए नहीं करता कि उसे व्यक्तिगत सुख मिलता है वरन् इसलिए करता है कि दूसरा पक्ष सुखी हो। स्वार्थवादी सुख यदि अच्छा नहीं तो परार्थवादी सुख पर आना पडेगा। **'परोपकाराय सतां विभूतयः'** के अनुसार विचारशील लोगों का कथन है कि वास्तविक सुख दूसरे लोगों के आनन्द में अनुभूत है। हमारे किसी कार्य से यदि बहुत से लोग प्रसन्न है तो वह सुख सर्वोत्तम है। परन्तु व्यक्तिगत चश्मे से देखने पर ऐसी बात कोरी बकवास लगती है। हम कोई काम क्यों करें जिसमें हमें कोई लाभ न हो! यदि हम अपने को इतना व्यापक बना दिए हों कि हममें और अन्य लोगों में कोई उत्तर नहीं दीखता तब तो परार्थवाद कुछ समझ में आ सकता है। परन्तु ऐसी बात व्यवहार में कम आती है। यदि एक दो लोगों ने इस प्रकार का दृष्टिकोण बना लिया हो तो भी इस पर सामान्य सिद्धांत नहीं बनाया जा सकता है। होता प्रायः यह है कि जिस कार्य को ऊपर से देखकर हम परोपकार कहते हैं उसमें भी स्वार्थ छिपा रहता है। **'प्रयोजनं अनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तते।'** विना स्वार्थ के मूर्ख भी कोई काम करने को आगे नहीं बढता। आज-कल विद्यालय खोलने, कुँआ खुदवाने जैसे परार्थमूलक कार्य भी स्वार्थ सेवाओं जैसे पेशे हो गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो भी हो आज के समाज में यह मान्यता है कि सुख उस कार्य में है जिससे समाज और व्यक्ति दोनों का हित हो, दोनों सुखी हों। **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** के उद्घोष में 'स्वत्व' भी मिला हुआ है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि किसी एक व्यक्ति की भलाई करना हमारे सुख का लक्ष्य होना चाहिए या अनेक? इसका सीधा-सा उत्तर है अनेक व्यक्तिओं की। परन्तु यह उत्तर इतना आसान नहीं है। मान लीजिए, आपके पास सौ रूपए परोपकार कोष में हैं। इसे खर्च करना है। इसे आप पैसों के रूप में भिखारिओं में बाँट सकते हैं और हजारों के मुख से आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं। इस रूपए के व्यय का दूसरा विकल्प है किसी एक व्यक्ति की सेवा में देना। आपके इस रुपये से कोई एक विद्यार्थी अध्ययन चालू रख सकता है, कोई रोगी जीवन दान पा सकता है, कोई गरीब व्यापार कर धनी हो सकता है। आप एक लोटा पानी गंगा में गिराकर अर्घ देकर खुश होंगे या उससे किसी पिपासु की तृष्णा शान्त करके?

उपरोक्त प्रश्न के साथ सुख के परिणाम व गुण या भाव का भी विचार उपस्थित हो जाता है। कुछ सुख ऐसे होते हैं जो दीर्घकालीन होते हैं जैसे अच्छी मकान में रहना। सभी लोग यह चाहते हैं कि हमें रहने को अच्छी मकान मिले। कुछ सुख ऐसे भी होते हैं जिन्हें हम थोडे समय के लिए ही प्राप्त कर सकते हैं। उनका स्थायी होना सम्भव नहीं। जैसे-विवाह। कोई भी व्यक्ति अपने विवाह में अत्यधिक आनन्द का अनुभव करता है परन्तु यह कोई नहीं चाहता कि हमेशा उसका विवाह ही होता रहे। कुछ ऐसे सुख हैं जिनको हम परिवर्तन करके भोगना चाहते हैं। अच्छे भोजन करते-करते अरुचि हो जाती है तब हम एक दो दिन सत्तू या सादा भोजन करके पुनः पूडिओं पर आना चाहते हैं।

सुख में मात्रा की अपेक्षा भाव को अधिक ऊँचा आसन मिलता है। हममें से बहुत से ऐसे लोग हैं जो जीवन की एक मधुर घडी के लिए पूरा जीवन दुःखमय बिता सकते हैं और वह भी हँसते-हँसते। किसी प्रतिज्ञा की पूर्ति के सुख में परिणामवश कोई व्यक्ति आजीवन कारावास झेल सकता है या शहीद हो सकता है। देश प्रेम, जातिप्रेम, धर्मप्रेम आदि ऐसे ही नशे हैं जिनके पीछे मनुष्य बड़े से बडे सुख का बलिदान कर डालता है।

शारीरिक सुख और आन्तरिक सुख में भी प्रकार प्रकार का अन्तर है। जिन लोगों की बुद्धि अधिक विकसित होती है वे शारीरिक सुख को कम महत्त्व देते हैं। और आत्मिक सुख को ज्यादा। योगी पंचाग्निव्रत कर अपने शरीर को अतिशय दुःख देता है पर भीतर से सुख का अनुभव करता है क्योंकि वह जानता है कि शरीर और आत्मा में कोई आत्यन्तिक सम्बन्ध नहीं है।

शरीर और आत्मा की बात आने पर सहसा ध्यान विषय और विषयी की ओर चला जाता है। विषय से यहाँ तात्पर्य है सांसारिक वस्तुओं से और विषयी से अर्थ है आत्मा से। वास्तविक सुख बाह्य वस्तुओं में है या अपने में। भौतिकवादी सिद्धांत के अनुसार सुख बाह्य उपकरणों में है। सुख के साधन भोग विलास की वस्तुएँ हैं और उनको प्राप्त कर उपभोग करना ही हमारे जीवन का लक्ष्य है। इसी सिद्धांत के अनुसार विज्ञान के आधुनिकतम विकास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो रहे हैं। परन्तु यदि प्रश्न पूछा जाय कि इन उपकरणों से सज्जित मानव सुखी तो है? उत्तर समझकर देना होगा। एक व्यक्ति जो शीततापनियंत्रित घर में रहता है, टेलीफोन, टेलीबीजन, लिफ्ट इत्यादि सभी उसके पास मौजूद हैं, सेवकगण भी अधिक संख्या में हैं, पैसों की कमी नहीं, अच्छी सुन्दर स्त्री, बच्चे, माँ-बाप, मित्र सभी मौजूद हैं, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, फिर भी रात को चैन की नींद नहीं सोता और अपने को असहाय पाकर आत्महत्या कर लेता है। इसका क्या कारण है? इसका उत्तर वृहदारण्यक उपनिषदके याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी प्रकरण में बडा अच्छा मिलता है। याज्ञवल्क्य मुनि की दो पत्नियाँ थीं कात्यायनी व मैत्रेयी। मुनि वन जाने लगे और दोनों पत्नी को बुलाकर सम्पत्ति का आधा आधा बंटवारा करने लगे। कात्यायनी चुप रही पर मैत्रेयी ने पूछा–यदि इस धन से सम्पन्न सारी पृथ्वी मेरी हो जाय तो क्या मैं अमर हो सकती हूँ? यदि नहीं तो इससे क्या प्रयोजन? इसके बाद याज्ञवल्क्य ने प्रसन्न होकर आत्मा का उपदेश देते हुए बताया कि इस विश्व में आत्मा ही सबसे प्रिय वस्तु है। प्रियतम आत्मा के लिए ही अन्य सारी वस्तुएँ प्रिय होती हैं। आत्मा के ज्ञान में ही परम सुख है। आत्मा के ज्ञान से भूमा का सुख मिलता है जिसे वर्णन करते हुए छान्दोग्य उपनिषद् ने कहा है कि जो भूमा है वही सुख है, अल्प में सुख नहीं है। सुख भूमा ही है जिसे पाकर जीव कुछ और नही देखता, कुछ और नहीं सुनता तथा कुछ और नहीं जानता।

यह सिद्ध हुआ कि आत्मा का ज्ञान ही परम सुख है क्योंकि आत्मा आनन्द स्वरूप है। इस सुख का अनुभव करने के लिए आत्मा को जानना अत्यन्त आवश्यक है। आत्मा को जानने के योग, मंत्र, गुरु इत्यादि अनेक साधन हैं जिसमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन सबसे प्रमुख है। हमें सबसे पहले आत्मा के बारे में पुस्तकों व अनुभवी लोगों से सुनना चाहिए। तदुपरान्त सुनी हुई बात पर तर्क-वितर्क कर वास्तविक तात्पर्य निश्चित करना चाहिए। और अन्त में निश्चित अर्थ पर ध्यान लगाकर उसकी साक्षात् अनुभूति करनी चाहिए। अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होने पर स्व और पर का भेद मिट जाता है। तब व्यक्ति भेद से ऊपर उठकर अभेद के लोक में पहुँच जाता है जहाँ अपना सुख दूसरे का सुख है और दूसरे का अपना। वास्तव में इसी अनुभूति को मुक्ति कहते हैं। **

पूज्य आचार्यश्रीजी का स्वास्थ्य सुधार पर—

जयपुर– यहां पर लालभवन में, श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर बालब्रह्मचारी, प्रसिद्ध वक्ता, पं. रत्न, परम श्रद्धेय, महामहिम श्री १००८ पूज्यपाद आचार्य सम्राट् श्री आनन्दऋषिजी म. तथा कविवर्य उपाध्यायजी श्री अमरमुनिजी म. आदि सन्त वृन्द तथा विदुषी पं महासतीजी श्री सुमतिकँवरजी म. श्री केशरकंवरजी म. आदि सतीवृन्द परम सुखशांति में विराजमान हैं। पूज्य श्रीजी का स्वास्थ सुधारे पर हे। पूज्य श्रीजी की प्रकृति का निरीक्षण डॉ. शर्माजीने करके पूर्ण विश्राम की सलाह दी है। पूज्यश्री शीघ्र स्वास्थ्यलाभ करें यही हार्दिक शुभकामना।

उपाध्याय श्रीजी का व्याख्यान प्रतिदिन लाल भवन में होता रहता है। जनता की उपस्थिति संतोषजनक रहती है। कविश्रीजी के व्याख्यान से जनता काफी प्रभावित है।

'सपादक"

112592

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्री वर्द्धमानाय नमः ॥

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी, (अहमदनगर)

❀ कार्यकारिणी समिति की बैठक ❀

शुभस्थान-जयपुर (राजस्थान) ता. २६-९-६४

कार्यकारिणी समिति की बैठक "टूरेस्ट होटल" जयपुर (राजस्थान) में हुई, जिसमें निम्न सदस्य उपस्थित थे।

१)	श्रीमान् रतनचन्दजी सा. बाठिया	पनवेल
२)	,, चन्द्रभानजी सा. डाकलिया	श्रीरामपुर
३)	,, बरजीवनभाई त्रिभुवनदासजी शाह	मुम्बई
४)	,, हस्तीमलजी सागरमलजी मेहता	,,
५)	,, तिलोकचन्दजी गुन्देचा	चांदा
६)	,, हीरालालजी गांधी	पाथर्डी
७)	,, पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल	ब्यावर
८)	,, केशरचन्दजी बोरा	आश्वी
९)	,, प बदरीनारायणजी शुक्ल	पाथर्डी
१०)	,, पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी	,,

कोरम पूरा था, अतः अध्यक्ष महोदय श्रीमान् सेठ रतनचन्दजी सा. बांठिया की अध्यक्षता में बैठक प्रारम्भ हुई। सर्व प्रथम मंगलाचरण हुवा, तदनंतर बोर्ड-मंत्री पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी ने आये हुए संदेशों का वाचन किया, जिनमें निम्न मुख्य थे।

१)	श्री सौभाग्यमलजी सा. जैन	शुजालपुर
२)	श्री जवाहरलालजी सा मुणोत	अमरावती
३)	श्री मांगीलालजी सा. बोरदिया	गुलाबपुरा
४)	श्री उत्तमचन्दजी सा. बोगावत (वकील)	अहमदनगर
५)	श्री रतनलालजी नाहर	बरेली

तदनन्तर बोर्ड के मंत्रीजी ने चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट द्वारा प्रमाणित जून १९६४ तक का आय-व्यय समिति के समक्ष रखा, जिस पर चर्चा-विचारणा होकर निम्न प्रस्ताव सर्वानुमति से स्वीकृत हुए।

प्रस्ताव नं. १

चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट द्वारा प्रमाणित ता. ३०-६-६४ का आय-व्यय सर्व सम्मति से स्वीकृत किया जाता है। एवं ऑडीटर द्वारा की हुई सूचनाओं पर कार्यालय का ध्यान आकृष्ट कराया जाता है। मुम्बई शाखा कार्यालय का ऑडिट १ मास के अन्दर बोर्ड-मंत्री पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी अहमदनगर में श्री वी. एन् नारलकर चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट से करा लेवें।

प्रस्ताव नं. २

गत पाथर्डी मिटिंग का प्रोसेडिंग सर्व सम्मति से स्वीकृत किया जाता है।

प्रस्ताव नं. ३ (क)

श्रमण संघीय निम्न संत-सतियों के स्वर्गवास से जिन-शासन की जो महती क्षति हुई है, तदर्थ यह सभा उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि प्रकट करती हुई उनकी पवित्रात्मा को अक्षय एवं अखंड शांति प्राप्त हो, एतदर्थ शासनदेव से प्रार्थना करती है।

१	पं. मुनि श्री मोतीऋषिजी म.	भीलवाडा
२	पं. मुनि श्री तिलोकचंदजी म.	दिल्ली
३	कवि श्री हर्षचन्द्रजी म	साहकोट
४	महासतीजी श्री सुगनचंदजी म.	जोधपुर
५	महासतीजी श्री जयवंतीजी म.	अंबाला
६	श्री महासतीजी श्री फूलकुंवरजी म.	अमरावती
७	श्री महासतीजी श्री हेमकुंवरजी म.	चोप I

प्रस्ताव नं. ३ (ख)

समाज के भूषण स्वरूप श्रीमान् भिकचंदजी देशलहरा, बुलडाणा के देहावसान से जो महती क्षति हुई है। तदर्थ यह सभा उनकी आत्मा को अक्षय एवं अखंड शांति प्राप्त हो, शासन-देव से प्रार्थना करती हुई उनके शोक संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रगट करती है। प्रमुख स्थान से।

प्रस्ताव नं. ४

आदर्श समाज निर्माण के लिए संयमी वर्ग की योजना सर्वथा स्तुत्य है, संयम ही आत्म कल्याण का प्रमुख साधन है। विगत वर्ष में जो जो महानुभाव सांसारिक तुच्छता, भौतिक हेयता और आध्यात्मिक उत्कर्ष को भली भाँति पहचानकर संयम पथ के पथिक बने हैं, उन सभी का यह कार्यकारिणी समिति हार्दिक अभिवादन तथा अभिनन्दन करती है।

प्रस्तावक—हस्तीमलजी मेहता

अनुमोदक—चन्द्रभानजी डाकलिया

श्री तिलोकचन्दजी गुन्देचा

प्रस्ताव नं. ५

संगठन सामाजिक सुदृढता का मूल आधार है। भगवान् महावीर ने अपने धार्मिक प्रशासन में चतुर्विध संघ की पूर्व परंपरानुसार संस्थापना की, वह संगठन का ही प्रतीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल भेद से संगठित शक्ति अपने स्वरूप में न रहसकी और विघटन की प्रवृत्तियाँ बलवती बनने लगीं, उन्हें रोकने के लिए चतुर्विध संघ के हितेषी नेता गण अपनी सम्पूर्ण शक्ति से प्रवृत्त हुए और उनके प्रयत्नों में यश आकर श्रमण संघ का निर्माण हुवा। परन्तु कुछ ही समय में इसके अन्दर भी अनपेक्षित मतभेद उपस्थित हो जाने से संघ विघठन की बहुत बडी आशंका उपस्थित हो गई थी। कुछ अंश में इस शंका ने मूर्त्त रूप भी धारणकर लिया, परन्तु हमारे दीर्घदर्शी पूज्य श्रमण वर्ग ने शीघ्र ही स्थिति पर काबू प्राप्त कर लिया. और पुन: अपनी व्यवस्था सुदृढकर आचार्य उपाध्याय प्रवर्त्तक की शास्त्रीय योजना को क्रियान्वित कर समाज की आशाओं को सफलीभूत बनाया।

यह कार्यकारिणी समिति संघ के नवोदित श्रद्धेय आचार्य श्री जी बालब्रह्मचारी, पं रत्न श्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज एवं उपाध्याय मण्डल तथा प्रवर्त्तक परिवार को कोटिश: वन्दन करती हुई उनका अन्त:करण से अभिनन्दन करती है। प्रस्तावक—श्री चन्द्रभानजी डाकलियाँ

अनुमोदक—बरजीवन भाई शाह मुम्बई

„ पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ब्यावर

प्रस्ताव नं. ६

सामाजिक तथा धार्मिक संगठन को सुदृढ बनाने के लिए शिक्षा प्रणाली में एकता का होना परमावश्यक है। वर्त्तमान में धार्मिक शिक्षा के २ पाठ्यक्रम बडे प्रमाण में योजनाबद्ध कार्य कर रहे हैं, इन दोनों में एकता लाने के लिए परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की तरफ से गतवर्ष से ही प्रयत्न प्रारंभ किया गया था लगभग १ वर्ष के प्रयास में ही इस महान् कार्य को साध्य किया जा सका. इसका प्रमुख श्रेय श्री वेलजी शामजी वीराणी स्था. जैन धार्मिक शिक्षण संघ राजकोट के प्रमुख श्री रा. व. श्री शाह मोहनलाल पोपट भाई एवं शिक्षण संघ के परामर्शदाता श्री जवेरचन्द जादव जी कामदार तथा संस्था के अन्य पदाधिकारियों को है। जिन्होंने पाठ्यक्रम की एकता से होने वाले सुन्दर परिणामों को लक्ष्य में रखकर पाथर्डी बोर्ड के पाठ्यक्रम से अपने पाठ्यक्रम को मिलाकर एक पाठ्यक्रम निर्माण की अन्त:करण से स्वीकृति प्रदान कर दी, इस दीर्घदर्शिता पूर्ण समन्वय स्थापना में मूल्यवान् सहयोग प्रदान करने की उदात्त भावना के लिए यह कार्यकारिणी समिति आप सभी महानुभावों को शतश: धन्यवाद देती है।

प्रस्तावक—श्री बरजीवनदास शाह

अनुमोदक—१ श्री हस्तीमलजी मेहता

२ श्री चन्द्रभानजी डाकलिया ३ श्री केशरचन्दजी बोरा

प्रस्ताव नं. ७

परीक्षाबोर्ड के पाठ्यक्रम में संशोधन करने के लिए बोर्ड की विद्वत्परिषद् ने अपनी पूर्व बैठक में जो परामर्श दिया और उसके पश्चात् धार्मिक शिक्षण संघ राजकोट से पत्र व्यवहार करके दोनों पाठ्यक्रमों को एक बनाने का आयोजन किया गया, तदनुसार पाथर्डी बोर्ड के तारीख १९।९।६४ के पत्रोत्तर में शिक्षण संघ राजकोट के २०।९।६४ के पत्र का आधार लेकर पाथर्डी बोर्ड की तरफ से २ विद्वानों का निर्वाचन करना है, इसके लिये निम्न विद्वानों का नाम यह समिति सम्मत करती है। १) पं बदरीनारायणजी शुक्ल

२) पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

पाथर्डी बोर्ड और राजकोट शिक्षण संघ के प्रतिनिध एकत्र बैठकर जो पाठ्यक्रम तैयार करेंगे, वह बोर्ड की विद्वत्परिषद के सदस्यों के पास भेजकर उस पर उनका अभिप्रत्य मंगाया जाय, और पाठ्यक्रम का अन्तिम रूप श्रमण संघ के समन्वायक आचार्य श्रीजी एव उपाध्याय श्रीजी की सम्मति से निर्धारित किया जाय जा। एतदर्थ कार्य सम्पादन का दायित्त्व दरिक्षाधिकारी पं. बदरीनारायणजी शुक्ल को दिया जाता है। यह कार्य वर्त्तमान चातुर्मास पूर्तिके पहले ही संपन्न हो जाना आवश्यकीय है। प्रस्तावक—श्री चद्रभानजी डाकलिया श्रीरामपूर

अनुमोदक—पं चंद्रभूषण मणि त्रिपाटी, श्री हस्तीमलजी मेहता

प्रस्ताव नं. ८

परीक्षा बोर्ड का संशोधित विधान कार्यकारिणी के सदस्यों के पास भेज दिया जाय, एवं उस पर उनकी सम्मति मंगाकर कार्यकारिणी की अगली बैठक में रखी जाय।

प्रस्तावक— श्री हस्तीमलजी मेहता

अनुमोदक— श्री चद्रभानजी डाकलिया

प्रस्ताव नं ९

दी बँक ऑफ बरोडा लि. में ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा का सेव्हिंग्ज खाता खोलने का निर्णय किया जाता है। बोर्ड की तरफ से बैंक सबंधी व्यवहार करने का अधिकार रकम निकालने का श्री. दौलतरामजी चांदमल बोरा एवं श्री. पनालालजी पेमराजजी मुथा अहमदनगरवालों को रहेगा।

प्रस्तावक— श्री तिलोकचंदजी गुगले

अनुमोदक— श्री केशरचंदजी बोरा

प्रस्ताव नं. १०

सुधर्मा मुद्रणालय के बारे में ट्रष्ट मंडल ने अपनी बैठक में जो निर्णय किया है, उसको यह समिति सम्मत करती है।

प्रस्तावक - श्री हीरालालजी गांधी

अनुमोदक— श्री केशरचंदजी बोरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्ताव नं. ११

बर्तमान महर्घता देखते हुए बोर्ड कर्मचारियों को निम्न प्रकार आश्रय देनेका निर्णय किया जाता है।

१- पं. बदरीनारायण शुक्ल	१५-०
२- पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी	१५-०
३- श्री बलदेव मिश्र	१०-०
४- श्री एकनाथजी कुलकर्णी	१०-०

यह निर्णय १ जौलाई १९६४ से दिसम्बर १९६४ तक रहेगा। महर्घता की स्थिति बनी रहने पर जनवरी १९६५ से जून १९६५ तक के लिए भी यही निर्णय रहेगा।

प्रस्तावक- श्री चन्द्रभानजी डाकलिया
अनुमोदक- श्री तिलोकचन्दजी गुंदेचा

प्रस्ताव नं. १२

आय व्यय का निरीक्षण करने के लिये श्री बी. एन्. नारलकर चार्टर्ड अकाउण्टेण्ट अहमदनगर की नियुक्ति की जाती है।

प्रस्तावक — श्री तिलोकचन्दजी गुन्देचा
अनुमोदक — श्री हस्तीमलजी मेहता

प्रस्ताव नं. १३

परीक्षा बोर्ड के परीक्षक गण प्रारंभ काल से ही अपना हार्दिक सहयोग प्रदान किये हैं, और कर रहे हैं, प्रश्न पत्र निर्माण और उत्तर पुस्तकों का संशोधन ये दोनों ही बहुमूल्य कार्य उनके द्वारा सम्पादित किये जा रहे हैं। बोर्ड की आर्थिक स्थिति के अनुसार अभी तक सिर्फ सिद्धान्त शास्त्री व सिद्धान्ताचार्य के परीक्षकों को प्रश्न पत्र निर्माण का पारिश्रमिक दिया जाता है। इसके आगे की परीक्षावों के परीक्षकों के लिये निम्न प्रकार से प्रश्न पत्र निर्माण शुल्क देना निर्धारित किया जाता है।

जैन सिद्धान्त प्रभाकर, जैन सिद्धान्त विशारद, जैन सिद्धान्त प्रथमा के प्रत्येक परीक्षक को ५-५ रु. दिये जायें।

प्रस्तावक — पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल
अनुमोदक — पं बदरीनारायणजी शुक्ल

प्रस्ताव नं. १४

सन १९६३-६४ में बजट से १०५६-७९ अधिक खर्च हुवा है, जिसकी स्वीकृति दी जाती है।

प्रस्तावक- श्री हीरालालजी गांधी
अनुमोदक- श्री चंद्रभानजी डाकलिया

प्रस्ताव नं. १५

अ) दी बैंक ऑफ महाराष्ट्र लिमिटेड अहमदनगर शाखा में जो परीक्षा बोर्ड का चालू खाता है उसको बन्द करने का निर्णय किया जाता है।

ब) दी बैंक ऑफ महाराष्ट्र लिमिटेड अहमदनगर शाखा में जो श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी का सेव्हिंग्ज खाता खोलने का निर्णय किया जाता है।

बैंक सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्यवाही करने का अधिकार (चेक द्वारा रकम आदिनिकालनेका) श्री दोलतरामजी चांदमलजी बोरा एवं श्री पनालालजी पेमराजजी मुथा को संयुक्त रूप से रहेगा।

प्रस्तावक- श्री केशरचंदजी बोरा
अनुमोदक- श्री तिलोकचंदजी गुंदेचा

प्रस्ताव नं. १६

सन १९६४-६५ के लिए निम्न प्रकार से बजट मंजूर किया जाता है।

आय	व्यय
३२४०—०० भवन भाड़ा	६३५०—०० वेतन
७०००—०० व्याज	२००—०० म्युनिस्पल टॅक्स
१०००—०० सुधर्मा वर्गणी	३००—०० भवन रिपेयर
१०००—०० पुस्तक वि. वि. से	५० — ०० ऑडिट फी
३०००—०० निभाव फंड	२००—०० चैरिटी फीस
	२०० — ०० परिचूर्ण खर्च
	१५०—०० स्टेशनरी खर्च
	३०० — ०० प्रवास खर्च
	१५०—०० टपाल, टेलीफोन
	२७०० — ०० परीक्षा विभाग खर्च, (पदक पारितोषिक सहित)
	४१००—०० सुधर्मा मासिक
	३००—०० उत्तमज्ञान प्रो. पारितोषिक विभाग
	१५—०० अध्यापक पारितोषिक
१५२४०—००	१५०१५—००

प्रस्ताव नं. १७—अध्यक्ष महोदय, जयपुर श्री संघ का हार्दिक आभार।

—पं. चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ अर्हन् ॥

श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरन्स द्वारा मान्य

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी, (जि. अहमदनगर)

११ नवम्बर १९६४ से होनेवाली उपाधि परीक्षाओंकी समयसारिणी

दिनाङ्क	श्री जैन सिद्धान्त आचार्य	जैन सिद्धान्त शास्त्री	जैन सिद्धान्त प्रभाकर	जैन सिद्धान्त विशारद
११-११-६४ बुधवार	प्रथम खंड प्रथम पत्र	प्रथम खंड प्रथम पत्र	प्रथम खंड प्रथम पत्र	प्रथम खंड प्रथम पत्र
१२-११-६४ गुरुवार	प्रथम खंड द्वितीय पत्र	प्रथम खंड द्वितीय पत्र	प्रथम खंड द्वितीय पत्र	प्रथम खंड द्वितीय पत्र
१३-११-६४ शुक्रवार	प्रथम खंड तृतीय पत्र	प्रथम खंड तृतीय पत्र	द्वितीय खंड प्रथम खंड	द्वितीय खंड प्रथम पत्र
१४-११-६४ शनिवार	द्वितीय खंड प्रथम पत्र	द्वितीय खंड प्रथम पत्र	द्वितीय खंड द्वितीय पत्र	द्वितीय खंड द्वितीय पत्र
१५-११-६४ रविवार	द्वितीय खंड द्वितीय पत्र	द्वितीय खंड द्वितीय पत्र	—	—
१६-११-६४ सोमवार	द्वितीय खंड तृतीय पत्र	द्वितीय खंड तृतीय पत्र	—	—
१७-११-६४ मंगळवार	तृतीय खंड प्रथम पत्र	तृतीय खंड प्रथम पत्र	—	—
१८-११-६४ बुधवार	तृतीय खंड द्वितीय पत्र	तृतीय खंड द्वितीय पत्र	—	—
१९-११-६४ गुरुवार	तृतीय खंड तृतीय पत्र	तृतीय खंड तृतीय पत्र	—	—

बदरीनारायण शुक्ल, जैन सिद्धान्ताचार्य, सर्वदर्शन शास्त्री, परीक्षाधिकारी (रजिस्ट्रार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—: आजीवन सदस्य :—

१ के. चु. भटेवडा	राहू (पूना)
२ ता. रां. मा. सुन्दराबाईजी	आष्टा
३ इन्दरबाईजी	,,
४ श्रीमती रा. डागा	भोपाल
५ जी. ते. ललवानी	श्रीरामपुर
६ मे. ध. जैन	मगरदा
७ कि. चौधरी	शुजालपुर
८ गें. इ. जैन ,,	,,
९ कं. दी. जैन ,,	,,
१० सू. न. जैन ,,	,,
११ रा. चौ को ,,	,,
१२ का. ही. जैन ,,	,,
१३ ज. खो. डोशी	इन्दौर
१४ इ. सू. चोपडा	भामाठाण
१५ मे. टाटिया	सारंगपुर
१६ प्रे. जी. वेदमुथा	वर्धा
१७ दे. भि. कांकरिया	राहू
१८ श्री. न. पितलिया	सीहोर
१९ के. घी. बाफणा	नागपुर
२० क. ल. रांका	शुजालपुर
२१ स. व. जैन	शाजापुर
२२ सु. जी. सिंदरसीवाला	,,
२३ वैं. र. स. मुणोत	वांबोरी
२४ भं. के. जोगड	बोदवड
२५ झुं. ध. मुथा	अहमदनगर
२६ अ. मा. गुगले	पाथर्डी
२७ ना. भ्र. र. भंडारी	पीपला
२८ सौ. गु. भ्र. सि. बोरा	अ.नगर
२९ ब. झुं. कोठारी	,,
३० ला. पा. मा. कोंडाबाईजी	पाथर्डी
३१ सौ. च. मो. लुणिया	जंजीरा
३२ मि. रा. भटेवडा	केडगांव
३३ फ. मु. शिंगी	नेवासा
३४ भा. खु. गांधी	आश्वी
३५ ना. क. छाजेड	चकलाआंबा
३६ उ. बा. देसरडा वकील	चाळीसगांव
३७ भ. झुं. गुगळे	करंजी
३८ चां. भ. मुणोत	वांबोरी
३९ कि. बी. पटवा	पाथर्डी
४० छो. ने गुगळे	लोहसर
४१ ही. भ्र. न. सुरपुरिया	पूना
४२ रा. भ्र. म. कोठारी	सतारा
४३ भी. मा. कर्नावट	सिरसमार्ग
४४ बा. डा. वद्धानी	अमरावती
४५ सु. भ्र. मो. मुथा	देवळाली
४६ प. कि. छाजेड	म्हसे
४७ मू. रि. संकलेचा	मजलेगांव
४८ हां. भ्र. च. शिंगी	अहमदनगर
४९ चं. ध. वैद	चांदा
५० सु. सु. कुचेरिया	पाथर्डी
५१ वि. शा. संकलेचा	अमरावती
५२ न. मु. बोरा	पीपला
५३ चाँ. मू. चंगेडिया	बरोरा
५४ एक गुप्तदानी सद्गृहस्थ	अ.नगर
५५ भी. के. ललवानी	मनमाड
५६ ब. मा. गांधी	पिंपलगांव
५७ प्रे. भ्र. ज. बोरा	,,
५८ मो. चु. मुथा	वांबोरी
५९ सौ. रू. सू भ्र. झुंबरलालजी	,,
६० मू. द. चंगेडिया	सोनई
६१ पू. मो. नाहर	घोडेगांव
६२ ने. ब. भटेवड़ा	वांसदा
६३ ब. च. सिंगी	देवळाली
६४ श्री. रा. मुथा	,,
६५ झु. पू. बाफना	श्रीरामपुर
६६ ने. गु. मुथा	बेलापुर
६७ चु. पू. तातेड	,,
६८ मो. र. हिरन	,,
६९ के. मां. संचेती	चिंचवड
७० ह. सो. मुनोत	निंबारी
७१ गं. मो. कोठारी	पूना
७२ क. के. कांकलिया	पूना
७३ मो. ल. खिंवसरा	,,
७४ र. मा. ओस्तवाल	सांगली
७५ छो ब. गुगळे	वांबोरी
७६ इं. गं. कोठारी	,,
७७ ने. झुं. सुराणा	राहुरी
७८ चां. मो. भंडारी	घोडनदी
७९ धू. भि. फुलफगर	घोडनदी
८० चं. शो. गादिया	,,
८१ चां. सु. कोठारी	बेलापुर
८२ रा. पो. गांधी	रस्तापुर
८३ जे. शां. संघवी	उत्राण
८४ भू. रा. कोठारी	केडगांव
८५ चु. भ्र. प्रे. देसरडा	न्हावरा
८६ कां. जा. नाहर	आलेगांव
८७ प. ही. कटारिया	वाल्की
८८ फू. बा. बाफना	राहुरी
८९ मा. गं. चोरडिया	बोरी
९० पु. शो. चोरडिया	,,
९१ रा. ल. भंडारी	सिरसाला
९२ ध. द. संचेती	पूना
९३ ज. चु. सांड	रहाता
९४ ह. न. गांधी	श्रीरामपुर
९५ झुं. भ्र. ही. भलगट	गुलबर्गा
९६ ब. चं. गुगले	मलाड
९७ र. ही. लूंकड	श्रीरामपुर
९८ कुं. न. गांधी	,,
९९ सु. लुणावत	धामणगांव
१०० शांतिलालजी चौधरी	राजगढ़
१०१ न. शा. भाई	मलकापुर
१०२ ही. ल. मुथा	लक्ष्मेश्वर
१०३ सि. र. भुरा	सिवनी
१०४ चं हि. कुंकुलोल	कोल्हार
१०५ वि. पु. राकेचा	,,
१०६ ना. भ्र. रा. गुगले	,,
१०७ स. म. रांका	,,
१०८ फ. ज. गुगलिया	,,
१०९ मो. झुं. रांका	चिंचोली
११० प. का. रांका	,,
१११ हु. च. समदडिया	अस्तगांव
११२ भा. झुं. गुगले	पाथर्डी
११३ उ. ह. कातरेला	अमरावती
११४ कां. मा. गांधी	मुंबई
११५ जे. मा. कटारिया	खरवंडी
११६ जे. धों. कटारिया	,,
११७ ह. त. गांधी	वाम्बोरी
११८ मो. द. डोशी	अ. नगर
११९ जी. मे. बोरा	वाम्बोरी
१२० उ. बा. धाडीवाल	संगमनेर
१२१ मो. ला. मुणोत	भिंगार
१२२ भे. दी. गांधी	लोणावला
१२३ ज. सु. गुजराथी हलवाई	मालेगांव
१२४ मो. ज. ओस्तवाल	वाम्बोरी
१२५ ने. घ. कटारिया	खरवंडी
१२६ खु. मि. मुणोत	करंजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
112591

१२७	श्री. बं. ने. पारख	संगमनेर
१२८	,, ता. रा. चोरडियाम्हा.	पिंपळगांव
१२९	,, पू. को. भंडारी	कडा
१३०	,, चु. गु. मुथा	घाटसिरस
१३१	,, गींगीबाई फिरोदिया	अ. नगर
१३२	,, न. धो. कटारिया	लोणी
१३३	,, ह. अ. चोरडिया	अकोलनेर
१३४	,, सौ. रु. झु. कटारिया	चांदा
१३५	,, पु. प. मुथा	घाटसिरस
१३६	,, सु. भ्र. ता. डोशी	अ. नगर
१३७	,, मा. घ. बोथरा	खरवंडी
१३८	,, स. मो. लुणावत	जालना
१३९	,, पु मा. कटारिया	इचलकरंजी
१४०	,, ही. रा. भटेवडा	पूना
१४१	,, ही. क. खाटेड	पूना
१४२	सौ. शांताबाई मो. नाहर	पूना
१४३	श्री. रा. शो. टाटिया	पूना
१४४	,, फू. तु. माल	खडकी
१४५	,, मा. रा. बाफना	वडगांव
१४६	,, ध. ही. बाफना	वडगांव
१४७	,, ह. रा. बाफना	वडगांव
१४८	श्री. आ. स. चोरडिया	खेड
१४९	,, दौ. ध. चोरडिया	पिंपळवंडी
१५०	,, रा. ला. चोरडिया	बोरी बुद्रुक
१५१	,, भा. कु. गांधी	संगमनेर
१५२	,, च. र. भंडारी	अश्वी
१५३	,, द. रा. गांधी	प्रवरासंगम
१५४	,, ग. न. चोपडा	खांबा
१५५	,, शो. च. भटेवडा	राजुरी
१५६	,, मि. मो. कोठारी	अहमदनगर
१५७	,, फ. आ. फिरोदिया	साकूर
१५८	,, जा. मि. भंडारी	मंचर
१५९	,, फू. र. कटारिया	संगमनेर
१६०	,, शां. प्रे. कटारिया	अहमदनगर
१६१	" उ. शं. चोपडा	साकूर
१६२	" च. लू. हिरण	साकरवाडी
१६३	" बं. फ. बाफना	साकूर
१६४	" के. बं. कटारिया	अ. नगर
१६५	,, क. बु. फिरोदिया	साकूर
१६६	,, धा. जे. शाह	यवतमाल
१६७	,, ही. जे. चोरडिया	पूना
१६८	,, ने. चां. शिंगी	घोरपडी
१६९	श्री. रू. मा. नाहर	रांजणगांव
१७०	,, शं. भा. दुगड	अमलनेर
१७१	,, कोट व. स्था. संघ	मुंबई
१७२	,, मोहनलालजी कीमती	इन्दौर
१७३	,, भा. छ. तुरखिया	इन्दौर
१७४	,, भं. शा. वाकड	इन्दौर
१७५	,, शि. जो. सर्राफ	देवास
१७६	,, र. मु. बजाज	,,
१७७	,, इ. साड	बडावदा
१७८	सौ. मां. लसोड	प्रतापगढ
१७९	श्री. वि. ल. गेलडा	बोदवड
१८०	,, स्वा. नै. भटेवडा	चाकण
१८१	,, व. स्था. श्रा. संघ	बदनोर
१८२	,, कि. मि. भलगट	भंडारा
१८३	,, कि. झु. भलगट	,,
१८४	,, कि. जं. भलगट	,,
१८५	,, ह. मि. बाफना	पांडुरणा
१८६	,, अ. मो. डांगी	भीलवाडा
१८७	,, भी. क. संचेती	नांदूरा
१८८	,, मो. क. झामड	पीपलगांवराजा
१८९	,, ज. खो. डोशी	इन्दौर
१९०	,, नेमीनाथ जैन	देवास
१९१	,, क. झुं. गांधी	अश्वी
१९२	,, द. ओं रांका	सैलाना
१९३	,, हु. ब. दसोरिया	प्रतापगढ
१९४	,, पा. वि. ढाबरिया	अजमेर
१९५	,, रा. पू. बूरड	शिराला
१९६	,, हं. नाहर	अजमेर
१९७	,, ने. शा. हरकावत	अजमेर
१९८	,, मां. भँ. बोरदिया	गुलाबपुरा
१९९	,, ज. खो. डोशी	अमरावती
२००	,, गुप्तदानी सद्गृहस्थ	
२०१	,, बैजनाथजी जैन	जयपुर
२०२	,, क. र लोढा	दिल्ली
२०३	,, मदनलालजी मणोत	कोटा
२०४	,, मा मों. विनायक्या	मोहाडी
२०५	,, सं. सु. भांडावत	जोधपुर
२०६	,, ध. चु. जैन	बोदवड
२०७	,, मा. मं. रांका	पारसिवनी

To

श्रीमान्

मुकाम

पोस्ट

जिला

GURUKUL KANGRI 19.10.64
76267
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri